प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास

महामहोपाध्याय

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

इस पुस्तक का प्रकाशन महाराणा मेवाड पब्लिकेशन ट्रस्ट, उदयपुर के आर्थिक सहयोग से हुआ है। पुस्तक में व्यक्त विचार लेखक के निजी है। महाराणा मेवाड़ पब्लिकेशन ट्रस्ट, उदयपुर इसके लिए उत्तरदायी नही है।

ISBN – 81-87720-02-6

प्रकाशक :

राजस्थानी ग्रन्थागार

प्रकाशक एवं वितरक

सोजती गेट, जोधपुर

फोन : कार्यालय : 623933
निवास : 432567

द्वितीय संस्करण : 9 अप्रैल 2000

मूल्य : पॉच सौ रुपये मात्र (500 00)

19820

मुद्रक :

ग्राफिक ऑफसेट, दिल्ली

Pratapgarh Rajya Ka Itihas

By : **Dr. Gourishankar Hirachand Ojha**

Published by . **Rajasthani Granthagar**, Sojatı Gate, Jodhpur

Second Edition : 9 April 2000 **Price Rs. 500.00**

A.S.M.

सिटी पैलेस,
उदयपुर

प्राक्कथन

'प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास' मेवाड़ राज्य के सीसोदिया वंश से जुड़ा हुआ है। उसके शासक उसी राजवंश की एक प्रमुख शाखा के रूप में अपना कीर्तिमान प्रतिष्ठित कर चुके है। आज से प्रायः पॉच सौ वर्ष पूर्व मेवाड़ के महाराणा कुम्भा के भाई क्षेमकर्ण के पुत्र सूरजमल ने इस राज्य की स्थापना की थी। वागड़ (डूंगरपुर-बॉसवाड़ा), मालवा और मेवाड़ की सीमाओं से जुड़ा हुआ होने के कारण यह राज्य 'कांठल' भी कहलाता है। यहॉ की पहाड़ियों तथा सघन वनों में मीणों और भीलों की बस्तियों का प्राचुर्य है जहॉ के दुर्गम प्रदेशों में विदेशी आक्रमणकारियों का प्रवेश बहुत कम हो सका था।

प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास मेवाड़ की गौरवमयी परम्परा का अनुगामी रहा है। उसने मुगल सल्तनत और ब्रिटिश शासन के कार्यकाल में अनेक प्रकार के संघर्ष झेलकर अपनी अस्मिता कायम रखी है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, शाही फरमानों तथा बड़वा भाटों की ख्यातों में उसके इतिहास की प्रामाणिक सामग्री भरी पड़ी है। अनेक विद्वानों ने उस सामग्री का आधार लेकर प्रतापगढ़ राज्य की गरिमा और महत्ता को रेखांकित किया है। इस दिशा में डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा प्रणीत यह इतिहासग्रंथ सर्वाधिक प्रामाणिक एवं तथ्यपूर्ण कहा जा सकता है।

डॉ. ओझाजी इतिहास तथा पुरातत्त्व क्षेत्र के धुरंधर विद्वान् और

मौलिक चितक थे। उन्होंने राजस्थान की प्रायः सभी प्रमुख रियासतों के इतिहासग्रंथ लिखे हैं जिनमें उनकी शोधदृष्टि की गहराई उजागर हुई है। उनके अनेक ग्रंथ अब दुर्लभ एवं अप्राप्य जैसे हो गये हैं जिन्हें पुनः प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

मेरे कैलासवासी पूज्य पिताश्री महाराणा श्री भगवतसिहजी मेवाड़ इतिहास के अनन्य प्रेमी थे। वे राजस्थान प्रदेश की गौरवगाथाओं और ऐतिहासिक उपलब्धियों को भारतीय इतिहास के सुनहले पृष्ठों पर अंकित देखना चाहते थे। उन्होंने इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर 'महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन ट्रस्ट, उदयपुर' की स्थापना की थी। इस ट्रस्ट द्वारा ऐसे अनेक ग्रंथों का प्रकाशन किया जा चुका है जिनसे मेवाड़ का महत्त्व अक्षुण्ण बना है। यह ट्रस्ट उन ग्रंथों के प्रकाशन में भी आर्थिक सहयोग देता है जो राजस्थान की धरती और संस्कृति को उजागर करने की दिशा में प्रयत्नशील है। प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन भी उसी ट्रस्ट के आर्थिक सहयोग से किया गया है ताकि ओझाजी की यह अमर कृति प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास की विस्मृत गाथाओं को नवीन दीप्ति प्रदान कर सके।

मुझे विश्वास है कि ग्रंथ का यह पुनर्मुद्रण और प्रकाशन इतिहासप्रेमी विद्वानों और शोधप्रज्ञों का चित्तानुरंजन कर सकेगा।

अरविन्दसिंह मेवाड़

अरविन्दसिंह मेवाड़

भूमिका

इतिहास साहित्य का एक प्रधान अंग एवं जाति तथा समाज की वास्तविक दशा का सच्चा द्योतक है। जाति, समाज एवं व्यक्ति के निर्माण और क्रमिक विकास में इसका बड़ा हाथ रहता है। कुछ समय पूर्व भारतवासी साहित्य के इस आवश्यक अंग की तरफ़ से प्रायः उदासीन रहते थे; परन्तु हर्ष का विषय है कि इधर इस रिक्त अंग की पूर्ति की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है और लोगों की प्रवृत्ति इसके पठन-पाठन की तरफ़ क्रमशः बढ़ रही है। जहां कुछ दिनों पहले हिन्दी के ऐतिहासिक ग्रंथों की गणना अंगुलियों पर की जा सकती थी, वहां अब उसमें आशाप्रद उन्नति दृष्टिगोचर हो रही है।

भारतवर्ष के इतिहास में वीरता, उदारता, दानशीलता, विद्याप्रेम, सांस्कृतिक महत्व आदि की दृष्टि से सीसोदिया जाति का प्रमुख स्थान है। सीसोदियों के मेवाड़ राज्य की गणना संसार के प्राचीनतम राज्यों में होती है, क्योंकि वहां गत चौदहसौ वर्षों से एक ही वंश का अक्षुण्ण रूप से राज्य चला आता है। प्रतापगढ़ राज्य के शासक इसी राजवंश की एक शाखा में हैं। आज से लगभग चारसौ पैंतीस वर्ष पूर्व मेवाड़ के महाराणा कुंभा के भाई क्षेमकर्ण के पुत्र सूरजमल ने इस राज्य की नींव डाली थी। तब से अबतक उसके वंशजों का यहां अधिकार चला आता है। वागड़ (डूंगरपुर-बांसवाड़ा), मालवा और मेवाड़ की सीमाओं से मिला हुआ होने से यह राज्य साधारण बोल-चाल में "कांठल" भी कहलाता है। पहाड़ियों तथा गहन वनों से आच्छादित होने के कारण पहले यहां भील, मीणों आदि की ही बस्ती विशेष रूप से थी और आय की दृष्टि से महत्वपूर्ण न होने की वजह से इसको विजय करने की तरफ़ मुसलमान शासकों का ध्यान नहीं रहा।

प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१—मुग़लों से पूर्व का काल

२—मुग़ल-काल

३—बृटिश-काल

मुग़लों से पूर्व का इस राज्य के नरेशों का जो इतिहास मिलता है वह इतना कम है कि उससे उनके व्यक्तित्व और कार्यों पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता; पर उससे इतना अवश्य पाया जाता है कि मेवाड़ से अलग हो जाने पर भी उन्होंने उसको अपनी मातृभूमि समझा, वीर-प्रसूता मेवाड़-भूमि का उनके हृदय में बड़ा आदर रहा और वे उसकी रक्षा के लिए सदा प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते थे। भारतवर्ष में मुग़लों की प्रभुता स्थापित होने पर कितने ही अन्य राजाओं के समान प्रतापगढ़ राज्य के नरेशों ने भी मुग़लों की अधीनता स्वीकार कर ली और समय-समय पर उन्हें उनकी तरफ़ से उच्च सम्मान और मनसब आदि मिलते रहे। इस बीच मरहटों का आतंक बढ़ने पर प्रतापगढ़ भी उनके प्रभाव से मुक्त न रहा और यहां भी उनकी चौथ लगने लगी। बृटिश-काल शांति, सुव्यवस्था और उन्नति का युग रहा है। ई० स० १८१८ में अंग्रेज़ सरकार के साथ सन्धि होने के बाद बाह्य और आन्तरिक झगड़ों की समाप्ति होकर राज्य उन्नति-पथ पर अग्रसर हुआ। विगत वर्षों में राज्य की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बहुत अन्तर हो गया है। बहुत से प्रजा-हित के कार्यों का भी इसी काल में श्रीगणेश हुआ, जो भविष्य में सामूहिक दृष्टि से राज्य के लिए हितकर सिद्ध होंगे, फिर भी इस ओर अभी बहुत गुंजाइश है।

प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास तैयार करने में निम्नलिखित चार प्रकार की सामग्री का उपयोग हुआ है—

१—प्राचीन शिलालेख, दानपत्र और सिक्के

२—बड़वे भाटों आदि की ख्यातें

३—शाही फ़रमान और अन्य राजकीय पत्र आदि

४—प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ एवं संस्कृत, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू की प्रकाशित पुस्तकें

प्राचीन शिलालेख इस राज्य से केवल तीन मिले हैं, जिनमें से दो घोटार्सी गांव के विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास के और तीसरा गौतमेश्वर का विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का है। वि० सं० की सत्रहवीं शताब्दी से बाद के शिलालेख और ताम्रपत्र प्रचुर मात्रा में मिले हैं, जिनमें ताम्रपत्रों की ही अधिकता है।

बड़वे भाटों की बनाई हुई ख्यातें इस राज्य की कई हैं, जिनमें राजाओं की वंशावली के अतिरिक्त उनकी राणियें, कुंवरों आदि के नाम और उनका संक्षिप्त वृत्तान्त भी मिलता है। कहीं-कहीं राजाओं की गद्दी-नशीनी का वर्ष, मास आदि भी दिया है, पर उनमें दिये हुए राणियों आदि के नाम परस्पर एक-दूसरे से नहीं मिलते तथा संवत् एवं घटनाएं भी बहुधा इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। ऐसी दशा में उनका वास्तविक महत्व सन्दिग्ध ही है।

इस राज्य के नरेशों में सर्वप्रथम महारावत हरिसिंह ने शाही दरबार से संबंध जोड़ा था। हरिसिंह से लगाकर पृथ्वीसिंह तक के कई शाही फ़रमान, शाहज़ादों के निशान आदि प्रतापगढ़ राज्य में विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त शाही अखबारात में भी यहां के नरेशों का वृत्तांत मिलता है। मरहटा-काल के कुछ कागज़-पत्रों और अंग्रेज़ सरकार के साथ के पत्र-व्यवहारों से भी इस राज्य की तत्कालीन स्थिति और इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

"हरिभूषण महाकाव्य" (संस्कृत) के अतिरिक्त इस राज्य के इतिहास से संबंध रखनेवाली और कोई प्राचीन पुस्तक नहीं मिली है। अपूर्ण होने पर भी उक्त महाकाव्य से हरिसिंह से पूर्व के नरेशों के इतिहास पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। उसमें दी हुई घटनाओं का मिलान भी अन्य ग्रन्थों से हो जाता है, परन्तु काव्य-ग्रंथ होने से कई स्थलों पर

उसमें मुख्य-मुख्य बातें छोड़ दी गई हैं या उलट-पुलट लिखी हैं। मुहणोत नैणसी की ख्यात से इस राज्य के वर्तमान नरेशों के प्रारम्भिक इतिहास की बहुत-कुछ पूर्ति होती है। कई फ़ारसी तवारीख़ों में भी यथाप्रसंग प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास आया है। अंग्रेज़ी इतिहासों में माल्कम की रिपोर्ट, टॉड-कृत "राजस्थान"। प्रतापगढ़ राज्य का गैज़ेटियर, लॉयल राजपूताना आदि पुस्तकें इस राज्य के इतिहास के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं। हिन्दी भाषा की पुस्तकों में "वीरविनोद" और उर्दू की पुस्तकों में "वक़ाये राजपूताना" में इस राज्य का बहुत कुछ इतिहास मिलता है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त महारावत हरिसिंह-निर्मित ग्रंथ तथा हरिसिंह और प्रतापसिंह के आश्रय में भिन्न-भिन्न विद्वानों-द्वारा रचित पुस्तकें भी इस राज्य के इतिहास के लिए उपयोगी हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में प्रतापगढ़ राज्य के संक्षिप्त भौगोलिक परिचय एवं प्राचीन इतिहास के अतिरिक्त क्षेमकर्ण से लगाकर वर्तमान समय तक के प्रतापगढ़ के नरेशों का विस्तृत तथा सरदारों और प्रसिद्ध घरानों आदि का संक्षिप्त इतिहास है। इसके प्रणयन में मैंने उपरिलिखित सामग्री का पूरा-पूरा उपयोग किया है। यह सत्य है कि निरन्तर लड़ाई-झगड़ों में व्यस्त रहने के कारण प्रतापगढ़ के नरेशों का भी अन्य राजपूत राज्यों के राजाओं की भांति इतिहास सुरक्षित नहीं रह सका है, फिर भी जो कुछ इतिहास उपलब्ध है उससे उनके अतीत गौरव पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जहां तक बना आधुनिक शोध को स्थान देकर मैंने इसे सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। अंधपरंपरागत जनश्रुतियां, ख्यातों तथा काव्यों आदि में लिखी हुई कल्पित और खुशामद भरी बातें वास्तविक इतिहास को कितना नष्ट-भ्रष्ट कर सकती हैं, इसका मैंने कई स्थल पर संकेत किया है और वही बातें ग्रहण की हैं, जिनकी अन्यत्र पुष्टि हो जाती है। जहां-जहां ऐतिहासिक त्रुटियां दिखाई पड़ीं, मैंने यथाशक्य उनका निराकरण करने का प्रयत्न किया है।

प्रतापगढ़ राज्य में अभी शोध के लिए पूरा स्थान है। इस राज्य के घोटार्सी, वरमंडल, वीरपुर, खेरोट, गौतमेश्वर, अरणोद, भचूंडला, नीनोर,

शेवना, बोरदिया आदि स्थानों में प्राचीन काल के मंदिरों के भग्नावशेष और बावड़ियां आदि विद्यमान हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यह इलाक़ा सुसमृद्ध था। प्रतापगढ़ राज्य में खुदाई का काम बिल्कुल नहीं हुआ है और न प्राचीन इतिहास की सामग्री की खोज ही हुई है। यदि खुदाई और शोध का कार्य हो तो और भी सामग्री मिल सकती है। ऐसी दशा में प्रतापगढ़ राज्य के सर्वांगपूर्ण इतिहास लिखने का श्रेय किसी भावी इतिहास-लेखक को ही मिलेगा, लेकिन उस समय भी मेरा यह इतिहास, मुझे विश्वास है, इतिहास-लेखकों के पथ-प्रदर्शक का काम करेगा।

भूल मनुष्य मात्र से होती है। इसका मैं अपवाद नहीं हूं, और फिर इस समय मेरी वृद्धावस्था है। जो त्रुटियां मेरी दृष्टि में आईं उनके लिए पुस्तक के अंत में शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। और भी जो त्रुटियां हों उनके लिए कृपालु पाठक मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। सप्रमाण सूचना मिलने पर उनका द्वितीय आवृत्ति के समय सुधार कर दिया जायगा।

वर्तमान प्रतापगढ़-नरेश महारावत सर रामसिंहजी बहादुर, के० सी० एस्० आई० ने राज्य में उपलब्ध इतिहास संबंधी समस्त सामग्री मेरे पास भिजवाने की कृपा की, जिसके लिए मैं उनका हृदय से अनुगृहीत हूं। सीतामऊ राज्य के विद्याप्रेमी महाराजकुमार डॉक्टर रघुबीरसिंह, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्० का भी मैं अत्यंत आभारी हूं, क्योंकि उन्होंने अपने संग्रह से प्रतापगढ़ के संबंध के शाही फ़रमानों और अख़बारात का अंग्रेज़ी खुलासा मेरे पास भिजवाने का कष्ट उठाया है। प्रतापगढ़ राज्य की रघुनाथ संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक पंडित जगन्नाथ शास्त्री तथा कामदार खासगी शाह मन्नालाल पाडलिया भी मेरे धन्यवाद-भाजन हैं, क्योंकि उनके द्वारा मुझे राज्य से इतिहास-संबंधी सामग्री एवं समय-समय पर सत्परामर्श मिलता रहा है। मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिनकी रचनाओं का मैंने इस इतिहास के लिखने में उपयोग किया है और जिनका उल्लेख मैंने यथास्थान टिप्पणों में कर दिया है।

अंत में मैं पं० नाथूलाल व्यास एवं काशी-निवासी श्री हृदयनारायण सरीन, बी० ए० (जो गत छः वर्षों से मेरे सहकारी है) का नामोल्लेख करना आवश्यक समझता हूं, क्योंकि आरंभ से ही उन्होंने मेरे इस इतिहास के प्रणयन में बड़ी लगन के साथ कार्य किया है। मुझे अपने पुत्र प्रोफ़ेसर रामेश्वर ओझा, एम० ए० तथा निजी इतिहास-विभाग के कार्यकर्त्ता पं० चिरंजीलाल व्यास से भी पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हुआ है, अतएव उनका नामोल्लेख करना भी आवश्यक है।

अजमेर,
चैत्र कृष्णा सप्तमी वि० सं० १९९७ } गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

सीसोदियों से पूर्व के राजवंश

तीसरा अध्याय

महारावत क्षेमकर्ण से विक्रमसिंह (बीका) तक

विषय	पृष्ठाङ्क

चौथा अध्याय

महारावत तेजसिंह से प्रतापसिंह तक

विषय | पृष्ठाङ्क

पांचवां अध्याय

महारावत पृथ्वीसिंह से सामन्तसिंह तक

विषय	पृष्ठाङ्क

विषय पृष्ठाङ्क

छठा अध्याय

महारावत दलपतसिंह से वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी तक

विषय पृष्ठाङ्क

सातवां अध्याय

प्रतापगढ़ राज्य के सरदार और प्रतिष्ठित कर्मचारी

परिशिष्ट

अनुक्रमणिका

चित्र-सूची

प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

नाम

प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी राजधानी देवलिया होने से पहले यह राज्य देवलिया (देवगढ़) राज्य कहलाता था। उक्त राज्य के अधीन का प्रदेश कांठल[1] नाम से प्रसिद्ध है। देवलिया का क़सबा पहाड़ी प्रदेश में होने तथा वहां का जलवायु आरोग्यप्रद न होने के कारण महारावत प्रतापसिंह ने समान भूमि में घोघेरिया खेड़ा (डोडेरिया का खेड़ा) के स्थान पर प्रतापगढ़ नगर बसाया, जहां राजधानी स्थिर होने से इसका नाम प्रतापगढ़ राज्य हुआ।

प्रतापगढ़ राज्य राजपूताने के दक्षिणी भाग में २३° २२′ और २४° १८′ उत्तर अक्षांश तथा ७४° २१′ और ७५° पूर्व देशान्तर के बीच स्थित है।

स्थान और क्षेत्रफल

इस राज्य का क्षेत्रफल अनुमान ८८६ वर्ग मील है।

---

(१) संस्कृत के 'कंठ' या 'कंठिका' शब्द से कांठा शब्द की उत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ समुद्र, नदी अथवा किसी निश्चित सीमा के किनारे का प्रदेश होता है। यथा 'मही कांठा' = 'मही के तट का प्रदेश'; 'रेवा कांठा' = 'रेवा (नर्मदा) के तट का प्रदेश' आदि।

प्रतापगढ़ राज्य से मालवा राज्य की सीमा मिलती है। इस कारण से उक्त राज्य 'कांठा' अर्थात् सीमा के तट का प्रदेश कहलाने लगा, जिसका परिवर्तित रूप 'कांठल' है।

इस राज्य के उत्तर में उदयपुर और ग्वालियर राज्य; पश्चिम में उदयपुर और बांसवाड़ा राज्य; दक्षिण में रतलाम और जावरा राज्य एवं पूर्व में ग्वालियर, जावरा तथा इंदौर राज्य के कुछ-कुछ अंश हैं। उत्तर से दक्षिण तक इस राज्य की अधिक से अधिक लंबाई ५० मील है। पूर्व से पश्चिम तक का उत्तर का आधा भाग चौड़ा है, जिसकी चौड़ाई ३० मील है, परंतु दक्षिणी आधे विभाग की चौड़ाई कम है और कहीं-कहीं तो केवल ८ मील ही है।

सीमा

प्रतापगढ़ राज्य का उत्तरी तथा उत्तर-पश्चिम का अनुमान एक तिहाई हिस्सा, जो 'मगरे' के नाम से प्रसिद्ध है, पर्वत श्रेणियों से भरा हुआ है। उत्तरी विभाग में सबसे ऊंची पहाड़ी समुद्र की सतह से १८६२ फ़ुट ऊंची है। दक्षिणी विभाग में सबसे ऊंची पहाड़ी समुद्र की सतह से १६१० फ़ुट है, जो कानगढ़ के समीप है। शेष भूमि अर्थात् राज्य का पश्चिमी विभाग मालवा के पठार के समान है, जो समुद्र की सतह से १६५० से १७०० फ़ुट तक ऊंचा है और माळ की ज़मीन होने से बड़ा उपजाऊ है।

पर्वत श्रेणियां

इस राज्य में जाकम (जाखम), शिव, ऐरा, रेतम और करमोई नामक नदियां हैं। उनमें जाकम (जाखम) और शिव साल भर बहती हैं, बाक़ी कुछ मास तक ही।

नदियां

(१) जाकम (जाखम)—यह नदी इंदौर राज्य के जाखमिया गांव से निकलकर कुछ दूर मेवाड़ में बहती हुई मेवाड़ से दक्षिण-पश्चिम में इस राज्य में प्रवेशकर मगरा ज़िले के उत्तरी भाग में बहती हुई पुनः मेवाड़ में प्रवेश करती है। तत्पश्चात् धरियावद के पास होती हुई यह मही की सहायक नदी सोम में जा मिलती है।

(२) शिव—इस नदी का उद्गम इसी राज्य के दक्षिणी भाग में शिवना गांव से हुआ है। कुछ मील प्रतापगढ़ राज्य में बहकर पूर्व में २३ मील तक इस राज्य की सीमा बनाती हुई यह उत्तर-पूर्व में मंदसोर के पास बहकर चंबल में जा गिरती है।

(३) पेरा—राजधानी प्रतापगढ़ के पास से निकलकर १५ मील दक्षिण-पश्चिम में बहती हुई यह बांसवाड़ा राज्य में प्रवेश करती है और वहां से तीस मील बहकर मही में मिल जाती है।

(४) रेतम—क़सबा प्रतापगढ़ से निकलकर राज्य के उत्तर-पूर्व में बहती हुई ग्वालियर राज्य में जाकर यह चंबल में मिल जाती है।

(५) करमोई—इस नदी का निकास सीतामाता की पहाड़ियों से हुआ है। मेवाड़ में धरियावद के पास बहती हुई यह मही में जा मिलती है।

झीलें

इस राज्य में कोई बड़ी उल्लेखनीय झील नहीं है। राज्य में छोटे-बड़े सब मिलाकर ३१ तालाब हैं, जिनमें रायपुर, गंधेर, खेरोट, घोटार्सी, अचलपुर, जाजली, अचलावदा, सालथली और देवलिया का 'तेजसागर' तालाब मुख्य हैं। तेजसागर तालाब महारावत तेजसिंह का बनवाया हुआ है।

जल-वायु और वर्षा

इस राज्य का जल-वायु मालवा के समान है और सामान्यतः आरोग्यप्रद है। मई-जून और अक्टोबर मास में सर्वत्र विशेष गर्मी पड़ती है, किंतु मगरा ज़िले में पहाड़ियां होने से अन्य स्थानों की अपेक्षा गर्मी कम रहती है। शीतकाल में सर्दी अधिक पड़ती है। यहां वर्षा का औसत २५ इंच के क़रीब है। ई० स० १८९३ (वि० सं० १९५०) में यहां ६४ इंच वर्षा हुई थी और ई० स० १८९९ (वि० सं० १९५६) में ११ इंच से भी कम।

जमीन और पैदावार

पहाड़ी प्रदेश को छोड़कर यहां की अधिकांश भूमि उपजाऊ है। मिट्टी काली, भूरी और धामनी है। मगरा ज़िले की भूमि कंकरीली है। काली मिट्टीवाली अर्थात् 'माळ' की भूमि अधिक उपजाऊ है। यहां खरीफ़ (सियालू) और रबी (उन्हालू) दोनों फ़सलें होती हैं, परंतु रबी की फ़सल की अपेक्षा खरीफ़ की फ़सल अधिक होती है। जहां कुओं आदि से सिंचाई की सुविधा है, वहां तथा 'माळ' में रबी की फ़सल पैदा की जाती है।

खरीफ़ की फ़सल की मुख्य पैदावर जवार, मक्का, तिल, कोदरा, कुरी, सामली, माल, चांवल, मूंग, उड़द, चौंला, तूअर, सन, कपास आदि हैं। रबी की पैदावार में गेहूं, जौ, चना, अफ़ीम, सरसों, अलसी, अजवाइन, राई, वटला (मटर), मसूर और सुवा हैं। जहां जल की सुविधा है, वहां गन्ने की खेती भी होती है। पहिले अफ़ीम की खेती बहुतायत से होती थी, परंतु कितने एक वर्षों से अंग्रेज़-सरकार की ओर से उसका बोना कम करा दिया गया है। शाकों में गोभी, आलू, कद्दू (कुम्हड़ा,।कोला), प्याज़, लहसुन, मूली, रतालू, अरवी, अदरक, बैंगन, भिंडी, तुरई, आल (लौकी), गवार, मेथी आदि और फलों में आम, सीताफल (शरीफ़ा), केला, अनार, अमरूद, शहतूत, अंजीर, पपीता और नींबू मुख्य हैं। जंगल की पैदावार में सफ़ेद मूसली, गोंद, शहद, चिरौंजी तथा कत्था आदि हैं।

जंगल

इस राज्य के उत्तरी तथा पश्चिमी पहाड़ी प्रदेशों में जंगल बहुत हैं। पहले इन जंगलों की तरफ़ राज्य की ओर से कोई ध्यान नहीं दिया जाता था, किंतु अब वे राज्य के प्रबंध में हैं। जंगल में सागवान, शीशम, आबनूस, हल्दू, सालर, ढाक, धौ, कदंब, महुआ, पीपल, बबूल, नीम, इमली, बांस आदि के वृक्ष हैं। सीता-माता के पास केवड़ा अधिकता से होता है, जो सुगंधि के लिए प्रसिद्ध है। सरीपीपली, दोनों सालिमगढ़, बजरंगगढ़, कनोरा और अरणोद में भरनेवाले साप्ताहिक हटवाड़ों में भील लोग लकड़ियां, बांस आदि बेचने के लिए ले जाते हैं, जिससे राज्य को लगभग सात हज़ार रुपये वार्षिक महसूल की आय होती है। इन हटवाड़ों में सरीपीपली और सालिमगढ़ के हाट प्रसिद्ध हैं, जिनमें नीमच, मंदसोर और कभी-कभी नसीराबाद के व्यापारी भी लकड़ी खरीदने के लिए जाते हैं। चंदन के वृक्ष इस राज्य में सर्वत्र पाये जाते हैं, परंतु दक्षिणी भाग के बड़वास कलां और हतुणया में अधिकता से होते हैं, जो राज्य की ही संपत्ति समझे जाते हैं। घास सर्वत्र होती है, पर मगरा ज़िले में अधिक। घास के कुछ स्थल राज्य के लिए सुरक्षित हैं।

पालतू-पशुओं में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा और ऊंट मुख्य हैं। जंगली जानवरों में बाघ, चीता, रीछ, जरख (लकड़बग्घा), हिरन, नीलगाय, सांभर, चीतल, सूअर, भेड़िया, शियागोस आदि पाये जाते हैं। पक्षियों में गिद्ध, चील, तोता, कबूतर, फ़ाख़्ता, तीतर, बटेर, लवा आदि कई प्रकार के पक्षी हैं। जल के निकट रहनेवाले पक्षियों में सारस, बतख़, बगुले, टिटहरी आदि हैं। जल-जंतुओं में मगर, मछलियां, मेंढक, केकड़े, कछुए, जलमानुस आदि हैं

पशु-पक्षी

खनिज पदार्थों की इस राज्य में खोज नहीं हुई है। प्रसिद्ध है कि राजधानी प्रतापगढ़ के समीप की पहाड़ियों में लोहा है। धमोतर के पश्चिम में नकोर के पास इमारती पत्थर की खान है। देवलिया के महलों का निर्माण उसी पत्थर से हुआ है, परंतु कई वर्षों से यह खान बंद है। चूने का पत्थर राजधानी प्रतापगढ़ से पांच मील दूर रजोरा और तेरह मील दूर कामलियाखाल में मिलता है।

खानें

प्रतापगढ़ राज्य में अब तक कोई रेल्वे लाइन नहीं खुली है। राज्य का निकटवर्ती रेल्वे स्टेशन पूर्व में बी० बी० एंड सी० आई० रेल्वे का मंदसोर है, जो वर्तमान राजधानी प्रतापगढ़ से २० मील दूर है।

रेल्वे

प्रतापगढ़ से मंदसोर स्टेशन तक पक्की सड़क है, जिसपर बैल-गाड़ियां, तांगे और मोटरें चलती हैं। इस राज्य में इस सड़क की लंबाई १३ मील है और शेष ग्वालियर राज्य में है। आज-कल प्रतापगढ़ से मंदसोर तक मोटर सर्विस जारी हो जाने से लोगों को बड़ा सुभीता हो गया है। देवलिया, नीमच, धरियावद, बांसवाड़ा, पीपलोदा और जावरा की तरफ़ गमनागमन के लिए कच्ची सड़कें बनी हुई हैं और उधर मोटरें, तांगे आदि भी चलते हैं। राज्य के अन्य भागों में गाड़ियों तथा ऊंट, घोड़ा आदि भार-वाहक पशुओं के आने लायक़ मार्ग हैं। बरसात में कच्ची सड़कें तथा पहाड़ी मार्ग खराब हो जाते

सड़कें

हैं, जिससे गाड़ियों आदि का चलना बन्द रहता है।

इस राज्य में अब तक छः बार मनुष्य गणना हुई है। यहां की जन-संख्या ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३७) में ७९५६८; ई० स० १८९१ (वि० सं० १९४७) में ८७९७५; ई० स० १९०१ (वि० सं० १९५७) में ५२०२५; ई० स० १९११ (वि० सं० १९६७) में ६२७०४; ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७७) में ६७११० और ई० स० १९३१ (वि० सं० १९८७) में ७६५३९ थी। ई० स० १९०१ (वि० सं० १९५७) में मनुष्य-संख्या में अधिक कमी होने का कारण वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९–१९००) का भीषण अकाल और उसके बाद दूसरे वर्ष फैलनेवाली हैज़ा आदि बिमारियां थीं।

जन-संख्या

इस राज्य के निवासियों के मुख्य-धर्म वैदिक, जैन और इसलाम हैं। हिंदु (वैदिक) धर्म के माननेवालों में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि कई भेद हैं, जिनमें वैष्णव मतावलंबियों की संख्या अधिक है। जैन धर्म में दिगंबर तथा श्वेतांबर, नामक दो फ़िर्क़े हैं। श्वेतांबरों में एक फ़िर्क़ा ढूंढियों का है, जो स्थानकवासी कहलाते हैं। प्रतापगढ़ राज्य में दिगंबरों की संख्या अधिक है। भील और मीणे हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं तथा देवी, महादेव, भैरव आदि देवताओं को पूजते हैं। उनका विवाह-संस्कार हिंदू-धर्म की प्रणाली के अनुसार होता है। मुसलमानों में सुन्नी और शिया नामक दो भेद हैं, जिनमें सुन्नियों की संख्या विशेष है। शिया मत के माननेवाले दाऊदी बोहरे हैं। ईसाइयों की संख्या नाम मात्र की है।

धर्म

हिंदुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, चारण, सुनार, दर्ज़ी, लुहार, खुथार, कुम्हार, माली, गूजर, कुनबी, गाडरी, धाकड़, दरोगा, नाई, धोबी, कोली, मीणे, भील, बलाई, भांबी, ढोली, मेहतर आदि अनेक जातियां हैं। ब्राह्मणों और महाजनों आदि में कई उपजातियां हो गई हैं, जिनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। ब्राह्मणों उपजातियों में तो परस्पर खान-पान का संबंध भी नहीं है। मुसलमानों

जातियां

में शेख़, सैयद, मुग़ल, पठान, रंगरेज़, भिश्ती आदि कई भेद हैं।

इस राज्य के निवासियों में लगभग आधे से अधिक लोग खेती का पेशा करते हैं। ब्राह्मण पूजा-पाठ और पुरोहिताई करते हैं, किन्तु कोई-कोई खेती, व्यापार तथा नौकरी भी करते हैं। राजपूत प्रायः सैनिक-वृत्ति अथवा खेती करते हैं। महाजन तथा बोहरे विशेषतः व्यापार करते हैं। शेष लोग खेती, नौकरी, मज़दूरी, पशुपालन आदि से अपनी जीविका उपार्जन करते हैं।

पेशा

प्रतापगढ़ राज्य के निवासियों में पुरुषों की साधारण पोशाक पगड़ी, कुरता, लंबा अंगरखा और धोती है। नागरिकों में कोट और पायजामा पहनने की चाल बढ़ रही है। ग्रामीण तथा मीणे, भील आदि पगड़ी के स्थान पर मोटा वस्त्र, जिसे फेंटा कहते हैं, सिर पर लपेट लेते हैं। शहरों में राजकीय पुरुष पगड़ी, अंगरखा या अचकन तथा पायजामा पहनकर अंगरखे पर कमरबंदा बांधते हैं, परंतु आजकल पगड़ी के स्थान पर साफ़ा या टोपी और अंगरखे के स्थान में कोट का प्रचार बढ़ता जा रहा है। कोई-कोई अंग्रेज़ी टोप का भी व्यवहार करने लगे हैं। बोहरे तथा मुसलमान प्रायः पायजामा पहनते हैं। स्त्रियों की पोशाक में लहंगा, साड़ी और कंचुकी (कांचली) मुख्य हैं। कोई-कोई स्त्रियां कुरती, अंगिया या वास्कट भी पहनती हैं। मीणे, भील, किसान तथा अन्य ग्रामीण लोगों की स्त्रियों के लहंगे कुछ ऊंचे होते हैं। मुसलमानों की स्त्रियां बहुधा पायजामे व तिलक पहनती हैं। बोहरों की स्त्रियां बाहर जाते समय प्रायः लहंगा और दुपट्टा काम में लाती हैं।

पोशाक

इस राज्य में बोली जानेवाली मुख्य भाषा मालवी है, जिसे रांगड़ी भी कहते हैं। कुछ लोग वागड़ी तथा भीली भाषा बोलते हैं, जिनका गुजराती से बहुत कुछ संबंध है। कोई-कोई शुद्ध गुजराती भी बोलते हैं।

भाषा

यहां की प्रचलित लिपि नागरी है। राजकीय अदालतों, महाजनों की बहियों, चिट्ठी-पत्री आदि में इसी लिपि का व्यवहार होता है, किंतु यह

लिपि

घसीट रूप में लिखी जाती है, जिसमें शुद्धता का बहुत कम ध्यान रखा जाता है। कुछ राजकीय दफ़्तरों में अंग्रेज़ी का व्यवहार भी होने लगा है।

गांवों में काले और सफ़ेद कंबल तथा मोटी खादी बनाई जाती है। तांबे और पीतल के बर्तन तथा भीलनियों के पहिनने की पीतल की पींजनियां आदि ज़ेवर भी यहां बहुतायत से बनते हैं। सोने-चांदी के ज़ेवर, लाख, हाथीदांत और नारियल की चूड़ियां, लकड़ी के रंगीन खिलौने, पलंग के शीशम आदि के पाये तथा खिलौने और अन्य सामान यहां अधिकता से बनता है। हरे, लाल और आसमानी रंग के कांच के ऊपर एक प्रकार का सुनहरी काम यहां बहुत ही सुन्दर बनता है, जो भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं नहीं बनता। ऐसे काम के बटन, सिगरेट-केस आदि वस्तुएं बनती हैं, जिनपर पौराणिक या शिकार आदि के चित्र अंकित किये जाते हैं और वे सोने में मढ़े जाते हैं। इस काम को करनेवाले यहां चार-पांच परिवार ही हैं, जो दूसरों को यह काम नहीं बतलाते।

दस्तकारी

व्यापार के मुख्य केन्द्र राजधानी के अतिरिक्त अरणोद, कनोरा, कोटड़ी, रायपुर और सालिमगढ़ हैं। राज्य में बाहर से आनेवाली वस्तुएं नमक, कपड़ा, शक्कर, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, तंबाकू, नारियल, मसाला, चांवल, गुड़, सूखा मेवा, सोना, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा आदि धातुएं, कांच तथा चीनी का सामान, हाथीदांत, मोटर, साइकिलें आदि हैं। राज्य से बाहर जानेवाली वस्तुओं में रूई, अफ़ीम, अन्न, तिल, अलसी, सुवा, सरसों, गुड़, घी, इमारती लकड़ी, लकड़ी के खिलौने, चमड़ा आदि मुख्य हैं। पहले यहां अफ़ीम का व्यापार बहुत था, परंतु अब अफ़ीम का सारा व्यापार अंग्रेज़-सरकार के नियन्त्रण में होने से उठ गया है। बंबई, इंदौर, रतलाम, मंदसोर, नीमच, वागड़ (डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा राज्य) और मेवाड़ आदि से यहां का व्यापारिक संबंध है।

व्यापार

हिंदुओं के त्योहारों में होली, गनगौर, रक्षाबंधन, तीज, दशहरा और दीवाली मुख्य हैं। रक्षाबन्धन विशेषतः ब्राह्मणों और दशहरा राजपूतों का त्योहार है। दशहरे के अवसर पर महारावतजी की सवारी धूमधाम से निकलती है। दीवाली व्यवसायी-वर्ग का त्योहार है, परंतु उसे सब हिंदू समानता से मनाते हैं। होली भी सब वर्गों का त्योहार है और सब जातियों के लोग फाग खेलते हैं। भीलों के त्योहारों में होली, दशहरा और दीवाली मुख्य हैं। गनगौर और तीज स्त्रियों के त्योहार हैं। मुसलमानों के त्योहार दोनों ईदें—'इदुल्फ़ितुर' और 'इदुल्जुहा'—तथा मोहर्रम (ताज़िये) हैं।

त्योहार

अरणोद के पास गौतमनाथ महादेव का मेला वैशाख सुदि १५ से दो दिन तक प्रति वर्ष होता है। अंबा माता (प्रतापगढ़ से ४ मील उत्तर) का मेला प्रति वर्ष कार्तिक सुदि २ को होता है, जहां बहुत से यात्री जाते हैं। सीतामाता का मेला प्रत्येक तीसरे वर्ष ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में होता है।

मेले

इस राज्य में अंग्रेज़ी डाकखाने प्रतापगढ़, देवलिया, अरणोद, नीनोर और जाजली में हैं। तारघर केवल प्रतापगढ़ में ही है।

डाकखाने और तारघर

पहले राज्य की ओर से शिक्षा का कोई प्रबंध न था, जिससे लोग पंडितों, जैन यतियों तथा अन्य घरू पाठशालाओं में अपने बालकों को शिक्षा दिलाते थे। अब राज्य की तरफ़ से प्रतापगढ़ और देवलिया के अतिरिक्त बसाड़, केरोट (खेरोट), धामल्या, गंधेर, पानमोड़ी, दलोठ, कोटड़ी, नीनोर, वरमंडल, पीलू, कुणी, अवलेसर, नौगामा, कुलथाना, चूंपना, अमलावद, सरीपीपली तथा पारल्या में राज्य की तरफ़ से प्रारम्भिक पाठशालाएं खोल दी गई हैं। धमोतर, वारेवरदा, अरणोद, सालिमगढ़ और डोराना में सरदारों की तरफ़ से पाठशालाएं हैं, जहां प्रारंभिक शिक्षा दी जाती है। राजधानी प्रतापगढ़ में एक हाईस्कूल है और संस्कृत की ज्ञानवृद्धि के लिए पृथक् पाठशाला

शिक्षा

भी है, जहां 'आचार्य' कक्षा तक की पढ़ाई होती है। उसका संबंध बनारस के गवर्नमेंट संस्कृत कालेज से है। कन्याओं की शिक्षा के लिए राजधानी में कन्या पाठशाला है। सार्वजनिक हित की दृष्टि से एक पब्लिक लाइब्रेरी की स्थापना भी हो गई है।

इस राज्य में पहले रोगियों का इलाज वैद्य, हकीम, जर्राह तथा अन्य अनुभवी लोगों-द्वारा होता था। ग्रामीण जनता अपनी चिकित्सा अपने-अपने अनुभव की औषधियों-द्वारा करती थी। कई वर्षों से राज्य ने जनता के हितार्थ राजधानी प्रतापगढ़ और देवलिया में अस्पताल खोल दिये हैं, जहां चीर-फाड़ एवं बड़े-बड़े रोगों का इलाज होता है। राजधानी प्रतापगढ़ में स्त्रियों की चिकित्सा के लिए पृथक् अस्पताल भी बन गया है एवं देशी दवाख़ाना भी खोल दिया गया है। इनके अतिरिक्त वहां सेठ घासीलाल पूनमचंद की तरफ़ से भी एक अंग्रेज़ी दवाख़ाना चल रहा है। प्रतापगढ़ राज्य में शीतला से बालकों आदि को बचाने के लिए सर्वत्र टीका लगाने की व्यवस्था की गई है। गांवों में घूम-घूमकर रोगियों की चिकित्सा करने के लिए राज्य ने एक डाक्टर और वैद्य भी नियत कर दिया है। रायपुर के ठिकाने में एक छोटा अस्पताल है, जो वहां के ठाकुर-द्वारा चलाया जाता है। वर्तमान महारावतजी का इस ओर पूरा ध्यान होने से धमोतर और अरणोद में भी दवाख़ाने खोलने की व्यवस्था की जा रही है। पाठशालाओं के अध्यापकों-द्वारा भी गांवों में बुख़ार, खांसी आदि की औषधियां राज्य वितीर्ण कराता रहता है, जिससे ग्रामीण जनता का कष्ट बहुत कुछ कम हो गया है।

अस्पताल

राज्य-प्रबंध की सुविधा के लिए पहले इस राज्य के पांच विभाग किये गये थे, जो प्रतापगढ़, कनोरा, बजरंगगढ़, साखथली और मगरा ज़िले कहलाते थे; किन्तु बाद में उनकी संख्या घटाकर हथूनिया, साखथली और मगरा नामक तीन ज़िले ही रखे गये। ई० स० १९०५ (वि० सं० १९६२) में मगरा और प्रतापगढ़ दो ही ज़िले रह गये। तत्पश्चात् ई० स० १९०६ (वि० सं० १९६३)

ज़िले

में मगरा ज़िले के लिए एक नायब नियत कर देवलिया में रक्खा गया और वह ज़िला प्रतापगढ़ के अन्तर्गत कर दिया गया। फिर खालसे की समस्त भूमि का माली प्रबंध एक पृथक् अफ़सर बनाकर उसके अधीन कर दिया गया, जो 'रेवेन्यु अफ़सर' कहलाता है। रेवेन्यु अफ़सर को जुडिशियल मामलों में द्वितीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं। कार्य की सुविधा के लिए गांवों में पटवारी तथा क़ानूनगो मुक़र्रर कर दिये गये हैं।

इस राज्य में पहले न्याय प्राचीन प्रणाली से होता था। फिर क्रमशः उसमें वर्तमान शैली के अनुसार परिवर्त्तन किये गये। छोटे-छोटे दीवानी मामलों के दो सौ रुपये तक के दावे सुनने का अधिकार स्मॉल काज़ कोर्ट बनाकर उसे दे दिया गया है, जिनकी अपील नहीं होती; परन्तु निगरानी हाई कोर्ट में होती है। दो सौ रुपये से ऊपर दस हज़ार अथवा उससे अधिक के दावे अदालत दीवानी में सुने जाते हैं और उनकी अपील सेशन जज के पास होती है। सेशन जज के किये हुए फ़ैसलों की अपील हाई कोर्ट में होती है। फ़ौजदारी मामले में एक हज़ार रुपया जुरमाना और दो वर्ष तक क़ैद की सज़ा देने का अधिकार प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट को है। उसकी अपील सेशन कोर्ट में होती है। प्राण-दंड और देश-निर्वासन तक की सज़ा देने का अधिकार सेशन जज को है। उसकी अपील हाई कोर्ट में होती है और महारावतजी साहब की आज्ञा होने पर ही प्राण दंड और निर्वासन की सज़ा दी जाती है। ई० स० १८६४ (वि० सं० १६५१) के इक़रारनामे के अनुसार धमोतर, रायपुर, कल्याणपुरा, झांतला, वरडिया, आंबीरामा, अचलावदा, अरणोद और सालिमगढ़ के ठिकानों को दीवानी तथा फ़ौजदारी के नियत अधिकार प्राप्त हैं। वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) में महारावत रघुनाथसिंह ने बोड़ी साखथली के ठाकुर को और वि० सं० १६८६ (ई० स० १६२६) में वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी ने जाजली के ठाकुर को भी नियत अधिकार दे दिये हैं, जिससे इस समय न्याय सम्बन्धी अधिकारवाले यहां ११

न्याय

ठिकाने हैं।

राज्य की भूमि खालसा, शासन और जागीर नामक तीन भागों में बंटी हुई है। खालसा की भूमि की सारी आय राज्य लेता है। देव मंदिरों, ब्राह्मणों आदि को पुण्य में दी हुई भूमि और गांव एवं चारणों और भाटों को दिये हुए गांव आदि शासन के अन्तर्गत है। इनका हासिल आदि राज्य वसूल नहीं करता और वे ही लोग लेते हैं, जिनके पूर्वजों आदि को वह भूमि और गांव मिले हुए हों। जागीरदारों को जागीर की भूमि और गांव पूर्वकाल में की हुई उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में अथवा महारावत के निकट के सम्बन्धी होने से दिये गये हैं। जागीरदारों में राजपूत जागीरदार मुख्य हैं। उनके अतिरिक्त राज्य के कुछ कर्मचारी भी हैं, जिनको उनकी अच्छी सेवाओं के पुरस्कार में जागीरें दी गई हैं। उनमें ब्राह्मण, महाजन, धायभाई आदि हैं। जागीरदारों से जागीर के एवज़ में नियत खिराज और सेवा ली जाती है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनसे खिराज अथवा नौकरी नहीं ली जाती। राजपूत जागीरदारों की वहां तीन श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी के जागीरदार, 'उमराव-नगारबन्द' कहलाते हैं, जिनकी संख्या वर्तमान समय में ११ है—धमोतर, कल्याणपुरा, रायपुर, अरणोद, झांतला, वरडिया, सालिमगढ़, अचलावदा, आंबीरामा, बोड़ी साखथली और जाजली।

शासन, जागीर और भोम आदि

दूसरी श्रेणी के सरदार ताज़ीमी कहलाते हैं, जिनका वर्णन सरदारों के प्रसङ्ग में किया जायगा। तीसरी श्रेणीवाले ग़ैर-ताज़ीमी कहलाते हैं।

राजपूत जागीरदारों को प्रतिवर्ष नियमित रूप से खिराज देने के अतिरिक्त नियत अवधि तक स्वयं नौकरी में जमीयत के साथ दशहरे पर उपस्थित होना पड़ता है। इनके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर जब राज्य चाहे, उनको जाना पड़ता है। किसी सरदार की मृत्यु पर जब नया सरदार होता है, तो राज्य में उसको तलवारबंदी का नज़राना दाखिल करना

पड़ता है। ठिकानों का प्रबंध ठीक न हो अथवा महारावत तथा राज्य के विरुद्ध उनका आचरण हो तो उनकी जागीरें ज़ब्त भी हो जाती हैं। जागीरदार बिना महारावत की आज्ञा के दत्तक नहीं ले सकते। जागीरदारों तथा माफ़ीदारों को अपनी भूमि राज्य की आज्ञा के बिना रेहन रखने और बेचने का अधिकार नहीं है।

सेना और पुलिस आदि

इस राज्य में २४ सवार, १४८ पैदल और १३ गोलंदाज़ सैनिक हैं। इनके अतिरिक्त १७८ पुलिस के सिपाही आदि हैं, जो राजधानी के प्रबंध के अतिरिक्त थानों आदि पर नौकरी देते हैं। आवश्यकता होने पर जागीरदारों की जमीयतें भी सैनिक-सेवा का कार्य करती हैं।

आय-व्यय

प्रतापगढ़ राज्य की वार्षिक आय लगभग छः लाख रुपये है और उतना ही व्यय है। आय के मुख्य सीग़े ज़मीन का हासिल, चुंगी (दाण), जागीरदारों का ख़िराज, मादक द्रव्यों की बिक्री (आबकारी), अफ़ीम का मुनाफ़ा, स्टाम्प, कोर्ट-फ़ीस, जंगल आदि हैं। व्यय के मुख्य सीग़े हाथ-ख़र्च, महलों के ख़र्च, सरकारी कर, राज्य-प्रबन्ध, सेना, पुलिस, पब्लिक वर्क्स, शिक्षा, अस्पताल आदि हैं। आधुनिक परिपाटी पर राज्य-प्रबन्ध हो जाने के कारण आय के साधन अधिक विस्तृत होते जाते हैं। आय-व्यय का बजट प्रति-वर्ष बनता है।

सिक्का

राज्य का पहले कोई स्वतन्त्र सिक्का नहीं था। वहां मांडू और गुजरात के सुलतानों के सिक्के चलते थे। बादशाह अकबर ने मालवा और गुजरात के राज्य दिल्ली के साम्राज्य में मिला लिये, तब से वहां मुग़लकालीन सिक्कों का प्रचलन हुआ। मुग़ल-साम्राज्य की अवनति के दिनों में राजपूताने के अन्य राज्यों की भांति प्रतापगढ़ के स्वामी महारावत सालिमसिंह ने भी बादशाह शाह आलम (दूसरा, ई० स० १७५९-८८ = वि० सं० १८१६-४२) के समय उक्त बादशाह के नाम के चांदी के सिक्के बनाने के लिए प्रतापगढ़ में टकसाल

खोली। इन सिक्कों के एक तरफ़ 'सिक्कह मुबारक़ बादशाह ग़ाज़ी शाह आलम सन् ११६६' और दूसरी तरफ़ 'ज़र्ब..................२५ जुलूस मैमनत मानूस' फ़ारसी में खुदा है, जिसका अर्थ है उक्त सिक्का बादशाह शाह आलम दूसरे के राज्य-समय (भिन्न-भिन्न जुलूसी सनों में) बना। शाह आलम के अपभ्रंश रूप से यह सिक्का पुराना सालिमशाही (शाह आलम शाही) कहलाता है। आम तौर से लोग इसको महारावत सालिमसिंह के नाम का सिक्का मानते हैं, परन्तु सिक्के पर सालिमसिंह का नाम नहीं है। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर, झालावाड़ और नींबाहेड़ा के कुछ परगनों तथा मध्यभारत के रतलाम, जावरा, सीतामऊ एवं ग्वालियर के मंदसोर ज़िले के कुछ भागों में भी इस सिक्के का चलन था। ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में ईस्ट इंडिया कम्पनी से संधि होने के पीछे ठप्पे में से शाह आलम का नाम निकलवाकर नीचे लिखा हुआ लेख रखा गया, परन्तु उसमें सन् हिजरी ही रहा—

'सिक्का मुबारिक शाह लंदन, १२३६' (ई० स० १८२०)।

यह सिक्का नया सालिमशाही कहलाता है। फिर इस नये सिक्के की अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी भी बनने लगीं, किंतु इस नवीन सिक्के में पुराने सिक्के की अपेक्षा चांदी की मात्रा कम रही। प्रतापगढ़ राज्य के आस-पास के राज्यों में अंग्रेज़ी सिक्के का प्रचार बढ़ने पर सालिमशाही सिक्के का मूल्य घटता गया और वह कलदार अठन्नी के बराबर रह गया। ई० स० १६०४ (वि० सं० १६६१) से इस सिक्के का चलन बन्द होकर अंग्रेज़ सरकार के कलदार रुपयों का चलन आरंभ हुआ और सालिमशाही रुपये चांदी के भाव में दे दिये गये। प्रतापगढ़ में पहले तांबे के सिक्के भी बनते थे, जिनमें एक तरफ़ 'श्री' के नीचे 'रियासत देवलिया सं० १६३५' और दूसरी तरफ़ बिंदियां तथा बिंदियों से बना हुआ एक अस्पष्ट चिह्न है। उसके पीछे के तांबे के सिक्कों में एक तरफ़ रियासत प्रतापगढ़ तथा मध्य में संवत् १६४३ है और दूसरी तरफ़ दो तलवारों के बीच में सूर्य का चिह्न अंकित है।

इस राज्य को अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से पंद्रह तोपों की सलामी प्राप्त है और वाइसरॉय की मुलाक़ात के अवसर पर वाइसरॉय का वापसी मुलाक़ात के लिए महारावत के यहां जाने का दस्तूर है। यहां से पहले ७२७०० रुपये सालिमशाही अंग्रेज़-सरकार को ख़िराज के दिये जाते थे। फिर कलदार का चलन होने पर ३६३५० रुपये कलदार वार्षिक ख़िराज के दिये जाने लगे। वर्तमान समय में २७५०० रुपये कलदार वार्षिक 'कैश कंट्रीब्युशन' के नाम से अंग्रेज़ सरकार को दिये जाते हैं।

तोपों की सलामी और ख़िराज

प्रतापगढ़ राज्य में कितने ही प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य का यहां पर संक्षेप से वर्णन किया जाता है—

प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान

देवलिया—प्रतापगढ़ से पश्चिम ८ मील की दूरी पर पहाड़ी प्रदेश में समुद्र की सतह से १८०६ फ़ुट की ऊंचाई पर देवलिया का क़सबा बसा हुआ है। पहले इस राज्य की राजधानी देवलिया होने से यह 'देवलिया राज्य' कहलाता था। प्रतापगढ़ में राजधानी स्थिर होने से अब यह 'प्रतापगढ़ राज्य' कहलाने लगा है, तो भी आम बोल-चाल में अब तक इस राज्य को 'देवलिया-प्रतापगढ़' कहते हैं। संस्कृत पुस्तकों और शिलालेखों में इसके नाम 'देव दुर्ग'[1],

---

(१) संमत(सम्वत्)१७०७ वर्षे शाके १५७२ प्रवर्तमाने उत्तरायणगते श्रीसूर्ये वैशाखमासे शुक्लपक्षे पूर्ण(र्णि)मास्यां तिथौ गुरुवासरे मालवखंडेश्वरमहाराजाधिराजरावतश्रीहरिसिंहजीविजयराज्ये देवदुर्गराजधान्यां...... ॥

देवलिया के गोवर्द्धननाथ के मन्दिर की प्रशस्ति की प्रतिलिपि से।

श्रीचित्रकूटेश्वरराण(? भ्रात)खेमासुतोऽभवद्रावतसूर्यमल्लः।
तस्याष्टमः श्रीहरिसिंहदेवो राजेश्वरो राजति देवदुर्गे॥ ३ ॥

वही।

'देवल पत्तन'[1], 'देवगिरि'[2] और 'देवगढ़'[3] भी मिलते हैं। महारावत

...अत्युग्रधामा जगदेकनामा तस्मादभूच्छ्रीहरिसिंहदेवः ।
श्रीदेवदुर्गस्य विराजमाने सिंहासने राजति तत्तनूजः ॥

महारावत प्रतापसिंह के समय के वि॰ सं॰ १७३२ माघ सुदि १५ के पाटण्या गांव के संस्कृत ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से।

(१) तस्मिन् देवलपत्तनं परिलसत्युच्चैः स्फुरद्गोपुरं
नानामङ्गलतूर्यनादनिवहैः संलक्षितं सर्वतः ॥...५ ॥
यस्मिन् देवलपत्तने परिलसत्यभ्रंलिहोऽट्टालिका
नृत्यन्त्यः प्रमदाः परं विदधते तत्राप्सरः संभ्रमम् । ...८ ॥

गंगाराम; हरिभूषण महाकाव्यम्, सर्ग १।

(२) पुराऽऽसकर्णः किल रावलोभूत्प्रतापसिंहेन युयोध यत्र ।
वंशालयाधीश्वरधर्मबन्धुः समागतो देवगिरेर्महीशः ॥ ३ ॥

वही; सर्ग ६।

(३) ...संवत् १७७२ वर्षे माघसुदि १३ श्रीदेवगढ़नगरे महा-
रावत श्रीश्रीपृथ्वीसिंहजी विजयराज्ये...... ॥

देवलिया के पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति की प्रतिलिपि से।

...संवत् १७७४ वर्षे शाके १६३९ प्रवर्तमाने माह(घ)सुदि १३ रवौ श्रीदेवगढ़नगरे महाराजधान्यां महाराजाधिराजमहारावतश्रीप्रथवीसिंघजी-विजयीराज्ये कुंवरश्रीपहाड़सिंघविराजमाने... ।

वही।

...संवत् १७८८ वर्षे शाके १६५३ प्रवर्तमाने दक्षिणगोले उत्तरायणगते श्रीसूर्ये शिशिरऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे मासे माघ-मासे शुक्लपक्षे ६ तिथौ शुक्रवा[स]रे कांपठलदेशे देवगढ़नगरे महाराजधान्यां सूर्यवंशे महाराजाधिराजमहारावतश्रीगोपालसिंहजीविराज-माने... ।

देवलिया की सावूतों की बावड़ी की प्रशस्ति की प्रतिलिपि से।

विक्रमसिंह (बीका) ने मेवाड़ छोड़ने के पीछे इधर आकर मीणों का दमन किया और प्रसिद्ध है कि वि० सं० १६१७ (ई० स० १५६१) में देवलिया का क़सबा बसाकर वहां अपनी राजधानी स्थिर की[1]। पहले इसके पूर्व-दक्षिण और पश्चिम के कुछ अंशों में दीवार बनी हुई थी, परंतु अब वह गिर गई है। युद्ध के अवसर पर यह स्थान सुरक्षित समझा जाता था, क्योंकि इसके चारों तरफ़ पहाड़ियां आ गई हैं और बीच में एक ऊंची पहाड़ी पर यह बसा हुआ है। यहां पुराने राज-महल हैं। भूत-पूर्व महारावत

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों तथा उनके आधार पर बने हुए राजपूताना के गैज़ेटियर एवं अन्य ऐतिहासिक पुस्तकों में महारावत विक्रमसिंह (बीका) का वि० सं० १६१७ (ई० स० १५६१) में देवी मीणी के नाम पर देवलिया का क़सबा बसाने का उल्लेख है, परन्तु यह विश्वास-योग्य नहीं है। कर्नल टॉड लिखता है—"महारावत सूरजमल सादड़ी छोड़कर कांठल की तरफ़ बढ़ा, तब मार्ग में उसको कांठल के जंगल में एक स्थान पर यह दृश्य दीख पड़ा कि एक भेड़िया बकरी के बच्चे को उठाकर ले जाना चाहता है, किन्तु उसकी मा बार-बार प्रयत्न कर उसको उसके पंजे से बचाती है। निदान उसने उस स्थान को सब प्रकार से सुरक्षित समझ वहां पर अपना निवास रखना स्थिर किया और आस-पास के मीणों का दमन कर वहां देवलिया का क़सबा बसाया। चारणी की भविष्यवाणी के अनुसार फिर वह आस-पास के गांवों को दबाकर एक हज़ार गांवों का स्वामी हो गया और उसने अपने बाहुबल से अपने वंशजों के लिए स्वतन्त्र राज्य बना लिया, जो देवलिया-प्रतापगढ़ राज्य कहलाता है (जि० १, पृ० ३४७ क्रुक-संपादित)।"

ऊपर आई हुई भेड़िये और बकरी के बच्चे की कथा काल्पनिक है। ऐसी कथाएं ख्यातों आदि में अनेक स्थानों के सम्बन्ध में मिलती हैं, परन्तु वे विश्वास के योग्य नहीं हैं। उपर्युक्त कथन से इतना स्पष्ट है कि देवलिया का क़सबा महारावत सूरजमल ने बसाया था। उसका मेवाड़ की सीमा पर के कांठल प्रदेश पर अधिकार होने से चारणी देवी की भविष्यवाणी सत्य हुई, जिससे अनुमान होता है कि उसने देवी की स्मृति में वहां क़सबा आबाद कर उसका नाम देवलिया रक्खा। सूरजमल के पीछे बाघसिंह और रायसिंह, सादड़ी में ही रहे। वि० सं० १६१७ (ई० स० १५६१) के लगभग रावत विक्रमसिंह ने सादड़ी की जागीर का परित्याग कर देवलिया को ही अपनी राजधानी नियत किया, जो महारावत दलपतसिंह के समय तक बनी रही। इससे ख्यात-लेखकों ने इस क़सबे का विक्रमसिंह(बीका)-द्वारा आबाद होना मान लिया। वस्तुतः देवलिया का क़सबा महारावत सूरजमल ने बसाया था और उसकी उन्नति विक्रमसिंह के समय में हुई।

रघुनाथसिंह को प्रतापगढ़ की अपेक्षा यह स्थान अधिक पसंद था, इसलिए उसने यहां कुछ नये मकान बनवाये और पुराने महलों की मरम्मत करवा दी; क्योंकि वह स्वयं भी यहां रहा करता था। यहां कई तालाब हैं, जिनमें 'तेजसागर' (तेजोला) तालाब महारावत तेजसिंह का बनवाया हुआ है। उसके पास ही प्रतापगढ़ के नरेशों की स्मशान-भूमि है, जहां कई स्मारक छत्रियां बनी हुई हैं। तेजसागर के समीप ही एक हम्माम (स्नानागार) बना हुआ है, जिसके लिए ऐसी प्रसिद्धि है कि महारावत सिंहा के समय बादशाह जहांगीर की अप्रसन्नता से उसका सेनापति महाबतखां, जब देवलिया में रहा था, उस समय वह बनवाया गया था। वहीं महारावत दलपतसिंह का बनवाया हुआ सोनेला तालाब है, जिसके बीच में उक्त महारावत का बनवाया हुआ छोटासा महल भी है। इस तालाब और महल को बनवाकर उक्त महारावत ने वि० सं० १६०४ (ई० स० १८४७) में उसकी प्रतिष्ठा की और उस अवसर पर उसने चारण लक्ष्मणदान को लाख पसाव भी दिया। देवलिया में कई वैष्णव, शैव और जैन मंदिर हैं, परंतु वे सब इस क़सबे के आबाद होने के पीछे के बने हुए हैं। विष्णु के मंदिरों में गोवर्धननाथ का मंदिर महारावत हरिसिंह का बनवाया हुआ है और वहां वि० सं० १७०७ (ई० स० १६५०) की प्रशस्ति लगी है। महारावत सामंतसिंह का बनवाया हुआ यहां रघुनाथ-द्वारा नामक विष्णु-मंदिर है, जिसके प्रबंध के लिए राज्य की तरफ़ से लगभग पांच हज़ार रुपये वार्षिक आय के गांव हैं और उक्त मंदिर का प्रबंध वहां के महंत के अधिकार में है, जिसकी प्रतिष्ठा इस राज्य में सर्वोपरि है। इस राज्य में इससे बड़ी आय का कोई राजकीय देव-मंदिर नहीं है।

जैन मंदिरों में अधिकांश दिगंबर-संप्रदाय के हैं, जिनमें वि० सं० १७७२ (ई० स० १७१५) के पूर्व का कोई लेख नहीं है। यहां पाठशाला, अस्पताल तथा पोस्ट ऑफ़िस भी हैं और प्रतापगढ़ से देवलिया तक टेलीफोन भी लगा दिया गया है। पहले यहां अच्छी बस्ती थी, परंतु अब कम होती जाती है।

प्रतापगढ़—देवलिया का जलवायु आरोग्यप्रद न होने से समथल प्रदेश

में, जहां पहले घोधेरिया खेड़ा (डोडेरिया का खेड़ा) नामक गांव था, प्रतापगढ़ नामक क़सबा महारावत प्रतापसिंह ने वि० सं० १७५५ (ई० स० १६९८) में आबाद किया, जो इस समय इस राज्य का मुख्य क़सबा और राजधानी है। बी० बी० एंड सी० आई० रेल्वे की मालवा लाइन के मंदसोर स्टेशन से २० मील दूर पश्चिम में स्थित प्रतापगढ़ का क़सबा समुद्र की सतह से १६६० फुट की ऊंचाई पर है। वि० सं० १८१५ (ई० स० १७५८) में महारावत सालिमसिंह ने इसके चौतरफ़ कोट बनवाया, जिसके सूरजपोल, भाटपुरा दर्वाज़ा, बारी दर्वाज़ा, देवलिया दर्वाज़ा और धमोतर दर्वाज़ा नामक ६ दर्वाज़े हैं। इन दर्वाज़ों के अतिरिक्त दो छोटे द्वार तालाब बारी और क़िला बारी भी हैं। आबादी के बीच में पश्चिम की तरफ़ महारावत के पुराने महल बने हुए हैं, जिनमें सरकारी दफ़्तर हैं तथा क़सबे के बाहर पश्चिम में क़िला बना हुआ है, जिसमें सामने की तरफ़ महारावत उदयसिंह का बनवाया हुआ 'उदयविलास' महल है। प्रतापगढ़ में हिंदू और जैन सम्प्रदायों के कई मंदिर हैं, परंतु वे अठारहवीं शताब्दी से पुराने नहीं है। यहां अंग्रेज़ी की उच्च शिक्षा के लिए 'पिन्हे हाईस्कूल' है, जिसमें मैट्रिक तक की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-पाठशाला, राजकीय प्राइमरी स्कूल, कन्या-पाठशाला, ज़नाना-अस्पताल, रघुनाथ हॉस्पिटल, घासीराम डिस्पेंसरी, देशी दवाख़ाना, पोस्ट आफ़िस तथा तारघर, वाचनालय, धर्मशाला, उद्यान आदि लोकोपयोगी संस्थायें विद्यमान हैं। आबादी के बाहर महारावत उदयसिंह की बनवाई हुई कंपू (कैंप) कोठी बनी हुई है, जिसकी महारावत रघुनाथसिंह के समय महाराजकुमार मानसिंह ने बहुत कुछ अभिवृद्धि की थी। वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी ने वहां और भी नवीन भवन बनवाकर सुन्दर बग़ीचा लगवा दिया है, जिससे उसकी शोभा बढ़ गई है। अपने राज्याभिषेक के पीछे इन्होंने उसी स्थल को अपना निवासस्थान बना लिया है, जिससे उसकी और भी उन्नति होने की आशा है। जानवरों से प्रेम होने के कारण कंपू-कोठी में इन्होंने जानवरों का छोटासा संग्रहालय बना रक्खा है, जो देखने योग्य है। कंपू कोठी के समीप सरकारी

दफ़्तर भी हैं, और उसके सामने मेहमानों के ठहरने के लिए 'अतिथि-गृह' (Guest House) बना हुआ है। नगर की स्वच्छता का प्रबन्ध म्यूनिसिपैलिटी-द्वारा होता है। यहां छापाखाना, बिजली घर, कॉटन प्रेस तथा जिनिंग फ़ैक्टरी भी हैं। यहां की दस्तकारी में हरे रंग के कांच पर सुनहरी मीनाकारी का काम प्रसिद्ध है। इस राज्य में सागवान की लकड़ी की बहुतायत होने से मकानों आदि के बनाने में उसका प्रचुरता से इस्तेमाल होता है। प्रतापगढ़ से दक्षिण की तरफ़ पहाड़ी नले में तालाब के पीछे दीपनाथ महादेव का मन्दिर है, जिसको महारावत सामन्तसिंह के कुंवर दीपसिंह ने बनवाया था। वहां का दृश्य मनोहर है। वहां और भी कई मन्दिर तथा देवकुलिकाएं हैं, जिनपर वृक्षों का सुन्दर झुरमुट है। कार्तिक सुदि १५ को प्रति वर्ष वहां मेला भरता है। उसके पास ही राजकीय स्मशान है, जहां महारावत उदयसिंह तथा महाराजकुमार मानसिंह की स्मारक छत्रियां हैं। ई० स० १९३१ (वि० सं० १९८७) की मनुष्य-गणना के अनुसार प्रतापगढ़ क़सबे की जन संख्या १०८४५ है।

जानागढ़—प्रतापगढ़ से लगभग १० मील दूर दक्षिण-पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश में जानागढ़ नामक पुराना क़िला है, जिसमें एक मसजिद, हम्माम और अस्तबल बना हुआ है। ऐसी प्रसिद्धि है कि जानआलम नामक कोई मुसलमान शाहज़ादा यहां रहा था और उसने ही यह क़िला तथा अन्य स्थान बनवाये थे। यहां कोई शिलालेख न होने से यह कहना कठिन है कि यह क़िला कब बना और जानआलम कहां का था। इसके आस-पास भीलों और मीणों की थोड़ीसी बस्ती है। गौतमेश्वर के वि० सं० १५६२ आषाढ वदि १४ (ई० स० १५०५ ता० १ जून) के शिलालेख[1] से अनुमान होता है

(१) संवत् १५६२ बासठा विषे(वर्षे)आसा(षा)ढ वदि १४ वा··· ···पातसा(शा)ह श्रीनासीरसा(शा)हविजयराज्ये······श्रीषां(खां)न आजम मऋबेलषां(खां)न मुक़तकले गयासगीर मुतालिक सा(शा)ह जैाइ(जय)चंद दामा देवश्रीगौतमेसर मुगतो कराव्यो जे काइ कर लागतो

कि उक्त शिलालेख में उल्लिखित खान आलम मकबलखां, जो मालवे के मुसलमानों की तरफ़ से इस प्रदेश का शासन करता था और जान आलम एक ही व्यक्ति हों। संभव है कि उसने अपने रहने के लिए यह स्थान बनवाया हो।

घोटार्सी—प्रतापगढ़ से ७ मील पूर्व में घोटार्सी नामक प्राचीन नगर है। संस्कृत में इसका नाम घोंटावर्षिका मिलता है। यहां दूर-दूर तक भूमि के भीतर से बड़ी-बड़ी ईंटे निकलती हैं और कई मंदिरों के अवशिष्ट चिन्ह भी दृष्टिगोचर होते हैं तथा बहुत से खुदाई के कामवाले पत्थर इधर-उधर बिखरे हुए मिलते हैं, जिनसे अनुमान होता है कि पहले यह स्थान बड़ा ही संपन्न था और यहां कई मंदिर आदि थे। यहां एक मंदिर है, जिसको भैरूंजी का मंदिर कहते हैं। उसके नीचे का भाग सुंदर खुदाई-वाला और प्राचीन है तथा ऊपरी भाग का समय-समय पर जीर्णोद्धार हुआ हो ऐसा पाया जाता है। उक्त मंदिर के चबूतरे पर तोरण के टुकड़े, देवी, विष्णु आदि की टूटी हुई मूर्तियां पड़ी हुई हैं, जो वहां के मंदिरों की होंगी। तालाब की पाल पर नवग्रह आदि की मूर्तियां एवं खुदाई के काम-वाले बहुत से पत्थर बिखरे पड़े हैं और अब तक कुछ ऐसे अंश विद्यमान हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि तालाब के निकट कई मंदिर बने हुए होंगे। यहां 'इन्द्रराजादित्यदेव' नामक सूर्य मंदिर था, जिसको 'तरुणादित्य-देव' भी कहते थे। इस सूर्य के मंदिर को चौहान-वंशीय इन्द्रराज ने, जो दुर्लभराज का पुत्र और गोविन्दराज का पौत्र था, बनवाया था। वि० सं० ९९९ श्रावण सुदि १ (ई० स० ९४२ ता० १७ जुलाई) को मेवाड़ के गुहिल-

---

ते निकर कीयो जे कोइ मुसलमांन होइ कर लेयै तेकूं सुअर की गेड हीन्दु हो तो कर लेयै तेहे गाइ की साइगें (सौगंध) है।

गौतमेश्वर के मूल शिलालेख की छाप से।

(१) यस्माद्वि(द्वि)भ्यति विद्विषः किमपरं यस्माच्च लक्ष्मीर्न्नृणां[।]
सोयं राजति राजचक्रनिलयः श्रीचाहमानान्वयः [॥ ५ ॥]

वंशीय नृपति खुम्माण (तीसरा) के पुत्र भर्तृपट्ट (भर्तृभट्ट, दूसरा) ने पलाशकुपिका (पलाशिया, मेवाड़) नामक गांव का घंण्टूलिका नामक क्षेत्र, इस मंदिर के भेंट किया था¹। इस मंदिर के समीप 'यटयक्षिणी

गोविन्दराज इति तत्र बभूव भूपो ।
राकाशशाङ्ककिरणोत्करशुभ्रकीर्तिः ।
येन प्र[च]ण्डभुजदण्डतरण्डकेन ।
प्रोत्तारिता समरसागरतो जयश्रीः [॥ ६ ॥]

लि(ल)दम्यालिंगितविग्रहो हरिरिव क्रोधाग्निदग्धाहितः ।
सर्वे[षां] च शरण्यतामुपगतो भास्वत्प्रतापोदयः ॥
श्रीमद्दुर्लभरा[ज]नामनृपतिस्तस्मादभूदंगजो ।
वक्रं येन कृतं नचार्थिनि जने वक्त्रं द्विपीवा[य]ति ॥ [८]

तस्मादनेकसमरार्ज्जितकीर्तिकोशः ।
चिंतामणिः प्रणयिनां प्रणतो द्विज[जा]तेः [।]
यो योषितां तनुधरोभिनवो मनोभू-
भूषा भुवः समभव[त्सु]त इन्द[न्द्र]राजः ॥ [९]

तेनाकारि हिमाचलेन्द्रश[स]दृशं भासां प्रभोर्भासुरं [।]
धामेदं ध्वजकिङ्किणीकलमिलत्कोलाहलालंकृतं ॥[१०]

प्रतापगढ़ से प्राप्त कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजा महेंद्रपाल (दूसरा) का शिलालेख (एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० १४, पृ० १८४-५)।

(१) संवत् ९९९ श्रावण सुदि १ समस्तराजावलिपूर्वमग्रे-(धे)ह महाराजाधिराजश्रीभर्तृपट्टः श्रीखोम्माणसुतः स्वमातृपित्रो-रात्मनश्च धर्म्माभिवृद्धये घोण्टावर्षीयेन्द्रराजादित्यदेवाय पलासकूपिकाग्रामे घंण्टूलिकोन्ना(ना)नकछ(च्छः)······।

¹ वही; जि० १४, पृ० १८७।

देवी' का मन्दिर और मठ भी था। उक्त देवी के मंदिर को वि० सं० १००३ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० ९४६ ता० २ नवम्बर) को कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजा महेंद्रपाल (दूसरा) ने, जिसके अधिकार में यह देश भी था, घोटार्सी के निकट का 'खर्परपद्रक' (खेरोट) गांव भेंट किया था[1]। ये सूर्य और देवी के मंदिर तथा मठ कहां थे, इसका अब तक निश्चय नहीं हो सका। संभव है, जिसको आज-कल भैरूंजी का मंदिर कहते हैं, वही प्राचीन सूर्य का मंदिरों हो। यहां के मंदिर आदि के पत्थर दूर-दूर तक पहुंचे हैं। मोहकमपुरा की छत्रियों और चबूतरों में यहां के पत्थर ही लगे हुए हैं। नंदवाणा वोहरा नाथू ने बसाड़ के पास पोह की बावड़ी बनवाई, जिसमें भी यहीं के पत्थर लगे हैं। इसी प्रकार प्रतापगढ़ के दरवाज़े के बाहर अग्रवाल चैनराम ने जो बावड़ी बनवाई, उसमें भी यहीं के पत्थर लगे हैं। उनके साथ वि० सं० १००३ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० ९४६ ता० २ नवंबर) की उपर्युक्त रघुवंशी प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल (दूसरा) के समय की

---

(१) ···परममाहेश्वरो महाराजश्रीमहेन्द्रपालदेवः श्रीदशपुरपश्चिमपथके तलवर्गिगकहरिपडभुज्यमानखर्प्परपद्रकग्रामे घोएटावर्षिकाप्रत्यासन्ने समुपगतान् सर्व्वान्नि(नेव)यथास्थाननियुक्तान्प्रतिवासिनश्च समाज्ञापयत्यस्तु वः उपरिलिखितग्रामः स्वसीमातृणप्रति[पूति]गोचरपर्यन्तो(न्तः)सर्व्वादायसमेत आचन्द्रार्कक्षितिकालं पूर्व्वदत्तदेवब्रह्मादेयवर्ज्जितो मया पित्रोः पुन्या(ण्या)भिवृद्धये का[हि]क्यां गंगायां स्नात्वा पुन्ये(ण्ये)हनि[घ]नशूरप्रार्थनया श्रीदशपुरचातुर्व्वैद्यहरिर्षेश्वर(हर्षपीश्वर)मठसंव(ब)ध्यमानश्रीवटयक्षिणीदेव्यै शासनत्वेन प्रतिपादितः (त इति) मत्वा भवद्भिः सा(स)-मनुमन्तव्यो(व्यः) प्रतिवासिजनपदैरप्याज्ञास(श्र)वणविधेयैर्भूत्वा यथादीयमानभागभोगकरहिरन्या(ण्या)दिकमस्योपनेतव्यमिति। श्रीजज्जनागप्रदत्तादेशात्। संवत्सरो (संवत्सरे) १००३ मार्ग्ग वदि ५। पुरोहितत्रिविक्रमतात्च(नाथ) लिखितमिदम्। स्वहस्तोयं श्रीविदग्धस्य।

वही; जि० १४, पृ० १८३

प्रशस्ति भी यहां से ले जाकर बावड़ी के पास एक चबूतरे में चुनी गई थी। उसको मैंने वहां से निकलवाकर राजपूताना म्यूज़ियम् अजमेर में सुरक्षित किया है[1]। 'वरमंडल' गांव के, जो घोटार्सी से दो मील दूर है, शिवालय के स्तम्भ आदि भी यहीं के हैं। उक्त मंदिर के बाहर एक चबूतरे पर सूर्य का एक-चक्र रथ जमा हुआ है, जो घोटार्सी के सूर्य मंदिर का ही रथ होना चाहिये। वहां (वरमंडल) के चबूतरे तथा मंदिर की दीवारों में जो बहुत से सुंदर खुदाईवाले पत्थर लगे हुए हैं, वे सब घोटार्सी से गये हैं। घोटार्सी में पहले कुछ जैन मंदिर भी थे। प्रतापगढ़ की संस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष पंडित जगन्नाथ शास्त्री के परिश्रम से पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रशस्ति का एक टुकड़ा अभी मिला है, जिसमें संवत् का भाग नहीं है, परन्तु दुर्लभराज का नाम[2] है, जिससे अनुमान होता है कि उक्त मन्दिर उपर्युक्त दुर्लभराज चौहान के समय बना होगा।

वीरपुर—प्रतापगढ़ से लगभग दस मील दूर दक्षिण-पश्चिम में सुहागपुर के समीप वीरपुर नामक गांव है। यहां एक टूटा हुआ जैन-मंदिर है। उसको लोग दो हज़ार वर्ष का प्राचीन बतलाते हैं, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उसपर जो खुदाई का काम है, वह बारहवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है। पहले यह अच्छा क़सबा था, परन्तु अब तो भीलों और मीणों की थोड़ी सी बस्ती है। यहां दूर-दूर तक ईंटों के टुकड़े पड़े हुए मिलते हैं और खोदने पर बड़ी-बड़ी ईंटें तथा मिट्टी की नांदें मिलती हैं। यहां एक शिवालय भी है, जो पहले शिखर-सहित पत्थर का ही बना था, परन्तु शिखर तथा सभामंडप दोनों ही गिर गये हैं तथा नंदी के दो टुकड़े सभामंडप में पड़े हुए हैं। द्वार के ऊपर गणपति और उसके ऊपर नवग्रह की मूर्तियां बनी हैं। वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में सुहागपुरे में दिगम्बर जैनमन्दिर बनने पर वीरपुर के प्राचीन जैनमंदिर

---

(१) राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) की ई० स० १९१३-१४ की रिपोर्ट; पृ० २।

(२) मूललेख की छाप से।

के स्तम्भ आदि ले जाकर वहां के मंदिर में लगा दिये गये।

खेरोट—प्रतापगढ़ से लगभग ७ मील दूर दक्षिण-पूर्व में खेरोट नामक प्राचीन गांव है। संस्कृत लेखों में इसका नाम 'खर्परपद्रक' लिखा हुआ मिलता है। यह गांव रघुवंशी प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल (दूसरा) ने घोटार्सी गांव की 'वटयक्षिणीदेवी' के मंदिर को वि० सं० १००३ (ई० स० ९४६) में भेंट किया था[1]। खेरोट गांव में भी प्राचीनता के कई चिन्ह अब तक विद्यमान हैं, जिससे कहा जा सकता है कि पहले यह सुसंपन्न रहा होगा।

अरणोद—प्रतापगढ़ से दक्षिण में ११ मील की दूरी पर अरणोद नाम का क़सबा है। इस समय यह क़सबा दूसरे नंवर पर है और महारावत के समीपी बांधवों का प्रमुख ठिकाना है। गांव के बाहिर पाठशाला के सामने की बावड़ी में शेषशायी विष्णु की सुंदर मूर्ति दीवार में चुनी हुई है। बाग़ के पास की बावड़ी में भी कई मूर्तियां और खुदाई के कामवाले पत्थर चुने हुए हैं, जिनमें से श्वेतांवर पार्श्वनाथ की खड़ी हुई मूर्ति बड़ी सुंदर है। भूतपूर्व महारावत रघुनाथसिंह अरणोद से ही जाकर प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हुआ था। वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) में उक्त महारावत के द्वितीय महाराजकुमार गोवर्धनसिंह का जन्म होने पर अरणोद के ठिकाने पर उसको नियत किया गया, जो वहां का वर्तमान स्वामी है। अरणोद में पाठशाला और डाकखाना भी है।

गौतमेश्वर—अरणोद से लगभग दो मील के अंतर पर गौतमेश्वर नामक तीर्थ है, जो प्रतापगढ़ राज्य में बड़ा पवित्र माना जाता है। यहां का गौतमेश्वर नामक शिवालय एक पहाड़ के नीचे के मध्य-भाग में बना है, जहां कुछ चौड़ाई आ गई है। मंदिर के ऊपर पहाड़ का अंश छज्जे की भांति है। गौतमेश्वर के मंदिर के पास और भी कई मंदिर हैं, जहां साधु लोग आकर ठहरते हैं। पहाड़ के ऊपर तालाब है, जिसका जल टपककर गौतमेश्वर

(१) देखो ऊपर पृष्ठ २३, टिप्पण संख्या १।

के सामने के कुंड में प्रपात के रूप में गिरता है। नीचे की तरफ़ बहुत गहराई में नदी बहती है। यहां का दृश्य बड़ा ही सुंदर है। प्रतिवर्ष वैशाख सुदि १५ को यहां बड़ा मेला लगता है और दूर-दूर से हज़ारों यात्री आकर मेले में सम्मिलित होते हैं। मंदिर के बाहिर वि० सं० १५६२ आषाढ़ बदि १४ (ई० स० १५०५ ता० १ जून) का शिलालेख है[1], जिससे पाया जाता है कि यह प्रदेश मांडू के सुलतान नासिरशाह के अधीन था और खानआलम मक़बलखां यहां का शासक था, जिसके समय में शाह, जैचंद ने यहां पर लगनेवाला यात्रियों का कर छुड़वाया।

भचूंडला—प्रतापगढ़ से दक्षिण में लगभग १६ मील की दूरी पर भचूंडला नामक प्राचीन गांव है, जिसकी बस्ती अब कम रह गई है। उसके बाहर युद्ध में काम आनेवाले वीरों के स्मारक स्तम्भ खड़े हुए हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १३३८ (ई० स० १२८१) का लेख है। इन स्तंभों से थोड़ी ही दूर पर एक प्राचीन मंदिर है, जो सारा पत्थरों से बना है। इस मंदिर के द्वार पर गरुड़ारूढ़ विष्णु की मूर्ति और भीतर की दीवार के सहारे मूर्ति की वेदी बनी है। आज-कल इसमें शिव-लिङ्ग है, परन्तु यह पहले विष्णु का मंदिर था। इस मंदिर के बहुतसे पत्थरों की खुदाई तथा स्तम्भ आदि बेमेल हैं, जिससे अनुमान होता है कि किसी अन्य मंदिर के पत्थर इस मंदिर के बनाने में काम में लाये गये हों। जो भी हो यह मंदिर १४ वीं शताब्दी के आस-पास का बना हुआ प्रतीत होता है और इसके अधिकांश पत्थर शेवना से लाये गये जान पड़ते हैं।

नीनोर—प्रतापगढ़ से दक्षिण में लगभग २४ मील की दूरी पर नीनोर नामक प्राचीन गांव है। यहां के दिगंबर जैन मंदिर के निजमंदिर का द्वार शेवना के शिव-मंदिर से लाकर खड़ा किया गया है। उसके मध्य में शिव और दोनों किनारों पर विष्णु और ब्रह्मा की मूर्तियां हैं। द्वार के दोनों पार्श्वों में तीन-तीन स्त्री-पुरुषों की पास-पास खड़ी हुई मूर्तियां हैं। यहां का लक्ष्मीनारायण का मंदिर नागर ब्राह्मण गेमल और विश्वनाथ का

(१) देखो ऊपर पृ० २०, टिप्पण संख्या १।

बनवाया हुआ है, जिसमें वि० सं० १८२९ शक सं० १६६४ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १७७२ ता० २१ मई) गुरुवार का शिलालेख है। इस मंदिर का द्वार तथा स्तंभों के सिरे शेवना से लाकर लगाये गये हैं। गांव के बाहिर पाषाण का बना हुआ एक छोटासा शिव-मंदिर तथा पद्मावती (देवी) का मंदिर है, जिनको वहां के नागर ब्राह्मणों ने बनवाया था। तालाब की पाल पर का शिव-मंदिर वि० सं० १८१९ (ई० स० १७६२) में महारावत सालिम-सिंह के समय नागर ब्राह्मण हरनाथ ने बनवाया था। गांव के आस-पास दूर-दूर तक पुरानी ईंटें निकलती हैं। पहले यहां विसनगरे नागरों की अच्छी बस्ती थी, परन्तु अब केवल १०-१५ घर रहे हैं।

शेवना—प्रतापगढ़ से दक्षिण में लगभग २० मील की दूरी पर शेवना नामक गांव है, जो पहले संपन्न था। यह प्रसिद्ध है कि यहां शिवनगरी नामक राज्य की राजधानी थी। इसमें कितनी सत्यता है, यह कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना निश्चित है कि पहले यह नगर विशाल रहा होगा, क्योंकि इसके खंडहर दूर-दूर तक दृष्टिगोचर होते हैं। एक क़िले के अतिरिक्त यहां पर अब तक कई मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं, जिनमें एक शिवालय बहुत सुन्दर है। यहां ज़मीन के भीतर बना हुआ महाकाल का पुराना मंदिर है। कई मूर्तियां इधर-उधर टूटी-फूटी दशा में मिलती हैं, जिनमें से त्रिविक्रम (वामन) की मूर्ति राजपूताना म्यूज़ियम् अजमेर में सुरक्षित है[1]। यहां से कई मंदिरों के द्वार, स्तम्भ आदि लेजाकर भचूंडला, नीनोर आदि के मंदिर बनाये गये हैं। अब तो इसके आस-पास थोड़ीसी भीलों (मीणों) की बस्ती रह गई है।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त इस राज्य में बोरदिया, धमोतर, बमोतर, ग्रयासपुर, सुहागपुर, बसाड़ आदि और भी कई प्राचीन स्थान हैं। उनमें से कई में मंदिरों आदि के चिन्ह पाये जाते हैं। ग्रयासपुर मालवे के सुलतान ग्रयासुद्दीन के नाम पर बसा हुआ है, जो पहले

(१) राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) की ई० स० १९२२-२३ की रिपोर्ट; पृ० ४।

देवलिया (देवगढ़) परगने का मुख्य स्थान था। अब तो यह स्थान ऊजड़ होता जाता है और केवल थोड़ी सी बस्ती रह गई है। इसी प्रकार बसाड़ भी प्रतापगढ़ परगने का मुख्य स्थान था और उसके नाम पर यह बसाड़ का परगना कहलाता था। अब यहां (बसाड़) की बस्ती भी थोड़ी ही रह गई है। बसाड़ में ब्रह्मा की एक प्राचीन मूर्ति है, जो देखने योग्य है।

दूसरा अध्याय

सीसोदियों से पूर्व के राजवंश

प्रतापगढ़ राज्य की गणना पहले मालवा के अन्तर्गत होती थी, इसलिए वहां पर पहले मौर्य, मालव, क्षत्रप, गुप्त और हूणों का राज्य रहना संभव है। अनन्तर प्रतापी राजा यशोधर्मन् और बैसवंशी राजा श्रीहर्ष ने क्रमशः मालवे पर अधिकार कर लिया तब प्रतापगढ़ राज्य भी उनके अधिकार में चला गया होगा, किन्तु अब तक प्रतापगढ़ राज्य से उनका कोई शिलालेख, ताम्रपत्र या सिक्का नहीं मिला है[1]। श्रीहर्ष की मृत्यु के पीछे कन्नौज के महाराज्य में अव्यवस्था फैल गई। ऐसे समय में भीनमाल के रघुवंशी प्रतिहारों ने बढ़कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उस समय मालवा भी प्रतिहारों के अधिकार में चला गया और वे वहां के स्वामी हुए। प्रतापगढ़ राज्य के घोटार्सी (घोंटावर्पिका) नामक गांव के वि० सं० १००३ (ई० स० ९४६) के प्रतिहार राजा महेंद्रपाल (दूसरा) के समय के शिलालेख से वहां रघुवंशी प्रतिहार नरेशों का राज्य रहना निश्चित है[2]। इसलिए यहां पर उनका उल्लेख करना आवश्यक है।

---

(१) उपर्युक्त वंशों के इतिहास के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण), पृ० ९८-१६२।

(२) राजपूताना म्यूज़ियम् अजमेर की ई० स० १९१५-१६ की वार्षिक रिपोर्ट; पृ० २। यह शिलालेख राजपूताना म्यूज़ियम् अजमेर में सुरक्षित है। मैंने इसका 'एपिग्राफिया इंडिका' (जि० १४ पृ० १७६-८८) में संपादन किया है। प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री में वहां के प्राचीन इतिहास के लिए यह बड़ा उपयोगी है एवं रघुवंशी प्रतिहारों का राजपूताने में राज्य होने का समुचित प्रमाण है।

रघुवंशी प्रतिहार

'प्रतिहार' नाम वंशकर्त्ता के नाम से चला हुआ नहीं, किन्तु राज्याधिकार के पद से बना हुआ शब्द है। राज्य के भिन्न-भिन्न अधिकारियों में एक अधिकारी प्रतिहार होता था, जिसका काम राजा के बैठने के स्थान या रहने के महल के द्वार (ड्योढ़ी) पर रहकर उसकी रक्षा करना था। इस पद के लिए किसी खास जाति या वर्ण का विचार नहीं किया जाता था, प्रत्युत राजा के विश्वसनीय पुरुष ही इस पद पर नियत होते थे। इसी से प्राचीन शिलालेखादि में ब्राह्मणों,[1] गुर्जर[2] (गूजर),

---

(१) विप्रः श्रीहरिचन्द्राख्य ऽ पत्नी भद्रा च क्षत्(त्रि)या।···
तेन श्रीहरिचन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।
द्वितीया क्षत्(त्रि)या भद्रा महाकुलगुणान्विता॥
प्रतीहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्यां येभवन्सुताः।
राज्ञी भद्रा च यान्सूते ते भूता मधुपायिनः॥······
नन्दावल्लभ दृष्ट्वा रिपुबलमतुलं भूम्रकूपप्रयातं
दृष्ट्वा भग्नां(न्) स्वपक्षां(न्) द्विजनृपकुलजां(न्) सत्प्रतीहारभूपां(न्)

मंडोर के राजा बाउक की वि० सं० ८९४ (ई० स० ८३७) की प्रशस्ति। मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण), पृ० १४-५, १६६।

(२)···परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीक्षितिपालदेवपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविजयपालदेवपादानामभिप्रवर्द्धमानकल्याणविजयराज्ये संवत्सरशतेषु दशसु षोडशोत्तरकेषु माघमाससितपक्षत्रयोदश्यां शनियुक्तायामेवं सं० १०१६ माघसुदि १३ शनावद्य श्रीराज्यपुरावस्थितो महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीमथनदेवो महाराजाधिराजश्रीसावटसूनुर्गुर्ज्जरप्रतिहारान्वयः कुशली।

राजोरगढ़ (अलवर राज्य) से मिला हुआ गूजर प्रतिहारों का शिलालेख। एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ३, पृ० २६६। नागरी प्रचारिणी पत्रिका; जिल्द ९ (वि० सं० १९८५), पृ० ३१६-७। महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसाद (जयपुर); प्राचीन लेखमाला (प्रथम भाग); पृ० ५३-५।

चावड़े[1], परमार[2], रघुवंशी[3] आदि प्रतिहारों के उदाहरण मिलते हैं। विक्रम की आठवीं शताब्दी से रघुवंशी-प्रतिहारों का उत्कर्ष होने लगा और वे बड़े पराक्रम-

---

(१) चोणिकल्पतरुः समीकसुम(ग)श्चापोत्कटग्रामणीः
योगीन्द्रो नवचंद्रनिर्मलगुणः स्फूर्जत्कलानैपुणः ॥
श्रीचौलुक्यनरेन्द्रवेत्रितिलकः श्रीसोमराजः स्वयं
विद्वन्मंडलमंडनाय तनुते संगीतरत्नावलीम् ॥ ५ ॥

संगीत रत्नावली; ना० प्र० प०, जि० ६, पृ० ३१६।

(२) श्रीमदुत्पलराजादिवंशे प्रामारभूभुजां ।
अस्ति त्रैलोक्यविख्यातो धारावर्षो महीपतिः ॥ २ ॥
द्वास्थः तस्याभवत् पूर्वं वीरो वारडवंशजः ।
नरपा[लस]मुद्भूतो हरिपाल इति श्रुतः ॥ ३ ॥
पुत्रस्तस्यास्ति विख्यातो भुवने लब्धविक्रमः ।
श्रीमत्साहणपालाह्वः वैरिवर्गक्षयंकरः ॥ ४ ॥......

संवत् १२६४ वर्षे चैत्र शुदि १३ गुरौ । म० जालाकप्रेरितेन स्वश्रेयोर्थं प्रती० साहणपालेन देवश्रीवैद्यनाथस्य मंडपः कारितः ॥...।

ईडर राज्य के वडाली गांव के वैद्यनाथ शिवालय की प्रशस्ति।
पुरातत्त्व (गुजराती, अहमदाबाद); जि० ४, पृ० २८१।

'बारड' परमारों की एक शाखा का नाम है और दांता के राणा 'बारड' शाखा के परमार हैं।

(३) मन्विक्ष्वाकुककुस्थ(त्स्थ)मूलपृथवः क्ष्मापालकल्पद्रुमाः ॥ २ ॥
तेषां वंशे सुजन्मा क्रमनिहतपदे धाम्नि वज्रेषु घोरं
रामः पौलस्त्यहिन्श्रं (हिंस्रं) क्षतविहितसमित्कर्म्म चक्रे पलाशैः।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये
सौमित्रिस्तीव्रदंडः प्रतिहरणविधेर्य्यः प्रतीहार आसीत् ॥३॥

कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव के समय की ग्वालियर की प्रशस्ति। ऐन्युअल् रिपोर्ट ऑव् दि आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑव् इण्डिया, ई० स० १६०३-४; पृ० २८०। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ६, पृ० ३१७। मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १ (द्वितीय संस्करण), पृ० ७४।

शाली हो गये। तदनन्तर उन्होंने चावड़ों से भीनमाल का राज्य छीन लिया और फिर कन्नौज के महाराज्य को अपने हस्तगत कर वहीं अपनी राजधानी स्थिर की। ग्वालियर से मिले हुए रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम) के शिलालेख में, जो वि० सं० ६०० और ६५० (ई० स० ८४३ और ८६३) के बीच का है, लिखा है—"सूर्य-वंश में मनु, इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ आदि राजा हुए। उनके वंश में रावण का संहार करनेवाले रामचन्द्र हुए, जिनका प्रतिहार (ड्योढ़ीवान) उनका छोटा भाई लक्ष्मण था[1]।" इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण को प्रतिहार का कार्य मिलने से उसके वंशज प्रतिहार कहलाने लगे। उक्त भोजदेव के पुत्र महेन्द्रपाल (दूसरा) की प्रशंसा में कवि राजशेखर ने अपने ग्रंथों में उसे 'रघुकुलतिलक[2]', 'रघुग्रामणी[3]' और 'रघुवंशमुक्तामणि[4]' लिखा है, जिससे सिद्ध है कि वे रघुवंशी थे। इस राजवंश की क्रम-पूर्वक वंशावली नागभट्ट से आरंभ होती है, जो नीचे लिखे अनुसार है—

(१) नागभट्ट।

(२) ककुत्स्थ (संख्या १ का भतीजा)।

(३) देवराज (संख्या २ का छोटा भाई)।

(४) वत्सराज (संख्या ३ का पुत्र)।

(५) नागभट्ट (दूसरा, संख्या ४ का पुत्र)—उसको नागावलोक भी कहते थे। उसने चक्रायुध को परास्त कर कन्नौज का साम्राज्य भी

---

(१) देखो ऊपर पृ० ३१, टिप्पण ३। मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण), पृ० ७४ टि० २।

(२) रघुकुलतिलको महेंद्रपालः···।

विद्धशाल भंजिका; १। ६।

(३) देवो यस्य महेंद्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः····।

बालभारत; १। ११।

(४) तेन (= श्रीमहीपालदेवेन) च रघुवंशमुक्तामणिना आर्यावर्त-महाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनंदनेनाधिकृताः सभासदः···।

बालभारत।

छीन लिया। उस समय से ही इन भीनमाल के प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज स्थिर हुई। उसने आंध्र, सैंधव, विदर्भ (बरार), कलिंग और बंग के राजाओं को जीता तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य आदि देशों के पहाड़ी क़िले भी ले लिये, ऐसा उपर्युक्त ग्वालियर की प्रशस्ति में लिखा मिलता है। राजपूताने में जिस नाहड़राव पड़िहार का नाम बहुत प्रसिद्ध है और जिसके विषय में पुष्कर में घाट बनवाने की ख्याति चली आती है, वह यही नागभट्ट (नाहड़) होना चाहिये। उसके समय का एक शिलालेख वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१५) का बुचकला (जोधपुर राज्य के बीलाड़ा परगने में) से मिला है[1]। नागभट्ट का स्वर्गवास वि० सं० ८९० भाद्रपद सुदि ५ (ई० स० ८३३ ता० २२ अगस्त) को हुआ[2], ऐसा जैन विद्वान् चन्द्रप्रभसूरि ने अपने 'प्रभावकचरित' में लिखा है।

(६) रामभद्र (संख्या ५ का पुत्र)।

---

(१) ·········संवत्सरशते ८७२ चैत्रस्य सितपक्षस्य पंचम्यां निवेसि(शि)ता महाराजाद्धि(धि)राजपरमेश्वरश्रीवत्सराजदेवपादानुध्यात-परमभट्टारकमहाराजाद्धि(धि)राजपरमेश्वरश्रीनागभट्टदेवस्वविषये प्रवर्द्ध-मानराज्ये राज्यघङ्कङ्क्ग्रामे राज्ञी जायावली प्रतिहार स्व (स)गोत्रश्रीबपुक-पुत्र·······।

एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० ६, पृ० १९९-२००।

(२) विक्रमतो वर्षाणां शताष्टके सनवतौ च भाद्रपदे।
शुक्रे सितपंचम्यां चन्द्रे चित्राख्यऋक्षस्थे ॥ ७२० ॥···

भाभूत्संवत्सरोऽसौ वसुशतनवतेर्मा च ऋक्षेषु चित्रा
धिग्मासं तं नभस्यं क्षयमपि स खलः शुक्लपक्षोऽपि यातु।
संक्रान्तिर्या च सिंहे विशतु हुतभुजं पंचमी यातु शुक्रे
गंगातोयाग्निमध्ये त्रिदिवमुपगतो यत्र नागावलोकः ॥७२५॥

'प्रभावकचरित' में बप्पभट्टिप्रबंध; पृ० १७७। नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भाग ६, पृ० ३२३-२४ टि०। मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण), पृ० १८०।

(७) भोजदेव (संख्या ६ का पुत्र)—उसको मिहिर और आदि-वराह भी कहते थे। ताम्रपत्र और शिलालेखों के अतिरिक्त उसके चांदी तथा तांबे के सिक्के भी मिले हैं, जिनमें एक तरफ़ 'श्रीमदादिवराह' लेख और दूसरी तरफ़ 'नरवराह' की मूर्ति है। उसके दो तांबे के सिक्के प्रतापगढ़ राज्य से भी हमें मिले हैं।

(८) महेंद्रपाल (संख्या ७ का पुत्र)।

(९) महीपाल (संख्या ८ का पुत्र)।

(१०) भोज (दूसरा, संख्या ९ का भाई)।

(११) विनायकपाल (संख्या १० का छोटा भाई)।

(१२) महेंद्रपाल (दूसरा, संख्या ११ का पुत्र)—उसके समय के उक्त घोटार्सी के वि० सं० १००३ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० ९४६ ता० १७ अक्टोबर) के शिलालेख से प्रकट है कि घोटार्सी के आस-पास का प्रदेश प्रतिहारों के सामन्त चौहानों के अधिकार में था। चौहान इंद्रराज ने, जो गोविंदराज का पुत्र और दुर्लभराज का पौत्र था, घोटार्सी गांव में अपने नाम से 'इन्द्रराजादित्यदेव' नामक सूर्य-मंदिर बनवाया। तब उसके लिए महेंद्रपाल की तरफ़ से 'धारापद्रक' (धरियावद, मेवाड़) नामक गांव तथा उस गांव से पृथक् उत्तर की ओर का कच्छुक नाम का रहँट भेंट किया गया। उसकी सनद पर उस (महेंद्रपाल) के तंत्रपाल (शासक, हाकिम), महासामंत और महादंडनायक माधव ने, जो दामोदर का पुत्र था तथा कार्यवशात् उज्जैन गया था, हस्ताक्षर किये थे। इसी भांति उसपर उस प्रदेश के शासक विदग्ध के भी हस्ताक्षर हुए थे[1]।

---

(१) स्वस्ति श्रीमदुज्जयन्या(यिन्यां) महासामन्तदण्डनायकश्रीमाधवः॥ तथा मण्डपिकायां परमेश्वरपादोपजीविव(ब)लाधी(धि)कृतश्रीकोक्कटनियुक्तश्रीशर्म्मे(शर्मणि)च व्यापारं कुर्व्वते इत्यस्मिन् काले वर्तमाने इहैव श्रीमदुज्जयन्यायां(यिन्यां) कार्यान्यागततंत्र(न्त्र)पालमहासामन्तमहादण्डनायकश्रीमाधवेन(धवः) श्रीदामोदरसुतेन-

'इन्द्रराजादित्यदेव' के मंदिर के साथ लगे हुए या उससे सम्बन्ध रखने-वाले 'वटयक्षिणी देवी' के मंदिर और मठ के लिए भी महेंद्रपाल ने वि० सं० १००३ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० ९४६ ता० १७ अक्टोबर) को 'खर्प्परपद्रक' (खेरोट, प्रतापगढ़ राज्य) गांव भेंट किया था, जिसकी सनद पर भी उक्त विदग्ध ने हस्ताक्षर किये थे[1]। इस 'इंद्रराजादित्यदेव' के मंदिर को मेवाड़

(तः) चाहमानान्वयमहासामन्तश्रीइन्द्रराज(स्य) श्रीदुर्ल्लभराजसुतस्य प्रार्थनयाः(या)। श्रीविदग्धभोगावाप्तये धारापद्रकग्रामे समुपगतान् सर्व्वराजपुरुषान् ब्रा(ब्रा)ह्मणोत्तरीयान् प्रतिनिवासी(सि)जनपदांश्च वो(बो)धयत्यस्तु वस्संविदितं श्रीमहाकालदेवायतने सुस्नात्वा महादेव-मभ्यर्च्च्य मातापित्रोरात्मनश्च सुपुण्यकर्म्मयशोभिवृद्धये परलोकहिताय जलचन्द्रचपलजीवितंतेत्य(लं जीवितमवेत्य) क्षणदष्टसंपदा (नष्टाः संपदः) समन(समनु)चिंन्त्य(चिन्त्य) मीनसंक्रन्तौ(संक्रान्तौ) श्रीनित्यप्रमुदितदेवप्रति[बद्ध]घेंटावर्षिकस्थाने श्रीमदिन्द्रादित्यदेवस्य खण्डस्फुटितसमारचनाय व(ब)लिचरुशत्रु(सत्र)प्रवर्तनाय ग्रामोयं स्वसीमापर्यन्त(न्तः) सवृक्षमाला[कु]लं(लः) सकाष्ट(ष्ठ)-तृणगोप्रचारं(रः) सजलस्थलसमेतं(तः) चतुष्कंकट(ष्कंटक)-विशुद्ध(द्धः) भागभोगकरहिरन्या(ण्या)दिस्कंधकमा[र्ग]णकादि-राजभाव्यैस्सहितं(तः) उदकपूर्व्वकेन शासनेन प्रदत्तं(त्तः)॥ मत्वैतदस्मद्वङ्स(द्वंश)जैरन्यैश्च धर्म्ममिदमनुपालनीयं (धर्म्मोयमनुपाल-यः)। प्रतिनिवासी(सि)जनपदैश्चाज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथा दीयमानं च दातव्यं॥ अपरं [चै]तस्मिन्नेव ग्रामे उत्तरतो [दिग्भा]गे साधारं कच्छ[क] न्नाम अरहटेन तु संयुतं दत्तं। पुनः पत्रमण्डपकिटिकाः पञ्च (ञ्च) शासनेन प्रदत्ताः॥ स्वहस्तोयं श्रीमाधवस्य। स्वहस्तोयं श्रीविदग्धस्य॥

एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० १४, पृ० १८९-७।

(१) देखो ऊपर पृष्ठ २३ टिप्पण १।

के स्वामी गुहिलवंशी खुम्माण (तृतीय) के पुत्र भर्तृपट्ट (भर्तृभट, द्वितीय) ने भी वि० सं० ६६६ श्रावण सुदि १ (ई० स० ६४२ ता० १७ जुलाई) को पलासकूपिका (पलासिया, मंदसोर से १५ मील दक्षिण में) गांव और वंच्चूलिका नाम का कच्छ (काछा=तर भूमि) भेंट किया था[1]। इसी प्रकार चामुंडराज के पुत्र देवराज ने 'इंद्रराजादित्यदेव' के मंदिर को 'कोसवाह' (चड़स से पिलाये जानेवाला) 'छित्तुलाक' नामक क्षेत्र, जिसमें दस माणी अन्न बोया जाता था, भेंट किया था[2]।

(१३) देवपाल (संख्या ६ का पुत्र)।

(१४) विजयपाल (संख्या १३ का भाई)।

(१५) राज्यपाल (संख्या १४ का भाई)—उसके समय में इन रघुवंशी प्रतिहारों का राज्य अत्यंत निर्बल हो गया। ऐसे समय में हि० स० ४०६ ता० ८ शाबान (वि० सं० १०७५ मार्गशीर्ष सुदि १० = ई० स० १०१८ ता० २१ नवम्बर) को सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी, जिसमें उस(राज्यपाल)की हार हुई और वह भाग गया। फिर उसने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर संधि कर ली। सुलतान के भारत से लौट जाने के पीछे वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२१) में उस(राज्यपाल)-पर कालिंजर के राजा गंड की चढ़ाई हुई, जिसमें वह (राज्यपाल) मारा गया।

(१६) त्रिलोचनपाल (संख्या १५ का उत्तराधिकारी)।

(१७) यशपाल (?)—उसके समय का वि० सं० १०६३ (ई० स० १०३६) का शिलालेख मिला है। राज्यपाल के समय से ही कन्नौज के

(१) देखो ऊपर पृ० २२ टिप्पण संख्या १।

(२) ······श्रीदेवराजेन श्रीचामुण्डाराजसुतः (सुतेन) श्रीमदिन्द्रादित्यदेवस्य कोसवाहे छितुल्लाकक्षेत्रं माणीवाप १० शासनेन प्रदत्तं। श्रीमदिन्द्रादित्यदेवजगत्यां। त्रैलोक्यमोहनदेवस्य श्रीमदिन्द्रराजेन उंडिआकक्षेत्रं [अस्य] आघाटा लिख्यंते·········एवं चतुराघाटोपलक्षितं शासनेन प्रदत्तं।

एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० १४, पृ० १८७-१८८।

प्रतिहार राज्य में निर्बलता आ गई थी, जिसका लाभ उठाकर उसके समय में 'बदायूं' के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजाओं में से (जो उन दिनों उधर शक्तिशाली होते जाते थे) भुवनपाल के पुत्र गोपाल ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया, परंतु गोपाल के वंश का वहां अधिक समय तक अधिकार रहना पाया नहीं जाता। शीघ्र ही गाहड़वाल चन्द्रदेव ने, जिसने सारे पांचाल (गंगा और यमुना के बीच का प्रदेश) पर अधिकार जमा लिया था, उधर बढ़कर कन्नौज के प्रतिहार-राज्य पर अधिकार कर लिया और वहां अपनी राजधानी स्थिर की। इस प्रकार प्रतिहारों के महाराज्य का अन्त हो गया। इन प्रतिहारों के राज्य के उन्नतिकाल में अधिकांश राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, सारा पश्चिमोत्तर प्रदेश एवं बिहार का पश्चिमी विभाग भी उनके अधीन था, जहां से उनके शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिलते हैं। फिर उनके राज्य की अवनति के समय उनके सामन्त स्वतंत्र हो गये। अब तो कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों के वंश में केवल बुंदेलखंड में नागोद का राज्य एवं अलिपुरा का ठिकाना तथा कुछ और छोटे-छोटे ठिकाने रह गये हैं। भाटों की पुस्तकों में नागोद के राजाओं की जो वंशावली मिलती है, उसमें सब पुराने नाम कृत्रिम हैं।

परमार तथा सोलंकी

कन्नौज के प्रतिहार-राज्य का पतन होने पर मालवे के परमार, जो संभवतः प्रतिहारों के सामंत थे, स्वाधीन नृपति बन गये। उनमें श्रीहर्ष, मुंज, सिंधुराज, भोज, उदयादित्य आदि प्रतापी और विद्वान् राजा हुए। अनन्तर उदयादित्य के पुत्र नरवर्मा और पौत्र यशोवर्मा के समय गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह की मालवे पर चढ़ाइयां होने लगीं। नरवर्मा तो सोलंकियों के साथ की लड़ाई में मारा गया, पर यशोवर्मा के समय परमार पराजित हो गये और मालवे पर सोलंकियों का अधिकार हो गया संभव है कि मालवे के कुछ भूमि-भाग पर सोलंकियों के समय भी परमारों ने किसी प्रकार अपना अधिकार रक्खा हो;

क्योंकि उस समय भी मालवे में परमारों के ठिकाने थे[1]।

सिद्धराज जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के समय तक सोलंकियों का प्रताप बढ़ता रहा। वि० सं० १२३० (ई० स० ११७३) के लगभग कुमारपाल का देहांत हो जाने पर गुजरात के प्रतापी सोलंकी राज्य की भी अवनति होने लगी और उसके सामंत स्वतंत्र हो गये। कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल और उसके द्वितीय पुत्र भीमदेव (दूसरा, भोला भीम) के समय तो परमार पुनः इतने बलवान हो गये थे कि उन्होंने सोलंकियों को मालवे से निकालने की ठान ली। फलतः उपर्युक्त यशोवर्मा के पौत्र विंध्यवर्मा के समय परमारों और सोलंकियों के बीच युद्ध छिड़ गया, परंतु विंध्यवर्मा को इसमें सफलता नहीं हुई। विंध्यवर्मा की मृत्यु होने पर उसके पुत्र सुभटवर्मा ने गुजरातवालों से युद्ध जारी रखा। उसके समय में मालवे के परमार पुनः स्वतंत्र हो गये और उन्होंने वहां से सोलंकियों का अधिकार बिलकुल उठा दिया[2]। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के मध्य में दिल्ली पर मुसलमानों का अधिकार हो गया और फिर उनके मालवे पर आक्रमण होने लगे, परंतु उनका वहां स्थिर रूप से अधिकार नहीं हुआ। मालवे में इस (परमार) वंश का अंतिम राजा जयसिंह (चतुर्थ) हुआ, जिसके दो शिलालेख वि० सं० १३२६ और १३६६ (ई० स० १२६९ और १३०९) के मिले हैं, जिनसे निश्चित है कि उस समय तक मालवे में उनका थोड़ा बहुत राज्य अवश्य था। अनन्तर सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने मालवे पर आक्रमण कर वहां पर अधिकार कर लिया। तब से मालवे का मुख्य राज्य परमारों के हाथ से निकल गया, परंतु वहां ऊमटवाड़े का इलाक़ा अब भी परमारों की अधीनता में चला आता है एवं नरसिंहगढ़ तथा राजगढ़ दो राज्य वहां परमारों के विद्यमान हैं। मरहटों के समय में

(१) परमारों के विस्तृत वर्णन के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १ (द्वितीय संस्करण), पृ० १९०-२३८।

(२) सोलंकियों के विशद इतिहास के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १ (द्वितीय संस्करण), पृ० २३८-२६१।

पेशवाओं ने अपने सेनापति ऊदाजी पंवार को मालवे का कुछ इलाक़ा जागीर में दिया, जिसका मालवे के परमारों की मुख्य शाखा में होना प्रसिद्ध है। उसके वंश में अब धार और देवास के राज्य हैं।

परमारों और सोलंकियों के अभ्युदय के समय वागड़, मेवाड़ और सुप्रसिद्ध चित्तौड़ दुर्ग पर उनका अधिकार होना निश्चित है। इस अवस्था में प्रतापगढ़ राज्य का—जो मालवा, वागड़ और मेवाड़ की सीमा के किनारे पर स्थित है—परमारों और सोलंकियों के अधिकार से मुक्त रहना असंभव है, परन्तु प्रतापगढ़ राज्य से परमारों और सोलंकियों के शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदि कुछ भी नहीं मिले हैं। अतएव यहां परमारों और सोलंकियों के शासनकाल के इतिहास पर प्रकाश डालना अनावश्यक है। ग्वालियर राज्य के नीमच ज़िले के जीरण क़सबे में देवलिया-प्रतापगढ़ राज्य के स्वामी महारावत भानुसिंह(भाना) की स्मारक छत्री बनी हुई है, उसके स्तंभों पर गुहिलवंशी विग्रहपाल के वि० सं० १०५३, १०६५ और १०६६ के चार लेख खुदे हुए हैं, जिनमें उसकी उपाधि 'महासामंताधिपति' लिखी है और उसका नागह्रद (नागदा) से निकलना पाया जाता है। इससे विदित होता है कि उस समय वहां मेवाड़ के गुहिलवंशियों का अधिकार था और संभव है कि देवलिया (प्रतापगढ़) के आस-पास उनका अधिकार रहा हो एवं वहां के गुहिलवंशी परमारों के सामंत हों।

जीरण से ही मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के राज्य-काल का वि० सं० १६१७ आषाढ वदि ११ (ई० स० १५६० ता० १९ जून) का लेख मिला है, जिसमें आल्हण की स्त्री-द्वारा एक मन्दिर के जीर्णोद्धार कराये जाने का उल्लेख है।

मुसलमान शासक

मालवे पर सबसे पहले दिल्ली के सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश ने हि० स० ६२४ (वि० सं० १२८३ = ई० स० १२२६) में चढ़ाई की थी।

तदनन्तर नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह के समय उज्जैन, भेलसा आदि नगर मुसलमानों ने विजय किये, किन्तु मालवे पर उस समय उनका अधिकार स्थिर रूप से जमना पाया नहीं जाता। गुलाम वंश का अन्त होने पर दिल्ली के सिंहासन पर खिलजी-वंशियों का अधिकार हुआ। तब हि० स० ६९० (वि० सं० १३४८ = ई० स० १२९१) में उक्त वंश के प्रथम सुलतान जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह खिलजी ने आक्रमण कर मालवे के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१ = ई० स० १३०४) में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने सेना भेजकर मालवे का पूर्वी भाग भी ले लिया। फिर उक्त सुलतान ने विजित प्रदेश के प्रबंध के लिए मांडू, उज्जैन और धार में अपने हाकिम नियत किये। 'मिरात-इ-सिकंदरी' से पाया जाता है कि सुलतान मुहम्मद तुग़लक ने हि० स० ७४४ (वि० सं० १४०० = ई० स० १३४३) के आस-पास मालवे का सारा इलाक़ा अज़ीज़ हिमार को सौंप दिया था, जो पहले धार का ही हाकिम था।

फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ के तीसरे पुत्र मुहम्मदशाह तुग़लक (वि० सं० १४४६-५० = ई० स० १३८९-९४) के समय दिलावरखां (दिलावरशाह ग़ोरी, जिसका नाम अमींशाह भी लिखा मिलता है) मालवे का हाकिम नियत हुआ, जो दिल्ली के सुलतानों की अधीनता में वहां का शासन-प्रबंध करता था। महमूदशाह तुग़लक के समय तुग़लक-वंश का प्रभाव घट जाने पर दिलावरखां ने वि० सं०१४५८(ई० स० १४०१) के लगभग स्वतंत्र होकर अपने को मालवे का सुलतान घोषित किया। उस(दिलावरखां)के पीछे होशंग (अलपखां) और मुहम्मद(ग़ज़नीखां)ग़ोरी मालवे के सुलतान हुए। फिर खिलजी-वंश का महमूदशाह वहां का सुलतान हुआ, जो होशंग का एक सरदार था। महमूदशाह मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण(कुंभा) का समकालीन था। उन्हीं दिनों महाराणा कुंभकर्ण से विरोध हो जाने के कारण उसका छोटा भाई क्षेमकर्ण, जो प्रतापगढ़वालों का पूर्वज था, सुलतान महमूद के पास चला गया और उक्त महाराणा की मृत्यु पर्यन्त

वहीं रहा। वि० सं० १५३२ (ई० स० १४७५) में महमूदशाह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र ग़यासशाह (ग़यासुद्दीन) मालवे का सुलतान हुआ। प्रतापगढ़ राज्य में देवलिया के पास ग़यासपुर नामक प्राचीन गांव है, जिसका ग़यासशाह के नाम पर बसाया जाना पाया जाता है। उस समय ग़यासपुर सम्पन्न था और देवलिया परगने का मुख्य स्थान था, जिससे देवलिया परगना पहले ग़यासपुर का परगना कहलाता था। प्रतापगढ़ राज्य के अरणोद ठिकाने के निकट गौतमेश्वर नामक शिवालय है। वहां के वि० सं० १५६२ आषाढ वदि १४ (ई० स० १५०५ ता० १ जून) के शिलालेख से प्रकट है कि उस समय वहां सुलतान नासिरशाह का आधिपत्य था और खानआलम मक़बलखां वहां का शासक था। उसी समय के आस-पास उपर्युक्त क्षेमकर्ण के पुत्र सूरजमल ने मेवाड़ से जाकर देवलिया (प्रतापगढ़) राज्य की नींव डाली।

नासिरशाह के पीछे उसका पुत्र महमूदशाह (दूसरा) खिलजी वि० सं० १५६८ (ई० स० १५११) में मालवे का स्वामी हुआ। उस (महमूदशाह) को हि० स० ९३७ (वि० सं० १५८७ = ई० स० १५३०) में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने पकड़कर मालवे को गुजरात-राज्य में मिला लिया, किन्तु वह (बहादुरशाह) स्थिरतापूर्वक मालवे को अपने अधिकार में न रख सका और हि० स० ९४१ (वि० सं० १५९१ = ई० स० १५३४) में दिल्ली के मुग़ल बादशाह हुमायूं से हारकर मालवा तथा गुजरात के राज्यों को खो बैठा एवं स्वयं दीव के बंदरगाह से लौटता हुआ मारा गया।

बहादुरशाह को परास्तकर बादशाह हुमायूं ने मालवा अपने अधिकार में कर लिया। इतने में बंगाल में शेरशाह सूर का उपद्रव खड़ा होने की खबर सुनकर वह उधर रवाना हुआ, परंतु शेरशाह से उसकी हार हुई। यह खबर जब मालवे में पहुंची तो मल्लूखां, जो खिलजियों का ग़ुलाम था, हुमायूं के सरदारों को निकालकर सुलतान क़ादिर के नाम से वि० सं० १५९२ (ई० स० १५३५) में वहां का स्वामी हो गया। शेरशाह ने दिल्ली

का स्वामी होने के पीछे हि० स० ६४६ (वि० सं० १५६६ = ई० स० १५४२) में उस (क़ादिर) को परास्तकर मालवे को पुनः दिल्ली की अमलदारी में दाख़िल किया और शुजाख़ां को वहां का प्रबंधकर्ता बनाया। सूरवंश के अंतिम सुलतान मुहम्मदशाह के समय दिल्ली के पठान सुलतानों की सत्ता निर्बल हो गई, तब शुजाख़ां भी मालवे का स्वतंत्र सुलतान बन गया और राजधानी मांडू को छोड़कर सारंगपुर में रहने लगा। फिर उस- (शुजाख़ां) के पुत्र बाज़बहादुर से वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) के लगभग बादशाह अकबर ने मालवा पीछा छीनकर मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया। उन्हीं दिनों सूरजमल के प्रपौत्र विक्रमसिंह (बीका) ने मेवाड़ में अपनी सादड़ी की जागीर का, जो उसके पूर्वजों के पास चली आती थी, सदा के लिए परित्याग कर स्थिरतापूर्वक कांठल में ही सूरजमल-द्वारा संस्थापित नवराज्य को अपने आधिपत्य में रखते हुए वहां की स्थिति सुदृढ़ की।

तीसरा अध्याय

महारावत क्षेमकर्ण से विक्रमसिंह(बीका)तक

~~~~~~~~

क्षेमकर्ण से पूर्व के गुहिलवंशी नरेश

प्रतापगढ़ के स्वामी सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। गुहिलवंश की सीसोदिया शाखा के चित्तौड़ (मेवाड़) के राजवंश से उनका निकास हुआ है, जिसका वर्णन हमने उदयपुर राज्य के इतिहास में किया है। उनकी उपाधि 'महारावत' है।

अन्य राजवंशों की भांति गुहिलवंश का विक्रम की सातवीं शताब्दी के पूर्व का इतिहास अंधकार में है और उसके बाद भी कुछ पीढ़ियों का इतिहास क्रमबद्ध नहीं मिलता, तो भी प्राचीन शोध से जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है, उसके आधार पर यह निश्चित है कि संसार के वर्तमान राजवंशों में यही एक राजवंश ऐसा है, जो अनुमान चौदह सौ वर्षों से एक ही स्थान पर राज्य करता चला आ रहा है। इसका विशेष परिचय उदयपुर राज्य के इतिहास में दिया गया है, तथापि इतिहास का क्रम मिलाने के लिए हम यहां पर गुहिलोत और सीसोदिया वंश का प्राचीन इतिहास संक्षेप में देते हैं, ताकि प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास के पाठकों को उक्त राजवंश के प्राचीन इतिहास की शृंखला की कुछ-कुछ जानकारी हो जाय।

गुहिलवंश का इतिहास गुहिल से प्रारंभ होता है। ई० स० १८६६ (वि० सं० १९२६) में मि० कार्लाइल को आगरे के समीप भूमि में गड़े हुए चांदी के २००० से अधिक सिक्के मिले, जिनपर 'श्रीगुहिल' लेख है। इससे अनुमान किया जाता है कि गुहिल का उधर भी राज्य होगा और उसके सिक्के दूर-दूर तक चलते होंगे। जयपुर राज्य के चाटसू गांव में गुहिलवंशी राजाओं का वि० सं० १००० के आस-पास का शिलालेख मिला है, जिससे
~~~~~~~~

निश्चित है कि उधर भी उनका राज्य था। गुहिल के पांचवें वंशधर शीलादित्य (शील) का मेवाड़-राज्य के भोमट ज़िले के सामोली गांव से वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) का शिलालेख तथा कुछ सिक्के और उसके उत्तराधिकारी अपराजित का एकलिंगजी के निकटवर्ती कुंडा गांव से वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) का शिलालेख मिला है, जिससे सिद्ध होता है कि मेवाड़ के वर्तमान राजवंश के पूर्वपुरुष गुहिल (गोभिल, गोहिल, गुहदत्त, गुहादित्य) अथवा शील से पूर्व उसके किसी पूर्वज ने मेवाड़ की तरफ़ बढ़कर वहां अपना राज्य स्थिर किया हो। शील का क्रमानुयायी अपराजित शक्तिशाली राजा था। उपर्युक्त कुंडा के लेख से स्पष्ट है कि अपराजित ने सब दुष्टों का नाश किया और अनेक राजा उसके आगे सिर झुकाते थे। तदनंतर महेंद्र और फिर कालभोज हुआ, जो बापा या बापा रावल के नाम से प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध है कि बापा ने मौर्यों से चित्तौड़ का दुर्ग ले लिया था और दूर-दूर तक अपनी विजय-ध्वजा फहराई थी। वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में बापा ने राज्य त्यागकर संन्यास ग्रहण किया। उसकी समाधि एकलिंगजी के पास विद्यमान है। बापा की राजधानी एकलिंगजी के निकट नागदा (नागह्रद) थी, जिसके नाम से गुहिलवंशी 'नागदे' भी कहलाते हैं। वहां जो मंदिरों आदि के ध्वंसावशेष विद्यमान हैं, उनसे पाया जाता है कि वह उस समय समृद्ध नगर था।

कालभोज के पीछे खुंमाण, मत्तट, भर्तृभट्ट, सिंह, खुंमाण (दूसरा), महायक और भर्तृभट्ट (दूसरा) क्रमशः मेवाड़ के राजा हुए। प्रतापगढ़ से प्राप्त रघुवंशी प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल (दूसरा) की वि० सं० १००३ (ई० स० ९४६) की प्रशस्ति के एक अंश से पाया जाता है कि भर्तृभट्ट (दूसरा) ने वि० सं० ९९९ श्रावण सुदि १ (ई० स० ९४२ ता० १७ जुलाई) को घोंटावर्षिका (घोटार्सी) गांव के इंद्रराजादित्य नामक सूर्य-मंदिर को पलासकूपिका (पलासिया, मेवाड़) गांव का बब्बूलिका नामक क्षेत्र भेंट किया। इससे यह अनुमान होना स्वाभाविक है कि वर्तमान प्रतापगढ़ राज्य का निकटवर्ती प्रदेश भर्तृभट्ट के राज्यान्तर्गत रहा हो।

भर्तृभट्ट (दूसरा) के पीछे अल्लट, नरवाहन और शालिवाहन नामक राजा हुए। शालिवाहन के वंशजों ने खेड़(मारवाड़ राज्य) की तरफ़ जाकर वहां अधिकार किया। वहां से काठियावाड़ की तरफ़ बढ़कर वहां उन्होंने धीरे-धीरे अपने वंशजों के लिए भावनगर, पालीताणा आदि गोहिल-राज्यों की स्थापना कर ली। शालिवाहन की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र शक्तिकुमार मेवाड़ का स्वामी हुआ। उपर्युक्त भर्तृभट्ट (दूसरा) से शक्तिकुमार तक पांच राजाओं का राज्यकाल वि० सं० ९९९–१०३४ (ई० स० ९४२–९७७) तक निश्चित है। उस(शक्तिकुमार)के समय राजधानी आघाटपुर (आहाड़, जो उदयपुर से १½ मील दूर है) भी रही, जिसको मालवे के परमार राजा मुंज ने तोड़ा था। परमारों के इस आक्रमण से मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं की स्थिति निर्बल हो गई और चित्तौड़ उनके अधिकार से चला गया। वहां मुंज के छोटे भाई सिंधुराज के पुत्र प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज का बनवाया हुआ 'त्रिभुवन-नारायण' का मंदिर है, जिसको मोकलजी और अद्‌भुत (अदुबद) जी का मंदिर भी कहते हैं। शक्तिकुमार का क्रमानुयायी अंबाप्रसाद हुआ, जो सांभर के चौहान राजा वाकपतिराज के हाथ से मारा गया।

तदनन्तर शुचिवर्मा, नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज, वैरट, हंसपाल, वैरिसिंह, विजयसिंह, अरिसिंह, चोड़सिंह, विक्रमसिंह और रणसिंह (कर्णसिंह) नामक राजा हुए। रणसिंह से इस राजवंश की दो शाखाएं फटीं—एक रावल और दूसरी राणा शाखा। रावल शाखा में प्रमुख क्षेमसिंह था, जिसके पुत्र सामंतसिंह और कुमारसिंह हुए। क्षेमसिंह के छोटे भाई माहप और राहप थे, जिनकी उपाधि 'राणा' हुई और उनको सीसोदे की जागीर मिली। इससे उनके वंशज सीसोदिया कहलाने लगे।

उसी समय के आसपास गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के मालवे का राज्य विजय कर लेने पर चित्तौड़ का दुर्ग भी उसके अधिकार में चला गया। क्षेमसिंह के पीछे सामंतसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ। उसने गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल को युद्ध में बुरी तरह से

घायल किया, जिसपर गुजरातवालों ने उक्त हार का बदला लेने के लिए सामन्तसिंह पर चढ़ाई की। उस समय सामंतसिंह के सरदार उससे विद्रोही हो गये थे, अतएव उस(सामंतसिंह)को सोलंकियों के मुक़ाबले में परास्त होना पड़ा और वह मेवाड़ छोड़कर वागड़ में चला गया। वहां उसने गुहिल-राज्य की वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) के पूर्व स्थापना कर बड़ोदा (वटपद्रक) में अपनी राजधानी नियत की।

फिर महारावल डूंगरसिंह के समय डूंगरपुर आबाद होकर वही वागड़ की राजधानी हुई। तदनन्तर महारावल उदयसिंह (प्रथम) ने अपने राज्य के दो विभाग कर ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज को राजधानी डूंगरपुर-सहित वागड़ का पश्चिमी भाग और छोटे पुत्र जगमाल को वागड़ का पूर्वी भाग दिया, जिसकी राजधानी बांसवाड़ा है।

सामंतसिंह के अधिकार से मेवाड़ का राज्य निकल जाने पर उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने सोलंकियों को प्रसन्न कर पुनः मेवाड़ का राज्य पाया। उसके पीछे मथनसिंह, पद्मसिंह और जैत्रसिंह क्रमशः मेवाड़ के राजा हुए। जैत्रसिंह वीर राजा था। उसकी गुजरात के सोलंकियों, नाडोल के चौहानों और मालवे के परमारों के साथ लड़ाइयां हुईं, जिनमें उसकी विजय हुई। अपने शत्रुओं को परास्तकर जैत्रसिंह ने चित्तौड़ पर पीछा मेवाड़ का अधिकार स्थापित किया। जैत्रसिंह के पीछे तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह क्रमशः मेवाड़ के स्वामी हुए। रत्नसिंह ने केवल एक वर्ष तक राज्य किया। उसके समय में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ पर चढ़ाई हुई, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार होगया। रत्नसिंह के साथ चित्तौड़ की रावल शाखा की समाप्ति हुई। वि० सं० १३८२ (ई० स० १३२५) के आस-पास सीसोदे के राणा हंमीरसिंह ने चित्तौड़ पीछा अपने अधीन किया। तब से चित्तौड़ पर गुहिलवंश की सीसोदिया शाखा का राज्य स्थिर हुआ। हंमीरसिंह के पीछे क्रमशः क्षेत्रसिंह (खेता), लक्षसिंह (लाखा) और मोकल चित्तौड़ के स्वामी हुए। मोकल ने नागोर पर चढ़ाई कर फ़ीरोज़खां दंदानी

की सेना को नष्ट किया। सांभर, जालोर आदि विजय कर उसने अपने बाहुबल से गुजरात के सुलतान अहमदशाह को परास्त किया। हाड़ों से उसने जहाज़पुर छीना लिया था और मंडोवर का राज्य राव रणमल को दिलवाया था। वह बड़ा दानी था। उसने सोने और चांदी के २५ तुलादान किये, जिनमें से एक स्वर्ण तुलादान पुष्कर के आदिवराह के मंदिर में किया था। जो ब्राह्मण कृषक हो गये थे, उनके लिए उसने सांग(छः अंगों-सहित) वेद पढ़ाने की व्यवस्था की थी। उसके कुंभकर्ण (कुंभा), क्षेमकर्ण (खींवा) आदि सात पुत्र हुए। उनमें से कुंभकर्ण मेवाड़ का स्वामी हुआ, जिसके वंशधर मेवाड़ के महाराणा हैं और क्षेमकर्ण के वंशज प्रतापगढ़ के महारावत हैं, जिनका सविस्तर वर्णन आगे किया जायगा।

क्षेमकर्ण (क्षेमसिंह)

क्षेमकर्ण (जिसके दूसरे नाम क्षेमसिंह, खेमा या खींवा भी मिलते हैं) का जन्म महाराणा मोकल की सोलंकिनी राणी केसरकुंवरी के, जो राव सोढ़ा की पुत्री और सांतल की पौत्री थी, उदर से हुआ था।

क्षेमकर्ण का जन्म

वि० सं० १४९० (ई० स० १४३३) में महाराणा मोकल गुजरात के सुलतान अहमदशाह को दबाने के लिए चित्तौड़ से रवाना हुआ और जीलवाड़े की तरफ़ जाता हुआ बागोर के मुक़ाम पर अपने पितामह महाराणा क्षेत्रसिंह(खेता) के दासी-पुत्र चाचा और मेरा के हाथ से मारा गया। तब उसका ज्येष्ठ पुत्र कुंभकर्ण (कुंभा) मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा।

महाराणा कुंभकर्ण और क्षेमकर्ण के बीच विरोध होना

फिर महाराणा कुंभकर्ण ने अपने छोटे भाइयों को प्रचलित रीति के अनुसार जागीरें देकर पृथक् करना चाहा। क्षेमकर्ण के लिए उसने जो जागीर निकाली, वह उस(क्षेमकर्ण)को पसंद नहीं हुई, क्योंकि वह उसके पद और मान-मर्यादा की दृष्टि से अपर्याप्त थी।

---

(१) उदयपुर राज्य के बड़वा देवीदान की ख्यात।

महाराणा कुंभकर्ण और क्षेमकर्ण सौतेले भाई थे, इसलिए उन दोनों के बीच परस्पर प्रेम में कमी होना स्वाभाविक बात थी। अब इस जागीर के बखेड़े ने और भी द्वेष बढ़ा दिया। निदान अप्रसन्न होकर क्षेमकर्ण ने चित्तौड़ का परित्याग कर दिया और अपने राजपूतों की सहायता से उसने मेवाड़ में बड़ी सादड़ी[1] तथा उसके आस-पास का समग्र प्रदेश बल-पूर्वक अपने अधिकार में कर लिया[2]। महाराणा कुंभकर्ण को क्षेमकर्ण की यह बात सहन नहीं हुई और उसने अपनी सेना भेज सादड़ी और उसके समीप का प्रदेश उससे छीन लिया[3]।

मेवाड़ में महाराणा-द्वारा सादड़ी आदि ले लिये जाने पर क्षेमकर्ण मालवे के सुलतान महमूद खिलजी[4] के पास चला

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में कहीं-कहीं वि० सं० १४७४ (ई० स० १४१७) में क्षेमकर्ण को सादड़ी की जागीर मिलने का उल्लेख है, जो ठीक नहीं है क्योंकि उस समय तो उसका पितामह महाराणा लक्षसिंह (लाखा) विद्यमान था। संभव है कि ख्यात लेखकों ने यहां ग़लती खाई हो और वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) के स्थान में १४७४ लिख दिया हो। जब उस (क्षेमकर्ण) को महाराणा ने सादड़ी की जागीर दे दी थी, तो फिर परस्पर विरोध होने का कोई कारण नहीं हो सकता। संभव तो यही है कि क्षेमकर्ण ने वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) में महाराणा की इच्छा के विरुद्ध सादड़ी पर अधिकार किया हो।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में क्षेमकर्ण का 'तेजमाल की सादड़ी' पर अधिकार होना लिखा है (जि० १, पृ० ९३), जो उदयपुर से ५० मील दक्षिण-पूर्व में है। यह मेवाड़ में सोलह उमरावों (प्रथम वर्ग) का ठिकाना है और प्रतिष्ठा में सर्वोपरि है। यहां के सरदार झाला हैं और उनकी ख्यात में लिखा है कि महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) ने झाला राज देदा को सादड़ी का पट्टा प्रदान किया था। इसके पूर्व उसके पूर्वजों की जागीर दूसरी थी।

(२) महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास; वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५३।

(३) वही; द्वितीय भाग, पृ० १०५३।

(४) यह अज़ीम हुमायूं का पुत्र और ग़ोरी ख़ान्दान के मांडू के सुलतान होशंग का सरदार था। वि० सं० १४९३ (ई० स० १४३६) में होशंग के पौत्र और

क्षेमकर्ण का मालवे के सुलतान के पास जाना

गया, जहां पहले महाराणा मोकल के समय अप्रसन्न होकर महाराणा लक्षसिंह (लाखा) के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा और अज्जा सुलतान होशंग के पास जाकर रहे थे। महमूद ख़िलजी और महाराणा कुंभकर्ण के बीच वैमनस्य था, क्योंकि उस (महमूद) को महाराणा ने चढ़ाई कर क़ैद कर लिया था। अतएव क्षेमकर्ण के रुष्ट होकर जाने पर सुलतान ने महाराणा को चिढ़ाने एवं उस (महाराणा) की कमज़ोरियों का भेद पाने की दृष्टि से उसको अपने यहां रख लिया।

महमूद, महाराणा से अपनी पूर्व पराजय का बदला लेना चाहता था। इसलिए उसने वि० सं० १५००, १५०३, १५११ और १५१३ (ई० स० १४४३, १४४६, १४५४ और १४५६) में मेवाड़ पर आक्रमण किये। उसने गुजरात के सुलतान क़ुतुबुद्दीन को भी अपनी तरफ़ मिलाकर संयुक्त सेना के साथ पृथक्-पृथक् मार्ग से मेवाड़ पर चढ़ाइयां कीं, परन्तु इससे महाराणा की शक्ति न घटी और उन्हें हानि उठाकर लौटना पड़ा। महमूद के मेवाड़ के

क्षेमकर्ण का मेवाड़ पर मालवे के सुलतान को चढ़ा लाना

ग़ज़नीख़ां (मुहम्मदशाह) के पुत्र मसऊद को, जिसको दूसरे सरदार मुहम्मदशाह की मृत्यु पर गद्दी देना चाहते थे, हटाकर यह मालवे का सुलतान बन गया। वि० सं० १५३२ (ई० स० १४७५) में इसकी मृत्यु हुई (डफ़; दि क्रोनोलोजी ऑव् इंडिया; पृ० २६२)।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५४। मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि जब राणा कुंभा गद्दी पर बैठा, तो दोनों भाइयों में परस्पर भूमि के लिए विरोध उत्पन्न हो गया। खेमा मांडू के सुलतान के पास पहुंचा और वहां से सैनिक सहायता प्राप्त कर उसने मेवाड़ को बड़ा धक्का पहुंचाया। राणा कुम्भा और खेमा में विरोध बना रहा, परंतु राणा उसको मेवाड़ से बाहर न निकाल सका। अंत में दोनों का इसी स्थिति में देहांत हो गया (प्रथम भाग, पृ० ६३-४)। नैणसी का उपर्युक्त कथन कि 'राणा उसको मेवाड़ से बाहर न निकाल सका', ठीक नहीं जान पड़ता। जैसा कि आगे बतलाया गया है, क्षेमकर्ण मेवाड़ से चले जाने के बाद ही बहरी से लड़ा था। वह महाराणा-द्वारा सादड़ी छीने जाने पर मालवे के सुलतान महमूद के पास चला गया था और वहां उसने जागीर प्राप्त की थी, जो संभवतः मालवे में रामपुरा-भाणपुरा (इंदौर राज्य) एवं वर्तमान प्रतापगढ़ राज्य के निकट ही हो।

आक्रमण में क्षेमकर्ण का पूरा हाथ था[1], पर परिणाम क्षेमकर्ण के लिए लाभदायक न हुआ और आजीवन उन दोनों भाइयों के बीच द्वेष बना रहा।

क्षेमकर्ण का मालवे के सुलतान के पास रहना वहां के दूसरे सरदारों को अखरता था, क्योंकि उच्चाभिलाषी होने से वह वहां के सरदारों से मेल न रखता था। इंदौर राज्य के खड़ावदा गांव की बावड़ी के वि० सं० १५४१ कार्तिक सुदि २ (ई० स० १४८४ ता० २१ अक्टोबर) गुरुवार के शिलालेख से पाया जाता है कि मालवे के सुलतान महमूद के एक सरदार खानसलह[2] के अनुचर मलिक बहरी[3] और क्षेमकर्ण के बीच शंखोद्धार[4] में युद्ध हुआ,

खानसलह के अनुचर बहरी से क्षेमकर्ण का युद्ध

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५४। नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६३-४।

(२) खानसलह, हंमीरपुर के कलचुरीवंशी राजा भैरव के पुरोहित के वंशधर पुरुषोत्तम का पुत्र था। उसका वास्तविक नाम घुड़ऊ था। कालपी (जौनपुर) के शासक अब्दुलक़ादिर ने, जो दिल्ली की सलतनत के अधीन था, उसको मुसलमान बनाकर उसका नाम 'सलह' रक्खा। फिर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसने उसको अपना विश्वासपात्र सेवक बनाया। कालपी पर मांडू के सुलतान होशंग की चढ़ाई होने पर अब्दुलक़ादिर ने पुत्र-पुत्री तथा धन-सहित खानसलह को होशंग को सौंप दिया। होशंग ने उसकी पूर्व-प्रतिष्ठा क़ायम रक्खी। वह (सलह) होशंग के पीछे मालवे पर अधिकार करनेवाले सुलतान महमूद ख़िलजी का भी कृपापात्र रहा, जिसने उसको खान की उपाधि दी थी। खानसलह ने सुलतान होशंग, महमूद ख़िलजी एवं ग़यासुद्दीन के समय कई युद्धों में वीरता दिखलाई थी।

(३) मलिक बहरी को खड़ावदे के शिलालेख में क्षत्रिय लिखा है। खानसलह ने उसको मुसलमान बना लिया था। खड़ावदे के उपर्युक्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि बहरी वीर होने के साथ ही पूर्ण स्वामिभक्त था एवं उसको संस्कृत से भी अनुराग था। उसने खड़ावदे के भीलों को विजय करने के पीछे वहां क़िला, बावड़ी और बग़ीची बनवाकर महेश भट्ट से (जिसका मेवाड़ राज्य में बड़ा सम्मान था और वहां उसने कई प्रशस्तियों की रचना की थी) इस शिलालेख की रचना करवाई, जो तत्कालीन मालवे के इतिहास के लिए बहुत ही उपयोगी है।

(४) खड़ावदा गांव से दूर चंबल नदी के तट पर (इंदौर राज्य के रामपुरा-भानपुरा नामक ज़िले में) शंखोद्धार एक प्राचीन तीर्थ है। महाभारत (द्रोणपर्व, अ० ६७ वां)

जिसमें क्षेमकर्ण की हार हुई[1]।

वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में प्रतापी महाराणा कुंभकर्ण को मारकर उसका ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) मेवाड़ का स्वामी हुआ।

क्षेमकर्ण की मृत्यु

उसके इस जघन्य कृत्य से राजभक्त सरदारों को उससे अत्यन्त घृणा हो गई और वे अपने भाई, पुत्र आदि को राज्य-सेवा में भेजकर स्वयं उससे किनारा करने एवं उसे राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। उदयसिंह ने उनकी प्रीति सम्पादन करने का प्रयत्न किया, परंतु जब उसमें उसे सफलता नहीं हुई, तो उसने अपने पड़ोसी राजाओं को मेवाड़ के कुछ इलाक़े देकर सहायक बनाने का प्रयत्न किया। उस समय क्षेमकर्ण भी पितृहंता से जा मिला, जिससे सादड़ी

से पाया जाता है कि चंद्रवंशी राजा रंतिदेव के यहां असंख्य पशु बलि होते थे, जिनके लोहू, मांस, मज्जा आदि ने बहकर नदी का रूप धारण किया, जो चर्मण्वती नाम से प्रसिद्ध हुई। फिर वह स्थान तीर्थ के रूप में परिणत हो गया, जहां वैशाख और कार्तिक में मेला लगता है और आस-पास के गांवों से बहुतसे आदमी जाकर एकत्रित होते हैं।

खड़ावदे की बावड़ी में उपर्युक्त वि० सं० १५४१ (ई० स० १४८४) का शिलालेख लगा हुआ था, जो अब इंदौर स्टेट म्यूज़ियम् में सुरक्षित है। इस शिलालेख में मलिक बहरी, ख़ानसलह और सुलतान होशंग से लगाकर मालवे के सुलतान ग़यासुद्दीन तक का वर्णन है। खड़ावदे के आस-पास भीलों की अधिक बस्ती थी, जिनको मलिक बहरी ने विजय किया था। खड़ावदे के इस शिलालेख का मेरे आयुष्मान् पुत्र रामेश्वर गौरीशंकर ओझा, एम० ए० (प्रोफ़ेसर ऑव् संस्कृत, गवर्नमेंट कॉलेज, अजमेर) ने इंदौर स्टेट म्यूज़ियम् का क्यूरेटर (अध्यक्ष) रहते समय काशी की नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग १२, सं० १९८८, पृ० १-१६) में 'इंदौर म्यूज़ियम् का एक शिलालेख'—शीर्षक से सम्पादन किया है।

(1) शंखोद्धारे रंतिदेवोद्धृतायाः
स्रोतस्विन्यास्तीरमध्येभ्यभावि।
षष्ठाषष्ठि क्षेमकर्णक्षितीश-
श्चान्वन्ब (स्तन्वन्ब) हरीपारसीकेश्वरेण ॥ २६ ॥

खड़ावदे का शिलालेख।

आदि परगने उसे फिर मिल गये। उदयसिंह की इस कार्यवाही से सरदार और भी असंतुष्ट हो गये। उन्होंने परस्पर सलाह कर उसके छोटे भाई रायमल को, जो अपनी ससुराल ईडर में था, राज्य लेने के लिए बुलाया। रायमल उधर से कुछ सैन्य लेकर ब्रह्मा की खेड़ (ईडर राज्य) तथा ऋषभदेव होता हुआ जावर (योगिनीपुर) के निकट पहुंचा, जो समृद्ध क़सबा था। मेवाड़ के सरदार भी अपनी-अपनी जमीयत-सहित उससे जा मिले। जावर के निकट के युद्ध में रायमल की विजय हुई और वहां उसका पूरा अधिकार हो गया। फिर पितृघाती के साथ दाड़िमपुर (दाड़मी गांव) में उसका युद्ध हुआ। उसमें उसकी विजय हुई और क्षेमकर्ण मारा गया[1]। तदनंतर और भी कई युद्धों में विजय पाकर रायमल मेवाड़ का स्वामी हुआ तथा उदयसिंह वहां से भाग गया। ख्यातों के अनुसार इस घटना का समय वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) के लगभग है[2]।

---

(१) अवर्पतसंग्रामे सरभसमसौ दाडिमपुरे
धराधीशस्तस्मादभवदनगुः शोणितसरित्।
स्खलन्मूलस्तु(?)लोपमितगरिमा क्षेमकुपतिः
पतन् तीरेयस्यास्तटविटपिवाटे विघटितः ॥ ६४ ॥

एकलिङ्गजी के दक्षिण-द्वार की वि० सं० १५४५ (चैत्रादि १५४६) की प्रशस्ति; भावनगर इंस्क्रिपशन्स; पृ० १२१।

(२) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३२५।

प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में भी क्षेमकर्ण की मृत्यु का यही सम्वत् दिया है और लिखा है कि वह आश्विन सुदि १० (ता० १ अक्टोबर) बुधवार (? शुक्रवार) को ऋषभदेवजी (मेवाड़ के दक्षिणी भाग के धूलेव गांव का जैन तीर्थ) के पास करमदी के खेड़े में मारा गया। ख्यात और दक्षिण-द्वार की प्रशस्ति में इतना ही अन्तर है कि एक करमदी के खेड़े में और दूसरी दाड़िमपुर में क्षेमकर्ण की मृत्यु बतलाती है। ऋषभदेव से उदयपुर के मार्ग में लगभग बीस मील पर जावर नामक प्राचीन गांव है, जो बड़ा समृद्धिशाली क़सबा था और योगिनीपुर नाम से प्रख्यात था। महाराणा रायमल और उसके बड़े भाई उदयसिंह (ऊदा, पितृघाती) के बीच कई युद्ध हुए थे। उनमें एक

प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में लिखा है कि क्षेमकर्ण के चार राणियां थीं, जिनसे सूरजमल[1], रणवीर, शेखधर और रायसाल नामक चार कुंवर एवं पेपकुंवरी नामक पुत्री हुई।

क्षेमकर्ण की संतति

क्षेमकर्ण स्वाभिमानी और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसके समय का कोई शिलालेख या दानपत्र नहीं मिला है। अतएव उसके जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ना कठिन है। हरिभूषण महाकाव्य से प्रकट है कि वह सत्य का पक्षपाती, मतिमान् और धर्मप्रिय व्यक्ति था[2]। लोभ और कृपणता उसमें न थी एवं वह सिंह, शूकर, मृग आदि के आखेट का बड़ा प्रेमी था[3]। उपर्युक्त काव्य में उसके

क्षेमकर्ण का व्यक्तित्व

जावर और दूसरा दाडिमपुर के पास हुआ। उपर्युक्त दक्षिण-द्वार की प्रशस्ति वि० सं० १५४५ (चैत्रादि १५४६=ई० स० १४८९) की है, जो इस घटना से लगभग पन्द्रह वर्ष पीछे लिखी गई थी। ऐसी दशा में उक्त प्रशस्ति में उल्लिखित दाडिमपुर के युद्ध में ही क्षेमकर्ण की मृत्यु होने का वर्णन विश्वसनीय है।

(१) उदयपुर राज्य के प्रथम वर्ग के ठिकाने कानोड़ की ख्यात में लिखा है कि रावत अज्जा (महाराणा लाखा का पुत्र) के बेटे सारंगदेव और सूरजमल थे। उनमें से सारंगदेव अज्जा का उत्तराधिकारी हुआ और सूरजमल क्षेमकर्ण का; परन्तु इसके विरुद्ध प्रतापगढ़ राज्य से मिलनेवाली एक पुरानी ख्यात में सारंगदेव को सूरजमल का छोटा भाई बतलाकर उसको क्षेमकर्ण का दूसरा पुत्र लिखा है। इन दोनों में कौनसा कथन ठीक है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; किन्तु घटनाक्रम पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि सूरजमल और सारंगदेव में कोई निकट-सम्बन्ध अवश्य था, जिससे वे सदा साथ रहकर महाराणा रायमल से युद्ध करते रहे और सुख-दुःख में भी सदैव साथ रहे।

(२) नित्यं सत्यपरायणोऽतिमतिमान्धर्मप्रतिष्ठापको
लुब्धो नो कृपणो न रक्षणपरो नित्यं प्रजानामपि।
दण्डे पुत्रकलत्र-शत्रुविषये भिन्नो न भूवल्लभः
क्षेमारावतसन्निभः क्षितितले भूतो न भावी विभुः॥ १४॥

हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग १।

(३) हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग १, श्लोक २१-३१। उपर्युक्त हरिभूषण महाकाव्य

संबंध में अश्वमेध यज्ञ करने और संपूर्ण भूमि ब्राह्मणों को देने का जो वर्णन दिया है[1], वह अत्युक्ति-पूर्ण है। कवि ने इस काव्य में प्रत्येक स्थल पर अलङ्कारों का प्रयोग किया है, जैसा कि प्रायः काव्यों में होता है तथा यह काव्य क्षेमकर्ण से लगभग दो सौ वर्ष पीछे का बना हुआ है, अतएव उसके विषय में जो कुछ वर्णन किया गया है, वह तत्कालीन परिस्थिति के बिल्कुल विपरीत जान पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि क्षेमकर्ण ने मालवे की सेना-द्वारा अपनी मातृभूमि की बहुत कुछ हानि करवाई, किन्तु उसका परिशोध युद्ध में उसकी मृत्यु-द्वारा हो गया, जो क्षत्रियों के लिए गौरव की बात है। अपने न्यायपूर्ण स्वत्वों की प्राप्ति एवं आश्रित जनों की सहायतार्थ युद्ध में प्राणों की बाज़ी लगा देने के इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं। क्षेमकर्ण ने भी अपने जीवन का यही लक्ष्य रख युद्ध में वीरगति प्राप्त की, जिससे उसका चरित्र उज्ज्वल हो जाता है।

सूरजमल

दाड़मी के युद्ध में क्षेमकर्ण के वीरगति प्राप्त करने के साथ ही महाराणा और उसके बीच होनेवाले विरोध का अंत हो गया और संभवतः वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) के लगभग रावत सूरजमल, क्षेमकर्ण का उत्तराधिकारी हुआ। सादड़ी आदि पर महाराणा कुंभकर्ण की मृत्यु के पश्चात् उदयसिंह के समय क्षेमकर्ण का अधिकार हो गया था वह बना रहा।

सादड़ी का स्वामी होना

में दिये हुए श्लोक संख्या २१-३१ से स्पष्ट है कि क्षेमकर्ण विंध्याचल के जंगलों में शिकार खेला करता था। अतएव उसका अधिकांश समय मालवे में ही व्यतीत होना निश्चित है।

(१) सम्पूर्णैव मही महाध्वरकृता ऋत्विग्गणेभ्यो मुदा
रिङ्गत्तुङ्ग-तुरङ्गमेधविषयेष्वापादिता दक्षिणा।
भाण्डागारमिहार्पितं न कतिधा येन स्वयं भूभुजा
चन्द्रो नाविशदस्य मेरुरपि तद्वच्चो नु मन्यामहे ॥ १९ ॥

हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग १

मेवाड़ का राज्य पाने के पीछे महाराणा रायमल ने, जो सरल प्रकृति का था, सूरजमल से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न की, परंतु सूरजमल और महाराणा के बीच आन्तरिक सफ़ाई नहीं हुई और मनोमालिन्य बना ही रहा[1]। फिर महाराणा ने सारंगदेव-अज्जावत (महाराणा लाखा का पौत्र) को भी भैंसरोड़गढ़ का ठिकाना जागीर में प्रदान कर दिया[2]।

रायमल का सारंगदेव को भैंसरोड़गढ़ की जागीर देना

पितृघाती उदयसिंह (ऊदा) महाराणा रायमल से परास्त होकर इधर-उधर भटकता हुआ मांडू के सुलतान ग़यासुद्दीन[3] के पास सहायता के लिए गया, किंतु वहां पर बिजली गिरने से उसकी मृत्यु हो गई। अनन्तर उसके पुत्र सूरजमल और सहसमल को मेवाड़ का राज्य दिलाने के लिए ग़यासुद्दीन ने चढ़ाई कर चितौड़ को घेर लिया। महाराणा ने अपनी सेना सुसज्जित कर सुलतान की सेना से मुक़ाबिला

मालवे की सेना के साथ महाराणा के पक्ष में सूरजमल का युद्ध करना

---

(१) देखो मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जिल्द १, पृ० ३३१ टिप्पण संख्या १।

(२) वही; जिल्द १, पृ० ३३२। 'वीरविनोद' (भाग १, पृ० ३४७) में महाराणा रायमल का सूरजमल और सारंगदेव को शामिल में वार्षिक पांच लाख रुपये आय की भैंसरोड़गढ़ की जागीर देना लिखा है, किन्तु कुछ स्थल पर केवल सारंगदेव को ही भैंसरोड़गढ़ की जागीर मिलने का उल्लेख मिलता है। मेवाड़ की जागीरदारी प्रथा को देखते हुए 'वीरविनोद' का यह कथन ठीक नहीं जान पड़ता एवं दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को एक ही जागीर शामलात में मिलने के उदाहरण अब तक वहां देखने में नहीं आये। नैणसी भी लिखता है कि सूरजमल का सादड़ी से लेकर गिरवा तक के प्रान्त पर ही अधिकार रहा था (मुहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० ६४)।

(३) यह ख़िलजी वंश के मांडू के सुलतान महमूदशाह का पुत्र था। वि० सं० १५३२ (ई० स० १४७५) में वह मांडू का सुलतान हुआ (रुफ़; दि क्रोनोलोजी ऑव् इंडिया; पृ० २०२)। अनन्तर अपने पुत्र नासिरुद्दीन के ससैन्य चढ़ आने पर वि० सं० १५५७ (ई० स० १५००) में यह स्वयं उसको राज्य-मुकुट पहना मांडू के सिंहासन से पृथक् हुआ और उसी वर्ष इसकी मृत्यु हुई।

किया, जिसमें सुलतान की हार हुई[1]। सुलतान ने इस हार का बदला लेने के लिए पुनः युद्ध की तैयारी की और अपने सेनापति ज़फ़रखां को एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर भेजा। ज़फ़रखां इस सेना के साथ मेवाड़ के पूर्वी हिस्से को लूटने लगा, जिसकी सूचना पाते ही महाराणा अपने कुंवरों पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह, पत्ता (प्रताप) और रामसिंह तथा कांधल चूंडावत, सारंगदेव अज्जावत आदि कितने ही बड़े-बड़े सरदारों एवं विशाल सेना के साथ मांडलगढ़ की तरफ़ बढ़ा। वहां घमासान युद्ध हुआ, जिसमें

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जिल्द १, पृ० ३२८। कर्नल टॉड का कथन है कि उदयसिंह दिल्ली के सुलतान के पास चला गया और वहीं बिजली गिरने से मरा (राजस्थान; जि० १, पृ० ३४०)। नैणसी लिखता है कि मेवाड़ का राज्य छूटने के पीछे उदयसिंह सोजत गया और उसने कुंवर बाघा की बेटी से विवाह किया। फिर वह बीकानेर चला गया और वहीं मरा (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० ३६)। मेवाड़ राज्य की ख्यातों से पाया जाता है कि वह मालवे के सुलतान के पास गया था और वहीं उसकी मृत्यु हुई। अनन्तर उसके पुत्र सूरजमल और सहसमल सुलतान ग़यासुद्दीन को मेवाड़ पर चढ़ा लाये (मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३२७। ख्यातों के इस कथन की पुष्टि एकलिङ्गजी के दक्षिण-द्वार की प्रशस्ति से भी होती है। उसमें सूरजमल और सहसमल के दिल्ली की सेना को मेवाड़ पर चढ़ा लाने का कुछ भी उल्लेख नहीं है। कर्नल टॉड भी ग़यासुद्दीन की मेवाड़ पर चढ़ाइयां होने का वर्णन करता है, पर उसका कथन है कि उनमें महाराणा की जो विजय हुई, वह उसके भतीजों की वीरता पर ही निर्भर है, जिनको महाराणा ने क्षमा कर दिया था (राजस्थान; जि० १, पृ० ३४०)। किन्तु अन्य स्थल पर महाराणा का अपने भतीजों (सूरजमल और सहसमल—पितृघाती उदयसिंह के पुत्र) को क्षमा करने का उल्लेख नहीं मिलता है। टॉड का यह कथन कि पितृहंता उदयसिंह के पुत्रों (सूरजमल और सहसमल) ने, जिनको महाराणा रायमल ने क्षमा कर दिया था, मालवे के सुलतान ग़यासुद्दीन की मेवाड़ की चढ़ाइयों के समय वीरता प्रदर्शित की थी, ठीक नहीं जान पड़ता। यहां टॉड का अभिप्राय सूरजमल और सारंगदेव से हो तो युक्तिसंगत जान पड़ता है, क्योंकि अन्य साधनों से सूरजमल और सारंगदेव का, ग़यासुद्दीन की मेवाड़ की चढ़ाई के समय महाराणा के पक्ष में लड़ना पाया जाता है। भीतरी वैमनस्य होने पर भी महाराणा रायमल ने सूरजमल का सादड़ी पर अधिकार रहने दिया एवं सारंगदेव को भैंसरोड़गढ़ का इलाक़ा प्रदान कर दिया। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि महाराणा ने सूरजमल

दोनों तरफ़ के बहुत से वीर मारे गये और ज़फ़रखां हारकर मालवे को लौट गया। इस युद्ध के प्रसंग में महाराणा रायमल के समय की एकलिङ्गजी के दक्षिण-द्वार की वि० सं० १५४५ (चैत्रादि १५४६=ई० स० १४८९) की प्रशस्ति में लिखा है कि मेदपाट के अधिपति रायमल ने मंडल दुर्ग (मांडलगढ़) के पास सैन्य का नाशकर शकपति ग़यास (ग़यासुद्दीन, मालवे का सुलतान) के गर्वोन्नत सिर को नीचा कर दिया[1]। वहां से रायमल मालवे की ओर बढ़ा और खैराबाद के युद्ध में यवन सेना को तलवार के घाट उतारकर उसने

और सारंगदेव के पहले के अपराध क्षमा कर दिये। सूरजमल और सारंगदेव वंशक्रम के अनुसार परस्पर चचा भतीजे थे। इससे संभव है कि कर्नल टॉड ने सूरजमल—जो महाराणा का चचाज़ाद भाई था—और सारंगदेव को—जो उस (महाराणा) का चाचा होता था—परस्पर चचा-भतीजे होने से महाराणा का भतीजा समझ लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

टॉड के उपर्युक्त संदिग्ध लेख को समझने में प्रतापगढ़ राज्य के गैज़ेटियर-लेखक के० डी० अर्सकिन को भी भ्रम हो गया और उसने प्रतापगढ़ राज्य के संस्थापक सूरजमल के विषय में कर्नल टॉड का सूरजमल को पितृहंता उदयसिंह का पुत्र मानना लिखकर उसका खंडन किया (राजपूताना गेज़ेटियर; जि० २ ए, पृ० १९७)। अर्सकिन के संदेह को ठीक मानकर विलियम क्रुक ने भी अपने संपादित 'एनाल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑव् राजस्थान' (जि० १, पृ० ३४७ टिप्पण ४) में उसके कथन को उद्धृत कर दिया। टॉड के उपर्युक्त विस्तृत ग्रंथ का अध्ययन करने पर अर्सकिन का यह लेख कि टॉड ने सूरजमल को पितृघाती उदयसिंह का पुत्र लिखा है, ग़लत प्रमाणित होता है। इसी प्रकार क्रुक का टिप्पण भी, क्योंकि टॉड ने प्रतापगढ़ राज्य के संस्थापक सूरजमल को कहीं पितृहंता उदयसिंह का पुत्र नहीं लिखा है तथा पृथ्वीराज और सूरजमल के पारस्परिक कलह के अवसर पर पृथ्वीराज का सूरजमल को 'काका' एवं सूरजमल का पृथ्वीराज को 'भतीजे' शब्द से संबोधन करना लिखकर सूरजमल के मेवाड़ छोड़कर कांठल में जाने और उसके वंशधरों के प्रतापगढ़ का स्वामी होने का उल्लेख किया है। इससे महाराणा का भाई (क्षेमकरण का पुत्र) सूरजमल और पितृहंता उदयसिंह का पुत्र सूरजमल भिन्न व्यक्ति प्रकट होते हैं।

(१) वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३३८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३२१।

मालवावालों से दंड लिया तथा अपना यश बढ़ाया।

इस युद्ध का महाराणा रायमल की प्रशंसा में बने हुए 'रायमल रासा'-नामक भाषा-काव्य में विस्तृत वर्णन है। महाराणा के साथ युद्ध में जानेवाले जिन प्रतिष्ठित सरदारों को युद्ध के समय घोड़े दिये गये, उनमें रावत सूरजमल-क्षेमकर्णोत को सुरजपसाव घोड़ा दिये जाने का उल्लेख है[२], जिससे ज्ञात होता है कि उस समय सूरजमल ने महाराणा की सेना में रहकर मालवे के सुलतान तथा ज़फ़रखां की चढ़ाइयों में मुसलमान सेना से युद्ध किया था। इससे यह भी अनुमान होता है कि महाराणा और सूरजमल के बीच जो मनो-मालिन्य था, वह मिटकर सूरजमल महाराणा के पक्ष में लड़ने के लिए गया था। फ़ारसी तवारीखों में ग़यासशाह (ग़यासुद्दीन), ज़फ़रखां और महाराणा के बीच होनेवाले युद्धों का वर्णन नहीं है, परंतु महाराणा रायमल के समय की उपर्युक्त चैत्रादि वि० सं० १५४६ (ई० स० १४८९) की एकलिङ्गजी के दक्षिण-द्वार की प्रशस्ति में इन दोनों युद्ध का स्पष्ट उल्लेख है। इससे निश्चय है कि उक्त दोनों युद्ध वि० सं० १५४६ (ई० स० १४८९) के पूर्व और वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) के पीछे किसी समय हुए।

महाराणा रायमल के पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह (सांगा) आदि १३ पुत्र थे। ज्येष्ठ होने से कुंवर पृथ्वीराज राज्य का स्वत्वाधिकारी था ही, परंतु जयमल पर महाराणा की विशेष प्रीति होने से वह भी राज्य-प्राप्ति की आशा से मुक्त न था। संग्रामसिंह शांत और गंभीर प्रकृति का पुरुष था एवं उसके ग्रह बड़े उच्च थे, जिससे पृथ्वीराज और जयमल उससे डाह रखते थे। एक दिन तीनों भाइयों ने किसी ज्योतिषी को अपनी-अपनी जन्मपत्रियां बतलाईं। उसने उत्तर दिया कि पृथ्वीराज और जयमल पिता की विद्यमानता में ही मृत्यु को प्राप्त होंगे एवं संग्रामसिंह राज्य का

महाराणा के कुंवरों में पारस्परिक द्वेष की वृद्धि

---

(१) वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३४१। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३२९।

(२) वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३३९।

स्वामी होगा। इसपर क्रोध में आकर पृथ्वीराज तथा जयमल ने ज्योतिषी की भविष्यवाणी को मिथ्या करने के लिए संग्रामसिंह को मार डालना चाहा। फलस्वरूप भाइयों के बीच तलवारें चलने लगीं और पृथ्वीराज के हाथ की तलवार से संग्रामसिंह की एक आंख जाती रही। इतने में रावत सारंगदेव जा पहुंचा। उसने उन तीनों को रोककर युद्ध से निवृत्त किया और फिर संग्रामसिंह को अपने यहां ले जाकर उसकी चिकित्सा की। उसने आपस का विरोध बढ़ता देख महाराणा के उपर्युक्त तीनों कुंवरों को समझाया कि तुम परस्पर क्यों कटे-मरते हो, ज्योतिषियों के कथन पर विश्वास नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अभी तो महाराणा विद्यमान है, इसलिए ऐसा विचार करना ही बुरी बात है। फिर भी यदि तुमको यह बात स्पष्ट करनी है तो भीमल गांव के देवी के मंदिर की पुजारिन चारणी[1] से जाकर पूछ लो। इसपर उन्होंने सारंगदेव की बात स्वीकार कर ली।

तदनुसार वि० सं० १५६१ के ज्येष्ठ (ई० स० १५०४ मई) मास में एक दिन कुंवर पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह सारंगदेव-सहित अपने भाग्य का निर्णय कराने के लिए भीमल गांव की चारणी के पास गये। उस (चारणी) ने उनके आने का अभिप्राय समझ राजयोग संग्रामसिंह को बतलाया और मेवाड़ के किनारे की भूमि सूरजमल के अधिकार में रहने की बात कही। यह सुनते ही पृथ्वीराज तथा जयमल संग्रामसिंह पर टूट पड़े। इतने में सारंगदेव फुर्ती के साथ खड़ा होकर संग्रामसिंह पर किये हुए प्रहार अपने ऊपर झेलने लगा। परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज और सारंगदेव तो अधिक घायल होकर वहां गिर गये और संग्रामसिंह घायल होने पर भी अपने घोड़े पर सवार होकर वहां से रवाना हुआ। जयमल ने, जो अधिक घायल नहीं हुआ था, उसका पीछा किया, परंतु संग्रामसिंह सही-सलामत सेवंत्री गांव में जा पहुंचा। उसके शरीर पर

---

(१) यह तुंगल कुल के चारण की पुत्री थी और इसका नाम वीरी था (वीर-विनोद; पहला भाग, पृ० ३४३)। इसे लोग देवी का अवतार मानते थे।

घाव लगे देखकर राठोड़ बीदा[1] (ऊदावत) ने, जो मारवाड़ की तरफ़ से वहां दर्शनों के लिए गया हुआ था, उसको घोड़े से उतारकर उसकी चिकित्सा की। इतने में जयमल भी वहां जा पहुंचा और उसने उससे संग्रामसिंह को मांगा, किन्तु वीर राठोड़ बीदा ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। फिर उसने संग्रामसिंह को तो घोड़े पर देसूरी की तरफ़ रवाना किया और स्वयं अपने राजपूतों-सहित वीरतापूर्वक जयमल से युद्ध करता हुआ काम आया। उपर्युक्त सेवंत्री गांव के रूपनारायण के मंदिर में राठोड़ बीदा की स्मारक छत्री बनी हुई है। उसमें वि० सं० १५६१ ज्येष्ठ वदि ७ (ई० स० १५०४ ता ६ मई) को उसका महाराणा रायमल के कुंवर संग्रामसिंह की सहायतार्थ लड़कर मारे जाने का उल्लेख है[2]। फिर निराश होकर जयमल कुंभलगढ़ चला गया। जब महाराणा को यह संवाद ज्ञात हुआ तो उसने पृथ्वीराज को कहला भेजा कि तूने मेरी विद्यमानता में राज्य-लोभ से प्रेरित होकर यह संघर्ष मचाया और मेरा कुछ भी लिहाज़ न किया, इसलिए तू मुझे अपना मुंह मत दिखलाना। निदान घाव अच्छे होने पर पृथ्वीराज कुंभलगढ़[3] और सारंगदेव अपने स्थान को चला गया।

---

(१) यह मारवाड़ के राठोड़ों के पूर्वज राव सलखा के दूसरे पुत्र जैतमाल का वंशधर था। जैतमाल के वंशज जैतमालोत कहलाये। उसका पुत्र बैजल, पौत्र कांधल और प्रपौत्र ऊदल हुआ। ऊदल का बेटा मोकल था, जिसने मोकलसर बसाया। मोकल का पुत्र बीदा था, जिसके वंश के इस समय केलवे के स्वामी हैं, जो उदयपुर राज्य के दूसरी श्रेणी के सरदारों में है (मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३३२)।

(२) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३३२ टिप्पण २।

(३) वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३४३-४। कर्नल टॉड-कृत 'राजस्थान' में महाराणा के कुंवरों के बीच जन्मपत्रियां दिखलाने के समय झगड़ा होने का कुछ भी वर्णन नहीं है और संग्रामसिंह की एक आंख भीमल गांव के झगड़े में चली जाना लिखा है (जि० १, पृ० ३४१-२)।

टॉड-कृत 'राजस्थान' और 'वीरविनोद' में महाराणा के कुंवरों के संघर्ष में सर्वत्र सूरजमल का ही उल्लेख है, परन्तु इस सम्बन्ध में नीचे लिखा एक प्राचीन पद्य प्रसिद्ध है—

इस घटना के कुछ दिनों पीछे कुंवर जयमल, सोलंकी सुरताण का अपमान करने के कारण सांखला रतना के हाथ से मारा गया[1]। कुंभलगढ़ में रहते समय कुंवर पृथ्वीराज ने पहाड़ी प्रांत के लोगों का उपद्रव शांत कर दिया था। इससे महाराणा की अप्रसन्नता दूर हो गई। वह सारंगदेव से द्वेष रखता था। इसलिए महाराणा की प्रसन्नता का अवसर पाकर उस(पृथ्वीराज)ने उस(महाराणा)से निवेदन कराया कि आपने सारंगदेव को पांच लाख रुपये वार्षिक आय की जागीर प्रदान की है, जो अधिक है। यदि इसी प्रकार छोटे भाइयों को इतनी बड़ी जागीरें मिलतीं तो अब तक आपके पास मेवाड़ का कुछ भी हिस्सा बाक़ी न रहता। इसपर महाराणा ने उत्तर भेजा कि हमने तो भैंसरोड़गढ़ दे दिया। अगर तुम इसे अनुचित समझते हो तो परस्पर समझ लो। यह सूचना पाते ही पृथ्वीराज ने दो हज़ार सवारों के साथ भैंसरोड़गढ़ पर चढ़ाई कर दी। सारंगदेव वहां से भैंसरोड़गढ़ का परित्याग कर[2] सूरजमल से मिल गया। बड़ी सादड़ी से गिरवा तक का सारा प्रदेश सूरजमल के अधिकार में होना महाराणा रायमल को भी पसंद न था। इसलिए पृथ्वीराज उस(सूरजमल)से भी छेड़-छाड़ करने लगा।

सारंगदेव का सूरजमल के पास जाकर रहना

पीथल खग हाथां पकड़, वह सांगा किय वार।
सारंग झेले सीस पर, उणवर साम उबार॥

उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि महाराणा के कुंवरों के पारस्परिक कलह में संग्रामसिंह पर पृथ्वीराज के किये हुए प्रहार सारंगदेव ने अपने ऊपर झेले थे।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ४४-५। टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३४४। वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३४५-६। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३३५-६।

(२) वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३४७। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३३५।

अनन्तर जब पृथ्वीराज का उपद्रव बढ़ता दिखाई पड़ा तो सूरजमल और सारंगदेव प्राणों के भय से विवश होकर मांडू चले गये और वहां के सुलतान नासिरुद्दीन को मेवाड़-राज्य की सारी परिस्थिति से परिचित कर उन्होंने उसे अपनी सहायता के लिए उद्यत किया[1]। मांडू (मालवे) के सुलतान अपने पड़ौसी मेवाड़ के हिन्दू-राज्य की बढ़ी हुई शक्ति को अपने लिए पूर्ण घातक समझते थे, क्योंकि उनकी समय-समय पर मेवाड़-राज्य के द्वारा बहुत क्षति हुई थी। इसलिए वहां के सुलतान ने पूर्व-पराजयों का बदला लेने का यह अच्छा अवसर समझ सूरजमल और सारंगदेव को सहायता देना स्वीकार किया। सूरजमल कुंवर जयमल के मारे जाने, पृथ्वीराज पर

सूरजमल का मालवे की सेना के साथ जाकर महाराणा से युद्ध करना

---

(१) सुलतान नासिरुद्दीन मुहम्मद हि० स० ९०६ (वि० सं० १५५७ = ई० स० १५००) के लगभग अपने पिता ग़यासुद्दीन की विद्यमानता में ही मांडू का सुलतान हुआ। 'तारीख़ फ़िरिश्ता' से ज्ञात होता है कि वि० सं० १५६० (ई० स० १५०३) में नासिरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी और वहां से नज़राने के तौर पर बहुत से रुपये आदि लेकर वह लौटा था (जि० ४, पृ० २४३ ब्रिग्ज़-संपादित)। घटनाक्रम पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) के लगभग सूरजमल और सारंगदेव मांडू के सुलतान नासिरुद्दीन के पास पहुंचे और वहां से सैनिक सहायता प्राप्तकर महाराणा रायमल से युद्ध के लिए प्रवृत्त हुए होंगे।

कर्नल टॉड सूरजमल और सारंगदेव का मांडू के सुलतान मुज़फ़्फ़र के पास जाकर वहां से सैनिक सहायता प्राप्त करना लिखता है (राजस्थान; जि० १, पृ० ३४५ क्रुक-संपादित)। किन्तु मांडू के सुलतानों में मुज़फ़्फ़र नाम का कोई सुलतान नहीं हुआ, जिससे उसका यह कथन ज्यों का त्यों मानने के योग्य नहीं है। संभव है कि सूरजमल और सारंगदेव के साथ सुलतान नासिरशाह ने अपने सरदार ज़फ़रख़ां को, जिसका नाम एकलिङ्गजी के दक्षिण-द्वार की प्रशस्ति में मुदाफ़र लिखा है और जो पहले भी ग़यासुद्दीन के समय मेवाड़ पर सेना लेकर गया था, भेजा हो। फ़ारसी लिपि की अपूर्णता अथवा मालवे के इतिहास का पूरा ज्ञान न होने के कारण ज़फ़रख़ां और मुज़फ़्फ़रख़ां समान शब्द होने से उस (टॉड) ने उसको भूल से मुज़फ़्फ़र समझ, मांडू का सुलतान लिख दिया हो। इसी प्रकार एकलिङ्गजी के मंदिर की दक्षिण-द्वार की प्रशस्ति के रचयिता ने भी ज़फ़रख़ां का नाम मुज़फ़्फ़र समझ उसका विकृत रूप मुदाफ़र कर दिया हो।

महाराणा की अकृपा होने और संग्रामसिंह का पता न होने से चित्तौड़ का राज्य अपने अधिकार में कर लेना सरल समझ सारंगदेव तथा मालवे की मुसलमानी सेना के साथ मेवाड़ में गया और उसने सादड़ी तथा बाठरड़ा के अतिरिक्त नीमच से लगाकर नाई तक का प्रदेश अपने हस्तगत कर लिया। यही नहीं सूरजमल और सारंगदेव मालवे की सेना के साथ चित्तौड़ तक जा पहुंचे। उस समय कुंवर पृथ्वीराज कुंभलगढ़ की तरफ़ था और केवल महाराणा ही चित्तौड़ में था। वहां पर जितनी सेना थी, उसको लेकर वह सूरजमल और सारंगदेव के मुक़ाबले के लिए जा खड़ा हुआ। गंभीरी नदी के तट पर दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। उस समय महाराणा की सेना थोड़ी होने पर भी वह एक वीर पुरुष की भांति शत्रुओं से लोहा ले रहा था[1]। महाराणा के युद्ध में २२ घाव आये। वह जर्जरित होकर रणक्षेत्र में गिरनेवाला ही था एवं उसकी पराजय होना संभव था कि इतने में कुंवर पृथ्वीराज ने अपने एक हज़ार सुसज्जित सवारों के साथ कुंभलगढ़ की तरफ़ से जाकर विपक्षियों की सेना पर धावा बोल दिया[2], जिससे युद्ध का रंग एक दम बदल गया। दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी मारे गये। कुंवर पृथ्वीराज, सूरजमल और सारंगदेव भी बहुत घायल हुए। सायंकाल होने पर युद्ध बन्द किया गया। महाराणा रायमल को कुंवर पृथ्वीराज पालकी में उठवाकर अपने डेरों में ले गया[3] और सूरजमल तथा सारंगदेव भी अपने सैनिकों के साथ अपने-अपने शिविरों में लौट गये। रात्रि के समय महाराणा के घावों पर पट्टी बंधवाने की व्यवस्था कर कुंवर पृथ्वीराज घोड़े पर सवार होकर अकेला ही सूरजमल के शिविर में पहुंचा। सूरजमल के घावों पर भी पट्टियां बंधी हुई थीं और घावों को लिये हुए थोड़ा ही

(१) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३४५।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३४५-६। वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३४७-८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३२६।

(३) वीरविनोद; पहला भाग, पृ० ३४८।

समय हुआ था, तो भी वह पृथ्वीराज के सम्मान के लिए उठ खड़ा हुआ, जिससे पुनः उसके घाव खुल गये[1] और लहू बहने लगा। इतने पर भी सूरजमल विचलित नहीं हुआ और दोनों में निम्नलिखित वार्तालाप हुआ—

पृथ्वीराज—काकाजी आप प्रसन्न तो हैं ?

सूरजमल—कुंवर, आपके आने से मुझको विशेष प्रसन्नता हुई।

पृथ्वीराज—काकाजी, मैंने अभी महाराणा को नहीं देखा है। प्रथम आपको देखने के लिए दौड़कर आया हूं। मुझे बहुत भूख लगी है क्या आपके पास भोजन की कोई वस्तु है ?

इसपर भोजन का थाल शीघ्रतापूर्वक प्रस्तुत किया गया और काका-भतीजे ने एक ही थाल में भोजन किया। फिर पृथ्वीराज को पान भी दिया गया, जिसको उसने रवाना होते समय खा लिया। तत्पश्चात् पृथ्वीराज ने कहा—काकाजी मैं और आप प्रातःकाल ही युद्ध को समाप्त करेंगे।

सूरजमल—बहुत अच्छा, शीघ्र आना।

पृथ्वीराज—काकाजी, स्मरण रखिये कि मैं आपको भाले की नोक जितनी भूमि भी रखने न दूंगा।

सूरजमल—मैं भी तुमको एक पलंग जितनी भूमि पर शांति से शासन न करने दूंगा।

पृथ्वीराज—युद्ध के समय फिर मिलेंगे, सावधान रहिये।

सूरजमल—बहुत अच्छा।

इस वार्तालाप के पीछे पृथ्वीराज लौटकर पुनः अपने डेरों में चला गया[2]।

दूसरे दिन सवेरे ही फिर युद्ध आरंभ हुआ। सारंगदेव के ३५ तथा

(१) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३४९।

(२) वीरविनोद; दूसरा भाग, पृ० ३४८। टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३४५-६। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३३७।

पृथ्वीराज के ७ घाव लगे[1]। सूरजमल भी बुरी तरह घायल हुआ। उसके राजपूत उसे डोली में डालकर पहाड़ों में ले गये[2]। पृथ्वीराज ने उनका पीछा किया। सूरजमल के राजपूत बन्ना देवड़ा के हाथ से पृथ्वीराज का सरदार महिया भाखरोत मारा गया[3]।

'हरिभूषण महाकाव्य' में लिखा है—"एक दिन चित्तौड़ के स्वामी महाराणा रायमल ने, जो बड़ा पराक्रमी और प्रतापी था, क्रोधित होकर कहा कि जब तक सूरजमल जीवित है, तब तक मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। क्या उसे मारने का बीड़ा उठाने के लिए कोई वीर तैयार है? इसपर कुंवर पृथ्वीराज ने बीड़ा उठाया[4]। फिर उसने सेना के साथ प्रस्थान किया

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३४८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३३७।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६४।

(३) वही; प्रथम भाग, पृ० ६४।

(४) एकदा चित्रकूटेशो रायमल्लोऽतिवीर्यवान्।
सिंहासनसमारूढो वीरालंकृतसंसदि ॥ १८ ॥

इत्यूचे वचनं क्रुद्धो रायमल्लः प्रतापवान्।
मदाज्ञावीटिकां वीरः कोऽपि गृह्णातु सत्वरम् ॥ १९ ॥

उत्थाय च ततो भूपैरनेकैर्नामितं शिरः।
वद नाथ! महावीर दुर्विनेयोऽस्ति कोऽपि चेत् ॥ २० ।

अवोचदिति विज्ञप्तः सूर्यमल्लो महाबलः।
व्यथयत्येव मर्माणि श्रुत एव न संशयः ॥ २१ ॥.....

न राज्यं रोचते मह्यं न पुत्रा न च बांधवाः।
न स्त्रियोऽप्यसवो यावत्तस्मिन्जीवति भूपतौ ॥ २३ ॥

वीरैः कैश्चिद्वचस्तस्य श्रुतमप्यश्रुतं कृतम्।
अन्यैरन्यप्रसंगेन परैरपरदर्शनात् ॥ २४ ॥......

और सूरजमल के पास दूत भेजकर कहलाया कि आप महाराणा से संधि कर लें, परंतु उसने पृथ्वीराज का कथन स्वीकार न किया[1]। फिर क्या था, दोनों वीर परस्पर भिड़ गये और घमासान युद्ध हुआ[2]। दो-तीन दिन पीछे पृथ्वीराज ने सूरजमल के डेरों में जाकर मंत्री-द्वारा कुशल पुछवाई,

---

तदात्मजो महावीरः पृथ्वीराजो रणाग्रणीः ।
तेनोत्थाय नमस्कृत्य वीटिका याचिता ततः ॥ २७ ॥
अवश्यं मारणीयो मे सूर्यमल्लो महाबली ।
निराधारोऽपि नालीकः सपत्नो हन्ति वैरिणः ॥ २८ ॥

गंगाराम; हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग २।

(१) अथेति कृत्वोच्चपटीगृहान्सः संप्रेषयामास नृपः स्वदूतम् ।
वपुः प्रकर्षेण महद्वचोभिर्विराजमानं विनयप्रधानैः ॥ १ ॥
त्वरामुपादाय गतिं कुरुष्व श्रीसूर्यमल्लं प्रतिबोधयेति ।
त्वं रायमल्लेन कुरुष्व सन्धिं नो चेदथो मां किल राजपुत्रम् ॥२॥
इत्थं जगाम त्वरया विमुक्तो वशी बभाषे वचनं स दूतः ।
स्फूर्जत्प्रतापानिलतापितारेः श्रीसूर्यमल्लस्य विभोःपुरस्तात्॥३॥...
महीपतिस्तस्य वचो निशम्य विकाशिताशो दशनांशुपूरैः ।
अगाधबुद्धिर्निजगाद वीरः क्षीरोदचेता वचनं वरिष्ठम् ॥१६॥...
रसातलं गच्छति भूतधात्री सुमेरुमूलान्यपि संचलन्ति ।
वारां निधिः शुष्यति चेदपारस्तथापि मानो न कृशो मदीयः ॥१८॥

वही; सर्ग ३।

(२) ततो महासंयुगसांयुगीनैर्व्योम्नि स्फुरत्कान्तिकरालखड्गैः ॥
परस्परं शस्त्रकठोरघातैर्भटैरुपक्रान्तमहो तदानीम् ॥ २५ ॥...
आकृष्टकोदंडकठोरनादैरापूरिते भूगगनान्तराले ।
न शुश्रुवुः क्वापि वचांसि केषां ह्रेषामहो स्वीयतुरङ्गमाणाम् ॥३६॥

जिसपर उसने पृथ्वीराज को अपने निकट बुलवाया। उक्त युद्ध में सूरजमल के ८४ घाव लगे थे, तो भी उसने खड़े होकर पृथ्वीराज का आलिङ्गन कर कुशल पूछी और फिर शिष्टाचार की बातें होने के पीछे वह विदा हुआ[1]।"

तदनन्तर सूरजमल सादड़ी में और सारंगदेव बाठरड़े में रहने

श्रीसूर्यमल्लोऽपि तदातपत्रमर्धेन्दुबाणेन ननाश तत्र।
चिच्छेद सोऽपि ध्वजमुच्चमस्य श्रीचित्रकूटाधिपतिःस्वरोपैः॥४२॥

ध्वजे विनष्टे युधि पञ्चबाणैः कामातुरं काम इवाशु कोपात्।
जघान गाढं हृदि देवलेशः सोऽपि प्रकुप्तो निजघान शक्त्या॥४३॥

गंगाराम; हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग ३।

(१) विहाय युद्धं पुनरागतेन श्रीरायमल्लस्य सुतेन तेन।
द्वित्रैर्दिनैस्तत्र समागतेन सुखस्य पृच्छा सचिवैरकारि॥४५॥

आकारयामास महिपतिस्तमालिङ्ग्य हस्तैरभितिष्ठमानः।
विराजमानोऽपि भृशं तदीयैरशीतिघातैरधिकैश्चतुर्भिः॥ ४६॥

अवोचदित्थं वचनं महीशस्तं भूपतिं भूतलचक्रवर्ती।
भूमीपते!स्वागमनं च्क्षतानि मां न पीडयन्ति त्वयि दृष्टिमागते॥४७॥

भ्रातुः शरीरे सुखमस्ति किञ्चित्किं वा तुरुष्काधिपतिः प्रकुप्तः।
किं चित्रकूटाधिपतेरधीनं मम, स्वयं यद्भवता समागतम्॥४८॥

इत्थं समुक्तः स्वजनेषु तेन प्रियं बभाषे वचनं नरेशः।
या वीरसूः सा भवदीयमाता यत्सूर्यमल्लं सुषुवे कुमारम्॥४९॥

मया पितृव्येण पितुर्निदेशात्त्वया कृतं युद्धमिह क्षमस्व।
यतो हि भूमंडलमानराशे! स्वीयं न युद्धे गणयन्ति धीराः॥५०॥

समुत्थितः सोऽपि नृपः सभातः श्रीचित्रकूटाधिपतेस्तनूजः।
स सूर्यमल्लोऽप्यचिरं ददर्श प्रबोधितो बन्दिजनैः प्रभातम्॥५३॥

वही; सर्ग ३।

लगा। कुंवर पृथ्वीराज को सूरजमल और सारंगदेव का मेवाड़ में रहना खटकता था। एक दिन जब सूरजमल, सारंगदेव के पास बाटरड़े गया हुआ था, कुंवर पृथ्वीराज अपने एक हज़ार सवारों-सहित रात्रि के समय, जब वे लोग आग जलाकर निश्चिन्तता-पूर्वक ताप रहे थे, वहां पहुंचा और गांव का फलसा (फाटक) तोड़कर भीतर घुस गया। उधर के राजपूतों ने भी तलवारें संभालीं और युद्ध होने लगा; किंतु पृथ्वीराज को देखते ही सूरजमल ने कहा—"कुंवर हम तुम्हें मारना नहीं चाहते, क्योंकि तुम्हारे मारे जाने से राज्य डूबता है, मुझपर तुम शस्त्र चलाओ।" इतना सुनते ही पृथ्वीराज लड़ाई बंदकर घोड़े से उतरा और उसने पूछा—"काकाजी, आप क्या कर रहे थे?" सूरजमल ने उत्तर दिया—"हम तो यहां निश्चिन्त होकर ताप रहे थे।" पृथ्वीराज ने कहा—"मेरे जैसे शत्रु के होते हुए भी क्या आप निश्चित रहते हैं?" उसने उत्तर दिया—"हां[1]।"

सूरजमल का मेवाड़ छोड़ना

उपर्युक्त 'हरिभूषण महाकाव्य' की हस्तलिखित प्रति मेरे संग्रह में थी, जिसकी प्रतिलिपि मैंने प्रतापगढ़ के भूतपूर्व महारावत रघुनाथसिंह के पास भिजवाई। इसपर उक्त महारावत ने उसका सम्पादन-भार प्रतापगढ़ के आमेटा ज्ञातीय पंडित जगन्नाथ शास्त्री, संस्कृताध्यापक रघुनाथ संस्कृत पाठशाला और पिन्हे हाई स्कूल, प्रतापगढ़, को सौंपा जिसने भाषानुवाद-सहित उसका संपादन किया, जो वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी की आज्ञानुसार रघुनाथ यंत्रालय (प्रतापगढ़) में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है।

(१) कर्नल टॉड ने भी लिखा है कि सूरजमल एक बार अपने साथियों-सहित बाठरड़े के जंगल में ठहरा हुआ था और अपनी रक्षा के लिए चारों तरफ़ लकड़ी की मज़बूत बाड़ (घेरा) बनाकर रात्रि के समय वह अपने साथी राजपूतों-सहित आग जलाकर ताप रहा था कि घोड़ों के टापों की आवाज़ सुनाई पड़ी। उसके साथी राजपूत चौंक उठे। सूरजमल ने कहा कि और कोई नहीं, यह मेरा भतीजा है। इतने में पृथ्वीराज अपने सवारों-सहित फलसा (फाटक) तोड़कर भीतर घुस गया। तब सूरजमल के साथी भी तलवारें निकाल उनसे भिड़ गये। पृथ्वीराज ने सूरजमल पर प्रहार किया, जिसकी चोट लगते ही वह गिरनेवाला था, परंतु सारंगदेव की सहायता से बच गया। सारंगदेव ने

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सूरजमल, जो पृथ्वीराज के स्वभाव से परिचित था, वहां से रवाना होकर सादड़ी की ओर चला गया और पृथ्वीराज ने सारंगदेव को देवी के दर्शन के बहाने अपने साथ मन्दिर में ले जाकर दर्शन करते समय मार डाला। फिर वह वहां से रवाना होकर सूरजमल के पास सादड़ी पहुंचा। उसने वहीं भोजन करना चाहा। सूरजमल की स्त्री ने भोजन तैयार करवाकर सामने रखा। भोजन के समय सूरजमल भी उसके शामिल बैठ गया। यह देख सूरजमल की स्त्री चौंक उठी और उसने शीघ्रतापूर्वक उस थाल में से एक कटोरे को उठा लिया, जिसमें विष मिला हुआ था। पृथ्वीराज ने सूरजमल से पूछा कि इस कटोरे को क्यों उठाया तो सूरजमल ने उत्तर दिया कि इसमें विष मिला होगा। राजपूतों में विश्वासघात बड़ा भारी पाप माना जाता है, अतएव अपनी स्त्री के इस जघन्य कृत्य से सूरजमल को बड़ा दुःख हुआ और उसने पृथ्वीराज से कहा—"मैं तुम्हारा काका हूं, इसलिए रक्त-संबंध से अपने भतीजे की मृत्यु को नहीं देख सकता, किंतु तुम्हारी काकी को तुम्हारी मृत्यु

उसे लज्जित करते हुए कहा—इस समय का घूंसा पहले के घावों की अपेक्षा कहीं अच्छा है। इसपर सूरजमल ने कहा कि वह मेरे भतीजे के हाथ का हो। सूरजमल ने कुंवर से युद्ध बन्द करने की प्रार्थना कर कहा कि यदि मैं मारा जाऊं तो कुछ नहीं, मेरे पुत्र राजपूत हैं, वे देश में दौड़ेंगे और उनको सहारा मिल जायगा; किन्तु यदि, कुंवर, तुम मारे गये तो चित्तौड़ का क्या हाल होगा? मेरा मुंह काला होगा और सदैव के लिए मेरा नाम कलंकित हो जायगा। इसपर तलवारें म्यान में कर दी गईं और चचा-भतीजे कंधे से कंधा मिलाकर मिले। पृथ्वीराज ने पूछा—काकाजी! जब मैं आया उस समय आप क्या कर रहे थे? सूरजमल ने उत्तर दिया कि भोजन करने के पीछे मामूली बातें कर रहे थे। पृथ्वीराज ने कहा कि मेरे जैसा दुश्मन आपके सिर पर लगा हुआ होने पर भी आप इस प्रकार ग़ाफ़िल कैसे रहते हैं? सूरजमल ने कहा—क्या करें, तुमने मेरे लिए कोई साधन न रखा और मुझे अपना मस्तक टिकाने को कोई जगह चाहिये (टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० २४६-७)।

से क्या दुःख, इसीसे उसने ऐसा किया होगा।" यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा—"अब यह मेवाड़ का सारा राज्य तुम्हारे लिए तैयार है।" सूरजमल ने उत्तर दिया—"मैं अब कलंक-कालिमा लगाकर मेवाड़ में जल पीना भी नहीं चाहता।" तदनंतर वह मेवाड़ के बाहर कांठल में चला गया[1] और फिर पीछा मेवाड़ में न लौटा।

इस घटना के थोड़े दिनों बाद ही सिरोही के राव जगमाल-द्वारा ज़हर दिये जाने पर कुंवर पृथ्वीराज का देहांत हो गया एवं वि० सं० १५६६ (ई० स० १५०६) में महाराणा रायमल भी स्वर्ग को सिधारा। फिर कुंवर संग्रामसिंह (सांगा) मेवाड़ का महाराणा हुआ, जिससे उस(सूरजमल)का मेल रहा[2] और पाया जाता है कि सादड़ी आदि की जागीर उसकी अविद्यमानता में भी उसके नाम बनी रही।

कर्नल टॉड का कथन है कि सूरजमल ने सादड़ी में रहते हुए अपने पहले के किये हुए इस प्रण को कि यदि वह अपनी भूमि न रख सकेगा तो ऐसे व्यक्तियों को दे देगा, जो राजाओं से भी अधिक शक्ति-शाली हों, पूरा किया। वह अपनी भूमि ब्राह्मणों, चारणों आदि में बांटकर मेवाड़ से निकल गया[3]। कांठल के जंगल की ओर जाते हुए उसे एक स्थान पर अच्छे शकुन हुए। इससे उसे चारणी की कही हुई भविष्यवाणी का स्मरण हो आया। उस शुभ शकुन को देख उसने वहां रुककर उधर के भील आदि लूटेरों का दमन किया और वहां देवलिया का क़सबा आबाद किया तथा वह कांठल प्रदेश का स्वामी हो गया[4]।

---

(१) वीरविनोद; प्रथम भाग, पृ० ३४८-६। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जिल्द १, पृ० ३३८।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५४।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में इन गांवों के नाम भीमल, धारता, गोठिया, बीकणा, बोसोला (बासोला), भरखिया, बालिया, थाहरून, चारणखेड़ी, सरदेवला, भारकी और सुआली दिये हैं (प्रथम भाग, पृ० ६४)।

(४) टॉड; राजस्थान; जिल्द १, पृ० ३४७।

मेवाड़ छोड़ने के पीछे सूरजमल का जीवन कहां और किस प्रकार बीता, यह विषय अंधकार में है। उसके समय का कोई शिलालेख या ताम्रपत्र नहीं मिला है, जिससे उसके जीवन पर कुछ प्रकाश पड़े। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सूरजमल का परलोकवास वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में हुआ[1]। ख्यातों के अतिरिक्त महारावत सूरजमल का मृत्यु-सम्वत् कहीं उपलब्ध नहीं हुआ है। ऐसी दशा में यदि ख्यात में उल्लिखित उसका मृत्यु-संवत् ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा कि वह मेवाड़ से चले जाने पर बीस वर्ष से अधिक जीवित रहा था।

सूरजमल का देहान्त

सूरजमल के पांच राणियां थीं, जिनसे उसके रणधीर[2], बाघसिंह,

(१) महारावत सूरजमल का मृत्युकाल ख्यातों में कहीं वि० सं० १५८४ और कहीं १५८७ लिखा हुआ मिलता है। एक ख्यात में यह भी लिखा है कि सूरजमल ने बड़ी सादड़ी में वि० सं० १५५० (ई० स० १४६३) में सूरसागर तालाब बनवाया था। सूरजमल और पृथ्वीराज के बीच २६ लड़ाइयां हुईं। बड़ी सादड़ी छोड़ने के बाद वह साटोला (मेवाड़) और कांठल के बीच के पहाड़ों में रहा और वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में सीकर के पास के मेवातियों से लड़ने में अपने पुत्र सैंसमल-सहित काम आया। ख्यातों में दिये हुए उपर्युक्त संवत्, मिती और वारों का मिलान करने पर ये सब कथन प्रक्षिप्त ठहरते हैं, क्योंकि जो वार दिये गये हैं, वे उक्त तिथि को नहीं मिलते। घटनाक्रम पर विचार करने से भी बहुधा संवत् कल्पित ही प्रतीत होते हैं। यह संभव है कि सूरजमल खानवे के युद्ध में महाराणा संग्रामसिंह के साथ गया हो और फ़तहपुर सीकरी के पास किसी स्थान में काम आया हो, परंतु इस संबंध में जब तक कोई पु प्रमाण न मिले निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता और न उसके मृत्यु-समय का निर्णय ही हो सकता है।

(२) प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि रणधीर मेवाड़ के महाराणा की तरफ़ से किसी युद्ध में लड़कर मारा गया था। यदि ख्यातों का कथन ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा कि रणधीर, सूरजमल और पृथ्वीराज के बीच झगड़ा होने के पूर्व ही मारा गया होगा।

जग्गा, सैंसमल[1] (सहसमल), रिड़मल[2] (रणमल), कल्ला और राजधर नामक सात पुत्र और उम्मेदकुंवरी नामक एक पुत्री हुई[3]। जोधपुर के कविराजा बांकीदास के 'ऐतिहासिक बातों के संग्रह' से ज्ञात होता है कि महारावत सूरजमल के पुत्र बाघसिंह, संसारचंद, सहसमल, रणमल और कल्ला हुए, जो बीकानेर के स्वामी लूणकर्ण के दोहिते थे[4], परन्तु प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में संसारचंद का नाम ही नहीं है और न इस राठोड़ राणी का नाम ही दिया है। उसमें रणधीर, और बाघसिंह का हाड़ी राणी शृंगारकुंवरी, सहसमल और रणमल का हाड़ी राणी लखतकुंवरी, कल्ला तथा राजधर का सोनगरी राणी अड़ावकुंवरी और

सूरजमल की राणियां और संतति

(१) सैंसमल (सहसमल) के लिए प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि उसको मेवाड़ की तरफ़ से निंबाहेड़ा जागीर में मिला था। सादड़ी की जागीर महारावत विक्रमसिंह से महाराणा उदयसिंह ने ले ली, तब सैंसमल का पुत्र कान्हल (कांधल) उक्त महारावत के साथ चला गया, जिसको कांठल के इलाक़े में धमोतर की जागीर मिली। सैंसमल के नाम से उसके वंशधर सिंहावत कहलाते हैं। उनका प्रमुख ठिकाना धमोतर है, जो प्रतापगढ़ राज्य में प्रतिष्ठा और आय में बड़ा है। मारवाड़ राज्य में झालामंड का ठिकाना धमोतर के छोटे भाइयों का है। इसी धमोतर ठिकाने की एक शाखा पूरावत है, जो ठाकुर कान्हल के छोटे पुत्र पूरा से प्रसिद्ध हुई। इस पूरावत शाखा में जाजली का ठिकाना प्रथम वर्ग और बरखेड़ी का द्वितीय वर्ग में है। ये दोनों ठिकाने भी अधिक पुराने नहीं हैं। जाजली का ठिकाना महारावत सर रामसिंहजी ने प्रथम वर्ग में दाख़िल किया है और बरखेड़ी का ठिकाना महारावत रघुनाथसिंह के समय क़ायम हुआ है।

(२) रिड़मल (रणमल) के लिए भी प्रतापगढ़ राज्य की ख्यात में लिखा है कि वह महाराणा उदयसिंह के समय मेवाड़ और बूंदी की सीमा पर किसी लड़ाई में काम आया था। उसके वंशज रणमलोत कहलाते हैं। रणमलोतों का कल्याणपुरे का ठिकाना प्रथम वर्ग में है।

(३) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० १।

(४) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातों का संग्रह; संख्या १२६७।

जग्गा का सांखली अंतरदे के उदर से उत्पन्न होना बतलाया है[1]। ऐसी स्थिति में बड़वे भाटों की ख्यातें इतिहास के लिए कहां तक उपयोगी हैं इसका निर्णय स्वयं इतिहास के पाठक कर सकते हैं।

महारावत सूरजमल वीर प्रकृति का पुरुष था। क्षत्रियोचित स्वभाव के अनुसार वह युद्ध के अवसर पर सदा आगे बढ़कर वीरता प्रदर्शित करता था। शत्रु सिर पर मंडराते रहने पर भी वह कभी नहीं घबराता था, वरन् उसका सम्मान कर उसको प्रसन्न कर देता, जिससे शत्रु भी उसका मित्र बन जाता था। कपट और विश्वासघात करना तो उसने सीखा ही न था। शत्रु को अकेला पाकर मारना वह सदैव नीच कार्य समझता था। इसका उसने अपने जीवन में पूर्णतः पालन किया। महाराणा रायमल के कुंवर पृथ्वीराज-द्वारा सदा अपना अनिष्ट होने पर भी उसने कपट-भाव से उसको मारने की चेष्टा न की। उसने अपनी पैतृक भूमि त्याग दी, जिसकी प्राप्ति में अनेक बार रक्त की धारें बही थीं। अपनी राणी के पृथ्वीराज को विष देकर मारने के प्रयत्न से उसको इतना दुःख हुआ कि वह जीवन भर पीछा मेवाड़ में नहीं गया। राजपूत जाति के इतिहास में राज्य-प्राप्ति के लिए छल-कपट आदि अधर्म-युक्त कार्यों के भी उदाहरण मिलते हैं, परन्तु सूरजमल इन बुराइयों से सर्वथा मुक्त था। वह युद्ध की अपेक्षा शांति को अधिक पसंद करता, किंतु जब आ पड़ती तब अपने प्राणों की भी बाज़ी लगा देता था। वह उदार राजा था। मेवाड़ में भीमल, धारता आदि गांव उसने चारणों और ब्राह्मणों को दे दिये, जो उसकी दानशीलता का परिचय देते हैं। 'हरिभूषण महाकाव्य' से पाया जाता है कि वह चतुर और नीति निपुण था[2]। बड़ी सादड़ी में सूरसागर

सूरजमल का व्यक्तित्व

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० १।

(२) बभूवाथ महावीरः सूर्यमल्लस्तदात्मजः।
कर्णोपमेयो दानेन मानेनापि सुयोधनः॥ १॥
वर्णाश्चत्वार एवैते नाप्नुवन्नन्यवाच्यताम्।
वर्णा इव महीपाले तस्मिन् शासति मेदिनीम्॥ २॥

तालाब उस(सूरजमल)का ही बनवाया हुआ माना जाता है।

बाघसिंह

सूरजमल का ज्येष्ठ पुत्र रणधीर पिता की विद्यमानता में ही युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो चुका था[1], इसलिए उस(सूरजमल)का देहांत होने पर उसका दूसरा पुत्र बाघसिंह वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) के लगभग उसका उत्तराधिकारी हुआ।

राज्य-प्राप्ति

मेवाड़ का स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) बड़ा वीर था। उसने मेवाड़-राज्य के गौरव में बहुत वृद्धि की। भारतवर्ष के हिंदू-राज्यों में मेवाड़ ही उस समय एक प्रधान राज्य था, जिसकी धाक दिल्ली, गुजरात और मालवे के मुसलमानी राज्यों पर थी। उन दिनों दिल्ली पर लोदी सुलतानों का अधिकार था। उनकी कमज़ोरी का लाभ उठाकर भारत पर मुग़ल-राज्य स्थापित करने की दृष्टि से चग़ताई खान्दान के बाबर-शाह ने तुर्किस्तान की तरफ़ से बढ़कर कँधार के मार्ग से हिंदुस्तान में आकर वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी पर आक्रमण किया। पानीपत के मैदान में बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें इब्राहीम मारा गया एवं दिल्ली पर मुग़लों (बाबर) का अधिकार हो गया। इब्राहीम का एक शाहज़ादा और उसका सेनापति हसनखां महाराणा से सहायता लेने के लिए चित्तौड़ पहुंचे। महाराणा भी भारत में पुनः हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करना चाहता था और अवसर की बाट देख रहा था।

बाघसिंह का खानवे के युद्ध में महाराणा के साथ रहना

द्विजपूजापरो धीमान्धर्मज्ञो लोकवत्सलः।
कामानपूरयत्तस्य नित्यं कामदुघेव भूः ॥ ३ ॥

हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग २।

(१) देखो ऊपर पृ० ७१, टि० २।

मुग़लों को दिल्ली से निकाल वहां अपना अधिकार जमाने का यह अच्छा अवसर जानकर, उसने एक विशाल सेना के साथ बाबर पर चढ़ाई की। महाराणा को अपनी विजय का दृढ़ निश्चय था, परन्तु खानवे के वि० सं० १५८४ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) के युद्ध में उसके सिर में शत्रु का एक तीर लगा, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। तत्काल कुछ सरदार उसको युद्ध से हटाकर अन्यत्र ले गये और उसके स्थान में झाला अज्जा को उसका प्रतिनिधि बनाकर लड़ने लगे। मुग़लों के साथ तोपख़ाना था। राजपूत तोपों और बन्दूकों से अपरिचित थे, अतएव उनकी मार से राजपूतों की बड़ी क्षति हुई और बाबर विजयी हुआ। झाला अज्जा, रावत रत्नसिंह आदि महाराणा के कई बड़े-बड़े सरदार और कई सहायक राजाओं में से डूंगरपुर का स्वामी महारावल उदयसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ[1]।

'वीरविनोद' में लिखा है कि इस युद्ध में रावत बाघसिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई थी[2]। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में रावत सूरजमल की मृत्यु वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में होने का उल्लेख है। ऐसी दशा में खानवे के युद्ध के समय बाघसिंह रावत नहीं हो सकता। यदि ख्यातों में उल्लिखित सूरजमल का देहांत वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में होना ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा कि खानवे के युद्ध में बाघसिंह ने पिता की विद्यमानता में भाग लिया होगा।

बाघसिंह का मालवे में जाना

खानवे के युद्ध में हारने के पीछे महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) केवल कुछ मास तक जीवित रहा और वि० सं० १५८४ के माघ (ई० स० १५२८ जनवरी) मास में परलोक सिधारा। तब उसका कुंवर रत्नसिंह राजगद्दी पर बैठा, किन्तु उस(रत्नसिंह)-ने चार वर्ष ही राज्य किया और वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में वह पारस्परिक द्वेष के कारण बूंदी के हाड़ा राव सूरजमल से लड़कर मारा

(१) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३७६।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २६, टिप्पण १।

गया तथा सूरजमल की भी वहीं मृत्यु हुई। इसपर उसका छोटा भाई विक्रमादित्य मेवाड़ का स्वामी हुआ। वह (विक्रमादित्य) अपने राजपूत सरदारों का अपमान कर पहलवानों की नवीन सेना अपने पास रखता था, जिससे प्रायः सब बड़े-बड़े सरदार उससे असंतुष्ट थे और जब वह अकारण ही सरदारों की प्रतिष्ठा पर आघात करने लगा, तो अधिकांश बड़े-बड़े सरदार अपने-अपने ठिकानों में जा बैठे। यही नहीं, महाराणा संग्रामसिंह का भतीजा नरसिंहदेव और राजा मेदिनीराय (चंदेरीवाला) आदि वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२) में सुलतान के पास चले गये[1] और उसको उसका भेद बताने लगे।

प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों से पाया जाता है कि रावत बाघसिंह भी महाराणा विक्रमादित्य के अनुचित व्यवहार से अप्रसन्न होकर मांडू के सुलतान के पास चला गया था[2], जहां उसको जागीर प्राप्त हुई। वहां रहते समय उस (बाघसिंह) ने अपनी जागीर में 'बाघवाड़ा' गांव बसाया, जिसका इस समय धार राज्य के अन्तर्गत होना बतलाया जाता है।

महाराणा कुंभकर्ण और संग्रामसिंह के समय गुजरात और मालवे की सेना कई बार पराजित हुई थी, जिसको वहां के सुलतान भूले न थे, परन्तु उक्त महाराणाओं के प्रबल प्रताप के आगे वे मेवाड़ राज्य की शक्ति को क्षीण न कर सके थे। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) के पीछे मालवे (मांडू) का मुसलमानी राज्य निर्बल हो गया और गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने, जो अपनी शाहज़ादगी के समय क्रमशः डूंगरपुर और चित्तौड़ के राजाओं के आश्रय में रहा था, वहां के सुलतान महमूद को

बहादुरशाह की चित्तौड़ पर चढ़ाइयां

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २७।

(२) ख्यातों के इस कथन की पुष्टि मुंशी देवीप्रसाद-रचित 'महाराणा रतनसिंह और विक्रमादित्य के जीवनचरित्र' (पृ० ७०-१) से होती है। उसमें बाघसिंह के मांडू के सुलतान के पास जाने का उल्लेख है, जिसका अभिप्राय बहादुरशाह से हो, क्योंकि उन दिनों मांडू (मालवा) पर उसका अधिकार हो गया था।

परास्त कर उक्त राज्य को अपनी सलतनत में मिला लिया, जिससे गुजरात का मुसलमानी राज्य अधिक शक्तिशाली हो गया। महाराणा रत्नसिंह का देहांत होने पर उसके उत्तराधिकारी विक्रमादित्य ने, सुलतान बहादुरशाह की रायसेन पर वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२) में चढ़ाई होने पर उस-(बहादुरशाह)के विरुद्ध रायसेन (मालवा) के स्वामी सलहदी का पक्ष लिया। महाराणा को सलहदी के पुत्र भूपतराय-सहित आते देख, बहादुरशाह ने भी मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए शीघ्र अपनी सेना रवाना की और स्वयं भी अपनी सेना में जा मिला। यह देख महाराणा बिना लड़े ही चित्तौड़ लौट गया। तब सुलतान भी पहले रायसेन को परास्त करने का विचार-कर पीछा मालवे को चला गया[1]।

अपने पड़ोस में एक प्रबल हिंदू-राज्य का होना सुलतान को खटकता था। विक्रमादित्य के भूतपराय की सहायतार्थ जाने से सुलतान बहादुरशाह और भी चिढ़ गया। रायसेन पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसी वर्ष (वि० सं० १५८९ = ई० स० १५३२ में) बड़ी तैयारी कर उसने चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना रवाना की। मुसलमानी सेना के मन्दसोर पहुंचने पर महाराणा के वकील संधि का संदेश लेकर पहुंचे। महाराणा के कुछ सरदार सुलतान से जा मिले थे, जिससे उसको महाराणा की कमज़ोरियों का भेद मिलता रहा, अतएव संधि की बात स्वीकार न हुई। तब महाराणा भी अपनी सेना के साथ शत्रुओं के मुक़ा-बले के लिए नीमच तक आगे बढ़ गया[2], पर पहले ही आक्रमण में उस-(महाराणा) को अपनी सेना-सहित पीछे हट जाना पड़ा। गुजराती सेना आगे बढ़ने लगी और स्वयं सुलतान भी मांडू से चलकर अपनी सेना में सम्मिलित हो गया। फिर उसने चारों तरफ़ से चित्तौड़ के क़िले को

---

(१) बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० ३६१-६२। आत्माराम मोतीराम दीवा-नजी; मिरात-इ सिकंदरी (गुजराती अनुवाद); पृ० २६२। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९५।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २७।

घेर लिया और दुर्ग की सुदृढ़ दीवारों को तोपों से उड़ा देने का प्रयत्न किया। दुर्गस्थ सैनिक भी अपनी रक्षा के लिए थोड़ा-बहुत मुक़ाबला कर रहे थे, पर गुजरात की प्रबल सेना के आगे उनका कुछ बस न चला और गुजराती सेना चित्तौड़ के नीचे के दो दरवाज़ों तक पहुंच गई[1]।

राजमाता हाड़ी कर्मवती (महाराणा संग्रामसिंह की राणी) ने उस समय दिल्ली के बादशाह हुमायूं से सहायता चाही, परंतु वहां से सहायता न मिली और जब दुर्ग बचने की आशा न दीख पड़ी तब राजमाता ने सुलतान बहादुरशाह के पास संधि की बात-चीत के लिए अपने वकीलों को भेजकर कहलाया कि महमूद खिलजी से लिये हुए मालवे के ज़िले लौटा दिये जावेंगे और महमूद का महाराणा संग्रामसिंह को दिया हुआ जड़ाऊ मुकुट तथा सोने की कमरपेटी भी दे दी जायगी। इनके अतिरिक्त दस हाथी, सौ घोड़े और नक़द रुपये भी दिये जायँगे। राजमाता की इन शर्तों को मानकर वि० सं० १५८६ चैत्र वदि १४ (ई० स० १५३३ ता० २४ मार्च) को सुलतान वहां से लौट गया।

बहादुरशाह की चित्तौड़ पर की इस चढ़ाई का महाराणा विक्रमादित्य

---

(१) बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० ३६६-७०। आत्माराम मोतीराम दीवानजी; मिरात-इ-सिकंदरी (गुजराती अनुवाद); पृ० २६१। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २७। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९५-६।

कर्नल टॉड ने बहादुरशाह की चित्तौड़ पर एक ही बार चढ़ाई होने का उल्लेख कर वि० सं० १५८६ (ई० स० १५३३) में बाघसिंह का युद्ध में काम आना और वहां पर सुलतान का अधिकार हो जाना लिखा है; किंतु इसके विरुद्ध 'मिरात-इ-सिकंदरी' आदि से वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४-५) में बहादुरशाह का दूसरी बार चढ़ाई करना स्पष्ट है और 'तारीख़ फ़िरिश्ता' (ब्रिग्ज़; जि० ४, पृ० १२६) से भी बहादुरशाह का चित्तौड़ पर दूसरी बार चढ़कर जाना पाया जाता है। इसलिए टॉड ने बाघसिंह का वि० सं० १५८६ (ई० स० १५३३) में बहादुरशाह की चढ़ाई के समय चित्तौड़ में काम आना लिखा, वह स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि उदयपुर और प्रतापगढ़ राज्य से मिलनेवाली प्रायः सब ख्यातों में बाघसिंह का वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४-५) में बहादुरशाह के आक्रमण के समय मारा जाना लिखा है।

पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब शेष बचे हुए सरदारों में से भी कई सुलतान से जा मिले, तथा वे उसको वहां का भेद बताते रहे। पहली चढ़ाई में सुलतान को क़िले पर अधिकार करना कुछ कठिन जान पड़ता था, किन्तु महाराणा के सरदारों के जा मिलने से उसको चित्तौड़ पर अधिकार करना सरल जान पड़ा। निदान वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४) में उसने पुनः चित्तौड़ पर अधिकार करने के लिए चढ़ाई की[1]।

चित्तौड़ की रक्षार्थ बहादुर-शाह से लड़कर बाघसिंह का मारा जाना

राजमाता हाड़ी कर्मवती को यह जानकर बड़ी चिंता हुई। उसने सरदारों को इस आशय के पत्र भिजवाये—"अब तक तो चित्तौड़ राजपूतों के हाथ में रहा, पर अब उनके हाथ से निकलने का समय आ गया है। मैं क़िला तुम्हें सौंपती हूं, चाहे तुम रक्खो, चाहे शत्रु को दे दो। मान लो, तुम्हारा स्वामी अयोग्य ही है, तो भी जो राज्य वंश-परंपरा से तुम्हारा है, उसके शत्रु के हाथ में चले जाने से तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी।" राजमाता का यह पत्र पाते ही सरदारों में, जो महाराणा के व्यवहार से असंतुष्ट हो रहे थे, देश-प्रेम की लहर उमड़ पड़ी और इन उत्तेजनात्मक वाक्यों से वे चित्तौड़ की रक्षार्थ जान देने का संकल्प कर अपनी-अपनी सेनाओं के साथ राजधानी में जाने लगे। उपर्युक्त आशय का एक पत्र राजमाता ने देवलिया के स्वामी बाघसिंह के पास भी भेजा, जिसको पाते ही उसने विक्रमादित्य-द्वारा होनेवाले अनुचित कार्यों का विस्मरण कर चित्तौड़ की रक्षा के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने का दृढ़ संकल्प कर लिया एवं सुलतान की दी हुई जागीर का परित्याग कर वह तत्काल अपने राजपूतों-सहित चित्तौड़ जा पहुंचा। शीघ्र ही चित्तौड़गढ़ वीर क्षत्रियों से भर गया, परंतु दुर्ग में खाने-पीने का सामान दो महीनों से अधिक चलने लायक़ न था तथा सुलतान की सेना में रसद, तोप, बारूद, गोले आदि प्रचुरता से थे। इसलिए सब सरदारों ने उभय पक्ष के बलाबल पर विचार

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९७।

कर महाराणा विक्रमादित्य एवं उसके छोटे भाई उदयसिंह को, जब तक युद्ध समाप्त न हो तब तक के लिए, उनके ननिहाल बूंदी भेजने और महाराणा के स्थान में रावत बाघसिंह को महाराणा का प्रतिनिधि बना उसकी आज्ञानुसार दुर्ग के द्वार खोलकर शत्रु सैन्य से लड़ने का निश्चय किया। फिर उन्होंने सुलतान से लड़ने के लिए क़िले के चारों तरफ़ उचित स्थानों पर मोर्चे लगाकर वहां बड़े-बड़े सरदारों को नियत कर दिया[1]। मुंहणोत नैणसी का कथन है कि इस अवसर पर रावत बाघसिंह ने अपने पिता सूरजमल-द्वारा सादड़ी पर अधिकार रहते समय चारणों आदि को दिये हुए १७ गांवों के[2], उनके वंशधरों के अधिकार में बराबर बने रहने की राजमाता से प्रतिज्ञा कराली थी।

जब सरदारों ने बाघसिंह को महाराणा का प्रतिनिधि नियत किया तो उसने उनसे कहा कि आप लोगों ने मुझको महाराणा का प्रतिनिधि बनाया है तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आगे बढ़कर क़िले के मुख्य द्वार पर लड़ूं। निदान वह रावत नरबद[3]-सहित दुर्ग के प्रथम द्वार पाडलपोल पर जा डटा। इसी प्रकार अन्य सरदार भी अपने-अपने मोर्चों पर जा जमे। चीका-खोह पर हाड़ा अर्जुन, भैरवपोल पर सोलंकी भैरवदास, हनुमानपोल पर झाला सज्जा तथा सिंहा और गणेशपोल पर डोड़िया भाण सुलतान से लड़ने के लिए प्रस्तुत थे[4]।

इधर तो राजमाता ने चित्तौड़ की रक्षा का यह उपाय किया और उधर राखी भेज उसने बादशाह हुमायूं से फिर सहायता की याचना की।

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २९-३०। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९७-८।

(२) देखो ऊपर पृ० ७० टि० ३।

(३) यह रावत अज्जा के पुत्र सारंगदेव का पौत्र और जोगा का बेटा था। इसके वंशधरों में मेवाड़ में कानोड़ के सरदार प्रथम वर्ग के उमराव हैं और सारंगदेवोत कहलाते हैं।

(४) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३०। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९९।

सुलतान बहादुरशाह और बादशाह हुमायूं के बीच अनबन थी, जिससे हुमायूं उसे नष्ट करना चाहता था। राजमाता कर्मवती का संदेश पाकर उसने उसको नष्ट करने का यह उपयुक्त अवसर समझा। वह अपनी सेना-सहित बहादुरशाह से लड़ने के लिए रवाना हुआ। ग्वालियर के पास पहुंचने पर उसको बहादुरशाह का पत्र मिला कि मैं इस समय ज़िहाद (धर्म-युद्ध) पर हूं, यदि तुम हिन्दुओं की सहायता करोगे तो खुदा के सामने क्या जवाब दोगे? यह पत्र पाकर हुमायूं ग्वालियर में ही ठहर गया और चित्तौड़ के युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

इस प्रकार हुमायूं के मार्ग में रुक जाने से बहादुरशाह को चित्तौड़ पर आक्रमण करने में सुभीता हो गया और उसने चारों तरफ़ से क़िले पर घेरा डालकर युद्ध आरंभ कर दिया। उसके साथ के तोपखाने में यूरोपिअन (पोर्चुगीज़) गोलंदाज़ भी थे, जिन्होंने वेगपूर्वक गोलंदाज़ी शुरू कर दी। उसी समय बीका खोह की तरफ़ से सुरंग के द्वारा दुर्ग की पैंतालीस हाथ दीवार उड़ गई, जिससे हाड़ा अर्जुन अपने साथियों-सहित मारा गया। गिरी हुई दीवार के मार्ग से दुर्ग में प्रवेश करने के लिए गुजराती सेना ने प्रबल आक्रमण किया, जिसको राजपूतों ने बड़ी वीरता से रोका। बहादुरशाह ने तोपों को आगे कर पाडलपोल, सूरजपोल और लाखोटा की बारी की तरफ़ से हमला किया। तब दुर्ग का द्वार खोलकर बड़ी वीरता से राजपूतों का समूह उनपर टूट पड़ा। उस समय महारावत बाघसिंह ने शत्रु-सेना से घोर युद्ध किया और अंत में वह पाडलपोल के बाहर शत्रु-सैन्य से लड़ता हुआ मारा गया[1]। वहां उसका स्मारक आज भी बना हुआ है और उसकी पूजा होती है। बाघसिंह के मारे जाने पर राजपूत-सेना का व्यूह भंग हो गया और गुजराती सेना आगे बढ़ने लगी। राजपूतों ने मुसलमान सेना का मुक़ाबला करने में कसर न रखी। उनके अनेक वीर हताहत हुए और जब राजपूतों के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सरदार काम आ गये तो सुलतान की

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३०-३१। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९७-९।

सेना ने दुर्ग में प्रवेश किया। राजमाता कर्मवती ने जब दुर्ग बचने की आशा न देखी तो बहुतसी स्त्रियों के साथ जौहर किया। इस युद्ध में सुलतान बहादुरशाह विजयी हुआ और उसने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। यह युद्ध चित्तौड़ का 'दूसरा शाका' कहलाता है[1]।

बहादुरशाह का थोड़े समय तक ही चित्तौड़ पर अधिकार रहा। वह अपना अधिकार स्थिर भी न करने पाया था कि बादशाह हुमायूं ने उसपर चढ़ाई कर दी। मन्दसोर के निकट दोनों में लड़ाई हुई, जिसमें बहादुरशाह हारकर मांडू की तरफ़ भाग गया। फिर तो हुमायूं ने उसका पीछाकर

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ४४-५। टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३०२। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३१। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३११। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा रतनसिंह और विक्रमादित्य का जीवनचरित्र; पृ० ६६-७३।

मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३३) में बहादुरशाह की चित्तौड़ पर चढ़ाई होने और दुर्ग पर सुलतान का अधिकार होने का उल्लेख किया है (भाग १, पृ० ४५), परन्तु उसका वि० सं० १५८९ में सुलतान का चित्तौड़ पर अधिकार होने का कथन ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि वहीं पहली बार की चढ़ाई में सुलतान के चित्तौड़ को घेर लेने और फिर संधि होकर लौट जाने तथा दूसरी बार की चढ़ाई में सरदारों के काम आने एवं जौहर होने के पीछे सुलतान का अधिकार होने का वर्णन है। ऐसी स्थिति में पहली चढ़ाई वि० सं० १५८९ में और दूसरी वि० सं० १५९१ में होकर उस समय जौहर होना एवं चित्तौड़ पर सुलतान का अधिकार होना मानना पड़ेगा। फ़ारसी तवारीख़ों में बहादुरशाह की चित्तौड़ की दोनों चढ़ाइयों की घटना आस-पास की होने से उनका वर्णन एक ही स्थल पर किया है और वर्णन भी कुछ अस्पष्ट है। इसलिए यह संभव है कि कर्नल टॉड ने भी ये दोनों घटनाएं एक ही समझ उनका संवत् १५८९ में घटित होना लिख दिया हो।

प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में एक स्थान पर माघ सुदि ४ शुक्रवार को बाघसिंह की मृत्यु होना लिखा है, परन्तु वि० सं० १५९१ माघ सुदि ४ को शुक्रवार नहीं, अपितु मंगलवार था। इसलिए ख्यात के लेखानुसार माघ सुदि ४ को मृत्यु होना माना नहीं जा सकता। 'वीरविनोद' में वि० सं० १५९२ चैत्र सुदि ५ को अंतिम युद्ध होना लिखा है, जो फ़ारसी तवारीख़ों से भी ठीक जान पड़ता है।

मालवा और गुजरात के विशाल राज्यों को अपने अधीन कर लिया। अभागा बहादुरशाह अपना राज्य गंवाकर दीव बंदर के पास पोर्चुगीज़ों के हाथ से मारा गया। हुमायूं के मुक़ाबले में बहादुरशाह के परास्त होने का समाचार सुनकर चित्तौड़ में रही-सही गुजराती सेना भी भागने लगी। ऐसा सुअवसर देख मेवाड़ के बचे हुए सरदारों ने थोड़े-बहुत राजपूतों को एकत्र कर गुजराती सेना पर (जो चित्तौड़ में नियत थी) आक्रमण कर दिया, जिससे सुलतान की बची हुई सेना भाग गई और बिना अधिक रक्तपात के ही मेवाड़वालों का पुनः चित्तौड़ पर अधिकार हो गया[1]।

कर्नल टॉड ने इस युद्ध में महारावत बाघसिंह के काम आने की बड़ी प्रशंसा की है। उसका कथन है कि जिस दिन मेवाड़ का राज्य-चिह्न 'छांगी' सूरजमल के पुत्र (बाघसिंह) के शीश पर उठाई गई, उस दिन उसका जैसा प्रकाश हुआ, वैसा कभी न हुआ[2]। सचमुच अपने देश की रक्षा के लिए तो वीरों के युद्ध में मारे जाने के इतिहास में अनेक उदाहरण हैं, परन्तु निःस्वार्थ भाव से इस प्रकार आगे बढ़कर काम आने के उदाहरण बहुत कम मिलेंगे। बाघसिंह के पिता सूरजमल और पितामह क्षेमकर्ण से मेवाड़ के महाराणाओं का विरोध रहा था, पर चित्तौड़ पर आपत्ति के समय उन सब बातों को भूलकर अपने प्राणों की बाज़ी लगा देना अवश्य ही बाघसिंह के सद्गुणों का परिचायक है। महाराणा का प्रतिनिधि बनकर चित्तौड़ की रक्षा में वीरगति प्राप्त करने के कारण उस (बाघसिंह) के वंशजों की उपाधि 'दीवान' हुई और वे देवलिया के दीवान कहलाते हैं[3]।

प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में लिखा है कि उस (बाघसिंह) के

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३२-३३। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ४००। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा रतनसिंह और विक्रमादित्य का जीवन-चरित्र; पृ० ७४-६।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३६३।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग; पृ० ३० टिप्पण १ तथा पृ० १०५५। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ३९८, टिप्पण २।

वाघसिंह की राणियां और संतति

पांच राणियां थीं, जिनसे छः पुत्र—रायसिंह, जेतमाल भारमल, कान्हा, खानजी[1], मानजी—तथा दो पुत्रियां रामकुंवरी और शामकुंवरी उत्पन्न हुईं[2]।

रावत वाघसिंह युद्ध-वीर, धर्मप्रिय और दानी नरेश था। स्वदेश-प्रेम और कुलाभिमान उसकी नसों में कूट-कूट कर भरा हुआ था।

रावत वाघसिंह का व्यक्तित्व

उसने निःस्वार्थ भाव से चित्तौड़ की रक्षा के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर संसार के सामने एक बड़ा आदर्श उपस्थित किया। उसमें एक विशेष गुण यह भी था कि अपने पूर्वजों-द्वारा दान में दी हुई भूमि उसने पीछी नहीं ली; अपितु जब वह युद्ध क्षेत्र में महाराणा का प्रतिनिधि बन कर लड़ने गया, उस समय उसने राजमाता कर्मवती हाड़ी से अपने पिता सूरजमल-द्वारा मेवाड़ में दान किये हुए गांव सदा के लिए बहाल रहने की प्रतिज्ञा करा ली। इस उदाहरण से उसके चरित्र की महत्ता सिद्ध होती है। यदि उस अवसर पर वह राजमाता से नया पट्टा तथा अधिक सम्मान मांगता तो वह भी मिल सकता था; परन्तु उस वीर ने अपने वंशजों के लिए राजपूती स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी याचना न कर केवल उपरिलिखित याचना की, जो| उसके निर्मल चरित्र का परिचय देती है।

'हरिभूषण महाकाव्य' का कर्त्ता कवि गंगाराम महारावत वाघसिंह की प्रशंसा करता हुआ, उसको विलासप्रिय नरेश बतलाता है[3]; किंतु गंगाराम का यह मत ग्राह्य नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वह विलासप्रिय व्यक्ति होता तो युद्ध-क्षेत्र में मरने को कभी सन्नध नहीं होता। गंगाराम, बहादुरशाह से युद्ध होना तो लिखता है; किंतु वाघसिंह के धराशायी होने का कुछ भी वर्णन नहीं करता। गुजराती सैन्य का भाग जाना और

---

(१) खानजी के वंशज आंबीरामा और बोड़ी साखथली के प्रथम वर्ग के सरदार हैं और वे खानावत कहलाते हैं।

(२) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० २।

(३) गंगाराम; हरिभूषण महाकाव्य; सर्ग ४, श्लोक ३-२१।

महाराणा की विजय होना आदि कथन[1] भी उसका ज्यों का त्यों स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि अनेक प्रमाणों से उपर्युक्त युद्ध में बाघसिंह की मृत्यु होना और बहादुरशाह की विजय होकर थोड़े दिनों तक उसका चित्तौड़ पर अधिकार रहना सिद्ध है, जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं।

बाघसिंह का कोई शिलालेख तथा ताम्रपत्र नहीं मिला है, जिससे उसके जीवन पर अधिक प्रकाश पड़ना कठिन है, तो भी उसका जो-कुछ इतिहास प्राप्त है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वह देशभक्त और वीर क्षत्री था।

रायसिंह

राज्य-प्राप्ति

बाघसिंह के वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३५) में मालवे की जागीर छोड़ने पर मेवाड़-राज्य ने सादड़ी आदि की पैतृक जागीर पुनः उसको बहाल कर दी, अतएव उसका कुटुंब सादड़ी में ही रहने लगा और जब बाघसिंह का बहादुरशाह की चढ़ाई के समय युद्ध में परलोकवास हो गया, तब उसका पुत्र रायसिंह अपने पिता की संपत्ति का अधिकारी हुआ। चित्तौड़ पर उसके पिता के वीरतापूर्वक काम आने से उसको मेवाड़-राज्य की तरफ़ से धरियावद की जागीर भी प्रदान की गई[2]।

धाय पन्ना का वनवीर के डर से उदयसिंह को रायसिंह के पास ले जाना

चित्तौड़ से गुजरात की सेना को भगाकर राजपूतों ने वहां पर पीछा अधिकार कर लिया और फिर विक्रमादित्य को बूंदी से बुलाकर उसको चित्तौड़ का राज्य सौंप दिया; किन्तु उसका आचरण न सुधरा। उसने बात-बात पर सरदारों का अपमान करना जारी रखा, यहां तक कि अपने पिता संग्रामसिंह (सांगा) को कुंवरपदे में भ्रातृ-विरोध के समय आश्रय देनेवाले पंवार कर्मचंद्र का भी उसने अपमान किया। यह देख सरदारों

(१) वही; सर्ग ५, श्लोक १-२०।

(२) असंकिन; राजपूताना गैज़ेटियर (मेवार रेज़िडेंसी); जि० २ ए, पृ० ११७ (ई० स० १९०८)। एक ख्यात में साटोला भी जागीर में मिलने का उल्लेख है।

को उस (विक्रमादित्य) से पूर्ण घृणा हो गई और वे उसको राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। इस षड्यंत्र में महाराणा संग्रामसिंह के परलोकवासी कुंवर पृथ्वीराज के दासी-पुत्र बनवीर को भी (जो विक्रमादित्य का कृपापात्र था) सरदारों ने शामिल कर लिया। कुछ समय बाद ही अपना प्रभुत्व स्थापित हो जाने पर विक्रमादित्य तथा उदयसिंह को मार निष्कंटक राज्य करने का विचारकर बनवीर ने वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में एक दिन रात्रि के समय विक्रमादित्य को मार डाला[1]।

विद्युत्-वेग की भांति यह समाचार राज-महलों में फैल गया और अन्तःपुर में कुहराम मच गया। मध्य रात्रि में राज-महलों में रोना-पीटना शुरू हो जाने से लोग आश्चर्यान्वित हो गये और एक बारी (पत्तल आदि बनानेवाले) ने उदयसिंह की धाय पन्ना खींची से भी यह बात कह सुनाई। बारी के मुख से बनवीर-द्वारा विक्रमादित्य के मारे जाने की बात सुनकर धाय को बड़ी चिंता हुई और उसे भय हुआ कि वह अब उदयसिंह को भी अवश्य मारेगा। अतएव उसने बड़ी फुर्ती से उदयसिंह को बारी के साथ बाहर निकाल दिय और उसके स्थान पर अपने पुत्र को सुला दिया, जो उदयसिंह की अवस्था का था। धाय ने यह परिवर्त्तन इतनी शीघ्रता से किया कि दूसरा कोई इस भेद को न जान सका। इतने में हाथ में नंगी तलवार लिए बनवीर वहां पहुंचा और उसने धाय से पूछा कि उदयसिंह कहां है। तब पन्ना ने पलंग पर सोये हुए बालक की तरफ़ संकेत किया। बनवीर, उदयसिंह को मारकर निष्कंटक राज्य करना चाहता था; इसलिए पूरी-पूरी जांच किये बिना ही उसने शीघ्रतापूर्वक उस सोये हुए बालक पर तलवार का प्रहार किया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई[2]।

---

(१) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३६७। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३३। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा रतनसिंह और विक्रमाजीत का जीवनचरित्र; पृ० ७८-७९। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ४०१।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३६७-८। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३३। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ४०१।

कठोर हृदय करके धाय पन्ना ने बनवीर-द्वारा अपने पुत्र का मारा जाना देखा और जब वह वहां से चला गया तो वह अपने मृतक पुत्र का अग्नि संस्कार कर वहां से चल दी। लुक-छिपकर क़िले के बाहर निकल वह पूर्व संकेत के अनुसार जहां बारी उदयसिंह को लेकर ठहरा हुआ था वहां गई। फिर वह उदयसिंह को लेकर रावत रायसिंह के पास सादड़ी पहुंची। रावत रायसिंह ने धाय पन्ना के मुख से विक्रमादित्य के मारे जाने की बात सुनकर खेद प्रकट किया और उसको आश्वासन देकर अपने यहां ठहराया; किन्तु स्थायी-रूप से उन्हें अपने यहां रख बनवीर का विरोधी बनने की उसमें शक्ति न थी, इसलिए उसने उस (उदयसिंह) को सुरक्षित रूप से डूंगरपुर भिजवा दिया[1]।

डूंगरपुर पहुंचने पर वहां के महारावल पृथ्वीराज ने उसका सम्मान तो किया; परन्तु बनवीर से विरोध होने में हानि समझ उसको अपने यहां थोड़े ही समय तक रखा और उदयसिंह के लिए सबसे सुरक्षित स्थान कुंभलगढ़ समझ सवारी आदि का यथोचित प्रबंध कर उसने उस (उदयसिंह) को वहां पहुंचा दिया। वहां के दुर्गाध्यक्ष आशाशाह नामक देपुरा (माहेश्वरी) महाजन ने अपनी माता के आग्रह करने पर उदयसिंह को अपने पास रक्खा[2]।

बनवीर को चित्तौड से निकालने के लिए रावत रायसिंह का महाराणा की सहायतार्थ जाना

धीरे-धीरे यह बात प्रकाश में आने लगी कि उदयसिंह मारा नहीं गया है और धाय-सहित कुंभलगढ़ पहुंच गया है, जहां वह सही-सलामत है। तब चौहान खान (कोठारिये के रावत का पूर्वज) आदि बड़े-बड़े सरदार कुंभलगढ़ पहुंचे और उन्होंने दूसरे सरदारों को भी वहां बुलाया। फिर

(१) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३६८। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ६१। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ४०३।

कर्नल टॉड और 'वीरविनोद' के इस कथन से कि धाय पन्ना उदयसिंह को लेकर देवलिया के स्वामी रायसिंह के पास देवलिया पहुंची थी, पाया जाता है कि उस समय रायसिंह देवलिया में रहता होगा।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ३६८-९। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ६२। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ४०३।

सब सरदारों ने मिलकर कुंभलगढ़ में ही वि० सं० १५९४ (ई० स० १५३७) में उदयसिंह को गद्दी पर विठलाने का दस्तूर किया। उस समय उदयसिंह की आयु लगभग पंद्रह-सोलह वर्ष की हो चुकी थी, इसलिए सरदारों ने पाली के सोनगरे अखैराज की पुत्री के साथ उसका विवाह भी कर दिया। तदनंतर चित्तौड़ से वनवीर को निकालने के लिए सलाह कर सेना एकत्रित करने की आयोजना की गई। महाराणा के इस विचार की खबर फैलते ही चारों तरफ़ से सैनिक आने लगे और उसके कुटुंबियों के अतिरिक्त प्रजा भी उसको देखने के लिए आतुर हो उठी। कुछ ही समय में ईडर का राव भारमल, बूंदी का हाड़ा राव सुलतान, डूंगरपुर का कुंवर आसकरण, बांसवाड़े का महारावल जगमाल एवं महारावत रायसिंह आदि अपने राजपूतों को लेकर उदयसिंह की सहायतार्थ जा पहुंचे[1]।

उधर वनवीर भी यह समाचार पाकर अपनी सेना-सहित मुक़ाबले के लिए गया। माहोली (मावली) के पास दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें महाराणा की विजय हुई। अनन्तर ताणा-नामक स्थान पर अधिकार कर महाराणा चालीस हज़ार सेना के साथ चित्तौड़ पहुंचा, परंतु साथ में, तोपखाना न था। इसलिए घेरा डालने पर भी क़िले पर अधिकार करने में क़ठिनाइयां होने लगीं। तब महाराणा के प्रधान आशाशाह देपुरा ने वनवीर के प्रधान चील मेहता को मिलाकर रात्रि में दुर्ग के द्वार खुलवा दिये, जिससे महाराणा की सेना ने भीतर प्रवेश कर वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में वहां अधिकार कर लिया।

महारावत रायसिंह के समय का शेष इतिहास भी उसके पूर्वजों के इतिहास के समान अंधकार में विलीन है। प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की

रायसिंह का देहांत और उसकी संतति

ख्यात तथा अन्य ख्यातों में लिखा है कि रायसिंह का वि० सं० १६०९ (ई० स० १५५२) में देहांत हुआ[2]। उसके चार कुंवर—विक्रमसिंह (वीका),

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ९३।

(२) एक ख्यात में रायसिंह का साटोले के खेड़े में देहांत होने का उल्लेख

उदयकरण, आसकरण और पूरणमल तथा एक पुत्री किशनकुंवरी हुई[1]। 'हरिभूषण महाकाव्य' से पाया जाता है कि रायसिंह अपने पूर्वजों के समान वीर, नीतिनिपुण और कवियों का सम्मान करनेवाला था। उसकी प्रजा सम्पन्न थी। उसने कई तालाब और उद्यान बनवाये थे। चारण कवियों का उसके यहां बड़ा प्रभाव था और वह उनको दान देने में न अघाता था[2]। उस(रायसिंह)का कोई शिलालेख अथवा दानपत्र नहीं मिला है, अतएव उसके इतिहास पर अधिक प्रकाश डालना कठिन ही नहीं एक प्रकार से असंभव है।

मिलता है और यह भी लिखा है कि वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) में महाराणा उदयसिंह के समय सादड़ी की जागीर छूट गई थी, परंतु अधिकांश स्थलों पर सादड़ी की जागीर रायसिंह के पुत्र विक्रमसिंह(बीका) के समय छूटना लिखा मिलता है, जिससे उस(विक्रमसिंह)के प्रसङ्ग में इस घटना को विस्तृत रूप से लिखा जायगा।

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० २।

(२) वैरिवीरवनिताकुचान्तरे स्वेददुर्घनपटीरकर्दमम्।
साध्वसानलशिखाप्रतापिते यन्निशम्य मिलितारिसूदनम्॥ २४॥

येन भूतलमिदं महीभृता सर्वतो गतदरिद्रलेशकम्।
पूरितं सकलद्रव्यसम्पदा स्वर्गपत्तनमिव व्यशोभत॥ २५॥

वाटिकाः कति महीभृता स्वयं कारिताः कति सरोवराण्यपि।
धर्मराज इव भूतले बभौ याचमानजनदानतत्परः॥ २६॥

यः कवीश्वरसभावशम्वदो लोकलोचनसुखाकरो बभौ।
न्यूनदानमपि लक्षसंख्यया येन दत्तमिह भूतले सदा॥२७॥

चारणैरतितरां निषेवितः संस्तुतः कविजनैः समन्ततः।
रञ्जयन्निजगुणैः कवीश्वरान् भासमान इह भानुवद्बभौ॥२८॥

सर्ग ५।

विक्रमसिंह (बीका)

रायसिंह का परलोकवास होने पर वि० सं० १६०६ (ई० स० १५५२) के लगभग उसका ज्येष्ठ कुंवर विक्रमसिंह, जिसको बीका भी कहते हैं, कांठल एवं मेवाड़ में अपने पिता की संपत्ति सादड़ी आदि का अधिकारी हुआ[1]। उसका जन्म वि० सं० १५८२ (ई० स० १५२५) में होना माना जाता है[2]।

राज्य-प्राप्ति

ऊपर महारावत रायसिंह के प्रसङ्ग में बतलाया गया है कि धाय पन्ना-द्वारा बाल्यावस्था में महाराणा उदयसिंह, विक्रमादित्य की मृत्यु हो जाने पर, रायसिंह के पास पहुंचाया गया था; परंतु उसने बनवीर के भय से उस समय विशेष सहायता न दी और उसको डूंगरपुर पहुंचा दिया। इसके पीछे कुंभलगढ़ में सरदारों के जा मिलने पर महाराणा, बनवीर को निकालने में समर्थ हुआ और वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में चित्तोड़ की तरफ़ बढ़ा। उस समय रायसिंह भी उक्त महाराणा की सहायतार्थ अपनी सेना-सहित सम्मिलित हुआ था। चित्तौड़गढ़ पर अपनी सत्ता दृढ़ हो जाने के उपरांत महाराणा ने रायसिंह की इस सेवा को विस्मरण कर दिया और

सादड़ी की जागीर छूट जाने पर विक्रमसिंह का कांठल में जाना

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० २। प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० २।

(२) प्रतापगढ़ के पहले के राजाओं के जन्म-संवत् अब तक नहीं मिले हैं। ऊपर विक्रमसिंह का जो जन्म-संवत् दिया गया है, वह पंडित जगन्नाथ शास्त्री की भेजी हुई एक याददाश्त के आधार पर है। उसमें तिथि और वार नहीं दिया है और न उस-(विक्रमसिंह)की कोई जन्म-कुंडली देखने में आई है। ऐसी दशा में उसका जन्म-संवत् १५८२ ठीक है अथवा नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसकी पुष्टि में जब तक कोई दूसरा प्रमाण न मिले, तब तक इसे आनुमानिक ही मानना पड़ेगा। विक्रमसिंह प्रतापगढ़ के राजवंश के मूलपुरुष क्षेमकर्ण का पांचवां वंशधर था। क्षेमकर्ण और रायसिंह (विक्रमसिंह के पिता) तक के समयक्रम पर विचार करने से तो विक्रमसिंह का जन्म-संवत् १५८२ होना संभव जान पड़ता है।

अपनी बाल्यावस्था के समय उस(रायसिंह)के द्वारा सहायता न मिलने की बात को स्मरण कर वह उससे अप्रसन्न रहने लगा। संयोगवश रायसिंह का देहांत हो गया। तब विक्रमसिंह के सादड़ी आदि का स्वामी होने पर महाराणा उससे छेड़-छाड़ करने लगा और सादड़ी आदि की जागीर उसने राज्य में मिला ली। महाराणा उदयसिंह अपने भाई विक्रमादित्य की अपेक्षा अच्छा शासक था। राजपूताना के कई नरेश उसको अपना नेता मानते थे एवं उसने मेवाड़ के अतीत गौरव को थोड़ा-बहुत चमका दिया था। ऐसी अवस्था में उदयसिंह से मुक़ाबला करने में विक्रमसिंह को हानि की ही संभावना थी, अतएव उसने बलपूर्वक सादड़ी की जागीर अपने अधिकार में रखना श्रेयस्कर न समझा और महाराणा के सादड़ी की जागीर ले लेने पर वह वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) के लगभग मेवाड़ का सदा के लिए परित्याग कर[1], स्वाधीनतापूर्वक जीवन व्यतीत करने की भावना से अपने पितामह सूरजमल-द्वारा जीते हुए कांठल प्रदेश में चला गया तथा वहां की स्थिति को सुदृढ़ कर ग़यासपुर में रहने लगा[2]।

हाजीख़ां की सहायतार्थ महाराणा के साथ कुंवर तेजसिंह को भेजना

दिल्ली के मुग़ल बादशाह हुमायूं ने गुजरात के सुलतान बहादुरशाह को हराकर मालवा तथा गुजरात विजय कर लिया, परंतु उन्हीं दिनों उस(हुमायूं)के सरदार शेरख़ां ने बंगाल में विद्रोह कर दिया। इसपर हुमायूं ने मालवे की ओर से उधर प्रस्थान किया। वहां उसने विद्रोह को दबाने की चेष्टा की, पर उसमें सफलता नहीं हुई और शेरख़ां ने हुमायूं को परास्त कर दिल्ली की सलतनत पर अधिकार कर लिया तथा शेरशाह नाम से अपने को दिल्ली का स्वामी घोषित किया। वह केवल छः वर्ष ही राज्य करने पाया था कि उसका देहांत हो गया। उसके पीछे उसके वंशजों

(१) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ७९। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट; पृ० १९७।

(२) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ७९। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० १९७।

ने केवल दस वर्ष ही सलतनत का उपभोग किया और वि० सं० १६१२ (ई० स० १५५५) में सूर वंश के अंतिम बादशाह सिकंदरशाह से दिल्ली की सलतनत पीछी बादशाह हुमायूं ने छीन ली, किन्तु उसी वर्ष मस्जिद की सीढ़ी से गिर जाने के कारण हुमायूं की मृत्यु हो गई और उस (हुमायूं) का पुत्र अकबर तेरह वर्ष की आयु में दिल्ली का स्वामी हुआ। उस समय मेवात (अलवर इलाक़ा) पर शेरशाह के ग़ुलाम, सेनापति हाजीखां का अधिकार था। वहां से उसको निकालने के लिए बादशाह ने पीरमुहम्मद सरवानी (नासिरुल्मुल्क) को ससैन्य रवाना किया। पीरमुहम्मद के पहुंचने पर हाजीखां भागकर अजमेर[1] चला गया, जहां उस समय

(१) महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तौड़ पर चढ़ाई होने पर अजमेर पर भी गुजराती सलतनत का अधिकार हो गया था, परंतु वहां उसका अधिकार थोड़े समय तक ही रहा। बहादुरशाह की पराजय के पीछे दिल्ली के मुग़ल बादशाह हुमायूं के समय शेरखां पठान ने विद्रोह कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया और अपना नाम शेरशाह रखा। इस अव्यवस्था से लाभ उठा मेड़ते के राव वीरमदेव ने अजमेर पर अधिकार कर लिया, परंतु वह अपना अधिकार वहां थोड़े दिन ही रख सका और जोधपुर के राव मालदेव ने उससे अजमेर छीन लिया। वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में शेरशाह सूर की मालदेव पर चढ़ाई हुई, उस समय अजमेर राठोड़ों के हाथ से निकल गया। फिर शेरशाह सूर के पुत्र सलीमशाह सूर (इस्लामशाह) की मृत्यु के पीछे राव मालदेव ने पुनः वहां पर अधिकार करने के लिए अपनी सेना भेजी। इसपर शाही सेवकों ने, जो अजमेर में नियत थे, वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में महाराणा उदयसिंह को चित्तौड़ से बुलाया। महाराणा ने वहां से राठोड़ों की सेना को हटाकर अपना अधिकार जमा लिया। हाजीख़ां से महाराणा की वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५७) में हार हो जाने पर उसको अजमेर से निकालने के लिए बादशाह अकबर ने सेना भेजी, जिसने उसको निकालकर वहां अपना अधिकार स्थिर किया। लगभग १३५ वर्षों तक अजमेर पर मुग़ल सलतनत का अधिकार रहा। मुग़लों के शासनकाल में यह एक प्रधान सूबा था और राजपूताना के उदयपुर, जयपुर, जोधपुर आदि राज्य इस सूबे के अन्तर्गत थे। मुग़ल बादशाहत की अवनति के दिनों में

महाराणा उदयसिंह का अधिकार था। महाराणा ने उस(हाजीख़ां)को वहां से अन्यत्र चले जाने के लिए कहलाया। इसपर हाजीख़ां ने अपना दूत भेज महाराणा से निवेदन कराया कि मैं तो आपका सहारा समझ यहां आकर ठहरा हूं, परंतु जोधपुर का राव मालदेव मुझे लूटना चाहता है, इसलिए आप मेरी सहायता करें। राव मालदेव के समय शेरशाह सूर-द्वारा मारवाड़ पर चढ़ाई होकर जोधपुर कुछ समय के लिए उक्त राव के अधिकार से निकल गया था, इस कारण मालदेव का सूर-ख़ान्दान तथा उसके आश्रितों से वैर होना स्वाभाविक था। हाजीख़ां के पास अतुल संपत्ति थी, अतएव राव मालदेव ने शेरशाह-द्वारा होनेवाली हानि का बदला लेने के लिए यह अवसर उपयुक्त समझा और हाजीख़ां के अजमेर पहुंचने पर उसने अपने सरदार पृथ्वीराज जैतावत (बगड़ीवालों का पूर्वज) की अध्यक्षता में अपनी सेना रवाना की। अकेले हाजीख़ां की राठोड़ों से सामना करने की सामर्थ्य न थी, इसलिए महाराणा की सहायता उसको अपेक्षित थी। महाराणा उदयसिंह और राव मालदेव के बीच अनबन थी, दूसरे हाजीख़ां ने उसको सहायता देने के एवज़ में चालीस मन सोना और कुछ हाथी भी देने का इक़रार किया था। फलतः वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५६) में हाजीख़ां की सहायतार्थ महाराणा स्वयं अपने कई बड़े सरदारों एवं डूंगरपुर के महारावल आसकरण, बांसवाड़ा के स्वामी

जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह और अभयसिंह ने वहां पर अधिकार जमाने का उद्योग किया। उसमें अभयसिंह सफल हुआ; परंतु फिर उससे जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने अजमेर ले लिया। जयसिंह की मृत्यु के बाद राठोड़ों ने पुनः वहां अधिकार किया, किंतु ग्वालियर के सिंधिया जय आपा को जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) में छल से मरवा डाला। इसपर जनकूजी सिंधिया ने अपनी विशाल सेना के साथ मारवाड़ पर चढ़ाई की। तब विजयसिंह ने कई लाख रुपये सेना व्यय के और अजमेर का ज़िला जनकूजी को देकर अपना पिंड छुड़ाया। फिर दौलतराव सिंधिया से वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) के लगभग अंग्रेज़ सरकार ने यह प्रांत ले लिया।

प्रतापसिंह, बूंदी के राव सुरजन हाड़ा, रामपुरा के राव दुर्गा, राव जयमल मेड़तिया (मेड़ते का) आदि के साथ मालदेव की सेना के मुक़ाबले के लिए रवाना हुआ। महाराणा की इस बड़ी सेना में देवलिया के स्वामी विक्रमसिंह का कुंवर तेजसिंह भी अपनी सेना-सहित सम्मिलित हो गया था[1]। इस अवसर पर बीकानेर के स्वामी राव कल्याणमल ने भी (जिसका हाजीखां से मेल और मालदेव से वैर था) अपनी सेना उस-(हाजीखां)की सहायतार्थ रवाना की, जिससे हाजीखां का बल बढ़ गया। महाराणा और हाजीखां के सम्मिलित कटक और बीकानेर की सैनिक-सहायता को देख जोधपुर के सरदारों ने अपने सेनापति पृथ्वीराज को समझाया कि राव मालदेव के अच्छे-अच्छे सरदार पहले ही काम आ गये हैं। यदि हम भी मारे गये तो राव का बल घट जायगा; क्योंकि हाजीखां के सहायकों की संख्या बहुत अधिक है और उससे सामना करने में बड़ी कठिनाई होगी इसलिए इस समय लौट जाना ही उचित होगा। इसपर वस्तु-स्थिति अपने अनुकूल न देख पृथ्वीराज बिना लड़े ही मारवाड़ की सेना-सहित लौट गया[2]।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के आक्रमण के पीछे मालवे पर दिल्ली की सलतनत का अधिकार हो गया; परंतु वह स्थिर भी न होने पाई

---

(१) कविराजा बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' (संख्या १२६६) और मुंशी देवीप्रसाद-रचित 'महाराणा उदयसिंहजी का जीवनचरित्र' (पृ० ६२) में इस घटना के वर्णन में तेजसिंह को देवलिया का रावत लिखा है; परंतु वह वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५६) में रावत नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय उसका पिता विद्यमान था, जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट होगा।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ७४) में लिखा है कि वि० सं० १६११ में राव मालदेव ने मेड़ते पर चढ़ाई की, उस समय पृथ्वीराज मारा गया; परंतु इसके विरुद्ध नैणसी की ख्यात (भाग १, पृ० २८-६) में यह लिखा है कि वह वि० सं० १६१३ में हाजीख़ां के विरुद्ध राव मालदेव की तरफ़ से अजमेर में सेना लेकर गया था, परन्तु महाराणा के हाजीख़ां की सहायतार्थ आ जाने पर लौट गया। अनन्तर मेड़ते में राव जयमल से युद्ध करता हुआ वह काम आया।

विक्रमसिंह का सुहागपुरा खेरोट, कोटडी, नीनोर, दलोट और पलथाना पर अधिकार करना

थी कि शेरशाह का झगड़ा खड़ा हो जाने से हुमायूं को बंगाल में जाना पड़ा। उस समय (वि० सं० १५९२ = ई० स० १५३५ में) मालवे के ख़िलजी वंश के सुलतानों का गुलाम मल्लूख़ां, हुमायूं के अमीरों को निकालकर क़ादिर के नाम से वहां का सुलतान बन गया[1]। शेरशाह ने दिल्ली की सलतनत दृढ़ करने के उपरांत मालवे की तरफ़ बढ़कर हि० स० ९४९ (वि० सं० १६०० = ई० स० १५४३) में मल्लूख़ां को वहां से निकाल दिया और अपनी तरफ़ से शुजाखां (सजावलखां) को वहां का हाकिम नियत किया, जो शेरशाह सूर के वंशज मुहम्मदशाह सूर के समय स्वतंत्र होकर वहां का सुलतान बन बैठा[2]। मालवे में होनेवाले इन परिवर्त्तनों से विक्रमसिंह ने बड़ा लाभ उठाया और अपनी सत्ता कांठल पर सुदृढ़ कर ली। कांठल के निवासी मीणे बड़े निर्भय और स्वेच्छाचारी थे। वे मालवे के अतिरिक्त दूर-दूर तक लूट-खसोट किया करते थे। इस कारण मालवे के मुसलमान हाकिमों को विक्रमसिंह-द्वारा कांठल पर सुदृढ़ अधिकार होकर उपद्रवी मीणों का दमन होने में लाभ था। इन शक्तिशाली मीणों के पृथक्-पृथक् दल थे, जिनको विजय करने और अधीन रखने में बड़ी सेना की आवश्यकता थी, परंतु उधर की आय इतनी अधिक नहीं होने से मालवे के मुसलमान हाकिम सर्वदा उदासीन रहते थे, अतएव विक्रमसिंह के कांठल के मीणों को दबाने से वे उसके विरोधी नहीं हुए। फिर उसने अपने बाहुबल से थोड़े समय में ही उपद्रवी मीणों के कई मुखियों को मारकर वहां पर अपनी प्रभुता स्थापित की, जिससे शांति स्थापित होकर लूट-खसोट कम हो गई। विक्रमसिंह-द्वारा मीणों को दबाने का मालवे के मुसलमान हाकिमों पर अच्छा प्रभाव पड़ा और उसने भी उनसे मैत्री स्थापित कर उनको अपना सहायक बना

---

(१) नागरी प्रचारिणी (त्रैमासिक) पत्रिका, काशी (नवीन संस्करण); भाग ३, पृ० १७० ।

(२) वही; पृ० १७० ।

लिया। इससे उसको वहां अपना क्षेत्र विस्तीर्ण करने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने देवलिया से दक्षिण और दक्षिणपूर्व में ग़यासपुर के निकट बसनेवाले राजपूतों को भी, जो मीणों के साथ लूट-खसोट में भाग लिया करते थे, दबाकर सोनगरे चौहानों से सुहागपुरा तथा जलखेड़िया, राठोड़ों से खेरोट, डोडियों से कोटड़ी, प्रतिहारों से नीनोर एवं दलोट तथा मुसलमानों से पलथाना छीन लिये[1]। सुहागपुरा के इलाक़े पर अधिकार करने के समय सैंसमल (सूरजमल का कुंवर) के चार पुत्र अक्षयराज, पीथा, देवीसिंह और उदयसिंह काम आये[2]। तदनन्तर उसने वि० सं० १६१७ (ई० स० १५६०) के लगभग देवलिया में रहना स्थिर किया[3]।

ख्यातें और देवी मीणी की स्मृति में देवलिया बसाने की कथा

ख्यातों तथा 'वीरविनोद' में लिखा है कि विक्रमसिंह ने भामख्या मीणा को मारकर देवलिया की भूमि पर अधिकार किया और उसकी स्त्री देवी उसके साथ सती होने लगी, तब उसने उसकी स्मृति को जीवित रखने के लिए उसके नाम पर देवलिया क़सबा बसाकर वहां अपनी राजधानी नियत की[4]। प्रतापगढ़ राज्य के गैज़ेटियरों में भी ऐसा ही वृत्तांत है, परंतु वहां भामख्या मीणा की मृत्यु पर देवी मीणी के सती होने का कुछ भी उल्लेख नहीं कर देवी मीणी के मारे

---

(१) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ (ई० स० १८८०); पृ० ७६। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० १६७। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५६। प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ३।

(२) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ३।

(३) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ (ई० स० १८८०); पृ० ७६। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ पृ० १६८। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५५। प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ३।

(४) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० २। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५५।

आने पर उसके नाम से देवलिया क़सबा बसाने का वर्णन किया है[1]।

मुंहणोत नैणसी रावत विक्रमसिंह के प्रसङ्ग में लिखता है—"उस-(विक्रमसिंह)को राणा उदयसिंह ने अपने देश से निकाल दिया, तब वह गांव बड़ेरी में आसारण नामक मेरों की दादी के पास गया। उस बड़ेरी (वृद्धा) का मेर बड़ा आदर करते थे। पहले तो मेरों ने उसे वहां न ठहरने दिया, परंतु जब उसने सौगंध-शपथ खाकर उनको विश्वास दिलाया, तब वह रहने पाया। अन्त में होली के दिन बीका(विक्रमसिंह) ने दग़ा कर सब मेरों को मार डाला और देवलिया लिया। आसारण के वंशजों के पास अब तक एक गांव जागीर में है और उनका बड़ा भरोसा है[2]।"

नैणसी की ख्यात प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों की अपेक्षा प्राचीनता की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। ऐसी दशा में अन्य ख्यातों आदि का सारा कथन कपोल-कल्पित ठहरता है। जैसा कि ऊपर (पृ० १७ में) बतलाया गया है देवलिया पर महारावत सूरजमल के समय ही अधिकार हो गया था। संभव है कि बाघसिंह और रायसिंह का उस ओर अधिक ध्यान न रहने से वहां के आदिम निवासी मीणे उच्छृंखल हो गये हों, जिनको विक्रमसिंह ने, दबाकर अधीन किया हो।

विक्रमसिंह के कांठल और उसके समीपवर्ती इलाक़ों पर अधिकार करने के समय उसका पितृव्य कांधल (सैंसमल का पुत्र), जिसको मेवाड़-राज्य की तरफ़ से नींबाहेड़ा की जागीर थी, अपनी जागीर छोड़कर उसके साथ चला गया। इसी प्रकार सुरताणसिंह(रणमल का पुत्र और सूरजमल का पौत्र) ने मेवाड़ में प्राप्त करजू की जागीर छोड़कर उसको सहायता दी। इसके एवज़ में विक्रमसिंह ने अपने राज्य की स्थिति सुदृढ़ हो जाने पर कांधल को धमोतर की, सुरताणसिंह को

कांधल को धमोतर, सुरताणसिंह को ढोढरयाखेड़ा और विजयसिंह को खेरोट की जागीर देना

(१) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ (ई० स० १८८०); पृ० ७१। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० २२२।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६४-५।

ढोढरयाखेड़ा (जिसको अब कल्याणपुरा कहते हैं) की तथा कांधल के भाई उदयसिंह के पुत्र विजयसिंह को खेरोट की जागीरें देकर अपना सरदार बनाया[1]।

बांसवाड़ा के स्वामी प्रतापसिंह की तरफ़ रहकर डूंगरपुर के महारावल आसकरण से युद्ध करना

वागड़ के स्वामी महारावल उदयसिंह ने अपने दो पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज को डूंगरपुर का राज्य दिया था और छोटे पुत्र जगमाल को (जिसकी माता पर महारावल का अधिक प्रेम था) वागड़ का पूर्वी भाग देकर अपनी विद्यमानता में ही उसको बांसवाड़ा का पृथक् राजा बना दिया था। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२८) के खानवे के युद्ध में उदयसिंह का परलोकवास होने पर उन दोनों भाइयों में विरोध हो गया और कई लड़ाइयां हुईं। फिर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मही नदी का पूर्वी भाग जगमाल के और पश्चिमी भाग पृथ्वीराज के रख-कर यह बखेड़ा तय करा दिया। जगमाल की मृत्यु पर उसका दूसरा पुत्र जयसिंह बांसवाड़े का स्वामी हुआ और ज्येष्ठ पुत्र किशनसिंह तथा उसके वंशज राज्य से वंचित रहे। जयसिंह का देहांत होने पर बांसवाड़े की गद्दी पर प्रतापसिंह बैठा। उसके समय में डूंगरपुर और बांसवाड़ा के बीच फिर विरोध की अग्नि भड़क उठी तथा डूंगरपुर के स्वामी महारावल आसकरण ने बांसवाड़े पर अधिकार कर लिया[2]।

'हरिभूषण महाकाव्य' का कर्त्ता कवि गंगाराम लिखता है—"महारावत प्रतापसिंह और महारावत विक्रमसिंह धर्म-बंधु (पगड़ी बदल भाई) थे। इसलिए प्रतापसिंह पर विपत्ति देख विक्रमसिंह ने उसकी सहायतार्थ प्रस्थान किया। इस युद्ध में वागड़ के अधिकांश चौहान सरदार आसकरण की तरफ़ थे, जिनसे मही नदी के तट पर विक्रमसिंह

(१) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ३। ढोढरयाखेड़ा का नाम पीछे से ठाकुर कल्याणसिंह के नाम पर कल्याणपुरा रक्खा गया।

(२) देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द ३, भाग १ (डूंगरपुर राज्य का इतिहास), पृ० ९७-८ तथा भाग २ (बांसवाड़ा राज्य का इतिहास), पृ० ७५-६।

की सेना का मुक़ाबला हुआ। चौहानों ने बड़ी वीरता से युद्ध कर मही नदी को मृत्यु-क्षेत्र बनाया और अंत में उसने महारावल आसकरण से बांसवाड़ा छुड़ाकर प्रतापसिंह को दे दिया[1]।"

---

(१) अभूदथ क्षत्रकुलाभिमानी बीकाभिधेयः किल तस्य सूनुः।
यत्खड्गधाराऽभिहतोऽरिवर्गो महीतटे खेलति भूतवर्गैः ॥ १ ॥

पुराऽऽसकर्णः किल रावलोऽभूत्प्रतापसिंहेन युयोध यत्र।
वंशालयाधीश्वरधर्मबन्धुः समागतो देवगिरेर्महीशः ॥ ३ ॥

महाहवं तत्र तयोर्बभूव महीतटेषु प्रसभं समेषु।
परस्परं प्रासफलैः प्रजघ्नुश्चौहानभूपा रणगीतगीताः ॥ ४ ॥

समुच्छलत्कच्छतुरङ्गमस्थः स्फुरत्स्फुलिङ्गावलिखङ्गघातैः।
त्रुट्यत्तनुत्रान् लसदश्ववारान् रणेऽरिवीरानकरोत्स वीकः ॥ ५ ॥

भिन्नाः पतन्तः करवालिकाभिः समुच्छलद्रक्तचलत्प्रवाहाः।
चौहान बेहोल(?)गणारणेऽस्मिन्नन्योन्यमेषां घटितं प्रचक्रुः ॥ ७ ॥

तीरेषु मह्याः पतिताः कबन्धाभीमा विरेजुः करवालहस्ताः।
सुखं शयानाः किल नीरमध्याद्विनिर्गता मद्गुरबालकाः किम् ॥ १२ ॥

रणस्थलीर्भूपतिरासकर्णस्तत्याज बीकाभुजदण्डभीरुः।
चलत्किरीटः स्फुरदश्ववारश्चौहानवर्गोऽभिमुखी बभूव ॥ १४ ॥

जघ्नुः शितैः प्रासफलैः सखेटाश्चौहानभूपारणरङ्गमत्ताः।
समुल्लसद्बाहुकरालखङ्गाः सुशोणनेत्रा धृतवर्मदेहाः ॥ १५ ॥

सन्त्रासयन्त्यः किल दिग्गजालीर्दम्मामकानां ध्वनिभिः प्रवृद्धैः।
चौहानभूपैश्चतुरङ्गसैन्यो वीकानरेन्द्रोऽपि युयोध भूयः ॥ १६ ॥

क्षेत्रं प्रतापाय ददौ प्रतप्तो वीकाभुजादण्डलसत्प्रतापैः।
इत्युक्तवान् सन्निहितः स्ववर्गो मह्याः परं पारमुपाससाद ॥ २० ॥

इस घटना का वृत्तांत संक्षेप से हमने डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्य के इतिहासों में दिया है। डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में इस घटना का कुछ भी वर्णन नहीं है। अनुमान होता है कि जब प्रतापसिंह के समय महारावल आसकरण ने किशनसिंह तथा उसके वंशजों को बांसवाड़ा राज्य दिलाने का उद्योग किया, तब उस (आसकरण)-के विरुद्ध विक्रमसिंह को प्रतापसिंह का पक्ष लेकर युद्ध करना पड़ा हो। 'हरिभूषण महाकाव्य' में इस संबंध में विस्तृत वर्णन है, जो अलंकारिक ढंग से है और काव्यों में प्रायः अतिशयोक्ति भी पाई जाती है। इस दृष्टि से वह इस दोष से वंचित नहीं हो सकता, परंतु फिर भी वह इस युद्ध के प्रसङ्ग में बहुत कुछ प्रकाश डालता है, जिसका ख्यातों में अभाव है। उससे महारावत विक्रमसिंह की वीरता, रण-कुशलता एवं मित्र-वत्सलता का यथेष्ट परिचय मिलता है। वहां इस घटना का कोई संवत् नहीं दिया है। ऐसी दशा में आसकरण और विक्रमसिंह के बीच यह युद्ध किस समय हुआ इसके विषय में निश्चित् रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता; परंतु आसकरण का राज्य-समय वि० सं० १६०७-१६३६[1] (ई० स० १५५१-१५८०) तक तथा प्रतापसिंह का राज्य-समय वि० सं० १६०७-१६३६[2] (ई० स० १५५०-१५७६) तक निश्चित् है और विक्रमसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १६०६ (ई० स० १५५२) तथा देहांत दामाखेड़ी गांव के उस(विक्रमसिंह)के पुत्र तेजसिंह के वि० सं० १६२१ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १५६४ ता० १८ अगस्त) के ताम्रपत्र[3] से वि० सं० १६२० (ई० स० १५६३) के आस-पास होना पाया

महान् प्रतापस्य जयस्तदाऽऽसीदभूत्सुरेभ्यो जयपुष्पवृष्टिः।
सुखं स वंशालयमध्यवर्ती निर्विघ्नमन्तःपुरमंदिरेषु ॥ २१ ॥

सर्ग ६।

(१) देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० ३, भाग १ (डूंगरपुर राज्य का इतिहास), पृ० ६६।

(२) वही; भाग २ (बांसवाड़ा राज्य का इतिहास), पृ० ८१।

(३) ······श्रीमहारावतजी श्रीतेजसीं(सिं)घजी वचनातु आगे

जाता है। यही संवत् बड़वे की ख्यात में भी दिया है। अनुमानतः आसकरण और विक्रमसिंह के बीच यह युद्ध वि० सं० १६२० (ई० स० १५६३) के पूर्व किसी समय हुआ होगा।

विक्रमसिंह का देहांत

ख्यातों में विक्रमसिंह के देहांत के विषय में मत-भेद है। कोई उसका देहांत वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) में और कोई वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) में होना बतलाती है, परंतु दोनों कथन विश्वसनीय नहीं है; क्योंकि उसके उत्तराधिकारी तेजसिंह के वि० सं० १६२१ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १५६४ ता० १८ अगस्त) के ताम्रपत्र में पुरोहित दामा को सूर्य-ग्रहण[1] के अवसर पर दामाखेड़ी गांव दान देने का उल्लेख है, जिससे उसका देहावसान वि० सं० १६२० (ई० स० १५६३) के लगभग होना संभव है।

भरामण परोत दामा जोग्य अत् थने श्रीक्रस्नार्पण सुरज परव महे गाम दमाखेड़ी नीम सीम सुदा जीमाहे ज्मीन वीगा ११०० अग्यारेसे या चंद्रार्क यावत उदक अघाट कर सारी लागट वलगट टंकी टुसी सहीत नीरदोस करे आपी जणीरी मारा वंसरो थई ने चोलण करेगा नहीं। चोलण करे जणी ने चीतोड भागा नु पाप छे। स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरते वसुंधरां (ष)ष्टी वर्स(र्ष) स्ह(सह)त्राणी(स्राणि) विष्टा या(यां) जात्र(य)ते क्रुमी(मि) दुवे श्रीमख······समत १६२१ रा वर्से भादवा सुदि ११ दीने श्रीरस्तु ॥

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

(१) उपर्युक्त ताम्रपत्र में दामाखेड़ी गांव सूर्यग्रहण पर पुरोहित दामा को दान करने का उल्लेख है। ग्रहणों का मिलान करने पर वि० सं० १६२१ आषाढ वदि ३० (ई० स० १५६४ ता० ८ जून) गुरुवार को सूर्यग्रहण होना पाया जाता है। जैसा कि प्रायः देखा जाता है, ग्रहण के अवसर पर दान का संकल्प तो कर दिया जाता है, परन्तु यथावकाश सनद पीछे से करादी जाती है। संभव है इस ताम्रपत्र में भी ऐसा ही हुआ हो।

प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात से ज्ञात होता है कि उस-(विक्रमसिंह)के चार राणियां थीं[1], किंतु एक दूसरी ख्यात में उसके पांच राणियां होना लिखा है[2]। उसके चार पुत्र तेजसिंह, सुरजन[3], शार्दूलसिंह[4] एवं किशनदास[5] और किशनकुंवरी नामक पुत्री हुई[6]।

विक्रमसिंह की राणियां और संतति

रावत विक्रमसिंह वीर, मित्रवत्सल और स्वतंत्रताभिमानी राजा था। उसको पराधीन रहकर जीवन व्यतीत करना असह्य था। इसलिए उसने मेवाड़ के बाहर जाकर अपने बाहुबल से कांठल के मीणों एवं अन्य लड़ाकू जातियों पर विजय प्राप्तकर अपनी भावी संतान के लिए एक स्वतंत्र राज्य क़ायम किया,

विक्रमसिंह का व्यक्तित्व

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० २-३। इस ख्यात में विक्रमसिंह के पुत्रों के नाम तेजसिंह, शार्दूलसिंह, सुरजन, केशवदास और किशनसिंह तथा पुत्रियों के नाम वल्लभकुंवरी और लालकुंवरी दिये हैं।

(२) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ४।

(३) सुरजन के वंशज प्रतापगढ़ राज्य के प्रथम वर्ग के सरदारों में रायपुर के सरदार हैं। उसके पुत्र रामदास को रायपुर की जागीर मिलकर उसका पृथक् ठिकाना क़ायम हुआ।

(४) प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त एक पुरानी ख्यात में शार्दूलसिंह को सीधपुरा और वैरा गांव महारावत विक्रमसिंह-द्वारा मिलने का उल्लेख है।

(५) प्रतापगढ़ राज्य से मिली हुई एक पुरानी ख्यात में महारावत विक्रमसिंह का किशनदास को झांतला की जागीर देने का उल्लेख है एवं उसके लिए ख्यातों में लिखा है कि वह (किशनदास) महाराणा प्रतापसिंह के समय किसी युद्ध में काम आया और इस सेवा के बदले में महाराणा ने किशनसिंह के पुत्र को जीरण के पास अगरान गांव दिया, जो इस समय ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत है।

(६) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ६। इस ख्यात में केशवदास का नाम विक्रमसिंह के पुत्रों में है एवं वल्लभकुंवरी और लालकुंवरी के नाम पुत्रियों में नहीं हैं। 'वीरविनोद' (द्वितीय भाग, पृ० १०५६) में भी उस(विक्रमसिंह)के पुत्रों के नाम सही होने में बड़वा-भाटों के कथन पर कुछ संदेह प्रकट किया है।

जिसका सूत्रपात सूरजमल के समय में ही हो चुका था। वह समय के अनुसार आचरण करता था। मालवे के मुसलमान हाकिमों के साथ उसने मित्रता का व्यवहार रखा, जिससे उसको अपना राज्य स्थिर करने में कुछ बाधा नहीं हुई। बांसवाड़ा राज्य पर डूंगरपुर के स्वामी आसकरण ने अधिकार किया, उस समय उसने आसकरण से विरोध कर बांसवाड़ा पुनः प्रतापसिंह को दिलाया। वह स्वभाव का उदार और विनम्र था। ख्यातों में लिखा है कि उसने बगवा गांव बसाया और ग़यासपुर में प्राकार बनवाया। बगवा गांव में उसने छत्री, तालाब, बावड़ी और बाग़ बनवाये।

चौथा अध्याय

महारावत तेजसिंह से प्रतापसिंह तक

तेजसिंह

राज्य-प्राप्ति

रावत विक्रमसिंह का देहांत होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र तेजसिंह वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) के लगभग देवलिया का स्वामी हुआ[1]।

दिल्ली पर अपनी हुकूमत दृढ़ करने के पीछे मुगल बादशाह अकबर ने मालवा में सेना भेज उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसके साथ ही

हल्दी घाटी के युद्ध में महारावत के काका कांधल का महाराणा के पक्ष में लड़कर काम आना

उसने राजपूताना के नरेशों को अपने अधीन बनाने का प्रयत्न आरंभ किया, जिसमें वह कुछ सफल भी हुआ। राजपूताना के नरेशों में उस समय मेवाड़ का स्वामी महाराणा उदयसिंह प्रमुख था। इसलिए बादशाह ने वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६८) में चित्तौड़ पर चढ़ाई कर बहुत दिनों तक युद्ध करने के पश्चात् वहां अधिकार कर लिया। चित्तौड़ पर शाही सेना का आक्रमण होने के पूर्व ही महाराणा उदयसिंह दुर्ग-रक्षा का भार अपने सामन्तों को देकर पश्चिमी पहाड़ों में जा रहा था। इसके बाद वह चार वर्ष तक जीवित रहा। उसका उत्तराधिकारी

---

(१) देखो ऊपर पृ० १०१। मुंहणोत नैणसी अपनी ख्यात में विक्रमसिंह के पीछे उसके पुत्र भाना (भानुसिंह) का गद्दी बैठना लिखता है, जो ठीक नहीं है। विक्रमसिंह का पुत्र तेजसिंह था और तेजसिंह का पुत्र भानुसिंह था, जिसका हमने यथा-प्रसङ्ग उल्लेख किया है। स्वयं तेजसिंह के तीन दानपत्र प्राप्त हो चुके हैं तथा अन्यत्र भी इसका वर्णन मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि विक्रमसिंह के पीछे वह देवलिया का स्वामी हुआ था।

महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) हुआ, जो दृढ़-प्रतिज्ञ और स्वतंत्रताभिमानी था। उस(महाराणा प्रतापसिंह)ने मुग़लों की अधीनता कभी स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा की। वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में बादशाह ने आंबेर के कुंवर मानसिंह को मेवाड़ आदि के राजाओं को समझाकर शाही अधीनता में लाने के लिए भेजा। मानसिंह के डूंगरपुर होकर मेवाड़ में पहुंचने का समाचार पाकर महाराणा उसके स्वागतार्थ गोगूंदा से उदयसागर गया और उसने रीति के अनुसार कुंवर की पहुनाई की, परंतु भोजन के समय वह स्वयं शरीक न हुआ, जिससे कुंवर मानसिंह बिना भोजन किये ही महाराणा से अप्रसन्न होकर चला गया।

अपने प्रधान सेनापति का अपमान होना बादशाह अकबर को बहुत ही अनुचित जान पड़ा। अतएव उसने महाराणा की धृष्टता का दंड देने के लिए वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) में कुंवर मानसिंह की अध्यक्षता में अपनी सेना रवाना की। मेवाड़ में नाथद्वारे से कुछ दूर खमणोर गांव के पास हल्दीघाटी में महाराणा ने शाही सेना का वीरतापूर्वक मुक़ाबला किया, जिसमें दोनों पक्षों के बड़े-बड़े वीर काम आये। सन्ध्या होने पर महाराणा वहां से कोल्यारी गांव में चला गया और शाही सेना गोगूंदे में पहुंची। इस युद्ध में महारावत तेजसिंह ने अपने पितृव्य कांधल को महाराणा के पक्ष में लड़ने के लिए भेजा था, जो वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया[1]।

प्रतापगढ़ राज्य की तत्कालीन स्थिति

मालवे पर मुग़ल बादशाह अकबर का अधिकार हो जाने के पीछे देवलिया-राज्य भी मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया और वहां के स्वामी की मालवा सूबे के सरदारों में गणना होने लगी, परंतु उस समय तक महारावत का शाही दरबार से सीधा संबंध नहीं जुड़ा था। उन दिनों मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह और सम्राट् अकबर की सेना के बीच युद्ध चल रहा

(१) वीरविनोद, द्वितीय भाग, पृ० १०५६।

था। अपनी पितृभूमि मेवाड़ की ओर स्वभावतः ममता होने के कारण, महारावत की महाराणा प्रतापसिंह की तरफ़ सहानुभूति अवश्य थी, परंतु शाही सेना की प्रबलता से वह प्रत्यक्ष रूप से महाराणा की सहायता न कर सकता था, तो भी वह इस अवसर पर दुहरी नीति रखकर इधर महाराणा और उधर बादशाह को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता था, जिससे उसके राज्य की हानि न हो। शाही अधिकारियों से मेल-मिलाप रख अपने राज्य की उन्नति करने की उसकी तीव्र इच्छा थी, परंतु स्वयं शाही दरबार में न जाने से वह अपने राज्य की कुछ भी वृद्धि न कर सका।

महारावत तेजसिंह के समय का अधिक वृत्तांत नहीं मिलता है। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १६४४ (ई० स० १५८७) में उसका हथनारा के पंवार महीड़ा हरराव से युद्ध हुआ था[1] तथा उन्हीं दिनों उसका इतुएया की मगरी नामक स्थान पर भी युद्ध हुआ, जिसमें उस (तेजसिंह) का सरदार खान[2] काम आया[3]। पंवार हरराव और सोनगरा नाहर का अधिक पता नहीं चलता। संभव है कि ये देवलिया के आस-पास के कोई ज़मींदार हों और अपना इलाक़ा छिन जाने के कारण देवलिया इलाक़े में उपद्रव करते हों।

महारावल का पंवार हरराव आदि से युद्ध करना

ख्यातों में महारावत तेजसिंह का देहांत वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) में होना लिखा मिलता है। 'वीरविनोद' में उसका मारा जाना लिखा है[4], जिसका अभिप्राय किसी युद्ध में अथवा किसी व्यक्ति-द्वारा मारा जाना हो सकता है, परन्तु

महारावत का देहांत

(१) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ४।

(२) खान, महारावत बाघसिंह का पुत्र था (देखो ऊपर पृ० ८४ टि० १)।

(३) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ३।

(४) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५६।

ख्यातों में उसका मृत्यु-विषयक कोई वृत्तांत नहीं मिलता।

महारावत की राणियां और संतति आदि

महारावत तेजसिंह के छः राणियां थीं। उसके भानुसिंह (भाना) और सिंहा नामक दो कुंवर हुए[1]। उसके समय के दो ताम्रपत्रों की हमारे पास छापें आई हैं, जिनका समय क्रमशः वि० सं० १६२१ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १५६४ ता० १८ अगस्त)[2] तथा वि० सं० १६३६ आषाढ वदि ४ (ई० स० १५७६ ता० १२ जून)[3] है। उसने देवलिया में वि० सं० १६३५

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ३। अन्य राज्यों की बड़वे भाटों की ख्यातों की भांति प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात भी कल्पित नामों से शून्य नहीं है। उसमें दिये हुए राणियों, कुंवरों तथा कुंवरियों के नाम अन्य ख्यातों से नहीं मिलते। इसलिए सत्यासत्य का निर्णय करने में बड़ी कठिनाई होती है। उदाहरण के लिए महारावत तेजसिंह की राणियों के नामों में बड़वे की ख्यात में जो नाम दिये हैं, वे हमारे पास प्रतापगढ़ राज्य की आई हुई अन्य ख्यात के नामों से नहीं मिलते एवं उसमें उक्त महारावत के पांच राणियां तथा कुंवर भानुसिंह और सिंहा के अतिरिक्त मनभावती नामक कुंवरी भी होना लिखा है, जिसका बड़वे की ख्यात में उल्लेख नहीं है।

(२) दमाखेड़ी गांव का ब्राह्मण दामा के नाम का ताम्रपत्र। अवतरण के लिए देखो ऊपर पृ० १०० टिप्पण संख्या ३।

(३) मा (म) हाराज श्री रावत तेजसी (तेजसिंह) जी वचानातु (त्) म (मेह) ता माहव न (ने) गम (गाम) १ पट्टा करे दीधु वाणी सवत (संवत्) १६३६ वर्षे असाढ (आषाढ) वद ४.... ।

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

प्रतापगढ़ के राजाओं के प्राप्त शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि में सबसे पुराने उपर्युक्त दोनों ताम्रपत्र हैं, जिनमें तेजसिंह की उपाधि 'रावत' और 'महाराज रावत' लिखी है। उसके उत्तराधिकारियों के भी कई लेखों में केवल 'रावत' और 'महाराज रावत' लिखा मिलता है, जिससे पाया जाता है कि उस समय वहां के राजाओं की सम्मान-सूचक उपाधि लिखने का कोई क्रम न था और लेखक जिस प्रकार चाहते लिखते थे।

(ई० स० १५७८) में तेजसागर तालाब बनवाया। 'हरिभूषण महाकाव्य' में उसके संबंध में लिखा है कि वह वीर, उदार, और गुणग्राहक राजा था। उसके शत्रु उससे सदा डरते थे। वह विद्वानों का सत्संग करता था और उसकी राजधानी देवलिया समृद्ध थी[१]।

---

(१) बभूव बीकात्मजतत्प्रतापः श्रीतेजसिंहः प्रतिभूपशल्यः ।
पवित्रकीर्तिर्महनीयमूर्तिः क्षत्राम्बुजानामिव चण्डभानुः ॥ २२ ॥
भूमण्डलं तेन भृशं चकासे पुरन्दरेणेव पुरं सुराणाम् ।
आनीरधि प्रोत्कटतेजसेव महीभृता तेन वृतं समन्तात् ॥ २३ ॥
अनेकभूपोत्तममौलिहीरनीराजितं पादयुगं विरेजे ।
प्रतापशंसिस्वभुजायुगस्य युगान्तचण्डांशुसमस्य तस्य ॥ २४ ॥
अनेकवैरिव्रजसुन्दरीभिः संस्तूयमानो विनयेन वीरः ।
आक्रम्य सिंहासनमुग्रमूर्तिः स्थितः प्रतापानलतापितारिः ॥ २५ ॥
दन्ताग्रदत्तस्वकराङ्गुलीभिः सालस्यबिन्दुस्रवदीक्षणाभिः ।
क्लेशात्प्रहारे स्वशिरोऽङ्गुलीनां प्रस्फोटनैर्म्लानमुखाम्बुजाभिः ॥२६॥
अहो भवन्तं करुणा न बाधते प्रसाद एषो विधिदुर्लिपीनाम् ।
धम्मिल्लचूडाश्रुतिभूषणानामित्थं बभौ त्वं शरणं कृपालो ॥ २७ ॥
बबाध नालस्यमहो महीशं न चाधयस्तं परि पीडयन्ति ।
बुधैरनेकैः स निनाय कालमखेदितः खेदितवैरिवर्गः ॥ २८ ॥
चन्द्रः कलङ्की स कलङ्कहीनः क्षारः समुद्रो मधुराकृतिः सः ।
स्थिरः सुराणां विटपी चलः सः कष्टोपमेयः स बभूव भूपः ॥ २९ ॥
वित्ते हि चित्तं न कदापि दत्तं लुब्धो गुणानां गुणदत्तदृष्टिः ।
यस्तेजसिंहः कलिकल्पवृक्षो नापूरयद् दृष्टिगतं न कं कम् ॥ ३० ॥

सर्ग ६ ।

काव्य की सुंदरता बढ़ाने के लिए कवि प्रायः अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग

भानुसिंह

महारावत भानुसिंह, जिसको 'भाना' अथवा 'भवानीसिंह' भी कहते थे, विक्रम संवत् १६५० (ई० स० १५९३) में देवलिया की गद्दी पर बैठा।

राज्य-प्राप्ति

ग्वालियर राज्य के जीरण और नीमच के परगने, जो इस समय मालवे में हैं, पहले मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत थे। महाराणा उदयसिंह और प्रतापसिंह के राज्य-काल में शाही सेना की चढ़ाइयों के समय वे महाराणा के हाथ से निकल गये और उनपर बादशाही अधिकार हो गया। वहां के शाही थानों पर बादशाह की तरफ़ से सय्यद लोग नियत हुए। महाराणा प्रतापसिंह की तरफ़ से रावत गोविंददास खंगारोत (बेगमवालों का पूर्वज) नउवे बाघरेड़े (बाठरडे?) के थाने पर नियत था। वह सय्यदों से लड़कर मारा गया। वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में उक्त महाराणा ने चित्तौड़गढ़ और मांडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड़ पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। उस (प्रतापसिंह)-के पिछले समय में मेवाड़ पर बादशाही सेना का आक्रमण न हुआ, जिससे उसे अपने देश की स्थिति सुधारने का अवसर मिला और उसने विपत्ति के समय अपना साथ देनेवाले सरदारों आदि की सेवाओं के एवज़ में

भानुसिंह और शक्तावत जोधसिंह सीसोदिया के बीच विरोध होना

करते हैं, जिससे काल पाकर वास्तविकता केवल कवि-कल्पना ही मान ली जाती है। ऐतिहासिक अंश अल्प होने पर भी वे घटनाओं को अपनी रचना में तिल का ताड़ बना कर दिखलाते हैं। कवि गंगाराम ने भी 'हरिभूषणमहाकाव्य' में ऐसा ही किया है, अतएव उक्त काव्य में महारावत तेजसिंह के विषय का जो वर्णन है, वह अतिशयोक्तिपूर्ण है और समय को देखते हुए महारावत तेजसिंह के समय के इतिहास के विपरीत है।

उन्हें नये सिरे से जागीरें दीं। वि० सं० १६५३ (ई० स० १५९७) में उसका परलोकवास होने पर उसका पुत्र अमरसिंह (प्रथम) मेवाड़ का स्वामी हुआ।

महाराणा उदयसिंह के पौत्र और शक्तिसिंह के पुत्र जोधसिंह[1] ने उन दिनों महाराणा की आज्ञानुसार मोखण, कराड़िया, कुंडल की सादड़ी (छोटी सादड़ी) और जीरण के कुछ गांव ठेके पर लेकर अपने भाई बाघसिंह के साथ वहां रहना आरंभ किया[2]। फिर महाराणा ने उसको नीमच और जीरण का पट्टा कर दिया[3]। जोधसिंह वीर-प्रकृति का पुरुष था। क्रमशः अपना बल बढ़ाकर उसने देवलिया के गांवों को लूटना आरंभ किया और नीमच से भी वह चौथ मांगने लगा[4]। इससे देवलिया के स्वामी भानुसिंह को भय हुआ कि वह देवलिया पर भी कभी दांत लगावेगा। निदान उसने जीरण के शाही फ़ौजदार को बहकाया कि जोधसिंह और बाघसिंह को तुम यहां क्यों रहने देते हो? वे बड़े आपत्तिकारक हैं और तुमको मार डालेंगे[5]।

भानुसिंह के शाही अफ़सरों से मेल-मिलाप रखने की नीति से जोधसिंह पहले से ही असंतुष्ट था। भानुसिंह-द्वारा मंदसोर के शाही फ़ौजदार के अपने विरुद्ध भड़काये जाने की खबर पाकर वह क्रुद्ध हो गया और उसकी उस(भानुसिंह)से पूरी शत्रुता हो गई। मंदसोर के शाही फ़ौजदार ने, जो सय्यद था, जोधसिंह के विरुद्ध महाराणा अमरसिंह से शिकायत की, परंतु वहां जोधसिंह का प्रबल प्रभाव होने से उसके विरुद्ध होनेवाली शिकायतों

महारावत भानुसिंह और शक्तावत जोधसिंह के बीच युद्ध होना

(१) इसके वंशधर कणगेटी (मेवाड़ !) के सरदार हैं।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ९५।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५६।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ९५।

(५) वही; पृ० ९५।

की सुनवाई नहीं हुई[1]। इसी बीच भानुसिंह भी महाराणा के पास पहुंचा और वहां एक दिन उसके तथा जोधसिंह के बीच दरबार में ही कहा-सुनी हो गई। महाराणा के समझाने से उस समय तो बात दब गई और भानुसिंह वहां से देवलिया[2] तथा जोधसिंह अपने निवासस्थान को लौट गया। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद जब जोधसिंह के उपद्रव में कमी न दीख पड़ी तब भानुसिंह मंदसोर के शाही फ़ौजदार मक्खनखां से मिला और दोनों ने अपनी सम्मिलित सेना-द्वारा जोधसिंह को दंड देना निश्चित किया। एक दिन वे दोनों पंद्रह सौ सवारों की भीड़-भाड़ के साथ जोधसिंह पर चढ़ गये। जोधसिंह भी अपने सौ सवारों और दो सौ पैदलों के साथ उनके सामने जा डटा। चीताखेड़े से कुछ दूरी पर एक वट वृक्ष के पास दोनों दलों में लड़ाई हुई, जिसमें सय्यद मक्खन और महारावत भानुसिंह जोधसिंह के हाथ से मारे गये, साथ ही जोधसिंह भी जीवित न बचा[3]।

'हरिभूषण महाकाव्य' का कर्त्ता कवि गंगाराम अपने ग्रन्थ में महारावत तेजसिंह के पीछे सिंहा के देवलिया का स्वामी होने और सिंहा की तरफ़ से उसके पितृव्य भानुसिंह के मक्खन की सहायतार्थ शक्तावत जोधसिंह से युद्ध करने का वर्णन करते हुए जोधसिंह और माखन (मक्खनखां)

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६५।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग; पृ० १०५६।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६५। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५६। कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ७६। के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० १९८। प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात (पृ० ३) में उस (भानुसिंह) का उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) के समय रणबीर (रणबाजखां) के साथ की लड़ाई में मारे जाने का उल्लेख है, जो बिल्कुल ग़लत है। उदयपुर का महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) इस घटना के, लगभग सौ वर्ष पीछे वि० सं० १७६७ (ई० स० १७१०) में वहां का स्वामी हुआ था।

के वीर गति प्राप्त करने का उल्लेख करता है[1]; किंतु भानुसिंह के विषय में उसने मौन धारण कर लिया है। ख्यातें और प्रायः सब ही इतिहासवेत्ता तेजसिंह के भानुसिंह और सिंहा नामक पुत्र होना बतलाकर भानुसिंह

---

(१) पुरा दशपुराधीशः खानो माखनभूपतिः ।
चित्रकूटाधिनाथेन युयोध यवनेश्वरः ॥ २ ॥
मिलिता हिन्दवः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ।
तान् विलोक्य तुरुष्केशः सिंहं चानुससार सः ॥३॥
तत्पितृव्यो महावीरो भानुसिंहो ययौ रणे ।
राणासेनाधिपं दृष्ट्वा योधशक्तावतं पुरः ॥ ४ ॥
बभूव तुमुलं तत्र तयोरन्योन्यमाहवम् ।
देवदानवगन्धर्वमुनिविस्मयकारकम् ॥ ५ ॥
खड्गान्निष्कासयामासुः केऽपि चर्मधरा भटाः ।
विस्फारं धनुषां मध्ये कुर्वाणाः समराजिरे ॥ ६ ॥
विच्छिन्नबाहवः केऽपि परे मुद्गर-खण्डिताः ।
एकनेत्राश्चैकपादा विचेलुस्त्वपरे भृशम् ॥ ७ ॥
पठाणाः पातिताः सर्वे यवना अपि यापिताः ।
मुद्गलाः सादितास्तत्र हप्सिनो निहता रणे ॥ ८ ॥
मुमुचुः शक्तयः केऽपि मुशलान् लगुडोपलान् ।
निहता यवनाः सर्वे योधशक्तावतेन ते ॥ ९ ॥
तोबा तोबेति कुर्वाणा भानुसिंहमुपाययुः ।
मारयन्ति समुक्त्वेऽतिसहाये त्वयि तिष्ठति ॥ १० ॥
तेषामिति वचः श्रुत्वा खड्गमाकृष्य निर्ययौ ।
योधमाकारयन्वीरो युगान्तदहनोपमः ॥ ११ ॥
रुधिरस्रावसञ्जाता वाहिन्यो वाहिता भृशम् ।
मुण्डकूर्मकबन्धोग्रमद्गुरासिझषाकुलाः ॥ १२ ॥

को तेजसिंह का उत्तराधिकारी बतलाते हैं। स्वयं भानुसिंह के वि० सं० १६५१ और १६५२ के ताम्रपत्र मिल चुके है। ऐसी अवस्था में गंगाराम का यह कथन कि तेजसिंह के पीछे सिंहा देवलिया का स्वामी हुआ तथा भानुसिंह, सिंहा का चाचा (तेजसिंह का भाई) था और वह सिंहा की तरफ़ से जोधसिंह से युद्ध करने गया, स्वीकार करने योग्य नहीं है। नैणसी की ख्यात में, जो प्राचीनता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है,

---

क्वापि बुम्बारवाः पेतुः क्वापि भीममहारवाः।
करिणां गर्जितं क्वापि क्वापि ढक्काघनस्वनाः॥ १३॥

इति घोरे रणे जाते योधशक्तावतः स्वयम्।
युयोध भानुना वीरः सानुमानिव चञ्चलः॥ १४॥

युध्यमानान् रणे दृष्ट्वा पातयामास तद्भटान्।
मृगानां कुलमासाद्य समन्युरिव केसरी॥ १५॥

युध्यमानं रणे भानुं दृष्ट्वा योधः समागतः।
परस्परमभूद् युद्धं दारुणं वीरयोस्तयोः॥ २३॥

आदौबाणैस्ततः प्रासैरसिभिस्तदनन्तरम्।
पश्चात् कट्टारकैर्युद्धं तयोरिव तयोरभूत॥ २४॥

तच्छत्रं भानुना बाणैश्छिन्नं योधोऽपितद्ध्वजम्।
उभौ चिच्छिदतुः सद्यः सस्वनं धनुषोर्गुणम्॥ २५॥...

खड्गमाकृष्य चिच्छेद प्रासं भानुकरस्थितम्।
सोऽपि खड्गक्षतं तस्मायुपवीतोचितं ददौ॥ २७॥

पश्चात्कट्टारिकाघातैः पातितः समराङ्गणे।
योधशक्तावतो वीरो गतासुरगताभिधः॥ २८॥

माखनः खनिमापन्नः शक्त्या योधेन संहतः।
राहूरिव पपातोर्व्यां कृष्णेनेव पुरा रणे॥ २९॥

सप्तम सर्ग।

शक्तावत जोधसिंह के साथ होनेवाले युद्ध में भानुसिंह के मारे जाने का स्पष्ट उल्लेख है। जीरण में उस(भानुसिंह)की स्मारक छत्री बनी हुई है। उसके लेख में भी शक्तावत जोधसिंह के साथ होनेवाले युद्ध में उसके मारे जाने का उल्लेख है। अतएव भानुसिंह का उसी युद्ध में मारा जाना अधिक माननीय है। प्राचीन परंपरा का अनुयायी होने से गंगाराम ने अपने काव्य में दुःखान्त प्रसङ्ग को जान-बूझकर छोड़ दिया है और देवलिया के स्वामी बाघसिंह, भानुसिंह तथा जसवंतसिंह (जो युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए) के देहांत पर मौन साध लिया है। इसी प्रकार उसने वहां के अन्य नरेशों की भी मृत्यु-वार्ता का उल्लेख नहीं किया, जिससे कहा जा सकता है कि उसने अपने इस काव्य को सुखान्त बनाने का ही लक्ष्य रक्खा हो।

'वीरविनोद'[1] में भी इस युद्ध का वर्णन है, परंतु वहां इस घटना का कोई समय नहीं दिया है, परन्तु महारावत भानुसिंह की छत्री के लेख में वि० सं० १६५४ (ई० स० १५६७) के मार्गशीर्ष[2] में उसका शक्तावत जोधसिंह

---

(१) द्वितीय भाग, पृ० १०५६।

(२) ...मा(महा)राजा धी(धि)राज मा(म)हारावतजी श्री भानाजी देवल्या राजा(जां)रा......मुना पदराया......जोद(ध)सीघ(सिंह)जी सग......या दसोर (मंदसोर)......रजवाड़ दली (दिल्ली) तप (पे) पातसा......अकबरजी उदेपुर तप (पे) राणा.......अमरसीघ(सिंह)जी समत (सम्वत्) १६ सौ ५४ साके (शाके) १५१[६] परवतमानमती अग.......दीतवार... ।

मूल लेख की छाप से।

मेवाड़ का महाराणा अमरसिंह (वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह का ज्येष्ठ पुत्र), महाराणा प्रताप का परलोकवास होने पर वि० सं० १६५३ माघ सुदि ११ को राजगद्दी पर बैठा था। समयक्रम पर विचार करने-से यह घटना महाराणा अमरसिंह-(-प्रथम) के-प्रारंभिक समय की हो सकती है।

के साथ होनेवाले युद्ध में काम आना लिखा है। ऐसी दशा में महारावत भानुसिंह का परलोकवास वि० सं० १६५४ के मार्गशीर्ष (ई० स० १५९७ नवंबर अथवा दिसंबर) मास में होना ठीक जान पड़ता है। इसके विरुद्ध ख्यातों तथा प्रतापगढ़ राज्य के गैज़ेटियर में उसका देहांत वि० सं० १६६० (ई० स० १६०३) में होना लिखा है[1], जो स्वीकार करने के योग्य नहीं है; क्योंकि ख्यातों आदि के संवत् बहुधा कल्पित हैं और पीछे से सुनी-सुनाई बातों के आधार पर दिये गये हैं।

सर जॉन मालकम अपनी 'रिपोर्ट ऑन दि प्रॉविन्स ऑव् मालवा एंड एड्ज्वॉइनिंग डिस्ट्रिक्ट्स' (कलकत्ता गवर्नमेंट ऑव् इंडिया सेंट्रल पब्लिकेशन ब्रांच—पृ० २२४) में लिखता है कि प्रतापगढ़ राज्य के संस्थापक जीजा रावल का (जिसको शाहजहां के समय में मालवे के मुसलमान अफ़सरों की सिफ़ारिश से जागीर मिली थी) पुत्र भीमा रावल मंदसोर के आमिलदार की सहायतार्थ लड़कर मारा गया। वहीं उसने टिप्पण में सादड़ी के सरदार सूरजमल के मांडू के सुलतान अलाउद्दीन के पास जाने और फिर उसके पुत्र बाघ रावल के चित्तौड़ की रक्षार्थ काम आने एवं उस (बाघ रावल) के पुत्र बार्यासिंह के पुनः सादड़ी लौट जाने और उसके पुत्र का नाम जीजा रावल होने का उल्लेख किया है। ये सब कथन इतिहास की कसौटी पर निर्मूल ठहरते हैं। मांडू में अलाउद्दीन नाम का कोई सुलतान नहीं हुआ। सूरजमल ने मेवाड़ के विरुद्ध मांडू (मालवा) के सुलतान नासिरुद्दीन की सहायता कर महाराणा रायमल और उसके कुंवर पृथ्वीराज से युद्ध किया था, जिसका वर्णन ऊपर (पृ० ९२-५ में) किया गया है। प्रतापगढ़ के राजाओं की उपाधि 'रावल' न होकर 'रावत' है एवं वहां 'बार्यासिंह', 'जीजा' और 'भीमा' नाम के

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ३। प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ५। कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ७१। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० १९८। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५६।

कोई राजा नहीं हुए। वायसिंह रायसिंह का, जीजा बीका (विक्रमसिंह) का, और भीमा तथा भाना भानुसिंह के सूचक हो सकते हैं। इसी प्रकार मालकम का यह कथन कि भीमा अथवा भाना (भानुसिंह) बाघसिंह के पौत्र जीजा अर्थात् बीका (विक्रमसिंह) का पुत्र था निर्मूल है। उक्त रिपोर्ट में दिये हुए प्रतापगढ़ के राजाओं के नाम वायसिंह, जीजा और भीमा अशुद्ध हैं और उसमें दी हुई घटनाएं भी ठीक नहीं हैं। बाघसिंह अकबर की चित्तौड़ पर चढ़ाई होने के तीस वर्ष पूर्व बहादुरशाह की चित्तौड़ की चढ़ाई के समय मेवाड़वालों की तरफ़ से लड़कर मारा गया था। उक्त रिपोर्ट के अध्ययन करने से प्रकट होता है कि सर जॉन मालकम ने अपनी रिपोर्ट लिखते समय पूर्व-वृत्तांत लिखने में सत्यासत्य की अधिक खोज नहीं की।

महारावत भानुसिंह के वि० सं० १६५१ और १६५२ के निम्नलिखित दो ताम्रपत्र मिले हैं—

महारावत भानुसिंह के ताम्रपत्र

(१) वि० सं० १६५१ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १५९४ ता० २४ अक्टोबर) का जोशी श्रीकंठ के नाम का सेवली गांव का ताम्रपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव जोशी श्रीकंठ को कृष्णार्पण करने और ताम्रपत्र महारावत के कोठारी चाचा की आज्ञा से पंचोली केशवदास-द्वारा लिखे जाने का उल्लेख है[1]।

(२) वि० सं० १६५२ आषाढ सुदि १ (ई० स० १५९५ ता० २८ जून) का जोशी नारायण के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें महारावत तेजसिंह के अंतिम समय में अमलावदा गांव में संकल्प की हुई पैंतीस बीघा भूमि दान करने का उल्लेख है और दुआ देनेवाले का नाम कोठारी शामल

---

(१) श्री महाराज श्री राउत श्री भवानीसिंघजी वचनातु जोसी सीरीकंठ है········मौ० जौ सेवली अघाट करीदीधो········संवत १६५१ वरषे मागसर वदि ५······।

मूल लेख की छाप से।

एवं लेखक का नाम पंचोली नेता दिया है[1]।

महारावत की राणियां

बड़वे की ख्यात में महारावत भानुसिंह के केवल एक ही राणी लिखी है और उसका नाम भगवतकुंवरी देकर उसको ईडर के राव नारायणदास की पुत्री लिखा है एवं उसका पुत्र सिंहा बतलाया है[2]; किंतु एक दूसरी पुरानी ख्यात में उसके दो राणियां एक चौहान वाला की पुत्री समुद्रकुंवरी और दूसरी सोलंकी माला की पुत्री मानकुंवरी होना लिखकर उक्त सोलंकिणी राणी के उदर से कमलकुंवरी और पेपकुंवरी नामक पुत्रियां होने का उल्लेख है[3]। ख्यातों की परस्पर विभिन्नता को देखते हुए इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, परंतु प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में दिया हुआ महारावत भानुसिंह के सिंहा नामक पुत्र होने का कथन ठीक नहीं है; क्योंकि उसमें ही महारावत तेजसिंह के प्रसङ्ग में सिंहा को तेजसिंह का पुत्र बतलाया है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में तथा अन्यत्र[4] सिंहा को तेजसिंह का पुत्र लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि सिंहा भानुसिंह का छोटा भाई था। वह महारावत भानुसिंह के पीछे देवलिया का स्वामी अर्थात् भानुसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। राजपूताना के राज्यों में जब बड़े भाई के पीछे छोटा भाई गद्दी पर

---

(१) महाराज श्री रावत भानजी वचनातु जोसी नराणजी जोग आप्रच। भु वींगा ३५) आके पैतीस रावतु श्री तेजसीजी रे आतर सम्परा उदक करी थी, ज्या गाम अमलावदा मांहे……उदक आघाट तांबापत्र करे दीधी…समत १६५२ वरषे आसड़सुद १…।

ताम्रपत्र की छाप से।

(२) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ३।

(३) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ५।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ९९। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५७।

बैठता है, तब चारण और भाट उस(बड़े भाई)को पिता के स्थान पर मानकर गद्दी बैठनेवाले छोटे भाई को आशीष देते हैं। इसी क्रम से प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में सिंहा को भानुसिंह का पुत्र लिखा गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

महारावत भानुसिंह का भी और कोई वृत्तांत नहीं मिला, जिससे उसके जीवन पर विशेष प्रकाश पड़े। उसके संबंध का जो वृत्तांत ऊपर लिखा गया है, उससे तो यही प्रकट होता है कि वीर और दानी होने के साथ ही वह अदूरदर्शी था। वह कुछ ही वर्ष राज्य करने के उपरांत मारा गया।

महारावत भानुसिंह का व्यक्तित्व

मेजर के० डी० अर्सकिन ने उसके समय में शाही अफ़सर महाबतख़ां के देवलिया में जाकर रहने का उल्लेख किया है[1], परंतु घटनाक्रम पर विचार करने से यह कथन ठीक नहीं जंचता; क्योंकि भानुसिंह, मुग़ल सम्राट् अकबर का समकालीन था और उसके जीवनकाल में ही वह मारा गया। फ़ारसी तवारीख़ों में बादशाह अकबर के समय महाबतख़ां नाम के किसी सेनापति के विद्रोही होने का उल्लेख नहीं है। जहांगीर के पिछले समय में उसके प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष महाबतख़ां ने बादशाह से विद्रोहाचरण किया था, जिसका हम महारावत सिंहा के प्रसङ्ग में वर्णन करेंगे।

सिंहा

महारावत भानुसिंह का देहांत होने पर वि० सं० १६५४ (ई० स० १५९७) में उसका छोटा भाई सिंहा देवलिया के राज्य-सिंहासन पर बैठा[2]।

राज्य-प्राप्ति

(१) मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव प्रतापगढ़; पृ० १९८।

(२) ऐसी भी जनश्रुति है कि जब भानुसिंह, जोधसिंह से युद्ध करता हुआ जीरण के पास काम आया, उस समय उसका छोटा भाई सिंहा अपने ननिहाल में था। उसकी अनुपस्थिति का अवसर पाकर महारावत विक्रमसिंह(बीका) का पौत्र और कृष्णदास(किशनदास) का पुत्र सांवलदास, जिसके कांतला की जागीर थी और जो

महाराणा अमरसिंह का महारावत के लिए टीका भेजना

मुग़ल बादशाहत की अधीनता स्वीकार न करने से मेवाड़ के महाराणाओं से बादशाह अकबर असंतुष्ट रहा और उनपर शाही सेना के आक्रमण जारी थे, ऐसे समय में भानुसिंह के मक्खनखां की सहायतार्थ काम आने से विरोध बढ़ने की संभावना देख महाराणा अमरसिंह ने उस-(भानुसिंह)के भाई सिंहा को गद्दीनशीनी का टीका भेज आश्वासन के रूप में कहलाया कि भानुसिंह और जोधसिंह दोनों हमारे भाई ही मरे हैं। अब जोधसिंह के पुत्र नाहर और भाखरसी का जिन गांवों पर अधिकार है उनमें किसी प्रकार का दख़ल न देना[1]। इसपर सिंहा ने अपनी स्थिति पर विचार कर महाराणा की बात मान ली और जोधसिंह के पुत्रों से कोई छेड़-छाड़ न की। बादशाह अकबर ने उधर का अच्छा बंदोबस्त करने के लिए जीरण और नीमच की जागीर रामपुरा के सीसोदिया राव दुर्गा को, जो शाही सेवक बन गया था, प्रदान कर दी[1]। उसका महाराणा से भी मेल था, इसलिए उसने महाराणा को कुछ गांव देकर उसका समाधान कर दिया[2]। तदनन्तर भानुसिंह के मंदसोर के शाही सेनाध्यक्ष मक्खनखां की सहायतार्थ मारे जाने से बादशाह जहांगीर के समय इस सेवा के पुरस्कार में महारावत सिंहा

देवलिया-राज्य का सारा राज्य कार्य करता था, सरदारों आदि को मिलाकर वहां का स्वामी बन बैठा। जब सिंहा को भानुसिंह की मृत्यु और सांवलदास की राज्य-प्राप्ति का समाचार मिला तो वह परिस्थिति को अपने विरुद्ध देख कुछ समय के लिए चुप हो बैठा। फिर उसने धमोतर के सरदार को अपनी ओर मिलाकर कुछ समय बाद एक दिन छल से देवलिया में प्रवेश किया और वहां अधिकार कर लिया। फिर उसके पक्षवाले सरदारों ने सांवलदास को मार डाला और उसके वंशजों से झांतला की जागीर छीन ली। संभव है कि सांवलदास ने सिंहा की अविद्यमानता का अवसर पाकर देवलिया का राजा बनने की चेष्टा की हो और उसी में उसका प्राणांत हुआ हो। जब तक इस विषय का कोई अन्य प्रमाण न मिले इस संबंध में अधिक प्रकाश नहीं पड़ सकता, क्योंकि ख्यातों में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६५-६।

(२) वही, पृ० ६५-६।

को कुंडाल का परगना जागीर में प्राप्त हुआ[1]।

बादशाह अकबर की महाराणा प्रतापसिंह को अधीन बनाने की कामना सफल नहीं हुई। फिर उक्त महाराणा के देहांत के पीछे उसके उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह (प्रथम) पर वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में बादशाह ने अपने शाहज़ादे सलीम (जहांगीर) को भेजा; किंतु वह असफल होकर लौटा। तदनन्तर वि० सं० १६६० (ई० स० १६०३) में बादशाह ने पुनः शाहज़ादे को मेवाड़ पर सेना लेकर जाने की आज्ञा दी, किन्तु पहली बार के आक्रमण की कठिनाइयों का स्मरण कर वह किनारा कर गया। वि० सं० १६६२ (ई० स० १६०५) में बादशाह अकबर की मृत्यु हुई और उसके स्थान पर शाहज़ादा सलीम बादशाह हुआ। उसने अपने पिता के मेवाड़ की स्वाधीनता नष्ट करने के संकल्प को पूरा करने की इच्छा से उसी वर्ष अपने शाहज़ादे परवेज़ की अधीनता में एक बड़ी सेना उधर रवाना की। महाराणा ने शाही सेना का बड़ी वीरता से मुक़ाबला किया, जिससे शाहज़ादा परास्त होकर लौटा। बादशाह ने अपनी सेना के असफल होकर लौटने पर कई बार मेवाड़ पर सेनाएं भेजीं, परंतु महाराणा इससे निराश न हुआ और लड़ता ही रहा। अंत में बादशाह ने वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में शाहज़ादे

बसाड़ और अरणोद परगने का फरमान कुंवर कर्णसिंह के नाम होना

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य की एक प्राचीन ख्यात; पृ० ६। सर जॉन मालकम ने 'रिपोर्ट ऑन दि प्रोविंस ऑव् मालवा एंड एड्ज्वॉइनिंग डिस्ट्रिक्ट्स (पृ० २२४)' में लिखा है कि इस घटना के बदले में बादशाह की तरफ़ से १२ गांव उस (भानुसिंह) के पुत्र जसवतसिंह को दिये गये। सर जॉन मालकम के उपर्युक्त लेख से ख्यात के कथन की बहुत कुछ पुष्टि होती है, परंतु वहां जसवंतसिंह को भीमा (भानुसिंह) का पुत्र बतलाया है, जो ठीक नहीं है। भीमा (भानुसिंह) निःसंतान मरा था और उसके पीछे उसका भाई सिंहा देवलिया का स्वामी हुआ, जिसका पुत्र जसवंतसिंह था, यह निश्चित है। महारावत सिंहा बादशाह जहांगीर का समकालीन था। अतएव उपर्युक्त कुंडाल की जागीर अर्थात् १२ गांव, जिनका सर मालकम ने उल्लेख किया है, बादशाह जहांगीर-द्वारा महारावत सिंहा को मिलना ही संभव है।

खुर्रम (शाहजहां) को एक बड़ी सेना के साथ महाराणा पर रवाना किया। शाहज़ादे ने मेवाड़ में पहुंचकर चारों तरफ़ के नाके-घाटे बंद कर दिये और रसद का जाना भी रोक दिया। उसने मुख्य-मुख्य स्थलों पर सुदृढ़ थाने नियत कर महाराणा को घेर लिया, तो भी महाराणा ने शाही सेना से मुक़ाबला करना न छोड़ा। वह इस आपत्ति से बिलकुल न घबराया और यथा-साध्य लड़ता ही रहा। शाही सेना की लगातार चढ़ाइयों से महाराणा के सरदारों की संख्या घटती जाती थी और उन्हें भय होने लगा कि शाही सेना-द्वारा घिरकर वे मारे जावेंगे तथा उनके बाल-बच्चे पकड़ लिये जावेंगे। इस डांवा-डोल स्थिति को देख सरदारों ने महाराणा के कुंवर कर्णसिंह की सलाह लेकर शाहज़ादे के पास संधि का प्रस्ताव भेजा, जिसके स्वीकार होने पर महाराणा के सामने यह बात प्रकट की गई। महाराणा को विवश होकर अपनी इच्छा के विरुद्ध यह बात स्वीकार करनी पड़ी और ज्येष्ठ राजकुमार को शाही दरबार में भेजने की मुख्य शर्त पर वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) में संधि हो गई। फिर शाहज़ादा खुर्रम, कुंवर कर्णसिंह को लेकर बादशाह के पास गया, जिसने उसका बड़ा सम्मान किया और मेवाड़ से गये हुए इलाक़ों के अतिरिक्त रतलाम, बसाड़, अरणोद, डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि का फ़रमान भी ता० २२ रबीउस्सानी हि० स० १०२४ (वि० सं० १६७२ ज्येष्ठ वदि ६ = ई० स० १६१५ ता० ११ मई) को उक्त कुंवर के नाम कर दिया[1]।

महाबतखां का देवलिया में जाकर रहना

बादशाह जहांगीर के पिछले समय में उसका शाहज़ादा खुर्रम तो बाग़ी हो ही रहा था, परंतु कई कारणों से अपने प्रधान सेनापति महाबतखां पर भी बादशाह की नाराज़गी हो गई। उसका ख़ज़ाना ज़ब्त कर लिया गया एवं ख़ानख़ाना को अजमेर का सूबा जागीर में दिया जाकर[2] वि० सं० १६८३

(१) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १, पृ० ५०३। मूल फ़रमान के लिए देखो वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २३६-४६।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५८८-६।

(ई० स० १६२६) के लगभग वह महाबतखां को मारने के लिए नियुक्त किया गया। इसपर महाबतखां प्राण-रक्षा के लिए इधर-उधर भटकने लगा। उसके उदयपुर-राज्य के पहाड़ों में होकर देवलिया पहुंचने पर महारावत सिंहा ने उसको सम्मान-पूर्वक अपने यहां रक्खा[1] और प्रसिद्ध है कि देवलिया से विदा होते समय उसने महारावत को इस सौजन्य के बदले में एक अंगुठी भेंट की[2], जिसका मूल्य साठ हज़ार रुपये के लगभग था।

फ़ारसी तवारीख़ों से यह ज्ञात नहीं होता कि महाबतख़ां बादशाह की अप्रसन्नता होने पर कहां-कहां रहा था, परंतु उसका राजपीपला के मार्ग से दक्षिण में जाने का 'हिस्ट्री ऑव् जहांगीर[3]' और 'जहांगीरनामे[4]' में भी उल्लेख मिलता है। इससे अनुमान होता है कि वह मालवे की तरफ़ होता हुआ ही दक्षिण में शाहज़ादे खुर्रम के पास गया था। देवलिया मालवे से मिला हुआ है। पहाड़ी प्रांत होने से वह सुरक्षित स्थान समझा जाता है तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ़ जाते समय मार्ग में पड़ता है। इसलिए पहाड़ी मार्ग से होते हुए उसका देवलिया की तरफ़ जाना और वहां महारावत का आश्रय पाना संभव है। पहाड़ी प्रदेश होने तथा वहां का जलवायु ख़राब होने से मुसलमानी सेना का उस ओर कम ही जाना होता था। महाबतख़ां का देवलिया में रहने का कथन महारावत प्रतापसिंह के समय बनी हुई 'प्रतापप्रशस्ति' (खंडित काव्य) में भी है, जो इस घटना के

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५७। 'वीरविनोद' में महाबतख़ां का महारावत जसवंतसिंह के समय देवलिया में रहने का उल्लेख है, जो ठीक नहीं है। महाबतख़ां वि० सं० १६८३ में विद्रोही हुआ था। उस समय महारावत सिंहा विद्यमान था, जैसा कि ग़यासपुर की बणजारों की बावड़ी के शिलालेख से प्रकट है। महारावत सिंहा बादशाह जहांगीर का समकालीन था, इसलिए उसके समय में ही महाबतख़ां का देवलिया में रहना संभव है।

(२) वीरविनोद (द्वितीय भाग, पृ० २८६) में भी महाबतख़ां-द्वारा अंगूठी देने का उल्लेख है।

(३) डॉक्टर बेनीप्रसाद-कृत; पृ० ४३०।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५१६।

लगभग पचास वर्ष पीछे की बनी हुई है। ऐसी स्थिति में महारावत सिंहा के समय ही महाबतखां का देवलिया में रहने का कथन विश्वसनीय है[1]। इसके विरुद्ध मेजर के० डी० अर्सकिन-कृत 'गेज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़' में महाबतखां का महारावत भानुसिंह के समय देवलिया में रहने का उल्लेख है, जो ठीक नहीं है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है[2]।

महारावत सिंहा का परलोकवास

'वीरविनोद' में महारावत सिंहा का वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में देहांत होना लिखा है[3]; किन्तु ग़यासपुर की बावड़ी के वि० सं० १६८४ वैशाख सुदि ३[4] (ई० स० १६२७ ता० ८ अप्रेल) के शिलालेख से उसका उक्त संवत् तक विद्यमान होना पाया जाता है। उदयपुर के महाराणा राजसिंह के बनवाये हुए राजसमुद्र तालाब के 'राजप्रशस्ति'-नामक बृहत् काव्य और 'अमरकाव्य' में महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के प्रसङ्ग में उक्त

---

(१) श्रीमत्सूरकुले प्रतापनृपतिर्दाता न चित्रं पुरा
श्रीसिंहप्रपितामहेन शरणं संरक्षितं साहतः।
श्रेष्ठो मोबतखान एव वसुधानाथान्नबापप्रभोः।
शाजानात्सुखमापतुष्टिमधिकां कीर्तिं पृथिव्यां नृपः॥ ८॥

प्रताप-प्रशस्ति (खंडित काव्य)।

उपर्युक्त श्लोक में उल्लिखित 'मोबतखान नबाप', 'महाबतखां' का और 'शाजान', 'बादशाह शाहजहां' का सूचक है।

(२) देखो ऊपर पृ० ११८।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०२७।

(४) ......सवत (संवत्) १६८४ वर्षे वेसष (वैशाख) सुदि ३ राउत श्रीसिंघा अद्येह श्रीग्यासपा(पु)रग्रामे...............तीर्थे वावयं। राउत सेघो (सिंघा) विजयराज्ये आभ्यन्तर वणजारा जातीय नायक गिरो...... ॥

मूल शिलालेख की नक़ल से।

महाराणा का महारावत जसवंतसिंह के समय देवलिया पर सेना भेजने का वर्णन वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) की घटनाओं में हुआ है, जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे। ऐसी स्थिति में महारावत सिंहा का परलोकवास वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) के लगभग मानना पड़ेगा और ऐसा ही प्रतापगढ़ राज्य के वड़वे की तथा वहां से प्राप्त एक दूसरी पुरानी ख्यात से भी पाया जाता है[1]।

वड़वे की ख्यात में महारावत सिंहा के १२ राणियां और दो कुंवर [illegible]ंतसिंह तथा जगन्नाथसिंह होने का उल्लेख है[2]। एक दूसरी ख्यात में राणियों की संख्या तो उतनी ही दी है, परंतु उनके एवं उनके पिता आदि के नाम वड़वे की ख्यात से नहीं मिलते। उसके कुंवरों के नाम जसवंतसिंह, जगन्नाथ-सिंह, माधवसिंह और पुत्रियों के नाम सदाकुंवरी, राजकुंवरी[3] तथा सामंत-

महारावत की राणियां और संतति

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य के वड़वे की ख्यात; पृ० ४। प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी ख्यात; पृ० ६।

(२) प्रतापगढ़ राज्य के वड़वे की ख्यात; पृ० ४। जगन्नाथसिंह के वंशजों में नागदी का ठिकाना है।

(३) तेजसुतसिंहकी सुता सो तीजी सीसोदनी ॥
ब्याह्यो राजकुमरि प्रतापगढ़ लग्नकाल ॥
कर्मवती नाम एक कन्या भई ताकै पीछैं,
ब्याह्यो जसवंत जाहि जोधपुरको नृपाल ॥ १४ ॥

वंशभास्कर; पृ० २५२१।

राजकुंवरी की बनवाई हुई बूंदी में नाहर कौंस नाम की बावड़ी है। उसमें वि० सं० १७२१ वैशाख वदि १ (ई० स० १६६४ ता० १ अप्रेल) का निम्नलिखित शिलालेख लगा हुआ है—

······संवत १७२१ वैशाख वदि १ महाराजाधिराज हाड़ा दिवाण रावजी श्रीसत्रसाल (शत्रुसाल) जी की राणीजी श्रीसीसोदणीजी राजकुंवरिजी रावतजी श्रीसींघोजी गढ़ देवल्याको धणी तीकी बेटी नै

कुंवरी दिये हैं[1]। बूंदी राज्य के मिश्रण कवि सूर्यमल-रचित 'वंशभास्कर'-नामक वृहद् ग्रंथ से उसके गंगाकुंवरी नामक पुत्री का होना भी पाया जाता है, जिसका विवाह वहां के राव भोज के पुत्र मनोहरदास से हुआ था[2]।

महारावत सिंहा का अधिक इतिहास उपलब्ध नहीं होता। उसके समय के केवल नीचे लिखे दो लेख मिले हैं, जिनसे उसका समय निश्चित करने के अतिरिक्त और कुछ इतिहास प्रकट नहीं होता है—

(१) वि० सं० १६७९ कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १६२२ ता० ४ नवंबर) सोमवार का जोशी ईसरदास के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें बहु राठोड़ तथा बहुरणी खानण का ३१ बीघा भूमि सूर्य-ग्रहण के अवसर पर दान करने का उल्लेख है[3]।

बाग बावड़ी करि परनाया ई राणीजी कै बेटी बाइ करमैतीजी त्या पराणाइ छै गढ जोधपुर को धणी महाराजाजी श्रीजसवंतसिंघजी राठोड़ ...... ।

मूल शिलालेख की छाप से।

(१) प्रतापगढ राज्य की पुरानी ख्यात; पृ० ६।

(२) ···क्रम दुव व्याह मनोहर के किय,
तँह प्रभु राम सुनहु ज़िम जे किय ॥ ६६ ॥
सीसोदनि प्रथम सिंहसुता
जो गंगा अभिधान गुनजुता··· ॥ ६७ ॥

पृ० २४३१-३२।

(३) महाराज श्रीरावत सीगाजी वचनातु जोसी इसरदास योग्य अप्रंच खेत वीगा ३१ अंके अकतीस दीदा जेरी वगत खेत वीगा ११ बहुजी राठोड़ कमल्या महे दीदा खेत वीगा २० बहुजी रणी षानण महे घर षेती रु भड़ा सो दीदो अणी वगते वीगा ३१ सुरजपरब महे दीदा उदक अघाट कर दीदां मारा वंसरो कोही कद करसी नहीं स्वदत परदत्त

(२) वि० स० १६८४ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६२७ ता० ८ अप्रेल) का गयासपुर की बावड़ी का शिलालेख, जिसमें महारावत सिंहा के समय आभ्यन्तर वणजारा जाति के नायक गिरा-द्वारा उक्त बावड़ी के बनवाये जाने का उल्लेख है[1]।

महारावत का व्यक्तित्व

महारावत सिंहा नीतिमान राजा था और वह युद्ध की अपेक्षा मेल को अधिक पसंद करता था। मेवाड़ और देवलिया राज्यों की सीमा मिली हुई होने से समय-समय पर सीमा-संबंधी बखेड़े हो जाते थे; पर महारावत सिंहा ने बुद्धिमत्ता से कोई झगड़ा बढ़ने न दिया और मेवाड़ के महाराणाओं से मेल रख अपने राज्य की स्थिति सुदृढ़ की। उसके किसी युद्ध में भाग लेने के उदाहरण देखने में नहीं आये। उसने बादशाह जहांगीर के कोप-भाजन सरदार महावतख़ां को अपने यहां रखकर शरणागतवत्सलता का परिचय दिया। मुंहणोत नैणसी की ख्यात से यह अधिक पाया जाता है कि उसने सोनगरे चौहानों से ८४ गांव छीन लिये थे[2]। उसने शाही दरबार से अपना संपर्क न बढ़ाया। यदि वह अन्य राजपूत नरेशों की भांति शाही दरबार से सम्बन्ध बढ़ाता, तो बहुत कुछ लाभ उठा सकता था।

जसवंतसिंह

राज्य-प्राप्ति

महारावत सिंहा का देहांत होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र जसवंतसिंह वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) के लगभग देवलिया-राज्य का स्वामी हुआ[3]।

वा यो हरेत वसुधरा षष्टी वष सहस्राणी वीष्टायां जायते करमी संवत् १६७६ वरषे काती सुद ११ वार चोम दीने······।

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

(१) मूललेख के लिए देखो ऊपर पृ० १२३ टि० ४।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६३।

(३) महारावत जसवंतसिंह के नाम का एक ताम्रपत्र वि० सं० १६७३ वैशाख

बादशाह जहांगीर से वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) में संधि होने के पीछे उदयपुर का महाराणा अमरसिंह (प्रथम) पांच वर्ष तक जीवित रहा। उसको बादशाह से संधि करने से इतनी ग्लानि हुई कि उसने राज्य-भार अपने ज्येष्ठ राजकुमार कर्णसिंह को सौंपकर एकांत-वास स्वीकार कर लिया। वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२०) में उसका देहांत होने पर कुंवर कर्णसिंह महाराणा हुआ। उसने अपना समय देश को समृद्ध करने में लगाकर अन्य बाहरी राज्यों से छेड़-छाड़ न की। वि० सं० १६८४ कार्तिक वदि ३० (ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर) को बादशाह जहांगीर का देहांत हो गया और उसका पुत्र खुर्रम, शाहजहां नाम से बादशाह हुआ। उसी वर्ष के फाल्गुन (ई० स० १६२८ मार्च) मास में महाराणा कर्णसिंह का भी परलोकवास हो गया और उसका कुंवर जगतसिंह उदयपुर राज्य का स्वामी हुआ। बादशाह जहांगीर के पिछले दिनों में शाहज़ादगी के समय खुर्रम विद्रोही होकर उदयपुर में रहा था, इसलिए महाराणा जगतसिंह (प्रथम) बादशाह शाहजहां को अपने अनुकूल समझ राज्यसिंहासन पाते ही बादशाह जहांगीर के वि० सं० १६७२ (ई० स० १६१५) के फ़रमान के अनुसार डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया के राज्यों को अपनी अधीनता में लाने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु उन (डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया के राज्यों) को महाराणा के अधीन होना स्वीकार न था, इसलिये वे अपने-

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह (प्रथम) से महारावत का विरोध होना

वदि ३० (ई० स० १६१६ ता० ६ अप्रेल) का मिला है, जिसमें जोशी श्रीकंठ को अरणोद गांव में ज़मीन बीघा ३५ पैंतीस मंदाकिनी पर सूर्य-ग्रहण में दान देने का उल्लेख है। इस ताम्रपत्र में वैशाख वदि ३० को सोमवार लिखा है, परंतु उस दिन सोमवार नहीं, शनिवार था और सूर्य-ग्रहण भी न था। ग़यासपुर की बावड़ी के वि० सं० १६८४ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६२७ ता० ८ अप्रेल) के शिलालेख से प्रकट है कि उस समय महारावत सिंहा विद्यमान था। ऐसी अवस्था में उस शिलालेख से ११ वर्ष पूर्व जसवंतसिंह (सिंहा का पुत्र) महारावत नहीं हो सकता एवं वार और ग्रहण का मिलान न होने से इस ताम्रपत्र की वास्तविकता में संदेह है।

अपने राज्यों का कुंवर कर्णसिंह के नाम फ़रमान होने के समय से ही शाही दरबार से अपना पृथक् संबंध स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। महारावत सिंहा के देहांत के पीछे शाहजहां के राज्य-काल में महारावत जसवंतसिंह भी दरबार में महाबतख़ां[1] की प्रधानता समझ महाराणा की इच्छा के विरुद्ध चलने लगा, क्योंकि बसाड़ और अरणोद के परगने कर्णसिंह के नाम लिखे जाने से वह (जसवंतसिंह) मेवाड़वालों से प्रसन्न न था।

महाराणा कर्णसिंह के समय से ही बसाड़ परगने के मोड़ी (पानमोड़ी) गांव के थाने पर रावत जसवंतसिंह शक्तावत[2] (नरहरदास का पुत्र) नियत था। महारावत जसवंतसिंह ने मंदसोर के फ़ौजदार जांनिसारख़ां को बहकाया[3] कि बसाड़ का परगना उपजाऊ है, इसलिए उसे जागीर में लिखवालो। इसपर उसने प्रयत्न कर बसाड़ के परगने का बादशाह शाहजहां से अपने नाम फ़रमान करवा लिया, परन्तु जसवन्तसिंह शक्तावत ने

(१) इसका असली नाम ज़मानाबेग था और यह काबुल-निवासी ग़ोरबेग का पुत्र था। यह बादशाह अकबर के समय पांचसौ सवारों का मंसबदार बना और बादशाह जहांगीर के समय बहुत उच्च पद पर पहुंच गया था। पीछे से बादशाह की इसपर अप्रसन्नता हुई, जिससे यह कुछ समय तक इधर-उधर भटकता रहा। फिर शाहजहां के बादशाह होने पर पुनः इसे उच्च पद प्राप्त हुआ। वि० सं० १६९१ (ई० स० १६३४) में दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई।

(२) रावत जसवंतसिंह शक्तावत, उदयपुर के महाराणा उदयसिंह के पुत्र और प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तिसिंह का प्रपौत्र और अचलदास का पौत्र था। अचलदास का पुत्र नरहरदास हुआ, जिसका ज्येष्ठ पुत्र जसवंतसिंह था। इसके वंशजों में मुख्य बानसी के रावत हैं, जो प्रथम वर्ग के सरदार हैं। मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में शक्तिसिंह के वंशजों का वंशवृक्ष दिया है (ख्यात; प्रथम भाग पृ० ६७)। उसमें अचलदास के पुत्रों में से केवल नारायणदास और केसरीसिंह का उल्लेख कर उनके वंशजों के ही नाम दिये हैं, परंतु बानसी ठिकाने की ख्यात से स्पष्ट है कि अचलदास के ११ पुत्र थे, जिनमें से नरहरदास उस(अचलदास)का उत्तराधिकारी हुआ। उसमें केसरीसिंह का नाम नहीं है, जो संभवतः ख्यात-लेखकों की असावधानी के कारण छूट गया हो।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ९६। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०४७।

वहां उसका अधिकार न होने दिया। फिर जब जांनिसारखां उक्त परगने पर अधिकार करने के लिए अपनी सेना लेकर गया, उस समय महारावत जसवंतसिंह ने भी अपने राजपूत उसके साथ कर दिये। इसपर जसवंतसिंह शक्तावत मोड़ी के थाने के राजपूतों को लेकर जानिसारखां से भिड़ गया, जिसमें वह (जसवंतसिंह शक्तावत) अपने कुटुंबी कान्ह, सादूल (नरहरोत), जगमाल (बाघावत), पीथा (बाघावत) एवं पूरबिया सबलसिंह आदि सहित मारा गया और महारावत के भी कई आदमी काम आये[1]। महाराणा को जांनिसारखां और महारावत जसवंतसिंह के राजपूतों के मोड़ी के थाने पर चढ़ आने और उसमें शक्तावत जसवंतसिंह के काम आने का समाचार सुनकर बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने मंत्री अक्षयराज[2] को देवलिया पर सेना लेकर जाने की आज्ञा दी[3] एवं उधर बादशाह से जांनिसारखां की ज्यादती की शिकायत भी करवाई।

जब जांनिसारखां की ज्यादती की शिकायत बादशाह शाहजहां के पास महाराणा के वकीलों-द्वारा पेश हुई तो उसने जांनिसारखां के नाम

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६६। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५७।

(२) यह ओसवाल जाति के कावड़िया गोत्र के प्रसिद्ध महाजन भामाशाह का पौत्र और जीवाशाह का पुत्र था (देखो, मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जिल्द १, पृ० ४७५, जि० २ पृ० ६६२-४)।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६६। नैणसी का यह भी कथन है कि महाराणा की आज्ञा पाकर अक्षयराज ससैन्य धरियावद तक पहुंच गया था, परंतु आगे नहीं बढ़ा। संभव है शाही दरबार में महारावत का पक्ष होने से देवलिया पर सेना भेज अधिकार करने में उसे बादशाह की अप्रसन्नता का भय हुआ हो; अतएव मुसाहबों के निवेदन करने पर महाराणा ने देवलिया पर सेना भेजना स्थगित रख, जांनिसारखां और महारावत की अनुचित कार्यवाही की शाही दरबार में शिकायत कर पहले बसाड़ पर अधिकार करना और फिर शक्तावत जसवंतसिंह का बदला लेने के लिए देवलिया पर सेना भेजना ठीक समझा हो।

आज्ञा-पत्र भेजा कि वह बसाड़ परगने पर दख़ल न करे और महाराणा के नाम ता० १७ आज़र सन् जुलूस १ (हि० स० १०३८ ता० १२, रबी उस्सानी = वि० सं० १६८५ मार्गशीर्ष सुदि १३ = ई० स० १६२८ ता० २६ नवम्बर) को महाराणा के नाम इस आशय का फ़रमान लिखा—"हमारे अहलकारों को यह मालूम न था कि परगना बसाड़ उस(महाराणा)की अगली जागीर में शामिल है, इसलिए जांनिसारख़ां की जागीर में बहाल किया गया था। अब यह बात मालूम होने पर पहले के अनुसार बसाड़ का परगना उस(महाराणा)को प्रदान किया जाता है और जांनिसारख़ां को दूसरी जागीर दी जावेगी। इस मामले में जांनिसारख़ां के नाम फ़रमान जारी हुआ है कि परगना बसाड़ उस(महाराणा)से ताल्लुक़ रखता है, इस वास्ते उसको उस(महाराणा)के क़ब्ज़े में छोड़कर इस बाबत लड़ाई-झगड़ा न करे। उस लड़ाई और फ़िसाद से जो उस(महाराणा)के आदमियों और जांनिसारख़ां के बीच हुआ, बादशाही लोगों को ताज्जुब हुआ। जब कि उस-(महाराणा)का काका और वकील शाही दरबार में विद्यमान थे, उचित था कि पहले इस मामले को शाही दरबार में पेश किया जाता और फिर जैसा हुक्म होता वैसा करते। विश्वास है कि उस(महाराणा)को इस कार्यवाही पर इत्तिला न होगी। मुनासिब है कि वह अपने आदमियों को तब तक रोके, जब तक कि ऐसे मामले शाही दरबार में पेश न हो जायं[1]।"

शाही दरबार से बसाड़ के परगने पर अधिकार बनाये रखने का महाराणा ने पुनः फ़रमान लिखवाकर वहां अधिकार कर लिया,

---

(१) मूल फ़रमान के लिए देखो वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०५८-६।

(२) बसाड़ का परगना वि० सं० १६६४ (ई० स० १६३७) तक महाराणा के अधिकार में रहा। फिर बादशाही अफ़सर पैज़ारख़ां (जांनिसारख़ां) ने महाराणा के सरदार रावत केसरीसिंह शक्तावत को मारकर वहां पर अधिकार जमाया (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ७२)। महाराणा जगतसिंह की नीति से बादशाह शाहजहां थोड़े ही समय बाद अप्रसन्न हो गया था। उसने वि० सं० १६६४ (ई० स० १६३७) में फूलिया, जीरण, भैंसरोड, नीमच, बसाद, सुणोर और डूंगरपुर को मेवाड़ से पृथक्

महाराणा जगतसिंह का महारावत को उदयपुर में बुलाकर मरवाना

परंतु उसके हृदय में जांनिसारख़ां के साथ बसाड़ पर अधिकार करने में महारावत जसवंतसिंह के अपने आदमी भेजने की बात खटकती थी। उसने इस बात को दबाकर जसवंतसिंह शक्तावत का बदला लेने के लिए महारावत को उदयपुर बुलाया। इसपर महारावत अपने ज्येष्ठ पुत्र महासिंह को साथ लेकर उदयपुर गया। महाराणा ने उसका चंपा बाग़ में मुक़ाम करवाया और एक दिन रात्रि के समय राठोड़ रामसिंह[1] को सेना-सहित भेजकर बाग़ पर घेरा दिलवा दिया। महारावत भी मरने-मारने का इरादा कर अपने राजपूतों के साथ महाराणा की सेना के सम्मुख हुआ और कुंवर महासिंह सहित वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ मारा गया[2]। प्रतापगढ़ राज्य की

कर दिये थे. (वही; पृ० ७२)। केसरीसिंह शक्तावत के लिए देखो ऊपर पृ० १२८ टिप्पण २।

(१) राठोड़ रामसिंह, जोधपुर के राव चंद्रसेन का प्रपौत्र, उग्रसेन का पौत्र और कर्मसेन का पुत्र था। वह महाराणा जगतसिंह के साथ रिश्तेदारी होने से मेवाड़ में जाकर रहा था और वहां उसे जोजावर का पट्टा जागीर में मिला था। मेवाड़ में रहते समय उसने कई युद्धों में भाग लिया था। स्वभाव का वीर होने के कारण महाराणा के दरबार में उसका अच्छा सम्मान था। महाराणा की सेवा त्यागकर बादशाह शाहजहां के चौदहवें सन् जुलूस (वि० सं० १६९७ = ई० स० १६४०) में वह शाही दरबार में जाकर मंसबदार बना। प्रारंभ में उसको एक हज़ारी ज़ात व छः सौ सवारों का मंसब मिला। फिर बढ़ते-बढ़ते शाहजहां के समय में उसका मंसब तीन हज़ार ज़ात और पंद्रह सौ सवारों तक पहुंच गया। उसने शाही सेना में रहकर कई युद्धों में पूर्ण वीरता प्रदर्शित की। वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) में जब शाहजहां के पुत्रों में परस्पर कलह का सूत्रपात हुआ, तब समूनगर के युद्ध में वह शाहज़ादे दाराशिकोह के पक्ष में शाही सेना में रहकर शाहज़ादे औरंगज़ेब और मुराद के मुक़ाबले में बड़ी वीरता से युद्ध करता हुआ मुराद के तीर से मारा गया। अकाल के समय उसने क्षुधातुर लोगों को रोटियां बांटी थीं, जिससे वह 'रामसिंह रोटला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अब बूंदी राज्य में उसके वंशजों का एक ठिकाना 'बरवाड़ा' है।

(२) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ४२२।

ख्यातों में इसका अधिक वर्णन नहीं है। वहां केवल महारावत और कुंवर महासिंह के उदयपुर में काम आने का ही उल्लेख है। कविराजा बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें'—नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त युद्ध में महारावत जसवंतसिंह की राठोड़ सुजानसिंह भगवानदासोत के हाथ मृत्यु हुई[1]।

'वीरवीनोद' के कर्त्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने अपने इतिहास में इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

"देवलिया का जसवंतसिंह, सिंहा की गद्दी पर वि० सं० १६७६ (हि० स० १०३१=ई० स० १६२२) में बैठा था। जब वह महाबतखां की तरफ़दारी से उदयपुर के हुक्म की बरख़िलाफ़ी कर सरकशी करने लगा, तब कई दफ़े लिखा गया, लेकिन उसने हिमायत से जगतसिंह के हुक्म को बिलकुल न माना। महाराणा ने किसी आदमी को भेजकर तसल्ली के साथ रावत को उदयपुर बुलवाया। जसवंतसिंह के दिल में महाराणा की तरफ़ से खटका होने के कारण अपने छोटे बेटे हरिसिंह को देवलिया का कुल बंदोबस्त सौंपकर वह बड़े बेटे महासिंह तथा एक हज़ार अच्छे राजपूतों के साथ उदयपुर गया और चंपा बाग़ में डेरा किया, जो महाराणा कर्णसिंह का बनवाया हुआ शहर से एक मील के फ़ासले पर पूर्व की तरफ़ है। जसवंतसिंह को महाराणा ने यहां की फ़र्मांबर्दारी के ख़िलाफ़ न रहने की बाबत बहुतसी नसीहत की, लेकिन उसके दिल में महाबतखां की हिमायत का ज़ोर भरा हुआ था, जिससे महाराणा की मनशा से ख़िलाफ़ जवाब दिया। महाराणा ने अपने सलाहकारों से पूछा तो सबने अर्ज़ की कि यदि जसवंतसिंह यहां से चला गया तो आपकी हुकूमत से बिल्कुल अलहदा हो जावेगा। तब महाराणा ने अपने सलाहकारों के कहने पर अमल करके अपने बड़प्पन को बट्टा लगानेवाली बात यानी जसवंतसिंह को मार डालना इख़्तियार किया।

"महाराणा को मुनासिब था कि जसवंतसिंह को अपने यहां से विदा

(१) संख्या, ३३७।

करके देवलिया पर फ़ौज भेजते, लेकिन उन्होंने धोखे के साथ कार्रवाई की और रामसिंह राठोड़ को फ़ौज देकर आधी रात के वक़्त चंपा बाग़ में महारावत को घेर लेने का हुक्म दिया। रामसिंह ने वैसा ही किया। जसवंतसिंह मय अपने कुंवर महासिंह व एक हज़ार राजपूतों के अच्छी तरह लड़कर मारा गया। महाराणा के बहुत से राजपूत काम आये। यह झगड़ा विक्रमी १६८५ (हि० १०३८ = ई० १६२८) में हुआ[1]।"

'वीरविनोद' के ग्यारहवें प्रकरण में प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास के प्रसङ्ग में उक्त कविराजा ने इस घटना पर अधिक प्रकाश डालकर लिखा है—"बादशाह ने जांनिसारख़ां को लिख भेजा कि परगने बसाड़ पर दख़ल न करे। शाहजहां जानता था कि कैसी-कैसी ताक़त काम में लाने पर महाराणा उदयपुर का फ़साद दूर हुआ है। अब छोटी बात के लिए उसी आग को भड़काना अक़्लमंदी का काम नहीं। इसके सिवाय बादशाह का भी शुरू तख़्तनशीनी का अहद था। इसलिए जांनिसारख़ां को धमकाया और महाराणा को नसीहतों का फ़रमान लिख भेजा, परंतु देवलिया के रावत जसवंतसिंह से महाराणा बहुत नाराज़ रहे और उससे जसवंतसिंह शक्तावत का बदला लेना चाहा। महावतख़ां की हिमायत के सबब महाराणा को देवलिया पर फ़ौजकशी करने का मौक़ा न मिला। तब धीरे-धीरे रावत जसवंतसिंह को धोखा दिया और विक्रमी १६६० (?) [हि० १०४३ = ई० १६३३] में उसे मय उसके बेटे महासिंह के उदयपुर बुलाया। उसे पूरा विश्वास नहीं था, इससे वह एक हज़ार चुने हुए राजपूत साथ ले गया और चंपा बाग़ में डेरा किया। राठोड़ रामसिंह कर्मसेनोत को, जो महाराणा की बहिन का बेटा था, महाराणा ने रात के वक़्त फ़ौज देकर भेजा। उसने चम्पाबाग़ पर घेरा डाला और तोपें व सोकड़ों[2] की गाड़ियां मोर्चों पर जमा दीं। रावत जसवंतसिंह

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३१८-६।

(२) इन गाड़ियों में गोली बारूद से भरी हुई बंदूकें रहती थीं, जिनकी संख्या सौ तथा दो सौ तक भी होती थी। जब शत्रु-सैन्य से लड़ाई का अवसर होता, उस समय चारों तरफ़ से घेरा डालने के लिए ऐसी गाड़ियां खड़ी करदी जातीं

केसरिया पोशाक के साथ सिर पर सेहरा और तुलसी की मंजरी लगाकर चंपा बाग़ से बाहर निकला और अपने साथियों-सहित महाराणा की फ़ौज पर टूट पड़ा, परंतु तोप और सोकड़ें की गाड़ियों के कारण सबके सब भुन गये, तो भी किसी-किसी ने रामसिंह को ललकारा और तलवारें चलाईं। आख़िरकार महारावत जसवंतसिंह अपने बेटे महासिंह और एक हज़ार राजपूतों-सहित बहादुरी के साथ मारा गया और महाराणा की इस दग़ोदिही से बड़ी बदनामी हुई[1]।"

'हरिभूषण महाकाव्य' का कर्ता कवि गंगाराम इस युद्ध का विचित्र प्रकार से वर्णन करता है। उसका कथन है—"महारावत जसवंतसिंह महाराणा जगतसिंह के दरबार में आधे सिंहासन पर बैठा हुआ था, उस समय कुछ सरदारों ने जसवंतसिंह को नज़राना कर दिया, जिससे महाराणा क्रुद्ध हो गया और महारावत को मारने की गुप्त मन्त्रणा कर उसने राठोड़ रामसिंह को इस काम के लिए नियत किया। महाराणा की आज्ञा पाकर रामसिंह देवलिया की तरफ़ विदा हुआ और उसने गुप्त रूप से देवलिया जाने का मार्ग रोक दिया। महारावत भी देवलिया जाने को आगे बढ़ा और मार्ग में रामसिंह को लड़ने के लिए उद्यत देख विश्वासघाती जान उसने उससे युद्ध न किया; किंतु कुंवर महासिंह के साथ उस(रामसिंह)का युद्ध हुआ, जिसमें वह (रामसिंह) परास्त हुआ। इसपर महाराणा ने अप्रसन्न होकर रामसिंह को अपने यहां से निकाल दिया[2]।"

और उनमें क्रमानुसार बंदूकें इस प्रकार सटी हुई रहती थीं कि एक बार बत्ती लगाने पर सब बंदूकें एक साथ चल जायं। इन बंदूकों से निकली हुई गोलियां दूर-दूर तक जाकर शत्रु-सैन्य को विदलित करती हुई अधिकांशतः उन्हें नष्ट कर देती थीं।

(वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६०)।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६०।

(२) एकस्मिन् समये रराज विलसन् राणासभायां नृपः
कान्त्या भूमिभृतोऽपरानधरयंस्तस्यार्धसिंहासने।

'प्रतापगढ़ राज्य की ख्यात[1]', बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें[2]',

नानादेशनिवासिनां क्षितिभृतां भृत्यैश्च मुख्यैर्यदा
नत्वोपायनमग्रतो विनिहतं श्रीदेवलेन्द्रप्रभोः ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा क्रोधहुताशने निपतितः श्रीचित्रकूटाधिपोऽ-
प्येतत्कर्णसूतो बभूव बलिनां कर्णेषु कर्णेजपः ।
वीरः कोऽपि ममास्ति सांप्रतममुं यो हन्ति मध्येसभं
विश्वासेन समुत्थितोऽनुचितकृद्रामः स्वयं सज्जितः ॥ ४ ॥

दत्ताज्ञोऽथ जगाम देवलपुरं पन्थानमग्रे ततो
बध्वा चोरसखश्च रामनृपतिर्विश्वासघातोत्सुकः ।
दृष्ट्वा श्रीजसवंतमागतमयं खड्गैकमित्रं रणे
निस्त्रिंशैः प्रतिबोधयन्सचकितः संप्राप तस्यान्तिकम् ॥ ५ ॥

संख्यं तत्र तयोरभून्मिलितयोरन्योन्यमत्यद्भुतं
वीराणां तदनन्तरं कथमिदं को वेति कस्यासि रे ।
भूयः श्रीजसवंतसिंहविभूनेत्येक्तुं तदोवाचसः
कुत्तो राणनृपोऽहमस्मि सुभटो रामोऽरिहिंसाग्रणीः ॥ ६ ॥

संग्रामे किल भारते बहुतरं कृत्वा रणं वीर्यवान्
गाङ्गेयो विरराम चार्जुनमपि दृष्ट्वा शिखण्डान्वितम् ।
खड्गेनैव हतं हि रे तव यशस्तस्मान्मया सङ्गरे
विश्वासोपहतस्य दुर्मुख मुखं नालोकनीयं च ते ॥ ७ ॥

पश्चान्माहकुमारकेण बहुभिर्विक्रान्तमन्तर्लस-
न्मानेन प्रभुणा भटैरथ तदा भग्नः स रामः स्वयम् ।
तच्छ्रुत्वाऽऽशु चुकोप राणनृपतिर्निष्कासयामास तं
देशान्म्लेच्छपुरेषु खेलतितरामद्याप्यगस्तीशवत् ॥ ८ ॥

सर्ग ८ ।

(१) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ७ ।

(२) संख्या ३३७, १११५, १५९९-१६०१ ।

'वीरविनोद'[1], 'मालकम की रिपोर्ट'[2], एवं 'प्रतापगढ़ राज्य के गैज़ेटियरों'[3], आदि में महारावत जसवंतसिंह का उदयपुर में महाराणा जगतसिंह की सेना से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है, जिसका समर्थन नैणसी की ख्यात से भी होता है[4], जो उपर्युक्त पुस्तकों में अधिक प्राचीन और महारावत हरिसिंह के समय की संगृहीत है। इनके अतिरिक्त 'अमरकाव्य'[5] और 'राजप्रशस्ति महाकाव्य'[6] में भी उसके महाराणा राजसिंह से लड़कर मारे

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३१८-६ और १०६०।

(२) सर जॉन मालकम; रिपोर्ट ऑन दि प्रॉविन्स ऑव् मालवा एंड एड्ज्वाइनिंग डिस्ट्रिक्ट्स; पृ० २२४।

(३) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ७६। मेजर के० डी० अर्सेकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० १९८।

(४) प्रथम भाग, पृ० ९६।

(५) पूर्णे षोडशके शते च उदिते पंचाग्रकाशीतिके
राणोक्त्योत्कटरामसिंह इति यो राठोडचूडामणिः।
प्रोद्दंडं जसवंतरावतपरं कुंतैर्जघान द्रुतं
वीरं देवलियाप(तिं) किल महासिंहाख्यपुत्रान्वितं ॥
तदनुदेवलियानगरस्य वा समररंगनटैश्च महाभटैः ॥
रचितमेव विखंडनमंजसा जनगणैश्च विलुंटनमुत्कटैः ॥
स रामसिंहो जसवंतसंज्ञं तं रावतं पुत्रयुतं निहत्य।
चक्रे जगत्सिंहनृपस्य तोषं संतोषपोषं समवाप तस्मात् ॥

अमर काव्य।

(६) जगत्सिंहाज्ञया यातो राठोडोरामसिंहकः।
प्रतिदेवलियां सेनायुक्तो रावतमुद्भटं ॥ २० ॥
जसवन्तं मानसिंहपुत्रयुक्तं जघान सः।
पुर्यां देवलियायां च लुंटनं रचितं जनैः ॥ २१ ॥

सर्ग पांचवां।

राजप्रशस्ति महाकाव्य में कुंवर मानसिंह के महारावत जसवन्तसिंह के साथ

जाने का उल्लेख है। इसके विपरीत 'हरिभूषण महाकाव्य' में कवि गंगाराम ने महारावत और कुंवर महासिंह की मृत्युवार्त्ता को छोड़कर महारावत का रामसिंह राठोड़ से युद्ध न करने एवं महासिंह का रामसिंह से युद्ध होने पर उस(रामसिंह)के परास्त होने का वर्णन करते हुए महाराणा का रामसिंह से अप्रसन्न होकर उसको अपने यहां से निकालने का वर्णन किया है, जो माननीय नहीं हो सकता, क्योंकि उसका कथन परंपरागत जन-श्रुति से भी विरुद्ध है। कवि गंगाराम ने अपने काव्य में देवलिया के किसी राजा का मृत्यु-प्रसङ्ग नहीं दिया है, जिससे हमारा तो यही अनुमान है कि नाटकों की भांति उसने अपनी रचना को सुखान्त बनाने का ही लक्ष्य रखा था, जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं[1]।

महारावत जसवंतसिंह, उदयपुर में महाराणा की सेना से किस वर्ष लड़कर मारा गया- इस विषय में भी मत भेद है। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातें[2], मालकम की रिपोर्ट, प्रतापगढ़ राज्य के गैज़ेटियर[3], कविराजा बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें[4]' आदि में इस घटना का वि० सं० १६९० (ई० स० १६३३) में होना लिखा है; परंतु 'अमरकाव्य'[5] और राजप्रशस्ति महाकाव्य[6] में इस युद्ध का वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में होना बतलाया है। स्वयं कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद में राजप्रशस्ति

काम आने का उल्लेख है, जो ठीक नहीं है। मानसिंह, महारावत प्रतापसिंह के समय तक विद्यमान था। अमरकाव्य से स्पष्ट है कि महारावत जसवन्तसिंह के साथ कुंवर महासिंह काम आया था, जैसा कि उपर्युक्त अवतरण में उल्लिखित है।

(१) देखो ऊपर पृ० ११४।

(२) प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी ख्यात; पृ० ७।

(३) मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट, पृ० १९८।

(४) संख्या ३३७, १११२ और १२९९।

(५) देखो; ऊपर पृ० १३६, टिप्पण ५।

(६) देखो; ऊपर पृ० १३६, टिप्पण ६।

आदि के अनुसार एक स्थल पर वि० सं० १६८५[1] और दूसरे स्थल पर वि० सं० १६६०[2] में इस घटना के घटित होने का उल्लेख किया है। इस विभिन्न कथन का निर्णय करने के लिए और भी प्रमाणों की आवश्यकता है, परंतु वे अप्राप्य हैं। ऐसी स्थिति में अमरकाव्य और राजप्रशस्ति महाकाव्य में वर्णित संवत् १६८५ ही ठीक मानना पड़ेगा, क्योंकि उपर्युक्त काव्य इस घटना के थोड़े ही समय पीछे के बने हुए हैं एवं उनमें प्रत्येक घटनाएं यथा क्रम लिखी गई हैं।

महारावत जसवंतसिंह के आठ राणियां थीं। उसके महासिंह, हरिसिंह, मानसिंह[3], केसरीसिंह[4], उदयसिंह नामक पांच कुंवर और रूपकुंवरी तथा सूरजकुंवरी नामक दो कन्याएं हुई[5]।

महारावत की संतति आदि

उसने थोड़े ही समय तक राज्य किया, इसलिए उसकी जीवन संबंधी महत्वप्रद घटनाओं पर प्रकाश डालना नितान्त असंभव है, तो भी यह कहा जा सकता है कि

(१) देखो; ऊपर पृ० १३३।

(२) देखो; ऊपर पृ० १३३।

(३) मानसिंह को अरणोद की जागीर मिली थी और वह महारावत प्रतापसिंह के समय तक विद्यमान था। प्रतापप्रशस्ति (खंडित काव्य) में इसकी बहुत कुछ प्रशंसा की गई है।

(४) इसके वंशजों के अधिकार में झांतला का ठिकाना प्रतापगढ़ राज्य के प्रथम वर्ग के सरदारों में है।

(५) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ७। बड़वे की ख्यात में सूरजकुंवरी का नाम न होकर 'हरकुंवरी' नामक दूसरी कुंवरी बतलाई है, पृ० ४। प्रतापगढ़ राज्य की उपर्युक्त पुरानी ख्यात और बड़वे की ख्यात में जो राणियों के नाम दिये हैं, उनमें से कुछ नाम नहीं मिलते और न उनके पिता आदि के नामों का ही मिलान होता है, परन्तु उसके एक राणी चंपाकुंवरी, चौहान ख़ान की पुत्री थी, जिसने देवलिया में गोवर्धननाथ का मंदिर बनवाकर वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) में उसकी प्रतिष्ठा करवाई थी। इस राणी का नाम दोनों ख्यातों में मिलता है और गोवर्धनाथ के मंदिर की प्रशस्ति में भी यही नाम दिया है और महारावत हरिसिंह का उक्त राणी के उदर से उत्पन्न होना बतलाया है।

वह क्षात्र-धर्म से पराङ्मुख न था और उसमें स्वात्माभिमान की मात्रा विद्यमान थी। महाराणा की विशाल सेना-द्वारा अचानक रात्रि में घेरे जाने पर भी वह विचलित न हुआ और वीरता पूर्वक लड़कर मारा गया। वह भाषा साहित्य का ज्ञाता और कवि था। प्रतापगढ़ राज्य से उसके रचे हुए कुछ दोहों का संग्रह प्राप्त हुआ है, जिससे जान पडता है कि वह शृङ्गार युक्त रचना करता था और उसकी रचना सुंदर होती थी[1]।

---

(१) महारावत जसवंतसिंह-रचित दोहों को उसके पौत्र महारावत प्रतापसिंह ने एकत्रित करवाकर अपने पढ़ने के लिए सुन्दर चिकने कागज पर पुस्तकाकार लिखवाया था जिसके अंतमें लेखक का नाम और संवत् नीचे लिखे अनुसार दिया है—

"इति श्रीमन्महाराजाधिराजमहाराजश्रीजसवन्तस्यंघजीकृत दूहा सम्पूर्ण। महादीवाण श्रीप्रतापसंघजीपठनार्थे विद्याशिरोमणिजी वचनात् लिखितं पन्यास सुन्दरसागरेण। संवत् १७४६ वर्षे चैत्रासितत्रयोदश्याम्"॥

प्रतापगढ के पंडित जगन्नाथ शास्त्री ने उक्त महारावत तथा उसके पौत्र महारावत प्रतापसिंह-रचित दोहों को वहां के वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी की आज्ञानुसार वि० सं० १९९५ (ई० स० १९३८) में 'काव्य-कुसुम' नाम से प्रकाशित किया है, जिनके अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि महारावत जसवंतसिंह की भाषाकाव्य की रचना में अच्छी गति थी। उसके दोहों में अधिकांश नायका भेद और नख शिख वर्णन है। रचना अलंकारयुक्त और अनूठी उपमाओं से पूर्ण है। उदाहरण के लिए नीचे उसके कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं—

मुकतमाल हिय देत रुचि, दृग पहुंचे स्रुतिपार।
ता परि हू मोहति रहै, सो यह कोन विचार॥

यह अचरज देख्यौ दृगनि, कहि आवत कछु नांहि।
बिजुली में वारिज प्रगट, जुगल मीन तिहि मांहि॥

प्रेम-लाज-पानिप-भरे, भरे-तरुनता जोत।
अनिमिष लोचन रस-भरे, सौहें कापर होत॥

हरिभूषण महाकाव्य में उक्त महारावत को शत्रुओं पर कुल्हाड़ा चलाने में कुशल, स्वरूपवान, स्वाभिमानी और दानी राजा बतलाया[1] है, जो संभव है, परंतु कवि गंगाराम का महारावत जसवंतसिंह के लिए यह कथन कि प्रतिदिन एक करोड़ पैदल और एक लाख कच्छी सवार नक्कारे की आवाज होते ही उसके चरणों में सिर नमाते थे, अतिशयोक्तिपूर्ण है।

सुधा झरत ससि सब कहैं, नई रीति यह आहि।
चंद लगे जु चकोर ह्वै, विष डारत ये ताहि॥

तरुनि सरोवर कुच कमल, अलि ऊपर ये स्याम।
कैधौं सरवस आप धरि, छाप दई है काम॥

भौंह धनुष मनमथ गहै, तिरछी चितवनि बानि।
फूलन को आवध कहा, ऐसे करत निदानि॥

मुग्धा-तन त्रिवली बनी, रोमावलि के संग।
डोरी गहि पौरी मनौं, अब ही चढ्यौ अनंग॥

अरुन वदन अति रोस ते, सतर भौंह नहीं धीर।
लाल कमल ता पर मनौं, भौंर रहे करि भीर॥

काव्यकुसुम।

(१) आसीच्छ्रीजसवन्तसिंहनृपतिः सिंहात्मजो वीर्यवा-
न्वैरिव्रातकुठारपातकुशलः स्फूर्जत्प्रतापानिलः।
नेमुः कोटिपदातयः स्वगृहिणः श्रुत्वैक दम्मामकं
लक्षं कच्छतुरङ्गमादिनिवहा नित्यं हि यस्य प्रभोः॥ १॥

कान्त्या मन्मथमिङ्गितैर्मधुरिपुं कीर्त्या सुधांशुं धिया
वागीशं बहुना धनेन धनपं वीर्येण जम्भापहम्।
शक्त्या शक्तिधरं क्रुधा हुतवहं मानेन दुर्योधनं।
दानेन प्रचुरेण कर्णमपि यो विस्मारयन् संबभौ॥ २॥

सर्ग आठवां।

हरिसिंह

महारावत हरिसिंह, जसवंतसिंह का दूसरा पुत्र था। उसका जन्म उक्त महारावत (जसवंतसिंह) की राणी चौहान खान की पुत्री चंपाकुंवरी के उदर से हुआ था[1]। जब महारावत जसवंतसिंह, महाराणा जगतसिंह के बुलाने पर उदयपुर गया, तब वह अपने ज्येष्ठ पुत्र महासिंह को तो अपने साथ ले गया था और छोटे पुत्र हरिसिंह को महाराणा की तरफ़ से धोखा होने के ख़याल से देवलिया में छोड़ गया था[2]। वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में उदयपुर में महाराणा की सेना-द्वारा जसवंतसिंह और कुंवर महासिंह के मारे जाने का समाचार देवलिया में पहुंचने पर धमोतर के ठाकुर जोधसिंह (गोपालदास का पुत्र) ने हरिसिंह की गद्दीनशीनी की रसम पूरी की[3]।

राज्य प्राप्ति

उस समय उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के कोप से बचने का महाराव के लिए बादशाही दरबार की शरण प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन न था। इसलिए गद्दीनशीनी के उपरांत ठाकुर जोधसिंह[4] ने शीघ्रता पूर्वक उसको शाही दरबार में लेजाना ही उचित समझा

महाराणा का देवलिया पर सेना भेजना

---

(१) श्रीसिंहरावतजनुर्जसवन्तपत्नी
चौहाणवंशवरभूषणखानपुत्री।
श्रीरावतेन्द्रहरिसिंहकरावमाता
चाम्पा इति व्यधित सा त्रिदशप्रतिष्ठाम्॥

देवलिया के गोवर्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३१८।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ९६। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६०।

(४) एक ख्यात में महारावत हरिसिंह के समय देवलिया पर महाराणा की

क्योंकि वहां महाबतखां की मित्रता के कारण महारावत का भी परिचय था। उधर महाराणा ने, जो देवलियावालों से अत्यंत अप्रसन्न था और उक्त राज्य को नष्ट करना चाहता था, राठोड़ रामसिंह के साथ देवलिया पर सेना रवाना की, जिसने राजधानी देवलिया को लूटकर बरबाद किया[1]। प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त ख्यातों में देवलिया पर महाराणा की सेना जाने का कुछ भी उल्लेख नहीं है, किंतु अमरकाव्य से प्रकट है कि महाराणा की सेना के देवलिया जाने पर वहां वालों ने उसका मुक़ाबला किया था[2]; परंतु महाराणा की बड़ी सेना के आगे उसकी कामयाबी नहीं हुई।

---

* सेना आने के समय उसके साथ धमोतर के ठाकुर गोपालदास का भी नाम दिया है और जोधसिंह को कुंवर लिखा है। वहां यह उल्लेख है कि मेवाड़ की सेना देवलिया में आने पर जब महारावत हरिसिंह दिल्ली गया, उस समय गोपालदास और उसके पुत्र जोधसिंह के अतिरिक्त महारावत का भाई केसरीसिंह भी उसके साथ विद्यमान था। वहां दिल्ली में गायें मारने के सम्बन्ध में क़साइयों से उसका झगड़ा हो गया, जिसमें केसरीसिंह मारा गया। बादशाह ने उक्त स्थान पर गोवध बन्द कर दिया और वहां उसकी आज्ञा से महारावत ने राममंदिर बनवाया। बादशाह अकबर के समय भारत में गौ-बध बन्द हो गया था और शाहजहां ने भी उसका अनुकरण किया था। ऐसी स्थिति में शाहजहां के समय गोवध का जारी रहना और महारावत का, जो शाही दरबार में अपने राज्य की प्राप्ति के लिए गया था, वहां इस संबंध में लड़ाई करना कुछ विपरीत जान पड़ता है। इस विषय में जब तक कोई पुष्ट प्रमाण न मिलें वास्तविकता पर प्रकाश पड़ना असंभव है।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ३१६ और पृ० १०६० । मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ५२२। राजप्रशस्ति महाकाव्य में महाराणा की सेना-द्वारा देवलिया लूटने का निम्नलिखित उल्लेख है—

पुर्यां देवलियायां च लुंठनं रचितं जनैः ॥ २६ ॥

सर्ग पांचवां।

(२) तदनु देवलियानगरस्य वा समरंगनटैश्च महाभटैः।
रचितमेव विखंडनमंजसा जनगणैश्च विलुंठनमुत्कटैः ॥

अमरकाव्य।

वह बादशाह शाहजहां की गद्दीनशीनी का आरंभिक युग था और महाराणा का भी शाही दरबार में अच्छा प्रभाव था। तथापि बादशाह महाराणा से खिंच गया क्योंकि उन्हीं दिनों उस-(महाराणा) ने डूंगरपुर के स्वामी महारावल पुंजराज के समय वहां सेना भेज जंगी कार्यवाही की थी। फलतः बादशाह शाहजहां ने महारावत हरिसिंह को अपने अमीरों में प्रविष्टकर मंसब आदि से उसका सम्मान बढ़ाया[1], एवं शाही सेना

महारावत का शाही सेना के साथ जाकर देवलिया पर अधिकार करना

(१) प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में लिखा मिलता है कि महारावत हरिसिंह के बादशाह के पास जाने पर बादशाह ने उसको सात हज़ारी मन्सब, 'महाराजा-धिराज-महारावत' की उपाधि, निशान आदि प्रदान किये। इस कथन की पुष्टि कैप्टेन सी० ई० येट के 'गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ' से भी होती है। उसमें लिखा है कि शाहजहां ने महारावत हरिसिंह को खासा खिलअत, प्रदानकर नौ लाख रुपये आय की कांठल की जागीर का फ़रमान उसके नाम कर दिया एवं पन्द्रह हज़ार रुपये वार्षिक खिराज़ दाखिल करना स्थिर हुआ। साथ ही 'महाराजाधिराज-महारावत' की उपाधि-सहित सात हज़ारी मन्सब भी उसको मिला और मन्दसोर के हाकिम को मेवाड़ की सेना को हटाकर देवलिया पर उसका अधिकार कराने का हुक्म दिया गया। उसने देवलिया पर अधिकार करने के पीछे बसाड, आमलसर, अमलावदा, पानमोड़ी और मगरोदा पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया (पृ० ७६)। मेजर के० डी० अर्सकिन ने भी अपने 'गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट' (पृ० १६८) में संक्षेप में इन बातों का उल्लेख किया है। इनके विरुद्ध सर जॉन मालकम अपनी रिपोर्ट ऑन दि प्राविंस ऑव् मालवा एंड एडजॉइनिंग डिस्ट्रिक्ट्स (पृ० २२४-५) में महारावत हरिसिंह को बादशाह औरंगज़ेब से सनद, उच्च उपाधि, खिलअत झंडा आदि मिलना लिखता है, किंतु तत्सामयिक फ़ारसी तवारीख़ों बादशाहनामा और औरंगज़ेबनामा में इस सम्बन्ध का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। शाहजहां के समय के मंसबदारों की सूची में भी उसका कहीं नाम नहीं है और न इस सम्बन्ध का कोई फ़रमान प्रतापगढ़ राज्य में विद्यमान है। ऐसी दशा में इसका ठीक निर्णय होना कठिन है तथापि प्रतापगढ़ राज्य में महारावत हरिसिंह के नाम के बादशाह शाहजहां और औरंगज़ेब के समय के कई फ़रमान, शाहजादों के निशान आदि विद्यमान हैं, जिनको देखने से कहा जाता है कि वह बादशाह शाहजहां का विश्वास पात्र था। साथ ही वह शक्तिशाली भी था, जिससे शाहज़ादों ने पारस्परिक युद्ध में उसको अपनी-अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया था। उसके पुत्र प्रतापसिंह और पौत्र

साथ देकर उसको देवलिया पर अधिकार करने को रवाना किया[1]। इसपर महाराणा ने अपनी सेना को देवलिया से हटा लिया। फिर महाराणा ने धरियावद का परगना (जो मेवाड़वालों की तरफ़ से सादड़ी छूट जाने पर भी देवलियावालों के पास चला आता था[2]?) जब्त कर लिया, जिसके लिए महारावत ने शाही दरबार में बहुत कुछ उद्योग किया परंतु उसमें उसको सफलता नहीं हुई।

पृथ्वीसिंह को भी शाही दरबार से मन्सब मिले थे, जिससे अनुमान होता है कि महारावत हरिसिंह को भी कोई मन्सब अवश्य मिला होगा।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६१। नैणसी लिखता है कि महारावत हरिसिंह के बादशाह के पास जाने पर देवलिया महाराणा के अधिकार से निकाल दिया गया एवं महारावत की नौकरी उज्जैन और अहमदाबाद की तरफ़ नियत की गई (ख्यात; प्रथम भाग, पृ० ६७)।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६१। महारावत विक्रमसिंह के समय से ही उसकी मेवाड़ की सादड़ी आदि की जागीर छूट गई थी, फिर धरिआवद उसके वंशजों के पास कैसे रहा, इसका ख्यातों आदि से कुछ पता नहीं चलना। 'वीरविनोद' के उपर्युक्त कथन से तो यह अनुभान होता है कि विक्रमसिंह की मेवाड़ की जागीर में से सादड़ी आदि का कुछ इलाक़ा ही महाराणा उदयसिंह ने जब्त किया होगा और धरियावद आदि का अंश उसके अधिकार में बना रहा होगा, जिससे संतुष्ट न होकर विक्रमसिंह ने कांठल में रहना अख़्तियार किया, परन्तु धरियावद पर उसने अपना अधिकार बनाये रखा और समय समय पर देवलिया के राजाओं की तरफ़ से महाराणाओं को शाही चढ़ाइयों के समय सहायता मिलती रही और इसी कारण से महाराणा प्रतापसिंह, अमरसिंह और कर्णसिंह ने उससे छेड़-छाड़ न की। फिर महाराणा जगत्सिंह ने महारावत हरिसिंह के शाही सेना लेकर पहुंचने पर धरियावद खालसे में मिला लिया, जो लगभग एक सौ वर्ष पीछे देवलियावालों को मेवाड़ की तरफ़ से पुनः प्राप्त हुआ, जिसका सविस्तर वर्णन आगे किया जायगा। कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि महारावत हरिसिंह ने देवलिया पर अधिकार हो जाने के पीछे बत्तीस गांवों में से बारे-वरदां और झांतला परगना मेवाड़ में से दबा लिया था। संभव है मेवाड़ के महाराणाओं पर बादशाह की नाराजगी होने पर उसने शाही फ़रमान के द्वारा ही उन्हें कब्जे में किया होगा, अन्यथा ऐसा होना संभव नहीं है। इस सम्बन्ध में अब तक पर्याप्त और विश्वसनीय सामग्री नहीं मिली है, जिससे निश्चित मत प्रकट किया जा सके।

'वीरविनोद' के कर्ता कविराजा श्यामलदास का कथन है—"महारावत बाघसिंह से लेकर सिंहा तक महाराणा के फ़र्माबर्दार और ख़ैरख्वाह रहे और बड़ी बड़ी लड़ाइयों में बहादुरी दिखलाई। अगर महाराणा जगतसिंह जसवन्तसिंह को धोखे से न मार डालते, तो हरिसिंह महाबतखां का वसीला ढूंढ़कर बादशाही नौकर बनने की कोशिश नहीं करता; क्योंकि डूंगरपुर, बांसवाड़ा और रामपुरा के रईस चित्तौड़ छूटने के बाद अक़बर बादशाह से जा मिले थे, लेकिन देवलियावाले इस बात के इख़्तियार करने को बहुत बुरा समझते थे"[1]।

प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों आदि से यह स्पष्ट नहीं होता कि महारावत हरिसिंह ने शाही सेना की सहायता से किस वर्ष देवलिया पर अधिकार किया, पर मसलाणा (मचलाणा) गांव के वि० सं० १६९९ पौष सुदि ११ (ई० स० १६४२ ता० २१ दिसंबर) के ताम्रपत्र[2] से प्रकट होता है कि उक्त संवत् में महारावत हरिसिंह का वहां पर अधिकार था और उसने उपर्युक्त गांव दान किया। संभव है कि इसके पहले ही वह अपने साथ शाही सेना लाया हो। महाबतखां की, जिसका महारावत के साथ पूरा ताल्लुक था, दक्षिण में वि० सं० १६९१ (ई० स० १६३४) में मृत्यु हुई। ऐसी अवस्था में उसका वि० सं० १६९१ (ई० स० १६३४) के पूर्व ही देवलिया पर अधिकार होजाने का अनुमान होता है। किन्तु बसाड़ और अरणोद के परगने औरंगज़ेब के समय महारावत हरिसिंह को मिलना पाया जाता है, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा।

देवलिया राज्य से मेवाड़ की सेना का उत्पात मिटाने के पीछे महारावत का प्रायः शाही दरबार में आना-जाना होता रहा। वि० सं० १७०१

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६१।

(२) मचलाणा गांव का बाबा हंसपुरी के नाम का ताम्रपत्र। यह ताम्रपत्र इस समय अप्राप्य है। पंडित जगन्नाथ शास्त्री ने हमारे पास इस ताम्रपत्र की प्रतिलिपि भेजी है, जिससे पाया जाता है कि यह ताम्रपत्र जोशी हरजी के दुए से पंचोली गोविंद ने लिखा था।

(ई० स० १६४४) में वह पुनः शाही दरबार में गया और आगरे रहते समय वि० सं० १७०१ चैत्र सुदि ५ (ई० स० १६४४ ता० ३ मार्च) को उसने ठीकरा गांव दुबे जगन्नाथ और इंदर को प्रदान किया था[1]।

प्रतापगढ़ राज्य के पुराने संग्रह में महारावत हरिसिंह के समय के बने हुए कई चित्र हैं, जिनमें एक बादशाह शाहजहां और उस(हरिसिंह)का चित्र है। उस चित्र के पीछे उसी समय की लिखी हुई यह इबारत है कि वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) में बादशाह शाहजहां ने उसे खिलअत, हाथी, घोड़ा, नालकी, सरपेच, हीरे की पहुंचियां, मोतियों की कंठी, आमली, कलंगी आदि प्रदान कीं[2]।

महारावत को शाही दरबार से खिलअत आदि मिलना

इसी वर्ष उक्त महारावत की किसी कार्य के विषय में बादशाह की सेवा में अर्ज़ी पेश होने पर उसके उत्तर में सन् जुलूस २२ ता० २ सफ़र हि० स० १०५६ (वि० सं० १७०५ फाल्गुन सुदि ४=ई० स० १६४६ ता० ५ फरवरी) को शाहज़ादे दाराशिकोह ने बादशाह की आज्ञानुसार महारावत के नाम निम्न लिखित आशय का निशान भेजा—"उसकी दर्ख़्वास्त, जो बादशाह की सेवा में भेजी गई, अवलोकन हो गई है और हमने उस(हरिसिंह)की सहायतार्थ गैरतख़ां को लिख दिया है, जो उचित कार्यवाही करेगा। उसको चाहिये कि वह उत्साह के साथ सेवा करता रहे[3]।"

---

(१) माहाराज श्री रावत श्रीहरीसंघजी वचनातु आगे दुबे जगनाथ दुबे इदर(इंद्र)जी जोग थांत्रे गांम १ मोजे ठीकरो मया करे त्रा(तां)बापत्रे आचंद्रारक (चंद्रार्क) दी दो . बेठ बराड़ माफ आगरा मांहे दी दो दुए श्रीमुख हजूर संवत् १७०१ चेत सुदि ५ ।

मूल तांबापत्र की छाप से।

(२) बादशाह शाहजहां और महारावत हरिसिंह के उपर्युक्त चित्र के लेख से। इस चित्र में बादशाह शाहजहां तख़्त पर बैठा हुआ है और सामने महारावत हरिसिंह खड़ा है।

(३) शाहज़ादे दाराशिकोह के निशान के अंग्रेज़ी अनुवाद से उपर्युक्त सारांश

चार वर्ष पीछे महारावत की उत्तम सेवाओं के विषय में शाही अफ़सरों की तरफ़ से सिफारिशें पेश हुईं, जिससे प्रसन्न होकर सन् जुलूस २६ ता० १४ रमजान हि० स० १०६२ (वि० सं० १७०९ श्रावण सुदि १५= ई० स० १६५२ ता० ६ अगस्त) को बादशाह की तरफ़ से उसके नाम शाही सरदार मुहम्मद तुरां और मुहम्मद मुरार-द्वारा यह आज्ञा पहुंची कि उसकी असीम स्वामी-भक्ति की भावनाओं से प्रेरित होकर यह आज्ञा दी जाती है कि वह तत्काल इस दरबार में उपस्थित हो[1]। इसपर महारावत शाही दरबार में गया और कई महीनों तक बादशाह शाहजहां की सेवा में रहा। बादशाह ने उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर मंदसोर इलाक़े का चालीस हज़ार दाम आय का कोटड़ी परगना दीवानी और माली स्वत्वों के साथ जो जानबाजख़ां[2] की जागीर में था, उस(महारावत हरिसिंह)को प्रदान करने का सन् जुलूस २६ ता० २० रबि-उल्-अव्वल हि० १०६३ (वि० सं० १७०९ फाल्गुन वदि ७ = ई० स० १६५३ ता० ६ फरवरी) को फ़रमान जारी कर दिया[3]।

उद्धृत किया गया है। असली निशान फ़ारसी भाषा में है और उसपर 'अलूकादिर मुहम्मद दाराशिकोह बिन शाहजहां बादशाह गाज़ी' की छाप है।

(१) मूल फ़ारसी पत्र के अंग्रेज़ी अनुवाद से उद्धृत।

(२) जानबाजख़ां, बादशाह शाहजहां के समय डेढ़ हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार का मंसबदार था। संभव है कि यह मालवे की तरफ़ का कोई मुसलमान हाकिम हो और उसके मरजाने या उसकी जागीर जब्त हो जाने पर बादशाह की तरफ़ से कोटड़ी का परगना महारावत को प्रदान किया गया हो।

(३) बादशाह शाहजहां के मूल फ़रमान का अंग्रेज़ी अनुवाद। यह फ़रमान उस समय की प्रचलित राज भाषा फ़ारसी में है और उसपर बादशाह शाहजहां की बड़ी गोल मुद्रा लगी हुई है, जिसमें जहांगीर से लगाकर अमीर तैमूर तक के बादशाह शाहजहां के सब ही पूर्वजों के नाम अंकित हैं। मुगल बादशाहों के समय में जो जागीरें और तनख्वाहें मंसब के एवज़ में दी जाती थीं, उनकी आय का विवरण दामों में लिखा जाता था और चालीस दाम का एक रुपया माना जाता था एवं जागीर के दीवानी और माली स्वत्व ही मिलना फरमानों में लिखा जाता था। शाहजहां के दरबार में महारावत हरिसिंह की पहुंच थी और बादशाह की तरफ से फरमान तथा शाहज़ादों की तरफ़ से उसको निशान लिखे जाने से स्पष्ट है कि वह साम्राज्य का विश्वासपात्र सेवक था।

वि० सं० १७१० (ई०स० १६५३) में बादशाह ने शाइस्ताखां के स्थान पर शाहज़ादे मुरादबख्श को गुजरात का सूबेदार नियत किया।

महारावत की शाहज़ादे मुराद के साथ नियुक्ति

तब उक्त शाहज़ादे ने महारावत के नाम सन् जुलूस २७ ता० २३ सफर हि० १०६४ (वि० सं० १७१० माघ वदि १० = ई० स० १६५४ ता० ३ जनवरी) को निम्नलिखित आशय का निशान भेजा—हमारे प्रस्थान का दिन सन्निकट होने के कारण तुम्हें रुख़सत नहीं दी जा सकी है, इसलिए तुम जहां हो वहीं ठहरे रहो। यह जानकर तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिये कि तुम्हारी सेवाओं और राजभक्ति का उचित पुरस्कार दिया जायगा[1]।

फिर जब शाहज़ादा मुरादबख्श अहमदाबाद की तरफ़ रवाना हुआ तो सन् जुलूस २७ ता० ६ जमादि-उल् अव्वल हि० १०६४ (वि० सं० १७११ चैत्र सुदि १२ = ई० स० १६५४ ता० १६ मार्च) को महारावत को सूचना दी कि हम ता० २२ रबि उस्सानी (वि० सं० १७१० चैत्र वदि ६ = ता० २ मार्च) को बादशाह की खिदमत से रुख़सत हासिल करके शान और शौकत के साथ खाती चांदे (चांदा घाटी) के मार्ग से उज्जैन जा रहे हैं। कुछ दिन वहां ठहरकर अहमदाबाद जायंगे। तुम्हारी बहादुरी, अच्छे काम एवं बहुत से आदमियों के एकत्रित करने का वृत्तांत हमने बादशाह की सेवा में अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। ईश्वर ने चाहा तो अच्छा परिणाम निकलेगा। इस समय तुम्हें गुजरात पर मुक़र्रर करके अपने साथ लिये जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि जो कुछ गुजरात के सम्बन्ध में बादशाह से निवेदन किया गया है, उसको दिखलाकर वह अपनी मित्रता और शुभचिंतकी बतलावे एवं खाती चांदे (चांदा घाटी) की तरफ़ आकर हमारी सेवा में हाज़िर हों[2]।

इसपर महारावत शाहज़ादे के पास उपस्थित हो गया। तदनन्तर शाहज़ादे ने उसके नाम सन् जुलूस २८ ता० १५ जमादि उस्सानी (ज्येष्ठ

(१) शाहज़ादे मुरादबख्श के फ़ारसी निशान का अंग्रेज़ी अनुवाद।

(२) शाहज़ादे मुरादबख्श के फ़ारसी निशान का अंग्रेज़ी अनुवाद।

वदि २=ता० २३ अप्रेल) को निशान भेज सूचित किया कि तुम्हारी नियुक्ति सूबे अहमदाबाद पर की गई है। इसलिए आज्ञापत्र के पहुंचते ही तत्काल अपनी जमीयत के साथ उज्जैन से सूबे अहमदाबाद में पहुंच अपनी नियुक्ति का हाल पूछ लो एवं इस विषय में सख्त ताकीद समझकर आज्ञा के विरुद्ध न करो[1]।

शाहजादे दाराशिकोह और मुराद का महारावत को अपनी-अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न करना

बादशाह शाहजहां वि० सं० १७१४ (ई० स० १६५७) में अधिक बीमार हो गया। उसकी अपने ज्येष्ठ पुत्र शाहज़ादे दाराशिकोह पर अत्यधिक कृपा थी, इसलिए वह सदा बादशाह के पास रहता था। बादशाह की बीमारी के दिनों में उक्त शाहज़ादे ने कागजों का आना जाना बंद कर दिया था, इसलिए उस(बादशाह)की मृत्यु का झूठा संवाद तमाम भारत में फैल गया, जिससे बादशाह के अन्य तीनों शाहजादे भी बादशाह बनने के लिए आतुर हो गए[2]। इस अवसर पर शाहज़ादे दाराशिकोह ने सन् जुलूस ३१ ता० ३ मोहर्रम हि० १०६८ (वि० १७१४ आश्विन सुदि ४-५ = ई० स० १६५७ ता० १ अक्टोबर) को महारावत के नाम इस आशय का निशान भेजा—"हम तुमको अपना विश्वासपात्र समझते हैं, इसलिए अपने हृदय को काबू में रखकर विश्वासपात्रता एवं ताबेदारी के मार्ग में स्थित रहे[3]"।

उधर शाहज़ादे मुरादबख़्श ने महारावत को, जिससे उसका गुजरात में रहते हुए निकट संपर्क रह चुका था, सन् जुलूस ३१ ता० १२ मोहर्रम हि० १०६८ (वि० सं० १७१४ आश्विन सुदि १३ = ई० स० १६५७ ता० १० अक्टोबर) को लिखा "जब से हमारी सेवाओं से विमुख हुए हो तब से अभी तक तुमने अपने समाचार की अर्ज़ी नहीं भेजी। हमको तुम्हारी मित्रता से यह आशा न थी। अपनी दोस्ती को वादे के मुआफिक

(१) शाहजादे मुरादबख्श के फ़ारसी निशान का अंग्रेज़ी अनुवाद।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहां नामा, तीसरा हिस्सा, पृ० १६६।

(३) शाहजादे दाराशिकोह के फ़ारसी निशान का अंग्रेजी अनुवाद।

स्मरण रखो और बादशाही मिहरबानी को अपने पुराने दस्तूर के अनुकूल ही समझो एवं गुजरे हुए तरीके को छोड़कर मिहरबानी और सेवा के मार्ग में दृढ़ रहो, जिसका परिणाम अच्छा होगा[१]"।

बादशाह शाहजहां की बीमारी सात आठ दिन तक भयंकर रही। उसके पीछे उसका स्वास्थ्य क्रमशः ठीक होने लगा और आश्विन वदि २ (ता० १४ सितंबर) को उसने शाही मुलाज़िमों की सलाम ली[२]। कार्तिक वदि ३ तथा ५ (ता० १५ तथा १७ अक्टोबर) को बादशाह ने दिल्ली के महल के झरोके में बैठकर जनता को दर्शन दिये[३]। तदनंतर जब उसका स्वास्थ्य बिल्कुल सुधर गया तो वह जल-वायु परिवर्तनार्थ आगरे गया। उन्हीं दिनों गुजरात में रहते हुए शाहज़ादे मुरादबख्श ने, सबसे छोटा शाहजादा होने पर भी अपने को बादशाह घोषित किया। इसकी ख़बर बादशाह को मिलने पर उसने उधर विशेष ध्यान न दिया और पहले शाहज़ादे शुजाअ को सज़ा देना चाहा, जो सिंहासन-प्राप्ति के लोभ से बंगाल से आगे बढ़कर बनारस तक पहुंच गया था। अतएव बड़े शाहज़ादे दाराशिकोह के पुत्र सुलेमानशिकोह को कई बड़े-बड़े अफसरों सहित शुजाअ के मुकाबले को रवाना किया। उसके पहुंचने पर शुजाअ ने मुक़ाबला न किया और भाग गया एवं अपने कुसूरों की माफ़ी की अर्ज़ी बादशाह के पास भेज दी, जिसपर बादशाह ने उसके अपराध क्षमा कर सुलेमानशिकोह को अपने पास बुला लिया। बादशाह मुरादबख्श की कार्यवाही को टाल देना चाहता था, परन्तु दाराशिकोह के दबाव में आकर उसने उसको फरमान भेजा "तुम्हारे पिछले कुसूरों को माफ़कर तुम्हें बराड़ की जागीर दी जाती है, इसलिए वहां चले जाओ"। उसी समय शाहज़ादे औरंगजेब के पास यह आज्ञा पहुंची कि तुम वहां का लश्कर भेज दो। तब औरंगज़ेब के जो बीजापुर की मुहिम पूरी करने को जानेवाला था, बीजापुरवालों से सुलह

(१) शाहजादे मुरादबख्श के फ़ारसी निशान का अंग्रेजी अनुवाद।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहां नामा, तीसरा हिस्सा, पृ० १६३।

(३) वही; पृ० १६५।

कर वापस लौट गया। उसकी सेना में इस आज्ञा से खलबली मच गई और उसके साथ रहनेवाले कितने ही अफ़सर उसका साथ छोड़कर चल दिये[1]।

शाहज़ादे मुरादबख़्श और औरंगज़ेब ने उपर्युक्त आज्ञाओं की मंसुखी के लिए बादशाह के पास अर्जियां भेज दीं, परन्तु वे दाराशिकोह के दबाव से मंजूर न हुई और दाराशिकोह के कथनानुसार जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह को वि० सं० १७१४ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १५ फरवरी) को मालवे के सूबे पर नियत कर कासिमखां को अहमदाबाद की सूबेदारी देकर उधर रवाना किया तथा ये हिदायतें की गईं कि दोनों सरदार उज्जैन जाकर मिलें और यदि मुरादबख़्श बराड़ न जावे तो उससे अहमदाबाद ख़ाली करवालें[2]। इस अवसर पर दाराशिकोह ने ता० ६ रज्ज़ब (वि० सं० १७१५ चैत्र सुदि १० = ई० स० १६५८ ता० ३ अप्रेल) को महारावत हरिसिंह के पास इस आशय का निशान भेजा "मशहूर राजाओं में चुना हुआ, उमरावों में बड़े हौसलेवाला, बड़ी सलतनत का कारकुन और बिहतर, बादशाहत के अमानतदार, बहुत मिहरबानियों के लायक महाराजा जसवन्तसिंह अपने फतहमंद लश्कर के साथ, कमनसीब, हक्क को न पहचाननेवाले और गुनहगार नामुराद कमबख्त को सज़ा देने के लिए रवाना हो गया है। इसलिए यह शाही फ़रमान तुम्हारे नाम जारी किया जाता है कि तुम भी इस मौके को हाथ से न जाने दो ताकि वह कमनसीब भाग न जाय। ऐसा न हो कि तुम्हारे इलाके से वह बाहर निकल जाय। जो कुछ तुमसे हो सके उसमें कमी न करो एवं जैसा कि उस(मुराद ?)के शिकस्त पाने तथा भागने पर लश्कर और उसके आदमियो की लूटमार को हमने माफ़ कर दिया था, उसी प्रकार तुम भी उस अपराधी कमनसीब की चीजों और सामान को मय उसके हमराहियों के समान के क़ब्ज़ा पाने पर माफ किए जाओगे। हम जान बूझकर यह लूट माफ करते हैं

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहां नामा, तीसरा हिस्सा, पृ० १७१-७४।

(२) वही; पृ० १७५।

और यदि परमेश्वर ने चाहा तो इस सेवा को पूरी करने के बाद बादशाही कृपा तुम पर होगी और तुम अपने बराबरवालों तथा पासवालों में इज़्ज़त हासिल करोगे[1]"।

दाराशिकोह को परास्त कर शाहजादे मुराद का महारावत को सुखेरी खेड़ा देना

बराड़ न जाने की अवस्था में अहमदाबाद को खाली कराने की शाही आज्ञा को सुनकर शाहज़ादा मुराद महाराजा जसवंतसिंह के उज्जैन पहुंचने पर एक बड़ी सेना के साथ मुक़ाबले के लिए जा डटा, परंतु फिर अकेले लड़ना उचित न समझ वह शाहजादे औरंगजेब से, जो दक्षिण से बादशाह की खुशी पूछने के लिए आगरे जाने के बहाने से आ रहा था, जा मिला। उस समय औरंगज़ेब ने उस(मुराद)को ही बादशाह बनाने का लालच दिया। फिर दोनों शाहज़ादों ने आगे बढ़ना चाहा, पर महाराजा जसवन्तसिंह ने उन्हें रोक दिया। वि० सं० १७१५ वैशाख वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १५ अप्रेल) को उज्जैन से सात कोस दूर धर्मातपुर में (जिसका औरंगज़ेब ने फतिहाबाद नाम रक्खा) दोनों शाहज़ादों का महाराजा जसवन्तसिंह और क़ासिमखां आदि शाही अफसरों से मुक़ाबला हुआ। शाहजादों की फौज ने शाही सेना को घेर लिया, जिससे कई बड़े-बड़े अफ़सर और सहस्रों सैनिक मारे गये। कासिमखां पहले ही औरंगजेब से मिल गया था। जब जसवन्तसिंह के पास थोड़ी सेना रह गई तो उसके सरदारों ने उसे उस युद्ध-क्षेत्र से हटने के लिए विवश किया। फिर दोनों शाहज़ादे अपनी सम्मिलित सेना के साथ आगरे की तरफ बढ़े। उधर से शाहज़ादा दाराशिकोह भी बड़ी सेना के साथ मुकाबले को पहुंचा। समूनगर (आगरे के पास) में वि० सं० १७१५ ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० स० १६५८ ता० २९ मई) को दोनों सेनाओं के बीच घोर युद्ध हुआ, जिसमें दाराशिकोह की हार हुई[2]।

---

(१) शाहज़ादे दाराशिकोह के फ़ारसी निशान का अंग्रेज़ी अनुवाद।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहां नामा, तीसरा हिस्सा, पृ० १७६। वीरविनोद, द्वितीय भाग, पृ० ३४४-४८।

शाहज़ादों के पारस्परिक संघर्ष में महारावत हरिसिंह को अपनी-अपनी तरफ़ मिलाने के लिए दाराशिकोह और मुराद दोनों ने प्रयत्न किये परन्तु उस(हरिसिंह)ने उस विषम परिस्थिति में किसी का साथ देना उचित न समझ शाहज़ादों के उपर्युक्त किसी युद्ध में भाग न लिया और अपनी अनुपस्थिति की उनके पास अर्ज़ियां भेज दीं। समूनगर में विजय प्राप्त करने के तीसरे दिन शाहज़ादे मुराद ने महारावत की जागीर में परगना सुखेरीखेड़ा बढ़ाकर, सिरोपाव के साथ निम्नलिखित आशय का ता० ६ शाबान हि० १०६८ (वैशाख सुदि ११ = ता० ३ मई) को निशान भेजा—

"शाही सेवा में उपस्थित होने की उसकी अर्ज़ी हमारे पास पहुंच चुकी है। इस संबंध में यहां से फ़रमान लिखा जा रहा है, इससे उसको पूर्ण संतोष हो जायगा। हमने उसके न आने का अपराध माफ़ कर दिया है। मंदसोर के शाही परगने से यह फ़रमान जारी किया जाता है। इसके अनुसार वह (हरिसिंह) ५०० सवारों के साथ शाही सेनाध्यक्ष के शामिल होकर उस ज़िले की रक्षा का भार अपने ऊपर ले। फ़िलहाल उसे मंदसोर का परगना सुखेरी बख़्शा जाता है और एक सिरोपाव भी उसके पास भेजा जाता है[1]।"

उपर्युक्त निशान महारावत के पास पहुंचने के कुछ ही दिनों बाद शाहज़ादे औरंगज़ेब ने अपने वृद्ध पिता शाहजहां बादशाह को आगरे के क़िले में नज़रबंद कर दिया। हि० स० १०६८ ता० ४ शव्वाल (वि० सं० १७१५ आषाढ सुदि ५ (ई० स० १६५८ ता० २५ जून) को मथुरा के मुक़ाम पर उसने शाहज़ादे मुराद को भी अपने शिविर में बुलाकर शराब पिलाने के बाद क़ैद कर दिया। फिर वह दाराशिकोह का पीछा करता हुआ दिल्ली पहुंचा, जहां उसने ता० २१ जुलाई (श्रावण सुदि २) को अपने को बादशाह घोषित किया।

औरंगज़ेब का बसाड़ और गयासपुर के परगने महाराणा को देना

जब औरंगज़ेब दक्षिण में शाहजहां की बीमारी का समाचार पाकर

(१) शाहज़ादे मुरादबख़्श के फ़ारसी निशान के अंग्रेज़ी अनुवाद से।

बादशाह बनने का मनसूबा बांध रहा था, उस समय उसने मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को अपने पक्ष में कर लिया था, जिसने शाहज़ादों के पारस्परिक युद्धों में उसको सहायता दी। इससे प्रेरित होकर औरंगज़ेब ने बादशाह बनने पर महाराणा के पास पांच लाख रुपये नक़द भेजे और मनसब में एक हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवारों की वृद्धि कर उसका मनसब छः हज़ार ज़ात और छः हज़ार सवार कर दिया। साथ ही शाहजहां के समय मेवाड़ से छीने हुए बदनोर और मांडलगढ़ के परगनों के अतिरिक्त डूंगरपुर, बांसवाड़ा, बसाड़, ग़यासपुर आदि बाहरी इलाक़े भी उसके राज्य में मिलाये जाने का ता० १७ ज़िल्काद हि० स० १०६८ (वि० सं० १७१५ भाद्रपद वदि ४ = ई० स० १६५८ ता० ७ अगस्त) को उसने फ़रमान कर दिया, जिसके अनुसार देवलिया राज्य के दोनों परगने (बसाड़ और ग़यासपुर) मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत हो गये[1]।

सहायता के लिए दाराशिकोह का महारावत के नाम निशान भेजना

शाहज़ादा दाराशिकोह सिंध की तरफ़ से कच्छ में होता हुआ अहमदाबाद पहुंचा, जहां उसको कुछ आर्थिक सहायता मिली और उसका सैन्य-बल भी बढ़ गया। जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह ने भी उस समय उसको सहायता देना स्वीकार किया, जिससे वह वहां से रवाना होकर अजमेर की तरफ़ आगे बढ़ा। इस अवसर पर उक्त शाहज़ादे से महारावत हरिसिंह ने भी मिल जाना चाहा। इसपर दाराशिकोह ने ता० १६ जमादि-उल्‌अव्वल हि० स० १०६९ (वि० सं० १७१५ फाल्गुन वदि २ = ई० स० १६५९ ता० ३० जनवरी) को महारावत के नाम नीचे लिखे आशय का निशान भेजा—

"......तुम्हारी अर्ज़ी मिल गई है। तुमको आज्ञा दी जाती है कि शीघ्र जितने आदमी एकत्र हो सकें, उन्हें लेकर शाही दरबार में उपस्थित हो। तुम्हारे पहुंचने पर तुम पर शाही कृपाओं की वर्षा की जायगी तथा

(१) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ५३८। मूल फ़रमान के लिए देखो वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४२९-३१।

तुम्हारे शत्रुओं की ज़मींदारी भी तुम्हें ही सौंप दी जायगी। अतएव तुमको शीघ्रातिशीघ्र आना चाहिये[1]।"

इसके थोड़े ही दिनों बाद फिर उक्त शाहज़ादे ने जितनी सेना एकत्रित हो सके, उसके साथ शीघ्र पहुंचने का ता० २७ जमादि-उल्-अव्वल हि० स० १०६९ (फाल्गुन वदि १४ = ता० १० फ़रवरी) को महारावत के नाम निम्नलिखित आशय का निशान भेजा—

"इन दिनों तुम्हारे हाल हमने अपने मुसाहिबों से सुने, इसलिए आज्ञा दी जाती है कि तुम्हारी जागीर के परगने यदि दूसरे की जागीर में न चले गये हों तो उनपर किसी को दख़ल न करने दो और पुराने रिवाज के मुआफ़िक़ उनपर क़ाबिज़ रह कर निहायत इतमीनान के साथ हमारे हुज़ूर में हाज़िर हो या अपने बेटे को एक बड़ी और अच्छी सेना के साथ हमारे पास भेजो ताकि हमारे हुज़ूर में हाज़िर होकर वह हमारी कृपाओं को प्राप्त करे। इस बारे में देर न हो[2]।"

ग्यासपुर और बसाड़ (बसावर) के परगनों का फ़रमान तो शाही दरबार से महाराणा के नाम हो गया, परंतु महारावत हरिसिंह ने उसकी अवहेलना की। इसपर क्रुद्ध होकर महाराणा ने वि० सं० १७१६ (ई० स० १६५९) में अपने प्रधान कायस्थ फ़तहचंद को, जो उन दिनों बांसवाड़े के महारावल समरसिंह को अधीन करने के लिए गया हुआ था, एक बड़ी सेना के साथ देवलिया पर जाने की आज्ञा दी। फ़तहचंद बांसवाड़े का कार्य समाप्त कर वहां के रावल को लेकर उदयपुर गया और वहां से देवलिया पहुंचा। उसके देवलिया की तरफ़ आने का समाचार पाकर महारावत बादशाह के सम्मुख अपने मामले को पेश करने के लिए दिल्ली गया। महारावत की अविद्यमानता का अवसर पाकर फ़तहचंद ने वहां

महाराणा राजसिंह का देवलिया पर सेना भेजना

(१) शाहज़ादे दाराशिकोह के फ़ारसी निशान के अंग्रेज़ी अनुवाद से।

(२) शाहज़ादे दाराशिकोह के फ़ारसी निशान के अंग्रेज़ी अनुवाद से।

पर अधिकार कर लूट-मार की[1]।

वेड़वास की बावड़ी की प्रशस्ति[2] से प्रकट है कि महारावत की माता देश की बरबादी देख अपने पौत्र प्रतापसिंह के साथ फ़तहचंद के पास उपस्थित हुई और पांच हज़ार रुपये एवं एक हथिनी देकर उसने उससे संधि कर ली। फिर फ़तहचंद कुंवर प्रतापसिंह को लेकर महाराणा के पास उपस्थित हुआ। राजप्रशस्ति महाकाव्य[3] से भी इसकी पुष्टि होती है, परन्तु उसमें बीस हज़ार रुपये दिया जाना लिखा है।

महारावत-द्वारा की गई महाराणा की शिकायत का बादशाह पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा; क्योंकि बादशाह उन दिनों अपने भाइयों के झगड़े मिटाने में संलग्न था। साथ ही सिंहासनारूढ़ होने के समय उसको महाराणा से सहायता मिली थी इसलिए उसने उससे बिगाड़कर उसको असंतुष्ट करना ठीक नहीं समझा। यदि उस समय वह इस बात पर महाराणा को

महाराणा राजसिंह के पास महारावत का उपस्थित होना

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४३५। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २, पृ० ५४०-१।

(२) वि० सं० १७२५ की वेड़वास की बावड़ी की प्रशस्ति। यह बावड़ी उदयपुर से देबारी की तरफ़ जानेवाले मार्ग में बनी हुई है। मंत्री फ़तहचंद ने इसको बनवाकर यहां उक्त प्रशस्ति लगवाई थी।

(३) श्रीराजसिंहवचनात् फतेचंदः स ठक्कुरः ॥
चक्रे देवलियाभंगं हरिसिंहः पलायितः ॥ २१ ॥
हरिसिंहस्य माता तु गृहीत्वा पौत्रमागता ॥
प्रतापसिंहं विदधे प्रसन्नं राणमंत्रिणं ॥ २२ ॥
रूप्यमुद्रासहस्राणि विंशत्याख्यानि हस्तिनी ।
दंडं प्रकल्प्य स्वल्पं स फतेचंदो दयामयः ॥ २३ ।
राणेंद्रचरणाभ्यर्णे आनयामास तं बलात् ।
प्रतापसिंहं जातस्तत् फतेचंदः प्रभोः प्रियः ॥ २४ ॥

सर्ग आठवां।

रुष्ट कर लेता तो संभव था कि महाराणा उसके विरुद्ध हो जाता और इस तरह उसके विरोधियों का बल बढ़ जाता। महारावत असफल होकर अपनी राजधानी को लौट गया। उसको अपने देश में आये थोड़ा ही समय हुआ था कि वि० सं० १७१६ के श्रावण (ई० स० १६५६ जुलाई) मास में महाराणा का बसाड़ की तरफ़ दौरा हुआ। महाराणा जगतसिंह-द्वारा उदयपुर में महारावत जसवंतसिंह पर सेना भेज घेरा डाल देने से उस-(हरिसिंह) को महाराणा पर विश्वास न रहा था, इसलिए वह महाराणा के पास उपस्थित होने में संकोच करने लगा। फिर महाराणा के प्रतिष्ठित चार बड़े सरदारों—झाला राज सुलतानसिंह (सादड़ीवालों का पूर्वज), चौहान राव सबलसिंह (बेदलावालों का पूर्वज), चूंडावत रावत रघुनाथ-सिंह (सलूंबरवालों का पूर्वज) और शक्तावत महाराज मुहकमसिंह (भींडरवालों का पूर्वज)—के विश्वास दिलाने पर वह महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया और उसने ग़यासपुर एवं बसावर (बसाड़) के परगनों का दावा छोड़कर[1] महाराणा से मेल कर लिया। इस घटना का राजप्रशस्ति महाकाव्य में भी वर्णन मिलता है और उसमें महारावत का महाराणा के पास उपस्थित होकर पचास हज़ार रुपये नज़र करने का भी उल्लेख है[2]।

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४३५-३६।

(२) शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे षोडषनामके ॥
श्रावणे तु बसाडाख्यदेशं द्रष्टुं नृपो ययौ ॥ ६ ॥

भटैरुद्भटै रावलाद्यैर्बलाढ्यैः प्रचंडश्च वेतंडवर्यैरुपेता ॥
गृहीत्वा महावाहिनीं राजसिंहः प्रतस्थे बसाडप्रदेशोद्धराय ॥ १० ॥
ततो दुंदुभिः प्रोच्चशब्दैर्जिताब्दारवैः पार्श्वदेशस्थितानां जनानां ॥
विदीर्णानि वक्षांसि वक्षो विभिन्नं महारावतस्यापि नश्यद्बलस्य ॥११॥

झालोद्यत्सुलतानाख्यं चौहाणं तं महाबलं ॥
रावं सबलसिंहाख्यं रघुनाथाख्यरावतं ॥ १२ ॥

महारावत को पुनः गयासपुर और बसाड़ आदि परगने मिलना

कृष्णगढ़ (किशनगढ़) और रूपनगर के राजा मानसिंह की बहिन चारुमती अत्यंत सुंदरी थी, जिससे बादशाह औरंगज़ेब स्वयं विवाह करना चाहता था; परंतु वल्लभ-सम्प्रदाय की कट्टर अनुयायी होने के कारण उसने मुसलमान बादशाह से विवाह करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझ महाराणा राजसिंह के पास पत्र भेज अपनी रक्षा की प्रार्थना की। इसपर वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६०) में महाराणा ने वहां जाकर उक्त राजकुमारी से विवाह कर लिया। बसावर (बसाड़) और ग्यासपुर के परगने मेवाड़ में मिल जाने से महारावत हरिसिंह महाराणा से असंतुष्ट था। अब शाही कृपा प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर जान उसने बादशाह के पास जाकर महाराणा के रूपनगर पहुंच विवाह करने तथा उसके देवलिया पर जुल्म करने की शिकायत की, जिसपर बादशाह ने महाराणा पर बिना आज्ञा रूपनगर में विवाह करने आदि का अपराध लगाकर ग्यासपुर तथा बसाड़ के परगने मेवाड़ से पृथक् कर पुनः महारावत हरिसिंह को प्रदान कर दिये[1]। इसपर महाराणा ने महारावत पर सेना भेजनी चाही, परंतु मुसाहबों की सलाह से उसने यह विचार स्थगित रख कोठारिया के

चोंडावतं हकम्सिंहं शक्तावत्तोत्तमं तथा ॥
एतान्पुरोगमान् कृत्वा एतेषां बाहुमाश्रयन् ॥ १३ ॥

स रावतो हरीसिंहो ययौ देवलियापुरात् ॥
आगत्य राजसिंहस्य राजेंद्रस्य पदे पतत् ॥ १४ ॥

रूप्यमुद्रा सुपंचाशत्सहस्राणि न्यवेदयत् ॥
मनरावत नामानं करिणं करिणीमपि ॥ १५ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग आठवां।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४३१। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ५४२।

रावत रुक्मांगद के पुत्र उदयकर्ण चौहान के साथ बादशाह के पास निम्न-लिखित आशय की अर्ज़ी भेजी—

"मैंने आपकी शाहज़ादगी के शुभ समय से ही विशुद्ध भावनाओं के साथ विशेष कृपाओं के प्राप्त करने की आशाएं रखी हैं। अब यह आदेश प्राप्त होने पर कि हरिसिंह निरपराध था, हमने उसको बसावर और ग्यासपुर के परगने प्रदान किये हैं। अकबर और जहांगीर के समय से ही देवलिया मेरे पूर्वजों की हुकूमत में था। शाहजहां के समय दूसरी तरह हुआ, वह भी निवेदन हुआ होगा और इन परगनों को प्रदान करने के समय भी भाई अरसी (अरिसिंह महाराणा जगतसिंह प्रथम का दूसरा पुत्र) ने तीन-चार बार निवेदन किया। इसपर आज्ञा हुई कि बादशाहों का हुक्म सिकंदर की दीवार के समान मज़बूत है, वह कदापि नहीं बदलेगा, हृदय में विश्वास रख अधिकार करें। इस संबंध में इसी अभिप्राय की दो-तीन बार प्रार्थनाएं भेजकर निवेदन किया गया उसपर फ़रमान प्राप्त हुआ कि जिस तरह जानो अधिकार करो और काका जयसिंह के साथ भी यही संदेश प्राप्त हुआ।

"तदनुसार मैंने अपने कर्मचारियों को कतिपय राजपूतों-सहित उन परगनों में भेजा। उसपर हरिसिंह ने आज्ञा के विरुद्ध बिना सोच-विचार किये बुरे अभिप्राय से परगनों की प्रजा को उभाड़कर शोर मचाया। वह थोड़े दिनों बाद उन परगनों को बिल्कुल उजाड़कर आप भी चला गया और अपने मनुष्यों को वहां छोड़ गया कि उस जगह को कभी आबाद न होने दें। आवश्यकता समझ शाही आज्ञानुसार एक जमीयत भी उस जगह भेजी। हरिसिंह प्रजा को उजाड़कर पहाड़ों में फिरता था। उसने ख़रीफ़ की फ़सल को तो इस तरह खोया और रबी की फ़सल को भी ख़राब कर प्रजा को दुःखित किया। उसने दोनों साखों को ऐसा खोया कि एक दाम भी उन परगनों का मेरे हाथ नहीं आया। जमीयत के खर्च और झंझट से मुझको बहुत हानि हुई और अब ऐसी आज्ञा हुई है। उस व्यक्ति को जो आज्ञा के विरुद्ध करे ऐसा हुक्म हो और वह व्यक्ति

जो राजभक्ति में तत्पर रहा हो, उसे ऐसी आज्ञा हो। इस स्थिति में कुछ इलाज नहीं। न्याय आपके हाथ है। बाक़ी वृत्तांत हरिसिंह को परगनों के प्रदान करने का उदयकर्ण चौहान को रवाना करने के पीछे प्रकट हुआ, इसलिए उस संबंध में वह जो निवेदन करे उसे स्वीकार किया जावे[1]।"

महाराणा की इस प्रार्थना से प्रकट है कि बसावर और ग़यासपुर के परगनों पर महाराणा को अधिकार करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था और महारावत हरिसिंह की तरफ़ से बाधाएं उपस्थित की गईं, जिससे महाराणा को हानि उठानी पड़ी। महारावत का बसावर और ग़यासपुर पर कब अधिकार हुआ यह स्पष्ट नहीं है; किंतु महाराणा के कृष्णगढ़ विवाह करने जाने का समय राजप्रशस्ति में वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६०) दिया है और चौहान उदयकर्ण वि० सं० १७१८ (ई० स० १६६१) में महाराणा का प्रार्थनापत्र लेकर पहुंचा था, अतएव वि० सं० १७१८ (ई० स० १६६१) के लगभग उसका बसावर और ग़यासपुर पर अधिकार हो जाना संभव है।

शाही दरबार में महाराणा की तरफ़ से यह प्रार्थनापत्र उदयकर्ण ने पेश किया, परंतु बादशाह पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा और बसावर तथा ग़यासपुर पर महारावत का अधिकार स्थिर रहा। बादशाह ने महाराणा की तसल्ली के लिए फ़रमान और खासा खिलअत देकर उदयकर्ण को रुख़सत दी और उसके साथ एक शाही अफ़सर भी भेजा, जिसने महाराणा को इस विषय में बहुत कुछ समझाया[2], तो भी महाराणा ने सेमलिया गांव से अपना थाना नहीं हटाया। इसपर महारावत ने अपने कुंवर प्रतापसिंह तथा अमरसिंह को बादशाही सेवा में भेजने की इच्छा प्रकट कर वहां से महाराणा का थाना हटा लेने की दरख़्वास्त की।

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४४०-२।

(२) वही; द्वितीय भाग, पृ० ४४२-३।

शाही सरदार राजा रघुनाथ ने ता० २ रमज़ान सन् जुलूस ५ हि० स० १०७२ (वि० सं० १७१६ वैशाख सुदि ३ = ई० स० १६६२ ता० १० अप्रेल) को महारावत के नाम निम्नलिखित आशय का उत्तर भेजा—

"इन दिनों जो पत्र तुमने अपने बेटे प्रतापसिंह तथा अमरसिंह को रवाना करने और उनको बादशाही सेवकों की सूची में शुमार किये जाने के संबंध में भेजा है, उसमें यह भी प्रकट किया है कि पहले राणा राजसिंह ने अपने मनुष्यों को बसाड़ परगने के गांव सेमलिया में, जो मेरे मुतल्लिक़ है, मुक़र्रर किया था। उन आदमियों ने ज़ुल्म कर रक्खा है और बांसवाड़ा के ज़मींदार समरसी के बेटे[1] ने भी राणा राजसिंह के इशारे से थाना क़ायम किया था। बादशाह की सेवा में उपस्थित करने पर यह हुक्म सादिर हुआ है कि हमारा फ़रमान पहुंचने पर अपने बेटे प्रतापसिंह तथा अमरसिंह को बादशाह की सेवा में भेज दो, जिनसे हालात दर्याफ़्त करने के बाद बादशाही कृपा हो सकेगी। तुम्हारी इच्छा के मुताबिक़ हमने राणा

(१) महाराणा राजसिंह (प्रथम) ने वि० सं० १७१६ (ई० स० १६५६) में बांसवाड़ा के स्वामी महारावल समरसिंह को अपने अधीन बनाया था, जिसका उसके मंत्री फ़तहचंद की बनवाई हुई बेड़वास की बावड़ी की वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) की प्रशस्ति और राजप्रशस्ति महाकाव्य में उल्लेख है। संभव है महारावल की तरफ़ से उसका 'कुंवर' कुशलसिंह, जो समरसिंह के पीछे वहां का स्वामी हुआ, कुंवरपदे में महाराणा की सेवा में रहता हो और उसको महाराणा ने उधर नियत किया हो। वि० सं० १७१७ (अमांत) भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि १४ (ई० स० १६६० ता० २३ सितंबर) को महारावल समरसिंह का देहांत होने पर कुशलसिंह बांसवाड़े का स्वामी बना। इसके पीछे भी उसने कुछ समय तक महाराणा से संबंध बनाये रखकर वि० सं० १७१८ (ई० स० १६६१) में सेमलिया में महाराणा के संकेत से अपना थाना क़ायम रखा होगा। अनुमान होता है कि जब तक महाराणा राजसिंह पर बादशाह औरंगज़ेब की नाराज़गी नहीं हुई, तब तक महारावल कुशलसिंह महाराणा के प्रतिकूल नहीं हुआ। वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६०) में चारुमती से कृष्णगढ़ में महाराणा का विवाह होने के बाद बादशाह उससे अप्रसन्न हो गया और उसकी अप्रसन्नता बढ़ती ही रही। इस अवसर पर महारावल कुशलसिंह भी महाराणा से प्रतिकूल हो गया होगा।

राजसिंह को मौज़े सेमलिया से अपने आदमियों को हटा लेने के लिए हुक्म जारी करा दिया है और इस विषय में सैयद नवाज़िशखां ने भी निवेदन किया है कि फ़रमान के मुताबिक़ राणा राजसिंह को लिख दिया गया था कि अपनी जमीयत और समरसी के बेटे को सेमलिया से हटा ले. जिसकी तामील में उसने अपनी जमीयत और समरसी के बेटे को वहां से हटा दिया है। अब उक्त मौज़े में कोई नहीं है, इसलिए तुम उसको अपने अधिकार में कर लो और उचित प्रबंध कर वहां के निवासियों की तसल्ली का प्रयत्न करो[1]।"

इसके थोड़े ही समय पीछे महारावत के पास बादशाह का इस आशय का फ़रमान पहुंचा—"तुम्हारी भेजी हुई अर्ज़ी क़ुतुबुद्दीनखां की मारफ़त हमारे मुलाहज़े से गुज़री। तुमने जो अपने बेटे को हमारी सेवा में भेजने को लिखा है, उसकी मंजूरी दी जाती है। तुम्हें चाहिये कि अपने बेटे को हमारी सेवा में भेज दो। बाद दर्याफ़्त हाल उसकी तसल्ली की जायगी और शाही कृपा से इज़्ज़त दी जाकर ख़िलअत बख़्शी जायगी[2]।"

इसपर महारावत ने अपने कुंवरों को शाही सेवा में रवाना किया, जिसका परिणाम लाभदायक हुआ और महाराणा की ओर से गयासपुर और बसावर के परगने मिलने के संबंध में बहुत कुछ प्रयत्न होने पर भी बादशाह ने उस ओर ध्यान न दिया। फिर महारावत ने अहमदाबाद के सूबे में अपनी नियुक्ति होने की बादशाही दरबार में प्रार्थना की। इसपर ता० २६ शव्वाल सन् जुलूस ७ हि० स० १०७४ (वि० सं० १७२१ ज्येष्ठ सुदि १ = ई० स० १६६४ ता० १६ मई) को वज़ीर ने महारावत को लिखा—"बसाड़ परगने के बहाल रहने और उसके अहमदाबाद में नियुक्त किये जाने के संबंध में परवाना भेजने के लिए उसने जो अर्ज़ी भेजी, वह मिल गई है। परगना बहाल रक्खा जाता है, पर अहमदाबाद में उसकी नियुक्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि वह मालवा सूबे के अन्तर्गत है। उसे उसी सूबे में,

(१) बादशाह औरंगज़ेब के फ़ारसी फ़रमान के हिन्दी अनुवाद से।

(२) बादशाह औरंगज़ेब के फ़ारसी फ़रमान के हिन्दी अनुवाद से।

जिसमें वह है, अच्छी सेवा करनी चाहिये[1]।"

महारावत हरिसिंह की कर्तव्यनिष्ठा और राजभक्ति की शाही कर्मचारियों ने समय-समय पर प्रशंसा की थी। ता० २५ रमज़ान सन् जुलूस १५ हि० स० १०८२ (वि० सं० १७२८ माघ वदि १२ = ई० स० १६७२ ता० १६ जनवरी) को शाहज़ादे मुहम्मद मुअज्ज़म ने महारावत के नाम निशान भेज लिखा—"तुम्हारी उच्च स्वामिभक्ति का परिचय बादशाही कृपापात्र मोहब्बतखां-द्वारा मिल गया है। तुमको चाहिये कि सदा ऐसे ही बने रहो और समय-समय पर अपनी कुशलता का समाचार भेजते रहो[2]।"

महारावत का परलोकवास

महारावत हरिसिंह का पिछला इतिहास अप्राप्य है। उसका वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) के लगभग परलोकवास हुआ[3]। उसके साथ उसकी दो राणियां राठोड़ आनंदकुंवरी और गौड़ मानकुंवरी (अजबकुंवरी) सती हुईं[4]। कुछ स्थल पर उसका परलोकवास वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) में होना लिखा है एवं वि० सं० १७३२ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १६७५ ता० २६ अप्रेल) की डोराणा गांव की सनद भी उसके समय की ही बतलाई जाती है; परन्तु इसके विपरीत देवलिया की भोगीदास की बावड़ी की वि० सं० १७३१ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १६७५ ता० २१ फ़रवरी) रविवार की प्रशस्ति[5]

---

(१) वज़ीर...ख़ां के महारावत हरिसिंह के नाम के फ़ारसी पत्र के अंग्रेज़ी अनुवाद से।

(२) शाहज़ादे मुअज्ज़म के फ़ारसी निशान के अंग्रेज़ी अनुवाद से।

(३) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ५। प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ८। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६२।

(४) प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० ८।

(५) संवत् १७३१ फागुण सुद ७ रविवासरे..............

में उस समय महारावत प्रतापसिंह के राजा होने का उल्लेख है। श्रावणादि वि० सं० १७३१ (चैत्रादि १७३२) ज्येष्ठ सुदि १० (ई० स० १६७५ ता० २४ मई) सोमवार की लिखी हुई 'कुंडप्रदीप'[1] और श्रावणादि वि० सं० १७३१ (चैत्रादि १७३२) आषाढ़ वदि ७ (ई० स० १६७५ ता० ४ जून) शुक्रवार की लिखी हुई 'शास्त्र-दीपिका'[2] नामक पुस्तकों में उस समय महारावत प्रतापसिंह को वहां का स्वामी बतलाया है। ऐसी स्थिति में महारावत हरिसिंह का देहांत वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) के आस पास होना मानना पड़ेगा। डोराणा गांव की मूल सनद हमारे देखने में नहीं आई है अतएव उसकी सत्यता के विषय में सन्देह ही है।

उसके दस राणियां थीं, जिनसे पांच कुंवर—प्रतापसिंह, अमरसिंह[3],

---

...रावतश्रीप्रतापसिंहजीविजयराज्ये शीशोद्यावंशे राजश्रीगोपालजीतत्सुत जोधाजी तस्यात्मजराजश्रीभोगीदासजी......... ।

मूल प्रशस्ति की छाप से।

(१) संवत् १७३१ वर्षे ज्येष्ठमासे शुक्लपक्षे दशम्यां तिथौ सोमवासरे देवदुर्गे रावतश्रीप्रतापसिंघविजयराज्ये आमेटाज्ञातीयभट्टविद्याधरतत्सुतभट्टमनोहरतत्सुतेन शोमजीभट्टेन लिखितं पुस्तकमिदम् ॥

मूल पुस्तक का अंतिम भाग।

(२) संवत् १७३१ वर्षे आषाढमासे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथौ शुक्रवासरे देवदुर्गे रावतश्रीप्रतापसिंघविजयराज्ये...... ।

मूल पुस्तक का अंतिम भाग।

(३) अमरसिंह के वंशधरों के ठिकाने साखथली और बगदावद रहे। फिर साखथली के ठाकुर दलपतसिंह का पुत्र मोहव्वतसिंह उपर्युक्त अमरसिंह के भाई मोहकमसिंह के प्रपौत्र हिम्मतसिंह का उत्तराधिकारी होकर सालिमगढ़ का स्वामी बना, इसलिए कुछ स्थलों पर सालिमगढ़वालों को अमरसिंह का वंशधर भी लिखा है।

मोहकमसिंह[1], माधवसिंह[2] तथा आनन्दसिंह—एवं तीन कुंवरियां—कल्याणकुंवरी, कुशलकुंवरी और सौभाग्यकुंवरी—हुईं[3]। उनमें से कुशलकुंवरी का विवाह बीकानेर के स्वामी महाराजा अनूपसिंह (राठोड़) से हुआ था, जिसके उदर से कुंवर स्वरूपसिंह का जन्म हुआ, जो वि० सं० १७५५ (ई० स० १६९८) में उक्त महाराजा का परलोकवास होने पर बीकानेर राज्य का स्वामी हुआ[4]। प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात (पृ० ४-५) में कुंवर प्रतापसिंह का महारावत हरिसिंह की राणी हाड़ी मनभावनदे के उदर से, अमरसिंह का झाली जसकुंवरी के उदर से, मोहकमसिंह का राठोड़ मेड़तणी अनोपकुंवरी से और माधवसिंह का गौड़ अजयकुंवरी से जन्म होना बतलाया है; परंतु प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात (पृ० ८) में महारावत हरिसिंह की केवल नौ राणियों के ही नाम दिये हैं एवं उसमें कुंवर प्रतापसिंह, अमरसिंह, मोहकमसिंह और माधवसिंह के ही नाम होकर आनन्दसिंह का नाम नहीं है तथा उसकी कुंवरियों के नामों में कुशलकुंवरी और सौभाग्यकुंवरी के नाम न होकर अनोपकुंवरी और

महारावत की संतति

---

(१) मोहकमसिंह बड़ा वीर राजपूत था। कृष्णगढ़ के स्वामी महाराजा बहादुरसिंह रचित 'रावत प्रतापसिंघ ने मोहोकमसिंघ हरिसिंघोत देवगढ़ रा धणीरी वार्ता' नामक पुस्तक में उस (मोहकमसिंह) की वीरता की बड़ी प्रशंसा की है, जिसका आगे उल्लेख किया जायगा। उसके वंशधरों का ठिकाना सालिमगढ़ है। उसका मूल वंश उसके प्रपौत्र हिम्मतसिंह से नष्ट हो गया। तब उस (मोहकमसिंह) के भाई अमरसिंह के वंशधर दलसिंह का पुत्र मोहब्बतसिंह साखथली से आकर सालिमगढ़ का स्वामी हुआ। तब से अब तक उसके वंशधरों का वहां अधिकार है, जो प्रतापगढ़ राज्य के प्रथम वर्ग के सरदारों में हैं।

(२) माधवसिंह के वंशधर अचलावदा के ठाकुर और प्रतापगढ़ राज्य के प्रथम वर्ग के सरदारों में है।

(३) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ४-५।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५८। मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द ५, प्रथम खण्ड, पृ० २७३।

पद्मकुंवरी नाम दिये हैं। इसी प्रकार उसमें महारावत हरिसिंह की गौड़ राणी धर्मकुंवरी (विट्ठलदास की पुत्री) से कुंवर प्रतापसिंह का जन्म होना लिखा है। इसके विपरीत महारावत प्रतापसिंह (हरिसिंह का पुत्र) के वि० सं० १७३३ माघ सुदि १५ (ई० स० १६७७ ता० ७ फ़रवरी) के पाटण्या गांव के मेहता जयदेव के नाम के संस्कृत दानपत्र[1] एवं 'प्रताप-प्रशस्ति'[2] (खंडित काव्य) में उस (प्रतापसिंह) की माता का नाम मनभावती दिया है, जो अधिक विश्वसनीय है। पाटण्या गांव के दानपत्र और 'प्रताप-प्रशस्ति' में उस (मनभावती, प्रतापसिंह की माता) के पितृकुल का परिचय नहीं दिया है, जिससे इस विषय पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सकता। ख्यातों में प्रतापगढ़ राज्य के पहले के राजाओं की राणियों और उनके पितृकुल का परिचय परस्पर नहीं मिलता। इसी प्रकार महारावत हरिसिंह की राणियों और उनके पितृकुल, संतति आदि के नाम भी परस्पर नहीं मिलते हैं। वंश-भास्कर से ज्ञात होता है कि उस-(हरिसिंह) के भातुलदेवी नामक कुंवरी भी थी, जिसका विवाह बूंदी के स्वामी राव भावसिंह हाड़ा से हुआ था[3], पर ख्यातों में भातुलदेवी का नाम

(१)······तेन महाराजेनैकदा गङ्गालक्ष्मीसमानस्वमातृमहाराज्ञी-श्रीमनभावतीजीभासमानायां············।

मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से।

(२) माताश्रीमनभावतीविरचितं दिव्यैर्जलैः पूरितं
मेघैर्मानसरः पवित्रजनतासेव्यं मनोहारि तत्।
यत्राम्राः परितः फलन्ति हि सदा पुण्यप्रभावाद्दिवो
दिव्यं मानसरो विहाय नितरामायान्ति देवानिशम्॥

(३) दूजी हरि की सुता प्रतापगढ़ सीसोदनी
भातुलादि देवी नाम व्याह्यो अधिके उछाह···॥ १२॥

पृ० २७२५।

नहीं है।

महारावत हरिसिंह ने देवलिया में महल और उसकी माता चंपाकुंवरी ने देवलिया में गोवर्द्धननाथ का मन्दिर, बावड़ी और वाटिका बनवाई थी। उपर्युक्त मंदिर की वि० सं० १७०५ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १६४८ ता० २७ अप्रेल) गुरुवार को प्रतिष्ठा होकर वहां प्रशस्ति लगवाई गई, जिससे पाया जाता है कि उस अवसर पर राजमाता ने स्वर्ण का तुलादान किया एवं एक गांव, एक हज़ार गायें, दस महादान और एक सहस्र ब्राह्मण दम्पतियों को वस्त्रदान दिया और एक लाख व्यक्तियों को भोजन करवाया था[1]।

महारावत के बनवाये हुए महल और उसके समय के लोकोपयोगी कार्य

महारावत ने लगभग ४५ वर्ष तक राज्य किया। उसके समय के

(१) संमत १७०५ वर्षे शाके १५७० प्रवर्तमाने उत्तरायणगते श्रीसूर्ये वैशाखमासे शुक्लपक्षे पूर्णमास्यां तिथौ गुरुवासरे मालवखण्डे-श्वरमहाराजाधिराजरावतश्रीहरिसिंहजीविजयराज्ये देवदुर्गराजधान्यां रावत-श्रीजसवन्तजीभार्या चहुआण चांपाजी देवल बावड़ी बाग करी ने प्रतिष्ठा कीधी। तत्समये दान दीधा तुलादान गाम एक। गौ सहस्र। दश महादान। लक्ष भोजन.........ब्राह्मण सहस्र एक दम्पति वस्त्र दीधा... ।

आरामवापीत्रिदशप्रतिष्ठाम्
हेम्नां तुलां षोडशदानयुक्ताम्।
हरिर्नृपः सर्वमिदं जनन्या
सहस्रगोदानमकारयच्च ॥ २ ॥

श्रीचित्रकूटेश्वरराणखेमासुतोऽभवद्रावतसूर्यमल्लः।
तस्याष्टमः श्रीहरिसिंहदेवो राजेश्वरो राजति देवदुर्गे ॥ ३ ॥

मूल प्रशस्ति की प्रतिलिपि से।

उपर्युक्त कार्यों को देखते हुए अनुमान होता है कि देवलिया राज्य उस समय समृद्धिपूर्ण था। उसके समय के वि० सं० १६६६ से १७०५ (ई० स० १६४२-१६४८) तक के पांच लेखों की छापें तथा प्रतिलिपियां हमारे पास आई हैं, जिनका सारांश नीचे लिखे अनुसार है —

महारावत के समय के ताम्रपत्र और शिलालेख

(१) वि० सं० १६६६ पौष सुदि ११ (ई० स० १६४२ ता० २१ दिसंबर) का मचलाणा गांव का दानपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव महंत हंसपुरी गोसाईं को पुण्य करने का उल्लेख है।

(२) वि० सं० १७०१ चैत्र सुदि ५ (ई० स० १६४४ ता० ३ मार्च) का ठीकरा गांव का दानपत्र, जिसमें आगरे में रहते समय उपर्युक्त गांव दुबे जगन्नाथ और इंद्र को देने का उल्लेख है[1]।

(३) वि० सं० १७०५ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १६४८ ता० २७ अप्रेल) गुरुवार की देवलिया के गोवर्द्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है[2]।

(४) वि० सं० १७०७ (?) वैशाख सुदि १५ (ई० स० १६५० ता० ५ मई)[3] का भट्ट विश्वनाथ के नाम का कीटखेड़ी गांव का दानपत्र, जिसमें राजमाता चौहान के बनवाये हुए गोवर्द्धननाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा पर उपर्युक्त गांव दान देने का उल्लेख है। यह ताम्रपत्र शाह वर्धा[4] के कहने से लिखा गया था

---

(१) देखो; ऊपर पृ० १४५ टिप्पण १।

(२) मूल प्रशस्ति के लिए देखो ऊपर पृ० १६७ टिप्पण १।

(३) इस ताम्रपत्र में गुरुवार दिया है, पर वि० सं० १७०७ वैशाख सुदि १५ को गुरुवार नहीं आता। वि० सं० १७०५ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १६४८ ता० २७ अप्रेल) को गुरुवार था और घटनाक्रम पर विचार करने से भी यही ठीक जान पड़ता है। संभव है ताम्रपत्र की नक़ल करने में १७०५ के स्थान में १७०७ हो गया हो।

(४) शाह वर्धा हूंबड़ जाति का वैश्य था और जैनों की दिगंबर शाखा का अनुयायी था। 'हरिभूषण महाकाव्य' में कवि गंगाराम ने उसकी अच्छी प्रशंसा की है।

और उसमें अक्षर खोदनेवाले सुनार का नाम केशव खुदा हुआ है एवं अंत में दो संस्कृत श्लोक हैं, जिनमें से दूसरे में विश्वनाथ को 'दीक्षागुरु' की उपाधि देने का उल्लेख है[1]।

वह महारावत हरिसिंह का मंत्री था। प्रसिद्ध है कि उसने महारावत हरिसिंह की आज्ञानुसार सागवाड़ा (डूंगरपुर राज्य) से एक सहस्र हूंबड़ों को बुलाकर कांठल में आबाद किया था। वर्षा के वंशज वर्षावत कहलाते हैं।

(१) महाराज रावत श्रीहरिसिंहजी वचनात् भट विश्वनाथ जोग्य मोटो प्रसाद कीधो। मया करेने गाम १ मोजे कीटखेड़ी दीधो उदक आघाट तांबापत्र करे दीधो देवल प्रतिष्ठा हुई जदी माताजी चहुआन रे देहरे दीधो आप दत्तेषु परदत्तेषु ये लुम्बन्ति वसुन्धराम ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्र दिवाकरौ। ऋणी गाम री कदी कपीत कर लागट वराड कोई करवा न पावे। संवत १७०७(?) वरषे मास वैसाख सुदि १५ पुनम दिने गुरू लखतं स्वहस्ते दुवे साह वर्षा। आचंद्रार्क यावत् श्री गोइन्द रे पट्टे पीढी री पीढी दीधौ खोदयो सोनी केशव।

श्रीसिंहरावतसुतो यशवन्तसिंह-
स्तत्संभवो विजयते हरिसिंहदेवः।
तेन व्यधायि सुरसद्ममहाप्रतिष्ठा
श्रीदेवदुर्गपुरिमालवराजधान्याम् ॥ १ ॥

तदा सोऽदात् कीटखेडी ग्रामं ब्रह्मास्पदं च यद्।
विश्वनाथाय विदुषे दत्वा दीक्षागुरोः पदम् ॥ २ ॥

मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से।

विश्वनाथ जाति का तरवाड़ी मेवाड़ा ब्राह्मण था। उपर्युक्त ताम्रपत्र में उसको भट्ट लिखा है, जो उसकी उपाधि हो। 'हरिभूषण महाकाव्य' में कवि गंगाराम ने उसको व्याकरण, न्याय, मीमांसा दर्शन आदि शास्त्रों का ज्ञाता बतलाया है। इसी प्रकार महारावत प्रतापसिंह की प्रशंसा में पंडित कल्याण ने उक्त महारावत के समय प्रशस्ति की रचना की, उसमें भी उसका प्रशंसात्मक उल्लेख किया है।

महारावत हरिसिंह के दानपत्रों आदि की जो तालिका प्रतापगढ़ से पंडित जगन्नाथ शास्त्री-द्वारा प्राप्त हुई, उसमें उसके वि० सं० १६९७ माघ सुदि १० (ई० स० १६४१ ता० ११ जनवरी) के एक दानपत्र का उल्लेख है। इसी प्रकार वि० सं० १७०५ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १६४८ ता० २७ अप्रेल) गुरुवार के दानपत्र में उसका माधव भट्ट को हरिद्वार में भूमि दान करने का उल्लेख है तथा वि० सं० १७२० वैशाख सुदि ११ (ई० स० १६६३ ता० ७ मई) के दानपत्र में भी उस (माधव भट्ट) को परतावखेड़ा और वसाड़ दान करना लिखा है। इन दानपत्रों की छापें अथवा प्रतिलिपियां हमारे पास नहीं आई हैं, तो भी यह कहा जा सकता है कि महारावत हरिसिंह को वसाड़ का परगना वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) के पूर्व मिल गया था। उक्त महारावत के इसके पीछे के भी दानपत्र मिले हैं। उनमें से एक में छन्याखेड़ी गांव में देराश्री पमाद को दस बीघा भूमि दान करने का उल्लेख है। उसकी छाप हमारे पास आई है, किन्तु उसमें खुदा हुआ सम्वत् अस्पष्ट है।

महारावत हरिसिंह विद्वान् राजा था। उसकी सभा में अच्छे-अच्छे विद्वान् रहा करते थे, जिनका वह पूर्ण सम्मान करता था। उसने स्वयं

महारावत का साहित्यानुराग

अपने दरबारी कवि पंडित जयदेव-रचित 'हरिविजय नाटक' पर सुबोधिनी' टीका बनाई थी तथा व्याकरण पर 'हरिसारस्वत' की वि० सं० १७२२

कीटखेड़ी गांव कई वर्ष पूर्व राज्याधिकार में आ गया था। उसे परलोकवासी महारावत रघुनाथसिंह ने अजमेर के सुप्रसिद्ध राजवैद्य पंडित रामदयालु शर्मा और उसके सुयोग्य पुत्र डॉक्टर अंबालाल शर्मा आयुर्वेद-शास्त्री को अपनी अस्वस्थता के अवसर पर सुचारु रूप से चिकित्सा करने के पुरस्कार में संवत् १९८३ (ई० स० १९२६) में प्रदान किया।

(१) हरिममलमुपास्य दिव्यरूपं जलधिसुताच्छवपुःसमाश्रिताङ्गम्।
वरहरिविजये विरच्यतेऽस्मिन् स्तुत हरिणा हरिणा सुबोधिनीयम्॥

(ई० स० १६६५) में रचना की थी'। उसके साहित्यानुराग से प्रेरित होकर उसके समय में उसके आश्रित विद्वानों-द्वारा कई ग्रंथों की रचना हुई, जिनमें से कुछ का पता लगा है, जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है—

हरिभूषण महाकाव्य—इसका रचयिता माधव भट्ट का पुत्र गंगाराम अपने को मेदपाटीय भट्ट (भटमेवाड़ा ब्राह्मण) लिखता है'। यह काव्य अपूर्ण है और इसके नौ सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग के अंत में 'इति श्री' देकर उसने अपना परिचय दिया है, किन्तु नवें सर्ग में 'इति श्री' नहीं है और महारावत हरिसिंह के राजकुमार प्रतापसिंह का अधूरा वर्णन है। यह काव्य देवलिया के महारावत हरिसिंह तक के राजाओं के इतिहास पर कुछ-कुछ प्रकाश डालता है, जिसका यथा-प्रसङ्ग ऊपर उल्लेख किया गया है। महारावत हरिसिंह के वर्णन में इसमें राजकुमार प्रतापसिंह, पुरोहित कल्याणदास, कथाव्यास गोदाभट्ट, सभापंडित विश्वनाथ, मंत्री शाह वर्धा, कोषाध्यक्ष केशव एवं महारावत के दो सेवकों कल्लु और योध का भी उल्लेख है। ग्रंथ के अपूर्ण होने से इसके रचना-काल का पता नहीं चलता। इसमें उसने राजकुमार प्रतापसिंह को बालक बतलाया है

इति श्रीमत्सांधिविग्रहिक-शिरोरत्नमुख्यविद्वद्वृन्दारकपुरन्दरश्रीमहाराजाधिराजश्रीहरिसिंहविरचितायां सुबोधिन्यां सप्तमोऽङ्कः।

(१) श्रीमच्छ्रीयशवन्तभूपतिलकश्चाम्पल्लदेवी च यं
प्रासूतामलविग्रहं ग्रहगणाधीशप्रभं भासुरम्।
तेन श्रीजयदेवभूसुरसखेनोद्यद्गुणेनोद्भटे
श्रीमच्छ्रीहरिभूभुजेति रचिते सारस्वते तद्धिताः।
द्वि-द्वि-सप्तेन्दु-संख्येऽब्दे(१७२२) मासे दामोदरे वरे।
सारस्वतमदोऽकारि हरिणा हरितुष्टये॥

इति श्रीमहाराजाधिराजमहाराजदेवदुर्गाधीशसांधिविग्रहिक-रावतश्रीहरिसिंहदेवविरचितं सारस्वतम्॥

और उसकी बाण-विद्या की प्रशंसा की है, अतएव इस काव्य की रचना के समय प्रतापसिंह के १०-१२ वर्ष का होने का अनुमान होता है। राजकुमार प्रतापसिंह के वि० सं० १७१९ (ई० स० १६६२) में शाही दरबार में जाने के संबंध के एक पत्र का ऊपर उल्लेख किया गया है। उस समय उसकी आयु कम से कम २० वर्ष होनी चाहिये, इस अनुमान से 'हरिभूषण महाकाव्य' का रचना-काल वि० सं० १७१०-१७१२ (ई० स० १६५३-१६५५) के बीच हो सकता है[1]।

हरिविजय नाटक—यह नाटक पंडित जयदेव ने महारावत हरिसिंह के नाम पर देवलिया में रचा था और महारावत के सभासदों के अवलोकनार्थ वहां इसका अभिनय भी हुआ था। इसमें कृष्ण-द्वारा रुक्मिणीहरण का प्रसङ्ग है। इसका रचना-काल शक संवत् १५७९ (वि० सं० १७१४=ई० स० १६५७) का कार्तिक मास दिया है[2]। जयदेव तरवाड़ी-मेवाड़ा ब्राह्मण था और मेहता उसकी उपाधि थी। उक्त महारावत ने उसको अपनी रचना में 'भूसुरसखा' शब्द से संबोधन किया है। उसका उल्लेख पाटण्या गांव के महारावत

---

(१) उद्यन्निर्मलमेदपाटविलसद्वंशैकचूडामणि
श्रीमन्माधवभट्टसूरितनयो दिक्चक्रविख्यातधीः।
गङ्गाराममहाकविर्व्यरचयत् काव्यं सुधासोदरं
तस्मिञ्छ्रीहरिभूषणे सुचरिते सर्गोह्यगादष्टमः ॥ ४२ ॥

सर्ग आठवां।

(२) कविवरजयदेवदिव्यगुम्फे नृपहरिसिंहसमाजदर्शनीये।
इति हरिविजयेऽस्तुसप्तमाङ्कोवितमहो हरिविश्वनाथतुष्ट्यै ॥
संसाराभयलिप्सुना गुणगृहं श्रीमन्महानाटकं
विद्वच्छ्रीजयदेवकेन नगरे श्रीदेवदुर्गे कृतम्।
शाके नंदहयेषुचंद्रकमिते(१५७९)पत्ते सिते कार्त्तिके
संपूर्णं खलु रूपकं हरिगुणं भूयाद्धरिप्रीतये ॥

प्रतापसिंह के समय के वि० सं० १७३३ (ई० स० १६७७) के संस्कृत दानपत्र में भी है। वह संस्कृत का अच्छा विद्वान् था। 'हरिविजय नाटक' में उसने प्रसिद्ध बापारावल (कालभोज) और उसके पुत्र खुम्माण का उल्लेख करते हुए महाराणा मोकल के पुत्र क्षेमकर्ण से लगाकर सूरजमल, बाघसिंह, रामसिंह, विक्रमसिंह, तेजसिंह, सिंहा, जसवंतसिंह, हरिसिंह, तथा उसके कुंवर प्रतापसिंह का संक्षेप से उल्लेख किया है। इससे पाया जाता है कि उसको इतिहास का भी ज्ञान था।

विष्णु सहस्रनाम की टीका—महाभारत के भीष्मपर्व में भगवान् विष्णु के सहस्र नामों का वर्णन है, जिनका प्रत्येक व्यक्ति बड़ी श्रद्धा से पाठ करता है। इसकी टीका उपर्युक्त कवि जयदेव ने वि० सं० १७२४ आश्विन कृष्ण ६ (ई० स० १६६७ ता० २६ अगस्त) को की थी[1]।

---

(1) गुणगृहं जयदेवमहीसुरः स कृतवान् मननव्यपदेशतः।
हरिमहीपतितुष्टिकरामिमां सुविवृतिं हरिनामसहस्रगाम् ॥
आसीत्सिंघनृपो नृपालविलसद्भालावलीभूषण-
स्तज्जः श्रीयशवन्त रावत इति ख्यातः प्रभुर्भूभुजाम् ॥
तज्जः श्रीहरिसिंहरावत इति प्राप्तः प्रथां भूतले
तेनेयं विवृतिः कृता द्विजवचः प्रत्यारवाडम्बरैः ॥
वेदद्व्यद्रिकुहायने(१७२४)ऽश्वयुजि मास्यंगे तिथौ कृष्णगे
पूर्णेयं विवृतिर्हरेर्गुणलसन्नाम्नां जगद्धानिधेः।
यस्यान्तःसरसीरुहे विलसति प्रोद्बोधहंसोऽनिशं
चन्द्रार्कानलदीप्तरश्मिविततिप्रध्वस्तभावान्धकृत् ॥

इति श्रीमद्गौतमेश्वरपालितललितदुर्गमदुर्गविभूषणश्रीदेवगढेश्वर-महाराजाधिराजरावतश्रीहरिसिंहदेवकारिता श्रीजगदीश्वरसहस्रनामसुविवृतिः संपूर्णा।

हेमाद्रिप्रयोग—मूल-ग्रंथ प्रसिद्ध विद्वान् हेमाद्रि ने बनाया था। प्रतापगढ़ के पंडित जगन्नाथ शास्त्री की भेजी हुई महारावत हरिसिंह के समय की निर्मित पुस्तकों की सूची में 'हेमाद्रिप्रयोग' का नाम होकर उसके आरंभ का श्लोक दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि उपर्युक्त पंडित जयदेव ने महारावत हरिसिंह के समय हेमाद्रि के मूल ग्रंथ के आधार पर उसे परिवर्त्तित कर संक्षिप्त रूप में बनाया हो[1]।

हृदयप्रकाश—हृदयेश-रचित यह संगीत का ग्रंथ अधिकतर नष्ट हो गया है, जिससे इसका रचना-काल और ग्रंथकर्त्ता का विशेष परिचय ज्ञात नहीं हो सका, परंतु इसके कुछ पत्रे मिल गये हैं, जिनसे इसका महारावत हरिसिंह के समय बनना पाया जाता है[2]।

गोपालार्चनचंद्रिका—संभवतः यह विष्णुपूजा संबंधी ग्रंथ हो। इसके रचयिता ने अपना नाम न देकर अपने को कृष्ण मिश्र का पुत्र बतलाया है। इसकी रचना का समय शक संवत् १५८३ (विक्रम संवत् १७१८) श्रावण वदि ४ (ई० स० १६६१ ता० ५ जुलाई) दिया है और महारावत हरिसिंह की आज्ञा से इसकी रचना होने का उल्लेख किया है[3]।

---

(१) जयदेवेन रचितः प्रयोगः पापनाशनः ।
भूभुजा हरिसिंहेन कृतः श्रीकृष्णवासरे ।

(२) संगीतशास्त्रसर्वस्वमसाधारणगोचरः ।
वीणादौ रागमेलादिर्हृदयेशेन कथ्यते ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-महाराजश्रीदेवदुर्गाधीशश्रीहरिसिंहविजयराज्ये श्रीहृदयनारायणदेवविरचितो हृदयप्रकाशः ।

(३) शाकेवह्निगजार्च्चे(र्थे)भूमिसहिते पक्षे च शुक्लेतरे
मासेश्रावणसंज्ञिके शशि(?)दिने श्रीमच्चतुर्थीतिथौ ।
आदेशान्नृहरेर्नृपस्य कृतिनामानन्दसंदायिनीं
गोपालार्चनचन्द्रिकां रचितवान् कंसारिमिश्रात्मजः ॥

हरिपिंगल—यह ग्रंथ काव्यरचना के लक्षणों पर कवि जोग ने वि० सं० १७२० (चैत्रादि १७२१) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६६४ ता० १९ मई) गुरुवार को बनाया था। कवि जोग का इस ग्रंथ में परिचय नहीं है, परंतु रचना से वह भाषा साहित्य का प्रौढ़ विद्वान् ज्ञात होता है। उसने भाषा साहित्य के प्रायः अनेक ग्रंथों का मज्जन कर उक्त ग्रंथ की रचना की थी[1]।

महारावत का व्यक्तित्व

महारावत हरिसिंह विद्वान् और गुणग्राहक नरेश था। प्रतापगढ़ के नरेशों में सर्वप्रथम उसने ही शाही दरबार से अपना संबंध बढ़ाकर मेवाड़ राज्य के अधिकार में गये हुए अपने राज्य को मुक्त किया। वह बादशाह शाहजहां और उसके शाहज़ादों का पूर्ण विश्वासपात्र था। नीतिकुशल होने के कारण उसने शाहज़ादों के किसी युद्ध में भाग न लिया। वह ईश्वरभक्त, मेधावी और योग्य शासक था। अपने राज्य को संपन्न करने के लिए उसने अन्य राज्यों से व्यापारियों को बुलाकर अपने यहां बसाया, जिससे देश की आर्थिक स्थिति सुधरी। वह दानशील और उदार राजा था। गोवर्द्धननाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर उसने अपनी माता से स्वर्ण की तुला करवाई थी। उसका आस-पास के अन्य राजाओं से मित्रता का व्यवहार था। अपनी रचना में उसने 'सांधिविग्रहिक' उपाधि से अपने को अलंकृत किया है, जिससे पाया जाता है कि उसको ऐसी कोई उपाधि प्राप्त हुई हो। वह विद्वानों का सम्मान कर उनको अपने यहां रखता था, जिससे उसके समय

---

(१) जे जे कवियण जिंहमें तिण तिण करे प्रणाम।
जोगे पिंगल बांधिओ दे हरिपिंगल नाम॥
पुष गुर पंचम जेठ सुद अमरत योग विचार।
सतरहशे विशे समत हरिपिंगल विशतार॥
रावत हरे रचाविओ हरिपिंगल सानन्द।
छन्द जवाहर पारविण चुण चुण ल्यो कवि-ब्रंद॥

में कई ग्रंथों की रचना हुई। राज्य अधिक बड़ा न होने पर भी उसने अपने समय में कितने ही गांव ब्राह्मणों आदि को दान में दिये थे। उसका शरीर सुगठित और बलिष्ठ था। कवि गंगाराम ने 'हरिभूषण-महाकाव्य' की उसके नाम पर रचनाकर उसमें उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की है, जो अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी उसके गुणों पर अच्छा प्रकाश डालती है'।

---

(१) नोष्णीशं शिरसि स्थितं दशशतच्छिद्रोऽपि नो कञ्चुको
मालिन्यं न मुखे न चास्य सहगो दारिद्र्यनामा सखा।
नो जानन्त्यवलोकितानपि पतींश्चित्रं कवीनां स्त्रियः
शक्रादप्यधिकान्मनोभवतनूंस्त्वद्दानलीलायितात् ॥ १७ ॥

येषां वेश्मनि जीर्णकोद्रवकणैः क्षुद्रोदरं पूर्यते
क्षुन्निद्रां हरते विमोचयति सा तन्द्रापराधीनता।
वीर श्रीहरिसिंह तेऽपि कवयस्त्वद्दानलीलायिता-
न्मातङ्गाधिपमारुहन्ति तुरगान्कृत्वा पुरः सज्जितान् ॥१८॥...

को वा तिष्ठति भूपतिः प्रथमतः श्रीदेवलेन्द्रप्रभोः
साम्यं किञ्चिदुपैति वीर भवतो भूमण्डलाखण्डल।
युद्धक्रुद्धपिनद्धवर्मसुभटे यत्खड्गसंघट्टनाद्
अश्यद्वाहिकर्णैकदेशवडवावह्निर्दहत्यम्बुधिम् ॥ २१ ॥...

युद्धे कर्मणि हस्तचर्मणि दृढं देहोल्लसद्वर्मणि
प्रारूढे त्वयि वाहिनीबलिकरेऽत्युच्चैस्तुरुष्कार्वणि।
दृष्ट्वाऽनेकमहीशसुन्दरवरानायन्ति देवाङ्गना
धूलीदुर्गमुपेत्य मानुरवति स्वीयं वपुः प्रायशः ॥ २५ ॥

वर्णी भाग्यां।

प्रतापसिंह

राज्य-प्राप्ति

वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) के लगभग महारावत हरिसिंह का परलोकवास हो जाने पर उसका ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह देवलिया का स्वामी हुआ।

उसकी गद्दीनशीनी के थोड़े ही दिनों बाद बादशाह औरंगज़ेब ने सन् जुलूस १९ (हि० सन् १०८५ = वि० सं० १७३१ = ई० स० १६७४) में उसको चार सौ ज़ात और तीन सौ सवारों का मंसब देकर तनख़्वाह के एवज़ में जागीर तथा ख़िलअत प्रदानकर ता० ८ रबीउस्सानी (आषाढ सुदि १० = ता० ३ जुलाई) को उसके पास इस आशय का फ़रमान भेजा—"तुमने अपनी अर्ज़ी में जागीर सौंपी जाने के संबंध में प्रार्थना कर चार वर्ष के भीतर ७०००० रुपये सूबे मालवे के शाही खज़ाने में दाखिल करना स्वीकार किया है। अपनी तरफ़ से कृपा दिखलाने के लिए हमने तुमको ४०० ज़ात और ३०० सवारों का मंसब देने के साथ ही जागीर और ख़िलअत बख़्शी है। इसकी पहुंच से सूचित करो। मालवे के सूबे के नाज़िम को प्रसन्न करने का तुमको पूरा उद्योग करना चाहिये[1]।"

महारावत को खिलअत तथा मंसब मिलना

महारावत प्रतापसिंह की गद्दीनशीनी के पीछे सात वर्ष तक मेवाड़ में महाराणा राजसिंह राज्य करता रहा। उक्त महाराणा और महारावत प्रतापसिंह के बीच झगड़ा बना ही रहा। महारावत ने इस सम्बन्ध में शाही दरबार में अपनी फ़रियाद पहुंचाई। इसपर बादशाह औरंगज़ेब ने तहक़ीक़ात के लिए शेख़ इनायतुल्ला को नियत किया और महारावत के नाम नीचे लिखा आज्ञापत्र भेजा—

शाही दरबार से महाराणा राजसिंह और महारावत की तकरार की जांच के लिए शेख इनायतुल्ला का भेजा जाना

"इन दिनों तुम्हारी भेजी हुई अर्ज़ी से तुम्हारी और राणा राजसिंह की लड़ाई का हाल ज्ञात हुआ। हमारे हुज़ूर से यह हुक्म दिया जाता है कि

(१) बादशाह औरंगज़ेब के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

हमारा आदमी जाकर इस बात की तहक़ीकात करे। इसलिए शेख़ इनायतुल्ला नियत किया जाता है कि वह पूरा हाल मालूम कर जो वास्तविकता हो वह हमारे सामने निवेदन करे। यदि अभी तक युद्ध हो रहा हो तो शेख़ उसे रोक देगा। उम्मेद है कि हमारी आज्ञा के अनुसार कार्य किया जायगा[1]।"

मेवाड़ पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई और महारावत के नाम फ़रमान पहुंचना

मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने बादशाह की इच्छा के विरुद्ध श्रीनाथजी आदि की मूर्तियों को मेवाड़ में रखा; जज़िया के संबंध में बादशाह को बड़ा कठोर पत्र लिखा और जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के बालक पुत्र अजीतसिंह को अपने यहां आश्रय दिया। इन सब कारणों से बादशाह महाराणा से अप्रसन्न हो गया और उसने उसको सज़ा देने का विचार कर अपने शाहज़ादों को, जो बाहिर सूबों पर नियत थे, मेवाड़ में सेना-सहित जाने की आज्ञा भेजी। फिर वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में बादशाह ने स्वयं अजमेर जाकर मेवाड़ पर चढ़ाई की। इस अवसर पर सन् जुलूस २३ (हि० सन् १०६० = वि० सं० १७३६ = ई० स० १६७६) में बादशाह ने महारावत के नाम नीचे लिखा फ़रमान भेजा—

"ता० ७ ज़िलकाद (मार्गशीर्ष सुदि ६ = ता० १ दिसंबर) को हमारी बहादुर सेना राणा राजसिंह को सज़ा देने के लिए अजमेर से प्रस्थान करेगी। इसलिए यह फ़रमान भेजा जाता है कि राणा के इलाक़े को लूटने के लिए अपने आदमी नियत कर दो और स्वयं मंदसोर में रहकर हमारी सेना के लिए रसद का प्रबंध करो, क्योंकि हम ता० २१ ज़िलकाद (पौष वदि ८ = ता० १५ दिसंबर) को रवाना होकर मंदसोर पहुंचेंगे। राणा से बदला लेने की तुम्हारी सदैव इच्छा रही है, अतएव यह अवसर तुम्हें सौभाग्य से मिल गया है। तुम्हें चाहिये कि राणा के इलाक़े में, जो तुम्हारी ज़मींदारी से मिला हुआ है, लूट से बरी न समझो और जिस क़द्र लूट-खसोट तुमसे उसके इलाक़े में हो सके उसमें कमी न करो। इस काम को बादशाही आज्ञा के अनुसार अपनी

(१) बादशाह औरंगज़ेब के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

प्रतिष्ठा-वृद्धि का कारण समझो, तथा स्वामीभक्ति-पूर्ण सेवा-भावना से शाही कृपा और पुरस्कारों के उम्मेदवार रहो। जिस मार्ग से हम मंदसोर जाते हैं, देवलिया वहां से छः-सात कोस रहता है। तुम हमारे मंदसोर पहुंचने पर अच्छे आदमियों के साथ उपस्थित होकर हमारे दर्शनों का लाभ प्राप्त करो और नियत की हुई सेवा को अपनी उन्नति का उत्तम साधन समझो[1]।"

इसपर महारावत प्रतापसिंह भी अपनी सेना-सहित मंदसोर में बादशाह के पहुंचने पर शाही सेना के शामिल हो गया। फिर वहां से बादशाह ने अपनी विशाल सेना के साथ मेवाड़ में प्रवेश किया और उदयसागर तक जा पहुंचा। शाहज़ादे मुअज़्ज़म, आज़म और अकबर भी मेवाड़ में पहुंच गये और बादशाह की आज्ञानुसार भिन्न-भिन्न मार्गों से उन्होंने महाराणा राजसिंह पर आक्रमण किया। कई महीनों तक शाही फ़ौज और महाराणा की सेना के बीच युद्ध होता रहा। जब बादशाह को शीघ्र मेवाड़ के युद्ध में विजय-प्राप्ति की आशा न दीख पड़ी तो वह वहां से पीछा चित्तौड़ होता हुआ अजमेर लौट गया। उसने मेवाड़ को विजय करने का भार शाहज़ादे मुअज़्ज़म, आज़म और अकबर पर छोड़ा, जो महाराणा के हमलों को रोकने एवं उसपर आक्रमण कर उसका बल तोड़ देने के लिए नियत थे। इस अवसर पर मारवाड़ के राठोड़ सरदार वीर दुर्गादास आदि भी मेवाड़ में रहने के कारण महाराणा के साथ थे। राठोड़ों और सीसोदियों की सम्मिलित सेना ने शाही फ़ौज का वीरतापूर्वक मुक़ाबला किया। महाराणा के कुंवर जयसिंह ने चित्तौड़ के पास शाही सेना पर आक्रमण कर उसको छिन्न-भिन्न किया। कुंवर भीमसिंह ने गुजरात में जाकर शाही इलाक़े को खूब लूटा और कई मसजिदों को गिरवा दिया। महाराणा के मन्त्री दयालदास ने भी मालवे में जाकर लूट-मार मचाई, जिससे अधिक दिनों तक शाही सेना के पैर मेवाड़ में न टिक सके और शाहज़ादे भी हिम्मत हार गये।

---

(१) बादशाह औरंगज़ेब के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

महारावत प्रतापसिंह, इस युद्ध के समय बादशाह के पक्ष में था और संभवतः मालवे की तरफ़ नियत था। उसने अपनी कारगुज़ारी की दर्ख़्वास्त शाहज़ादे मुअज्ज़म के पास, जो देवारी (उदयसागर के निकट) में नियत था, भेजी। उसके उत्तर में सन् जुलूस २३ ता० २ शावान (हि० सन् १०६१=वि० सं० १७३७ भाद्रपद सुदि ३=ई० स० १६८० ता० १७ अगस्त) को उक्त शाहज़ादे ने महारावत के नाम इस आशय का निशान भेजा—"तुमने अपनी सेवाओं की पुख़्तगी के लिए हमारे मुसाहबों के द्वारा अर्ज़ी भेज हमारे पास उपस्थित होने की इच्छा प्रकट की है, इसलिए हमने अपने विश्वासपात्र और प्रतिष्ठित कर्मचारी वृंदावन के द्वारा तुमको हाज़िर होने की इजाज़त दी है। उम्मेद है कि तुम रवाना हो गये होगे। अगर रवाना न हुए हो तो अब फ़ौरन हाज़िर हो[1]।"

शाहज़ादों ने महाराणा पर विजय पाने के लिए यथासाध्य उद्योग किया, परंतु उसमें उनको सफलता न मिली। इसी बीच महाराणा राजसिंह वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८०) में परलोक सिधारा और उसका कुंवर जयसिंह मेवाड़ का महाराणा हुआ। उसने भी अपने पिता की भांति शाही सेना से युद्ध जारी रखा और बादशाह के घर में झगड़ा मचाने के लिए दुर्गादास आदि राजपूतों ने शाहज़ादे अकबर को बादशाह बनाने का लालच देकर अपनी तरफ़ मिला लिया, परन्तु इस प्रयत्न में उन्हें सफलता न मिली। उन दिनों दक्षिण में मरहटों का उपद्रव बढ़ रहा था, इसलिए राजपूताने के उपद्रव को मिटाकर बादशाह शीघ्रतापूर्वक उधर जाने को उत्सुक था। निदान महाराणा के कुटुंबी श्यामसिंह (ग़रीबदास का पुत्र, जो शाही सेवा में रहता था) के द्वारा संधि कर लेने का सन्देश पहुंचने पर वि० सं० १७३८ (ई० स० १६८१) में बादशाह और महाराणा जयसिंह के बीच संधि हो गई। तब शाही सेना मेवाड़ से लौट गई।

बादशाह और महाराणा के बीच की लड़ाई के समय महारावत प्रतापसिंह, शाही सेना में किस स्थान पर नियत था और उसने युद्ध में

(१) शाहज़ादे मुअज्ज़म के फ़ारसी निशान का अनुवाद।

कैसी वीरता दिखलाई, इसका पता नहीं चलता। बादशाह के उपर्युक्त फ़रमान से तो यही जान पड़ता है कि देवलिया से मिले हुए महाराणा के इलाक़े को लूटने आदि के लिए ही उसकी नियुक्ति की गई हो।

प्रतापगढ़ राज्य के कुशलपुरा गांव में, जो झांतला ठिकाने का गांव है, एक स्मारक चबूतरा बना हुआ है, जिसपर वि० सं० १७६८ (ई० स० १७११) का लेख खुदा है। उसका सारांश यह है कि वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८०) में रावत महासिंह मृत्यु को प्राप्त हुआ, जिसका स्मारक वि० सं० १७६८ (ई० स० १७११) में राव (त) देवीसिंह ने बनवाया[1]।

रावत महासिंह और देवीसिंह कहां के सरदार थे, प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त ऐतिहासिक साधनों से इसका पता नहीं चलता; परंतु उदयपुर राज्य के संबंध की प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री से पाया जाता है कि उदयपुर पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई, उस समय महाराणा की सेना में बेगूं का सरदार रावत महासिंह चूंडावत भी विद्यमान था एवं जब महाराणा की सेना का शाहज़ादे अक़बर की फ़ौज से मुक़ाबला हुआ, उस समय उसने बड़ी वीरता दिखलाई थी। शाहज़ादा अकबर इस युद्ध के समय चित्तौड़ से लगाकर नीमच, मंदसोर और उदयपुर तक महाराणा की सेना से लड़ने, रसद लूटने, रिआया को पकड़कर क़ैद करने आदि के लिए नियत था। कुशलपुरा गांव नीमच से मिला हुआ है। संभव है रावत महासिंह के उधर से बढ़कर शाही सेना पर आक्रमण करने पर वह शाही फ़ौज और प्रतापगढ़ राज्य की सेना से, जो विशेषतः मालवे की ओर नियुक्त थी, लड़कर काम आया हो तथा उसका स्मारक उसके वंशज देवीसिंह ने, जो वि० सं० १७६८ (ई० स० १७११) में विद्यमान था, कुशलपुरा में बनवाया हो।

---

(१) संवत १७३७ रावत श्री माहासींघजी राम कयो बायां च्यार काठा चढ्या संवत १७६८ चौंतरो वणयो राव्त(वत) श्री देवीसींघजी ………………… ।

मूल शिलालेख की छाप से।

शाहज़ादे आज़म के द्वारा महाराणा जयसिंह और बादशाह औरंगज़ेब के बीच संधि हो जाने पर बादशाह को उधर का खटका न रहा। फिर उसने दक्षिण की तरफ़ कूच किया। इस अवसर पर महारावत प्रतापसिंह ने अपना वकील भेज शाही दरबार में कई बातें निवेदन करवाई। इसपर शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने सन् जुलूस २५ ता० १७ रमज़ान (हि० स० १०९२=वि० सं० १७३८ द्वितीय आश्विन वदि ३ = ई० स० १६८१ ता० २० सितम्बर) को निशान भेज लिखा—"तुम्हारा जैसा भरोसा है, उसी प्रकार सेवाओं का वृत्तांत तुम्हारे वकील के द्वारा हमको हमारे मुसाहबों से मालूम हुआ। इसलिए तुम्हारी प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए यह आज्ञापत्र भेजा जाता है। उचित है कि हृदय में विश्वास रख अपने आदमियों को एकत्र कर हमारे उधर आने के समय हाज़िर हो और अच्छी सेवा का सौभाग्य प्राप्त करो। कुछ समय तक हमारी सेवा में रहने के बाद तुम्हारी इच्छा के अनुसार मंसब और जागीर प्रदान की जायगी[1]।"

शाहज़ादे मुअज़्ज़म का महारावत के नाम निशान भेजना

इस निशान के ऊपरी भाग में शाहज़ादे ने अपने हाथ से यह भी लिखा कि हमारी आज्ञा के अनुसार उस प्रदेश में हमारे पहुंचने तक जहां तक तुमसे बन सके झगड़े और लड़ाई को मिटाओ, जो तुम्हारे लिए लाभदायक हो। इससे पाया जाता है कि उधर कोई लड़ाई-झगड़े चल रहे हों, जिनको मिटाने के लिए महारावत को शाहज़ादे ने ताकीद की हो; पर यह झगड़े और फ़िसाद किनके साथ चल रहे थे इसका कुछ पता नहीं चलता।

महारावत प्रतापसिंह का इसके पीछे शाही दरबार से कैसा सम्बन्ध रहा और उसके मंसब, जागीर आदि में कितनी वृद्धि हुई, इस विषय का फ़ारसी तवारीख़ों, ख्यातों और तत्समयक पत्रों आदि से कुछ भी हाल ज्ञात नहीं हो सका। संभव तो यही जान पड़ता है कि महारावत विशेषकर मालवे की तरफ़ रहा हो और उस प्रान्त की रक्षा तथा वहां के

(१) शाहज़ादे मुअज़्ज़म के फ़ारसी निशान का अनुवाद।

पारस्परिक झगड़े मिटाने का भार उसके ऊपर रहा हो, जैसा कि सन् जुलूस ३२ ता० ६ शव्वाल (हि० १०६६=वि० सं० १७४५ श्रावण सुदि ७ = ई० स० १६८८ ता० २४ जुलाई) के निम्नलिखित पत्र से, जो उसके नाम शाही दरबार से पहुंचा था, पाया जाता है—

"तुम्हारी अर्ज़ी अवलोकन हुई । तुम्हारे लेखानुसार शाही कृपा के साथ मीर जैनुल्आबदीन के नाम आज्ञापत्र जारी किया जाता है । तुमको चाहिये कि जो काम पेश आवे उसमें पूरी सहायता करो और उस सेवा को शाही कृपा का साधन समझो[1] ।"

राजधानी देवलिया के चारों ओर पहाड़ियां होने से वह स्थान अधिक आबादी बढ़ने के उपयुक्त न था एवं वहां का जलवायु भी आरोग्यप्रद न था[2] । अतएव महारावत प्रतापसिंह ने वि० सं० १७५५ (ई० स० १६६६) के आस-पास अपने नाम पर समान भूमि पर, जहां पहले डोडेरिया खेड़ा था, प्रतापगढ़ क़स्बा बसाकर वहां रहना अख़्तियार किया[3], जो इस समय राज्य की राजधानी है ।

महारावत का प्रतापगढ का क़स्बा आबाद करना

मेवाड़ के स्वामी महाराणा जयसिंह ने अपने राज्य-काल में देवलिया-राज्य से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न की, जिससे देवलिया-राज्य में सुख-शांति रही और महारावत को अपना देश आबाद करने का अवसर मिला । वि० सं० १७५५ (ई० स० १६६८) में उक्त महाराणा का देहांत

महाराणा अमरसिंह (दूसरा) का महारावत से छेड़-छाड करना

(१) मूल फ़ारसी पत्र का अनुवाद ।

(२) नैणसी का कथन है कि जाजली और जाखम नदियां देवलिया के पहाड़ों से निकलती और देवलिया से पांच कोस (१० मील) दूर उदयपुर के मार्ग में पड़ती हैं । उनका जल यहां तक ख़राब है कि पीनेवाला तो रोगग्रस्त होता ही है, परन्तु जो उस नले के जल में होकर जाता है वह भी कष्ट पाता है (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ६३) ।

(३) मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० २२२ (राजपूताना गैज़ेटियर; जि० २ ए के अन्तर्गत) ।

हो गया और उसका कुंवर अमरसिंह (दूसरा) वहां का महाराणा हुआ। अपनी गद्दीनशीनी के अवसर पर डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के अधीशों के स्वयं टीका लेकर न पहुंचने के कारण अमरसिंह ने अप्रसन्न होकर तीनों जगह सेनाएं भेजने की आज्ञा दी। डूंगरपुर में सेना पहुंचने पर महारावल खुमाणसिंह ने महाराणा की सेना से मुक़ाबला किया और शाही दरबार में महाराणा की शिकायत की। इसी प्रकार बांसवाड़ा के स्वामी अजबसिंह ने भी वहां सेना पहुंचने पर महाराणा की शिकायत की, जिससे महाराणा ने फिर अपनी जंगी कार्रवाई रोक दी। महाराणा की सेना के उस समय प्रतापगढ़ राज्य में जाने पर उसने वहां क्या-क्या बिगाड़ किया और उस सेना का सेनापति कौन था, इसका वृत्तांत कहीं नहीं मिलता, परंतु शाही सेवक केशवदास के हि० स० ११११ (वि० सं० १७५६=ई० स० १६६६) के महाराणा अमरसिंह के नाम के पत्र से प्रकट है कि महाराणा की सेना ने देवलिया के इलाक़े में भी जाकर नुक़सान किया था, जिसकी शिकायत महारावत प्रतापसिंह की तरफ़ से बादशाह के पास होने पर, उस (केशवदास) ने महाराणा को शुरू गद्दी-नशीनी के समय ऐसी कार्रवाई करने से मना किया था[1]। इसपर महाराणा ने फिर देवलिया के स्वामी से छेड़-छाड़ न की, परंतु महाराणा और महारावत के बीच वैमनस्य बना ही रहा।

प्रतापगढ़ राज्य से पिपलोदा ठिकाने (मालवे) की सीमा मिली हुई है। उन्हीं दिनों वहां के डोडिये राजपूतों ने उद्दंडता कर लूट-मार आरंभ की और एक ब्राह्मण को मार डाला एवं उसकी संपत्ति लूट ली। महारावत ने डोड़ियों को कहलाया कि ब्राह्मण को मारकर तुमने बड़ा भारी पाप किया है, इसलिए भविष्य में ऐसा काम करना छोड़ दो और लूटा हुआ माल लौटा दो। इस बात को डोड़ियों ने स्वीकार न किया और सामना करने को उद्यत हो गये। इसपर महारावत ने अपने राजपूतों को लेकर

महारावत की पिपलोदे पर चढ़ाई

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ७३५-३६।

पिपलोदे पर चढ़ाई की और वहां के दुर्ग को घेर लिया। डोड़ियों ने भी वीरतापूर्वक महारावत की सेना का मुक़ाबला किया। अन्त में महारावत के भाई मोहकमसिंह ने क़िले में प्रवेश कर वहां अधिकार कर लिया। फिर डोडियों ने अपने अपराध के लिए क्षमा याचना कर लूट-मार न करने की प्रतिज्ञा की। तब महारावत ने उनको माफ़कर पीछा उनका इलाक़ा उन्हें सौंप दिया[1]।

महारावत का शेरबुलंदखां को अपने यहां आश्रय देना

बादशाह औरंगज़ेब के समय शाहज़ादे मुअज़्ज़म का दूसरा पुत्र अज़ीमुश्शान बंगाल की तरफ़ नियत था। उसने बादशाह की तरफ़ से अपने पास रहनेवाले एक नाज़िर को, जो बादशाह का कृपापात्र और ख़बरनवीसी का कार्य करता था, अपने सेवक शेरबुलंदख़ां-द्वारा मरवा डाला। इसपर बादशाह ने शेरबुलंदख़ां को बंदी करने का हुक्म भेजा, जिससे अज़ीमुश्शान को बड़ी चिंता हुई। फिर उसने महारावत प्रतापसिंह के नाम पत्र भेजा कि शेरबुलंदख़ां को वहां आश्रय दिया जावे। अज़ीमुश्शान के इस पत्र के पहुंचने पर महारावत के सरदारों में दो दल हो गये। एक शेरबुलंदख़ां को आश्रय देने के पक्ष में और दूसरा इसके विपक्ष में था। अंत में महारावत के भाई मोहकमसिंह-द्वारा दृढ़ सम्मति मिलने पर महारावत ने मोहकमसिंह को ही शेरबुलंदख़ां के स्वागत को भेज़कर उसे अपने यहां बुला लिया[2]।

बादशाह का महारावत को शाही-दरबार में बुलाना

वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०६) में बांसवाड़ा के स्वामी महारावल अजबसिंह का देहांत हो गया और उसका पुत्र भीमसिंह वहां का स्वामी हुआ, परंतु उन दिनों बादशाह औरंगज़ेब के दक्षिण में होने और फिर उसकी वि० सं० १७६३ (ई० स० १७०७) में मृत्यु हो जाने तथा शाह-

(१) महाराज बहादुरसिंह; रावत प्रतापसिंघ ने. मोहोकमसिंघ हरिसिंघोत, कुंथगढ रा धणी री वार्ता; पृ० २६-६१।

(२) वही; पृ० १६-२५।

ज़ादे मुअज़्ज़म (शाह आलम बहादुरशाह) और आज़म के बीच तख़्त के लिए झगड़ा होने आदि कारणों से बांसवाड़ा और देवलिया के स्वामी शाही दरबार में नहीं जा सके थे। बहादुरशाह ने बादशाह बनने पर ई० स० १७०८ के जनवरी (वि० सं० १७६४ माघ) मास में इन दोनों राज्यों के नरेशों को शाही दरबार में लाने के लिए दो शाही सेवकों को भेजा[1]। इससे अनुमान होता है कि महारावत शाही दरबार में गया हो, पर इससे आगे का वृत्तांत अप्राप्य है।

ऊपर बतलाया गया है कि वि० सं० १७६३ (ई० स० १७०७) में दक्षिण में बादशाह औरंगज़ेब का देहांत हो गया। उस समय उसके दोनों शाहज़ादे मुअज़्ज़म और आज़म के बीच बादशाह बनने के लिए वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) में जजाऊ के मैदान में बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें शाहज़ादे मुअज़्ज़म की विजय हुई और आज़म मारा गया। फिर मुअज़्ज़म अपना नाम शाहआलम बहादुरशाह रखकर मुग़ल साम्राज्य का स्वामी हुआ। जजाऊ के युद्ध में आंबेर का स्वामी महाराजा सवाई जयसिंह आज़म के पक्ष में और उसका भाई विजयसिंह मुअज़्ज़म के पक्ष में रहकर लड़ा था। इस कारण बहादुरशाह नें बादशाह बनने पर जयसिंह के स्थान में विजयसिंह को आंबेर का स्वामी बनाना चाहा। उन्हीं दिनों जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह ने औरंगज़ेब की मृत्यु से उत्पन्न अव्यवस्था से लाभ उठाकर अपने राज्य से शाही ख़ालसा उठा दिया। इससे बहादुरशाह ने अजीतसिंह को दंड देकर जोधपुर पर पुनः अधिकार करने एवं आंबेर विजयसिंह को दिलाने के लिए अपने शाहज़ादे अज़ीमुश्शान और ख़ानख़ाना मुनइमख़ां आदि को ससैन्य रवाना किया और आप भी अजमेर होता हुआ जोधपुर के समीप जा पहुंचा। उस समय अजीतसिंह ने शाही सेना से मुक़ाबला करने में हानि समझ बादशाह के पास उपस्थित होना ही ठीक

महाराजा अजीतसिंह और सवाई जयसिंह का देवलिया में जाना

(१) बहादुरशाह के राज्य समय के अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला से। ये अख़बारात जयपुर राज्य के संग्रह में सुरक्षित हैं।

समझा। बादशाह ने उसका पहले का अपराध क्षमाकर उसको साढ़े तीन हज़ारी मंसब देकर जागीर में सोजत, सिवाणा और फलोधी के परगनों का फ़रमान कर दिया एवं जोधपुर तथा मेड़ता आदि पर शाही खालसा भेज दिया। वहीं आंबेर से सवाई जयसिंह भी जाकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह ने उस(-जयसिंह)की सेवा स्वीकार कर उसको अपने सरदारों में शुमार किया और आंबेर पर हुसेनअलीख़ां को बंदोबस्त के लिए भेज दिया। फिर बहादुरशाह वहां से दोनों राजाओं को साथ लेकर अपनी राजधानी पहुंचा। उन्हीं दिनों बहादुरशाह के पास उसके भाई कामबख़्श के दक्षिण में अपने को बादशाह घोषित कर फ़साद उठाने की ख़बर पहुंची। निदान वह कामबख़्श को सज़ा देने के लिए दक्षिण की ओर रवाना हुआ। उस समय राठोड़ दुर्गादास-सहित महाराजा अजीतसिंह और सवाई जयसिंह अपने-अपने राज्य मिलने की आशा से मंडेश्वर (मंडलेश्वर, नर्मदा के तट पर) तक बादशाह के साथ रहे, परंतु जब देखा कि राज्य मिलने की कोई आशा नहीं है और उनपर बादशाह की तरफ़ से निगरानी की जाती है, तब उसे बिना सूचना दिये ही वे अपने डेरे-डंडे वहीं छोड़कर उदयपुर की ओर चले गये। मार्ग में देवलिया में पहुंचने पर महारावत प्रतापसिंह ने उनका उचित आतिथ्य कर उन्हें उदयपुर को रवाना किया, जहां महाराणा अमरसिंह(दूसरा)ने उन्हें अपने यहां सम्मानपूर्वक रक्खा[1]।

उदयपुर में उनके पहुंचने की ख़बर पाकर शाहज़ादे मुईज़ुद्दीन जहांदारशाह ने महाराणा को लिखा कि उन्हें अपने पास नौकर न रक्खे और उन्हें समझा दे कि वे बादशाह के पास अर्ज़ियां भेजें; मैं उनके अपराध क्षमा करा दूंगा और जागीरें दिलवा दूंगा। वहां से महाराणा अमरसिंह की सहायता पाकर महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर आदि पर और सवाई जयसिंह ने आंबेर आदि पर अपना अधिकार कर लिया। उन दिनों बादशाह, काम-

किशनगढ़ के राजा राजसिंह का देवलिया जाकर रहना

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ७६८-७८। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ८३-४।

बख़्श को पराजित करने में व्यस्त था, इसलिए उन्होंने यह अवसर उपयुक्त देख शाही इलाक़े में भी उपद्रव करना चाहा। तब रूपनगढ़ (किशनगढ़) का स्वामी राजा राजसिंह (जो बादशाह का आज्ञाकारी सेवक था) उक्त दोनों राजाओं का साथ न देने से अपने इलाक़े की भी बरबादी समझ देवलिया में चला गया और जब तक उनका उपद्रव शांत नहीं हुआ, वह वहां के महारावत का मेहमान रहा। इस बीच उसने उपर्युक्त दोनों राजाओं के उपद्रवों को मिटाने के लिए उनके इलाक़े के फ़रमान उनके नाम हो जाने की बादशाह के पास शाहज़ादे अज़ीमुश्शान-द्वारा अर्ज़ी भेजी, जो स्वीकृत होकर दोनों राजाओं के नाम के शाही फ़रमान उसके पास बादशाह की ओर से पहुंच गये। उनको लेकर वह देवलिया से विदा हुआ और उसने उक्त दोनों राजाओं को शाही फ़रमान देकर बढ़ता हुआ उपद्रव रोक दिया[1]।

महारावत का परलोकवास

लगभग ३५ वर्ष राज्य करने के पश्चात् अनुमान ७५ वर्ष की आयु में महारावत प्रतापसिंह का देहांत हुआ। एक जगह उसके देहांत का समय वि० सं० १७६४ पौष वदि ३ (ई० स० १७०७ ता० ३० नवंबर) दिया है[2], जो ठीक नहीं है, क्योंकि "जोधपुर राज्य की ख्यात" एवं "वीरविनोद" के अनुसार, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, वि० सं० १७६५ के ज्येष्ठ मास (ई० स० १७०८ मई) के प्रारंभ में महाराजा अजीतसिंह तथा महाराजा सवाई जयसिंह के देवलिया में जाने पर महारावत प्रतापसिंह का उनका आतिथ्य करना स्पष्ट है[3]। ऐसी अवस्था में वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०८) में उसका परलोकवास होना माना नहीं जा सकता। संभव है कि महारावत प्रतापसिंह का देहांत वि० सं० १७६५ के ज्येष्ठ (ई० स० १७०८ मई) मास के पीछे किसी समय हुआ हो और ख्यात-लेखकों ने वि० सं० १७६५

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; द्वितीय भाग, पृ० ६०। "वीरविनोद" से पाया जाता है कि महाराणा अमरसिंह (दूसरा) ने भी इस सम्बन्ध में यथेष्ट प्रयत्न किया था (द्वि० भा०, पृ० ७७३-८)।

(२) पंडित जगन्नाथ शास्त्री; काव्यकुसुम (प्रस्तावना); पृ० २२।

(३) देखो ऊपर पृ० १८७, टिप्पण १।

(ई० स० १७०८) के स्थान पर वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) लिख दिया हो।

महारावत प्रतापसिंह के दस राणियां थीं[1], जिनमें एक बीकानेर के स्वामी महाराजा कर्णसिंह की पौत्री और पद्मसिंह की पुत्री प्रेमकुंवरी थी[2]।

महारावत की राणियां और संतति

इस विवाह के अवसर पर महारावत ने चारण-भाटों आदि को बहुत कुछ द्रव्य देकर बड़ी उदारता प्रकट की थी[3]। उसके पृथ्वीसिंह, कीर्तिसिंह[4] भीमसिंह, दौलतसिंह और इंद्रसिंह नामक पांच कुंवर हुए[5]।

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ५-६। प्रतापगढ़ से प्राप्त एक पुरानी ख्यात में उक्त महारावत के केवल ६ राणियां होने का उल्लेख है।

(२) प्रतापगढ़ से प्राप्त पुरानी ख्यात; पृ० ६। इस ख्यात में महारावत की राणियों के जो नाम दिये हैं, वे बड़वे की ख्यात से नहीं मिलते एवं बड़वे की ख्यात में महारावत की राठोड़ राणी प्रेमकुंवरी का नाम ही नहीं है। उस (प्रतापसिंह) के साथ उसकी दो राणियां—गौड़ धर्मकुंवरी, जो अजमेर के प्रसिद्ध राजा विट्ठलदास की पुत्री और गोपालदास की पौत्री थी तथा कछवाही विजयकुंवरी, जो अमरसिंह की पौत्री और सबलसिंह की पुत्री थी, सती हुईं।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६२।

(४) मालवे के सूबेदार शायस्ताख़ां की ता० ३ शाबान सन् जुलूस ४७, हि० स० १११४ (वि० सं० १७५९ पौष सुदि ५ = ई० स० १७०२ ता० १२ दिसंबर) की रिपोर्ट से प्रकट है कि महारावत प्रतापसिंह का छोटा पुत्र कीर्तिसिंह मालवे के शाही सूबेदार के पास (संभवतः देवलिया की सेना के साथ) रहा करता था और उन दिनों महाराणा अमरसिंह (दूसरा) की रामपुरा पर चढ़ाई होने का संवाद सुन वह देवलिया चला गया था, जिसका कारण यही हो सकता है कि उन दिनों उक्त महाराणा की देवलिया पर भी सेना भेजने की ख़बर फैल रही हो (वीरविनोद; जि० २, पृ० ७४७-४८)।

(५) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ५। प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त एक पुरानी ख्यात में महारावत के कुंवरों में दौलतसिंह का नाम नहीं है एवं उसकी तीन कुंवरियों के नाम बनेकुंवरी, सौभाग्यकुंवरी और फूलकुंवरी दिये हैं। "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६२) में महारावत की पुत्रियों में से एक का विवाह जोधपुर के स्वामी महाराजा अजीतसिंह से होने का उल्लेख है, जो अन्य किसी ख्यात के आधार पर है। हमारे पास प्रतापगढ़ राज्य से जो ख्यातें आई हैं, उनमें कहीं इस विषय का उल्लेख नहीं है। "वीरविनोद" में जोधपुर राज्य की ख्यात के आधार पर महारावत प्रतापसिंह के कुंवर पृथ्वीसिंह की पुत्री का विवाह महाराजा अजीतसिंह से होना मानकर

महारावत लोकोपयोगी कार्यों की तरफ़ पूर्ण रुचि रखता था। उसने देवलिया में प्रतापवाव नामक बावड़ी और बाग़ बनवाया। यह बावड़ी देवलिया के जलाशयों में सबसे उत्कृष्ट है और अकाल के समय इस बावड़ी से देवलिया के निवासियों का काम चलता है। उसकी माता मनभावती ने केशव भटेवरा के निरीक्षण में मानसरोवर नामक सुरम्य जलाशय, जिसके आस-पास आम्रवृक्षों की प्रचुरता थी, बनवाया[1]। उसकी राणी पाटमदे (धर्मकुंवरी) ने भी देवलिया में एक बावड़ी बनवाई तथा धमोतर के ठाकुर जोगीदास के भाई भोगीदास[2] ने भी वहां एक बावड़ी बनवाकर उक्त महारावत के समय उसका वास्तु-संस्कार किया था।

महारावत के समय के बने हुए लोकपयोगी कार्य

पहले की बात का खंडन किया है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये "जोधपुर राज्य की ख्यात" से मिलान करने पर पाया जाता है कि महाराजा अजीतसिंह का एक विवाह वि० सं० १७६३ (ई० स० १७०७) में जोधपुर पर अधिकार होने के पूर्व देवलिया में हुआ था और उसके उदर से कुंवर उदोतसिंह का जन्म हुआ था, जो बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के पीछे जोधपुर पर अधिकार होने के समय विद्यमान था। उसके पीछे वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०९) में उक्त महाराजा ने देवलिया में जाकर फिर अपना विवाह किया था। जोधपुर राज्य की ख्यात में जहां महाराजा अजीतसिंह की राणियों के नाम दिये हैं, वहां उसकी दो राणियों का देवलिया की होना बतलाकर एक को महारावत पृथ्वीसिंह की कुंवरी और प्रतापसिंह की पौत्री लिखा है, किंतु उसका नाम नहीं दिया है और दूसरी का कुछ भी परिचय नहीं दिया है। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत जोधपुर के राजाओं की राणियों और कुंवरों की नामावली में भी उक्त महाराजा के देवलिया की दो राणियां होना लिखा है, परंतु उनके नाम नहीं दिये हैं एवं एक राणी का वि० सं० १७८१ आषाढ़ सुदि ९ (ई० स० १७२४ ता० १९ जून) को विवाह होना लिखा है। ख्यातों के उपर्युक्त विभिन्न लेखों से इसका ठीक-ठीक निर्णय होना कठिन है; परंतु यह कहा जा सकता है कि महाराजा अजीतसिंह का एक विवाह महारावत प्रतापसिंह की विद्यमानता में, जैसा कि कर्नल टॉड ने (जि० २, पृ० १०१० में) लिखा है, वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में उसकी किसी पुत्री अथवा पौत्री से हुआ हो और दो विवाह उक्त महाराजा के देवलिया की राजकुमारियों से पीछे से भी हुए हों।

(१) देखो ऊपर पृ० १६६ टिप्पण संख्या २।

(२) देखो ऊपर पृ० १६३ टिप्पण संख्या ५।

अपने पिता हरिसिंह की भांति महारावत प्रतापसिंह भी विद्याप्रेमी था। वह विद्वानों को आश्रय देकर अपने यहां रखता और उनका सम्मान करता था। उसके राज्य-काल में कितने ग्रंथों का निर्माण हुआ इसका तो पता नहीं चलता, परंतु उसके समय में कल्याण कवि-रचित "प्रताप प्रशस्ति" नामक खंडित काव्य की रचना होने तथा अन्य जगह उसकी राजसभा में रहनेवाले विद्वान् सोमजीभट्ट, मन्नाभट्ट, विश्वनाथ, मेहता जयदेव, मेहता हरिदेव, भगवान-कवि, नृसिंहनागर, केशव पौराणिक, संतोषराय, रामकृष्ण, रामजी बाटी, विजयसूरि, नरू आदि का उल्लेख मिलता है। महारावत स्वयं भाषा में काव्य-रचना किया करता था। उसके रचे हुए कुछ दोहे प्राप्त हुए हैं, जो "काव्य कुसुम" के द्वितीय भाग में मुद्रित हुए हैं। दोहे अधिकतर भक्ति तथा ज्ञान संबंधी हैं एवं उनसे महारावत की अध्यात्म की तरफ़ रुचि होना प्रकट होता है। उसके बनाये हुए दोहों में कुछ शृंगार रस के भी हैं। रचना सरल है और विभिन्न अलंकारों का उनमें अच्छा समावेश है। कुछ दोहों में उसने अपने पिता महारावत हरिसिंह की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए तुलनात्मक दृष्टि से मेवाड़ के स्वामी महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के बाद उसको स्थान दिया है[1], जिससे पाया जाता है कि वह अपने पिता की विद्यमानता एवं महाराणा जगतसिंह के देहांत अर्थात् वि० सं० १७०९ (ई० स० १६५२) के पूर्व ही काव्य-रचना करने लग गया था। उसके बनाये हुए दोहों में भगवान कवि, हरिदेव, संतोषराय आदि की स्तुति की है, जिनके सत्संग से संभव है उसको काव्य संबंधी ज्ञान हुआ हो।

महारावत का विद्यानुराग

महारावत प्रतापसिंह के समय के वि० सं० १७३१ से १७६४ (ई० स० १६७५ से १७०७) तक के कई दानपत्र और शिलालेख मिले हैं, जिनमें से

(१) हरि-इंद जसवँत-सिंघरा, बहु देणा दातार।
जिण दिन नहिं राणो जगो, तिण दिन तो शिर भार॥

काव्य कुसुम; भाग २, पृ० २।

महारावत के समय के शिलालेख और दानपत्र

कुछ दानपत्रों की नक़लें और शिलालेखों की छापें हमारे पास आई हैं, जिनका आशय नीचे लिखे अनुसार है—

(१) वि० सं० १७३१ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १६७५ ता० २१ फ़रवरी) रविवार का देवलिया में भोगीदासजी की बावड़ी के ताक में लगा हुआ शिलालेख, जिसमें सीसोदिया वंशी गोपाल के पौत्र और जोधा के पुत्र भोगीदास का उक्त बावड़ी बनवाकर महारावत प्रतापसिंह के राज्य-काल में उसकी प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है[1]।

(२) वि० सं० १७३२ फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १६७६ ता० १ फ़रवरी) का मागसा गांव का गढ़वी गोकल के नाम का दानपत्र, जिसमें मागसा गांव चारण गोकल को उक्त महारावत-द्वारा मिलने का उल्लेख है।

(३) पाटण्या गांव का वि० सं० १७३३ माघ सुदि १५ (ई० स० १६७७ ता० ७ फ़रवरी) का दानपत्र, जिसमें महारावत प्रतापसिंह का पाटण्या गांव मेहता जयदेव को दान करने का उल्लेख है[2]। यह दानपत्र संस्कृत

---

(१) देखो ऊपर पृ० १६३ टिप्पण संख्या ५।

(२) ·········महेंद्रसमेन श्रीमहाराजाधिराजमहाराजरावतश्री-प्रतापसिंहदेवेनालोच्येदमुक्तं । वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्र-मधुरोविषयोपभोगः । प्राणास्तृणाग्रजलबिंदुसमा नराणां धर्मः सखा परमहो परलोकयाने । तथा। या स्वसद्मनि पद्मेपिदिनावधि विराजते इन्दिरा मन्दिरे न्यस्य कथं स्थास्यति सा चिरमितो निःसारं संसारमाकलय्य सहेतुकसकलदुःखनाशकसकलनित्यानित्यसुखसाधकसाधनाग्रेसरकृतोभयै-कादशीव्रतोद्यापने ध्माघशुक्लैका[द]श्यां मया प्रतापसिंहनृपेण महत्तर-जयदेवद्विजाय मत्पितृदत्तविद्यारायापरनाम्ने पाटणपुराख्यो ग्रामः स्वसीमा-वृत्तपर्वतजलाशयकार्षुकहल[इमं]राजामात्यादि सर्वलागटस्वीयपरकीय-टंकीचतुराघाटैः सह पञ्चशताधिकनिवर्तनोपेतः स्वस्तिपत्रेण चंद्रार्क-यावत् श्रीकृष्णापर्णेन दानवाक्येन दत्तः·········वैजवापायनसगोत्रः

में है और इतिहास के लिए उपयोगी है, क्योंकि इसके प्रारंभ में गुहिल से लगाकर भर्तृभट्ट तक गुहिल राजाओं के नाम दिये हैं और फिर क्षेमकर्ण से लगाकर हरिसिंह तक प्रतापगढ़ के नरेशों का यथाक्रम वर्णन दिया है। इसके अतिरिक्त महारावत की माता, पट्टराज्ञी, राजकुमारों, भाइयों, सरदारों, राजगुरु, राजकवियों, मंत्रियों आदि के नाम भी उसमें मिलते हैं।

(४) वि० सं० १७५३ श्रावण सुदि २ (ई० स० १६९६ ता० २१ जुलाई) का देवलिया (देवगढ़) के कोतवाली चबूतरे के पास लगा हुआ शिलालेख, जिसमें महारावत-द्वारा प्रत्येक चतुर्दशी को जानवर मारने और मांस बेचने की मनाई का उल्लेख है[1]।

महारावत का व्यक्तित्व

महारावत प्रतापसिंह वीर, दानशील, साहसी, उदार और विद्वान् राजा था। वह विद्वानों को आदरपूर्वक अपने राज्य में रखकर उनका यथोचित सम्मान करता था, जिससे उसके राज्य-काल में भी वहां साहित्यिक जीवन बना रहा। उसने शाही दरबार से अपना संबंध समयानुकूल रखा और संभव है कि युद्ध आदि अवसरों पर भी शाही सेना के साथ उसने अपनी फ़ौज भेजी हो।

राजपूताने के बीकानेर और जोधपुर राज्यों से वैवाहिक संबंध जोड़कर उसने मेल बढ़ाया। उदयपुर के महाराणाओं से भी उसने विरोध

प्रतापसिंहदेवो पाटणपुरग्रामं प्रतापपुराख्यां विधाय पञ्चशताधिकनिवर्तनोपेतं वत्ससगोत्राय हरिदेव शिवदेव रंगदेव गोपालदेवादि पुत्रपौत्रादि सहिताय महत्तरजयदेवशर्मणे......इत्याचन्द्रार्कयावत् प्रददे.... ।
संवत् १७३३ वर्षे माघ सुदि पूर्णिमास्यां लिखितमिदम्। सोनी हीरो।

मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से।

(१) इस लेख के अतिरिक्त उक्त महारावत के समय का देवलिया में बड़े जैन मंदिर के बाहिर एक पाषाण लेख लगा हुआ है, जिसके संवत्, मिति आदि का भाग घिस गया है।

नहीं बढ़ने दिया, जो उसकी बुद्धिमत्ता का सूचक है[1]। उदार स्वभाव का राजा होने के कारण उसने बीकानेर में विवाह के अवसर पर त्याग आदि बंटवाने में अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। वह धर्मात्मा और दयालु राजा था। प्रजा की भावनाओं का वह सदा आदर करता तथा उत्तम आचरण रखता था। फलतः उसने देवलिया में प्रत्येक अष्टमी को कुम्हारों-द्वारा आवा न पकाने एवं चतुर्दशी को जीव-हिंसा न करने और मांस न बेचने की आज्ञा जारी कर पाषाण-लेख लगवा दिये थे। इन कार्यों से पाया जाता है कि उसके राज्य-काल में वहां जैन धर्मावलंबियों का पूरा प्रभाव रहा होगा। महारावत के ऐसे कार्यों से बाहिर से आकर उसके राज्य में व्यापारी लोग बसने लगे, जिससे राज्य में समृद्धि बढ़ी और थोड़े ही दिनों में उसका बसाया हुआ प्रतापगढ़ क़स्बा अच्छा आबाद हो गया एवं देवलिया की

---

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६२। प्रतापगढ़ राज्य की कुछ ख्यातों में कुछ स्थल पर ऐसा भी लिखा मिलता है कि मेवाड़ के महाराणाओं ने बादशाही सेवा स्वीकार कर लेने के कारण अप्रसन्न होकर कांठल का इलाक़ा जोधपुर के कुंवर रामसिंह को दहेज में दे दिया, जिसपर वह वहां अधिकार करने के लिए गया, परंतु महारावत के एक पिपाड़ा राजपूत के द्वारा मारा गया। उसकी छत्री बमोतर में अंबा-माता के पास विद्यमान है। इस कथन की पुष्टि किसी शिलालेख अथवा उदयपुर और जोधपुर राज्य के इतिहासों से नहीं होती। देवलिया का राज्य सोलहवीं शताब्दी में स्थापित हो गया था और वह एक प्रकार से स्वतंत्र था। मुग़ल बादशाहों के समय उसका शाही दरबार से संबंध था। जहांगीर और औरंगज़ेब के समय उसके कुछ परगनों का मेवाड़ के महाराणाओं के नाम फ़रमान भी हुआ; परंतु उनका अधिकार वहां अस्थायी ही रहा और फिर वे बादशाही दरबार से देवलियावालों को मिल गये। इस अवस्था में मेवाड़ के महाराणाओं का यह राज्य अपने दामाद जोधपुर के राजकुमार रामसिंह को दे देने और उसके वहां जाने पर मारे जाने की बात निर्मूल है। अंबामाता में, जहां रामसिंह की छत्री बताई जाती है, कोई लेख नहीं है, न जोधपुर राज्य की ख्यातों में महा-रावत प्रतापसिंह के समकालीन राजकुमारों की नामावली में रामसिंह का नाम है। अतएव उपर्युक्त कथन में संदेह होना स्वाभाविक है, क्योंकि जिस राज्य पर अधिकार नाम मात्र का न हो, वह राज्य दहेज में देना अस्वाभाविक बात है। संभव है इस छत्री का संबंध मालवे के किसी राठोड़ राजा या राजकुमार से हो, जिसके राज्य की सीमा प्रतापगढ़ राज्य से मिलती हो।

भी उत्तरोत्तर वृद्धि होकर आगे जाकर वहां कई भव्य जिनालय बने। देवलिया राज्य उसके समय में सम्पन्न रहा। उसका कांठल के मीणों पर पूरा आतंक था एवं चोर और लुटेरों को यथेष्ट दंड देकर उसने सर्वत्र शांति की स्थापना की। एक बार डोड़ियों ने एक ब्राह्मण को मार डाला, जिसपर उसने डोड़ियों के गढ़ पिपलोदा पर चढ़ाई कर अपराधियों को दंड देने में किंचित् भी विलंब न किया। शरणागत-वत्सलता को वह क्षत्रियों का मुख्य धर्म समझता था। उसने बादशाह औरंगज़ेब के पौत्र और बहादुरशाह के पुत्र अज़ीमुश्शान के भेजे हुए शेरबुलंदखां नामक शाही सेवक को अपनी शरण में रखकर निर्भीकता का परिचय दिया। वह पूर्ण पितृभक्त और कर्त्तव्यपरायण राजा था। भाषा काव्य में उसकी गति अच्छी थी और रचना सरल होती थी। लोकोपयोगी कार्यों की ओर रुचि होने से उसके राज्य-समय में कई सार्वजनिक स्थानों का निर्माण हुआ। विष्णु का परमभक्त होने के कारण उसने श्रीकृष्ण नाम का साढ़े तीन करोड़ जप करवाया था[1], जिसकी समाप्ति उसने पूर्ण धूमधाम से कर सहस्रों रुपये व्यय किये थे। उसका रतलाम के स्वामी से भी युद्ध होना ख्यातों में लिखा है, परंतु रतलाम के इतिहास से इसकी पुष्टि नहीं होती तो भी रतलामवालों के साथ युद्ध होने के संबंध में वहां निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है—

पातल थारा पीथला मत भेजे रतलाम।
राठोड़े कागद लिख्यो महर करो दीवाण॥

---

(१) प्राकार्षीन्नितरां प्रतापनृपतिः श्रीदेवदुर्गे वरे
समारं स्मारमनन्तनामविलसत्सार्धत्रिकोटिव्रतम्।
तस्योद्यापनमद्भुतं च कृतवान् यादृङ् निबंधान् बहून्
दृष्ट्वा तादृगिहोच्यते हरिपर श्रीमानसिंहाज्ञया॥

रामकृष्ण; नाम माहात्म्य।

कवि कल्याण-रचित "प्रताप-प्रशस्ति" खंडित काव्य[1] में उसकी माता मनभावती, मुख्य राणी पाटमदे, उसके पितृव्य मानसिंह, धमोतर के ठाकुर जोगीदास तथा उसके पुत्र जसकरण, जोगीदास के भाई भोगीदास और रायपुरवालों के पूर्वज दलपत, तुलसीदास, खेरोंटवालों के पूर्वज रूपसिंह, कल्याणपुरावालों के पूर्वज रणछोड़, झांतलावालों के पूर्वज कुशलसिंह, मंत्री वर्द्धमान, उदयभान हूंबड़, गरीबदास एवं महारावत के छोटे भाई अमरसिंह, मोहकमसिंह और माधवसिंह का भी परिचय दिया है।

(१) "प्रताप प्रशस्ति" में उसका रचना-काल नहीं दिया है; पर उसमें धमोतर के ठाकुर जोगीदास के भाई भोगीदास का उल्लेख है। देवलिया में भोगीदास के दो स्मारक लेख मिले हैं, जिनसे पाया जाता है कि वि० सं० १७३१ आषाढ वदि ३ (ई० स० १६७४ ता० १६ जून) को भोगीदास का देहांत हुआ। अतएव वि० सं० १७२० और १७३१ के बीच "प्रताप प्रशस्ति" की रचना होना संभव है।

पांचवां अध्याय

महारावत पृथ्वीसिंह से सामन्तसिंह तक

पृथ्वीसिंह

राज्य-प्राप्ति

महारावत प्रतापसिंह का परलोकवास होने पर वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) के लगभग उसका कुंवर पृथ्वीसिंह प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हुआ।

महारावत की पुत्री का जोधपुर के महाराजा के साथ विवाह होना

जोधपुर के स्वामी महाराजा अजीतसिंह का एक विवाह महारावत प्रतापसिंह की विद्यमानता में, महारावत पृथ्वीसिंह की राजकुमारी (कल्याणकुंवरी ?) से, जबकि उक्त महाराजा का जालोर में निवास था, वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में हुआ था[1]। महाराजा ने पुनः देवलिया में जाकर वि० सं० १७६६ चैत्र सुदि १२ (ई० स० १७०९ ता० ११ मार्च) को महाराजा पृथ्वीसिंह की छोटी राजकुमारी (अनूपकुंवरी ?) से विवाह किया।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस संबंध में लिखा है कि उन दिनों अजमेर के सूबेदार शुजा ने महाराजा अजीतसिंह को जोधपुर से अजमेर बुलवाकर धोखे से मार डालना चाहा। इस कार्य की सफलता के लिए उसने महाराजा अजीतसिंह के पास समाचार भेजा कि बादशाह ने यह सूबा मुझसे उतारकर फ़ीरोज़खां के बेटे को दिया है। इसलिए मैं यहां से अपने घर जाता हूं और फ़ीरोज़खां का बेटा डरकर उज्जैन से आगरे गया

---

(१) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० १०१०।

है, जहां से वह मौक़ा होने पर अपनी जमीयत के साथ आवेगा। इसलिए अजमेर आकर आप यहां अधिकार कर लें। महाराजा अजीतसिंह यह समाचार मिलते ही अजमेर पहुंचा और कुछ दूर एक गांव में अपनी सेना के साथ ठहर गया। अजमेर में जब उसे खाई में शाही सेना के मोर्चे होने का हाल ज्ञात हुआ तो वह शुजाखां का कपट-व्यवहार जान गया। फिर महाराजा ने अजमेर को घेर लिया। महाराजा और शुजाखां की सेनाओं के बीच युद्ध भी हुआ। अंत में जब शुजाखां ने नगर की हालत खराब देखी तो सुलह का प्रयत्न किया और रूपनगर के राजा राजसिंह के समझाने से महाराजा ने एक हाथी, ८ घोड़े और ४५००० रुपये नक़द लेकर वहां से घेरा उठा दिया। तदनन्तर वह वहां से सीधा देवलिया गया और बिना लग्न के ही उसने वि० सं० १७६६ चैत्र सुदि १२ (ई० स० १७०६ ता० ११ मार्च) को महारावत पृथ्वीसिंह की पुत्री से विवाह किया[1]।

ख्यात के इस कथन की पुष्टि बादशाह के राज्य समय के सन् जुलूस ३ ता० ४ सफ़र हि० स० ११२१ (वि० सं० १७६६ प्रथम वैशाख सुदि ६ = ई० स० १७०६ ता० ४ अप्रेल) के 'अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला' से भी होती है। उसमें लिखा है कि अजमेर के निवासियों की संपत्ति लूटने के बाद अजीतसिंह ने वहां का घेरा उठा लिया और फिर वह बीस हज़ार सवारों के साथ मालवे में देवलिया के पृथ्वीसिंह के यहां विवाह के लिए गया।

महारावत प्रतापसिंह ने जिस प्रकार शाही दरबार से अपना संबंध रक्खा था, उसी प्रकार महारावत पृथ्वीसिंह ने भी मुग़ल बादशाह से अपना संबंध बनाये रक्खा। फिर बसाड़ का परगना, जो चग़तानखां को दे दिया गया था, बादशाह शाह-आलम बहादुरशाह ने महारावत प्रतापसिंह का

महारावत के नाम बसाड़ का पुनः फ़रमान और उसके मंसब में वृद्धि होना

देहांत हो जाने से पुनः महारावत पृथ्वीसिंह के नाम पर बहाल कर दिया और सन् जुलूस ३ हि० स० ११२१ ता० ५ जमादिउल्आखिर (वि० सं० १७६६ श्रावण सुदि ७ = ई० स० १७०६ ता० १ अगस्त) को बसाड़

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ६३-४।

की प्रजा तथा अधिकारियों के नाम निम्नलिखित आशय का आज्ञापत्र जारी किया—

"बसाड़ परगने के, जो सूबा मालवे में सरकार मंदसोर के ताल्लुक़ है, चौधरियों, कानूनगो, प्रजाजनों और काश्तकारों को मालूम हो कि ४३६५८०० दाम की आय के परगने चगतानख़ां बहादुर आदि से लेकर आधी साख सियालू तुर्की वर्ष के प्रारम्भ से देवलिया के रावत प्रतापसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह की जागीर में कर दिये गये हैं। इसलिए उचित है कि माल और दीवानी के स्वत्त्वों से जो आय हो, वह पूर्णरूप से क़ायदे और दस्तूर के अनुसार उक्त रावत को देते रहो और उसकी ताबेदारी से बाहिर न रहो[1]।"

महारावत पृथ्वीसिंह का मंसब प्रारंभ में ५०० ज़ात और ५०० सवारों का नियत हुआ था। अपने सन् जुलूस ५ ता० ६ शव्वाल हि० ११२३ (वि० सं० १७६८ कार्तिक सुदि ८=ई० स० १७११ ता० ६ नवंबर) को बादशाह शाहआलम बहादुरशाह ने महारावत के मंसब में ५०० ज़ात और दो सौ सवारों की वृद्धि कर उसका मंसब एक हज़ार ज़ात और ७०० सवार का कर दिया[2]।

वि० सं० १७६८ (ई० स० १७१२) में बादशाह शाहआलम बहादुरशाह की मृत्यु हो जाने पर उसका बड़ा शाहज़ादा जहांदारशाह बादशाह हुआ। महारावत पृथ्वीसिंह का उक्त बादशाह से भी अच्छा संबंध रहा। फलतः बसाड़ के परगने का फ़रमान, जो बहादुरशाह के समय हुआ था, बादशाह जहांदारशाह ने भी बहाल रखा तथा सन् जुलूस २ ता० १६ रबीउल्अव्वल हि० स० ११२४ (वि० सं० १७६६ वैशाख वदि २=ई० स० १७१२ ता० १२ अप्रेल) को वज़ीर आसफ़ुद्दौला ने मीर

जहांदारशाह के पास से बसाड परगने का फ़रमान होना

(१) बादशाह बहादुरशाह के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

(२) बहादुरशाह के राज्य-समय के अख़बारात इ-दरबार-इ-मुअल्ला से।

कज़्ज़न (मंदसोर का हाकिम) के नाम नीचे लिखा आज्ञापत्र प्रेषित किया—

"वसाड़ परगने की ४१२५८०० दाम की जागीर प्रतापसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह को दी गई है। अतएव तुम्हें (मीर कज़्ज़न को) लिखा जाता है कि उधर के ज़मींदारों को आज्ञा दो कि सब बक़ाया ठीक-ठीक चुका दें[1]।"

जहांदारशाह एक वर्ष भी राज्य न करने पाया था कि उस (जहांदारशाह) को उसके छोटे भाई अज़ीमुश्शान (शाहआलम बहादुरशाह का छोटा पुत्र) के शाहज़ादे फर्रुख़सियर ने हराकर मुग़ल साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। इस अवसर पर महारावत पृथ्वीसिंह ने बादशाह के नाम अर्ज़ी भेजी। उसके उत्तर में बादशाह ने फ़रमान भेज महारावत को लिखा कि तुम्हारी भेजी हुई अर्ज़ी, जो मित्रता का विश्वास दिलाने के लिए लिखी गई है, हमारे समीप रहनेवालों के द्वारा हमारी नज़र से गुज़री। हमारा असीम अनुग्रह अपने ऊपर समझकर अर्ज़ियां भेजते रहो[2]।

महारावत के नाम बादशाह फर्रुख़सियर का फ़रमान

इसके पीछे महारावत पृथ्वीसिंह के नाम सन् जुलूस २ ता० ८ रबीउल्‌अव्वल हि० स० ११२६ (वि० सं० १७७१ चैत्र सुदि १०=ई० स० १७१४ ता० १४ मार्च) को बादशाह की ओर से उसके पास नीचे लिखा फ़रमान पहुंचा—

"अपने बराबरवालों में चुने हुए रावत राव पृथ्वीसिंह को बादशाही कृपा का उम्मेदवार रहकर ज्ञात हो कि इस शुभ और अच्छे समय में परमेश्वर की कृपा से हमको बड़ी विजय प्राप्त हुई है। इसलिए इस अच्छे समय में राजा बहादुर (किशनगढ़ का राजा राजसिंह[3]) के

(१) बादशाह जहांदारशाह के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

(२) बादशाह फर्रुख़सियर के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

(३) राजा राजसिंह, किशनगढ़ के राजा मानसिंह का पुत्र और रूपसिंह का पौत्र था। वि० सं० १७६३ (ई० स० १७०६) में मानसिंह का देहांत हो जाने

निवेदन करने पर यह आज्ञा तुम्हारी प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए भेजी जाती है। सदैव स्वामिभक्ति के मार्ग में सुदृढ़ और दत्तचित्त रहकर हमारी कृपाओं को अपने लिए लाभदायक समझो[1]।"

उन्हीं दिनों जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के पास से ता० २७ ज़िल्काद सन् जुलूस २ हि० स० ११२६ (वि० सं० १७७१ मार्गशीर्ष वदि १४=ई० स० १७१४ ता० २४ नवंबर) को समाचार पहुंचा कि भगवतीदास हरकारे ने ख़बर भेजी है कि दुशमन नर्मदा के निकट पहुंच गये हैं[2]। इस

महारावत का शाही इलाक़े में लूट-मार करना

पर वह वहां का स्वामी हुआ था। उसका शाही दरबार में अच्छा प्रभाव था, क्योंकि उसने जजाओ के युद्ध में बादशाह बहादुरशाह की तरफ़ रहकर अच्छी वीरता दिखलाई थी, जिससे पीछे से उसे बहादुरशाह ने "राजा बहादुर" की उपाधि दी थी (वृंद कवि; सत्यरूपक; पृ० २९)। वह देवलिया-प्रतापगढ़ के स्वामी का दौहित्र होने से फ़र्रुख़सियर के समय देवलिया-प्रतापगढ़ के राजाओं का मददगार था। इस कारण से महारावत पृथ्वीसिंह ने उस(राजसिंह)के द्वारा ही शाही दरबार में अर्ज़ी भेजी होगी। "वंशभास्कर" (जि० ४, पृ० ३०६४) से प्रकट है कि फ़र्रुख़सियर को मारने के षड्यन्त्र में कोटा का महाराव भीमसिंह तथा किशनगढ़ का स्वामी राजसिंह, कृतघ्न होकर महाराजा अजीतसिंह और सैयद बंधुओं से मिल गये थे।

(१) बादशाह फ़र्रुख़सियर के महारावत पृथ्वीसिंह के नाम के फ़ारसी फ़रमान का अनुवाद।

(२) फ़र्रुख़सियर के समय के अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला से। उपर्युक्त संवाद से प्रकट है कि बादशाह फर्रुख़सियर के समय दक्षिण की तरफ़ से बढ़कर मरहटे मालवे में प्रवेश करना चाहते थे। वि० सं० १७६९ के माघ (ई० स० १७१३ फ़रवरी) मास में फ़र्रुख़सियर ने सिंहासनारूढ़ होते ही आंबेर के महाराजा सवाई जयसिंह को मालवे का सूबेदार नियतकर आज्ञापत्र भेजा कि वह आंबेर से सीधा उज्जैन जाकर उधर का प्रबंध करे (डॉ० रघुवीरसिंह; मालवा इन ट्रान्ज़िशन; पृ० ९९ एवं मालवा में युगांतर; पृ० १०९)। "वंशभास्कर" (जि० ४, पृ० ३०४२-३) से पाया जाता है कि रूपनगर (किशनगढ़ राज्य) के स्वामी महाराजा राजसिंह की सलाह से बादशाह ने महाराजा सवाई जयसिंह को उज्जैन का सूबेदार बनाया था और वह वि० सं० १७७० (ई० स० १७१४) में बूंदी होता हुआ उज्जैन की तरफ़ गया था।

कारण नरयाना (? नौलाना) का ज़मींदार शिवसिंह[1], देवलिया का पृथ्वी-सिंह[2] तथा रामपुरा का खुशहालसिंह (कुशलसिंह) और बदनसिंह[3], शाही परगनों में लूट-मार मचा रहे हैं। वहां का फ़ौजदार मुहम्मदखां पृथक् किये जाने के कारण उनको रोकने में विशेष कार्य नहीं कर रहा है। यदि नया फ़ौजदार मुहम्मदज़मां वहां शीघ्र भेज दिया जाय तो अच्छा हो। इस-पर बादशाह ने लतीफ़ुल्लाखां को आज्ञा दी कि वह फ़ौजदार को शीघ्र जाने को कहे[4]।

बादशाहत की कमज़ोर हालत और अपने पर बादशाह की नाराज़गी देखकर महारावत पृथ्वीसिंह को अपना राज्य बचाने की चिंता हो गई।

---

(१) इंदौर राज्य के देपालपुर ज़िले में नर्मदा के किनारे नोलाना नाम का चौहानों का छोटा ठिकाना है। संभव है उपर्युक्त नरयाना इसी नौलाना का सूचक हो और उस समय शिवसिंह वहां का सरदार रहा हो।

(२) महारावत पृथ्वीसिंह को इसके पूर्व ही बादशाह फ़र्रुख़सियर ने 'रावत-राव' की उपाधि दे दी थी, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। फिर उसके विद्रोहा-चरण कर शाही इलाक़े में लूट-मार मचाने की बात समझ में नहीं आती, क्योंकि इसका कोई कारण देखने में नहीं आया। अनुमान होता है कि महाराजा सवाई जय-सिंह के मालवे में पहुंचने पर वहां उस(महारावत)का उपर्युक्त महाराजा से मेल नहीं रहा, जिसपर महाराजा-द्वारा बादशाह के पास शिकायत होने से महारावत के सम्मान में कमी हुई हो, तब महारावत ने लूट-मार करना आरंभ किया हो।

(३) खुशहालसिंह (कुशलसिंह) रामपुरा के चंद्रावत (सीसोदिया) राव गोपालसिंह का कुटुंबी और बदनसिंह उस(गोपालसिंह)का पौत्र था। जहांदारशाह के समय बदनसिंह का पिता रत्नसिंह (जिसका बादशाह औरंगज़ेब के समय मुसलमान हो जाने से इसलामखां नाम हुआ) मालवे के सूबेदार अमानतख़ां से लड़कर मारा गया। तब गोपालसिंह ने, जो औरंगज़ेब के समय से ही रामपुरे की गद्दी से वंचित हो गया था, पीछा रामपुरे पर अधिकार करना चाहा, परंतु शाही दरबार से रुकावट हुई, जिससे अनुमान होता है कि खुशहालसिंह और बदनसिंह ने मालवे में लूट-मार आरंभ की हो।

(४) बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय के अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला से।

महारावत का अपने कुंवर पहाड़सिंह को उदयपुर भेजना

उस समय राजपूताना के नरेशों में महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) बड़ा ही मिलनसार था। वह बादशाह से भी अच्छा संबंध रखकर फ़ायदा उठाना चाहता था और उधर मरहटों से भी उसका मेल था। राजपूताना के प्रमुख राज्य जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि के नरेशों से उसका व्यवहार अच्छा था। वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) के लगभग महारावत पृथ्वीसिंह के ज्येष्ठ कुंवर पहाड़सिंह ने भी उदयपुर जाकर पहले के सब द्वेष को मिटा दिया। महाराणा ने उसको धरियावद का परगना देने की आज्ञा दी, किन्तु उक्त कुंवर का उदयपुर में रहते समय ही परलोकवास हो गया[1]।

इस संबंध में महाराजा सवाई जयसिंह के पास वहां के ख़बरनवीसों ने ता० ६ शव्वाल सन् जुलूस ४ हि० स० ११२८ (वि० सं० १७७३ आश्विन सुदि ७ = ई० स० १७१६ ता० १२ सितंबर) को यह समाचार भेजा कि मंदसोर सरकार की घटना से यह पता लगा है कि अपने पुत्र के राणा संग्रामसिंह (दूसरा) के पास चले जाने के कारण रुपयों की कमी हो जाने का बहाना कर देवलिया के रावत पृथ्वीसिंह ने अपनी जागीर के महाजनों से रुपयों की मांग की है। इस वजह से वहां के बहुत से ग़रीब और असमर्थ लोग भाग गये और भाग रहे हैं एवं उसके आगमन से बोहरे आदि व्यापारी भी भाग गये हैं। इसपर बादशाह ने शमसुद्दौला ख़ानदौरां को (महाराजा जयसिंह से) दर्याफ़्त करने का हुक्म दिया[2]।

महारावत पृथ्वीसिंह की उपर्युक्त कार्यवाही से अनुमान होता है कि बादशाह फ़र्रुख़सियर की पीछे से उसपर अप्रसन्नता हो गई। ता० ४ ज़िल्हिज

आंबेर और बूंदी के नरेशों का बादशाह से महारावत की शिकायत करना

सन् जुलूस ४ हि० स० ११२८ (वि० सं० १७७३ मार्गशीर्ष सुदि ५ = ई० १७१६ ता० ८ नवंबर) को आंबेर (जयपुर) के राजा सवाई जयसिंह और बूंदी के महाराव

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६३।

(२) बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय के अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला से।

राजा बुधसिंह की बादशाह के पास अर्ज़ियां पहुंचीं कि देवलिया-प्रतापगढ़ का पृथ्वीसिंह शाही सेवकों के साथ ठीक आचरण नहीं कर रहा है और देवलिया के अहलकारों को रखने में शाही अफ़सरों का बाधक हो रहा है। इसके उत्तर में शाही दरबार से उक्त दोनों राजाओं के पास पृथ्वीसिंह की बेजा कार्रवाई रोकने के लिए फ़रमान भेजा गया[1]।

शिकायतों की जांच के लिए कुतुबुल्मुल्क का भेजा जाना

ता० १२ ज़िल्हिज सन् जुलूस ४ हि० स० ११२८ (वि० सं० १७७३ मार्गशीर्ष सुदि १३ = ई० स० १७१६ ता० १६ नवंबर) को बादशाह के पास अर्ज़ी पहुंची कि देवलिया के ज़मींदार पृथ्वीसिंह के पास शाही सनद नहीं पहुंची है और वह अपनी जागीर के इलाके पर अधिकृत है। पहले वह सरकार में ८००० रुपये देता था और नाज़िम के पास ज़ाबते के लिए पैदल और सवारों को रखता था। अब वह अपना कार्य नहीं कर रहा है एवं उसने बादशाही ज़मीन पर अधिकार कर लिया है। इसपर बादशाह ने क़ुतुबुल्मुल्क को इस विषय में जांच करने की आज्ञा दी[2]।

बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) ने चन्द्रावतों का रामपुरे का इलाक़ा अपने नाम पर लिखवा

(१) बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय के अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला से। उपर्युक्त संवाद से स्पष्ट है कि बादशाह फ़र्रुख़सियर की महारावत पृथ्वीसिंह पर अप्रसन्नता हो गई थी, जिससे बादशाह ने वहां पर ज़ब्ती भेज दी, परंतु महारावत ने शाही अहलकारों का अधिकार नहीं होने दिया।

(२) वही। बादशाह फ़र्रुख़सियर के राज्यारंभ में बूंदी का महाराव राजा बुधसिंह शाही दरबार में नहीं गया था। इसपर बादशाह ने नाराज़ होकर बूंदी का राज्य कोटा के महाराव भीमसिंह को प्रदान कर दिया। इसलिए महाराव राजा बुधसिंह जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के साथ मालवे में रहकर बादशाह को प्रसन्न कर पुनः राज्य पाने का प्रयत्न करता था। "वंशभास्कर" में वि० सं० १७७२ (ई० स० १७१५) के मार्गशीर्ष मास में बुधसिंह को पीछा बूंदी का राज्य मिलने का उल्लेख है (जि० ३, पृ० २०५३) है। इस संवाद से पाया जाता है कि वि० सं० १७७२ (ई० स० १७१५) के पीछे भी महाराव राजा बुधसिंह, महाराजा सवाई जयसिंह के साथ मालवे की ओर रहा होगा।

मंत्री बिहारीदास का रामपुरे से लौटते समय देवलिया में ठहरना

लिया था तथा उक्त बादशाह के पांचवे राज्य-वर्ष वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में उसको डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों का फ़रमान भी मिल गया था। इसपर महाराणा ने उन तीनों जगहों पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए मंत्री बिहारीदास पंचोली को ससैन्य रवाना किया। डूंगरपुर और बांसवाड़ा के नरेशों ने दूरदर्शिता से काम लेकर महाराणा का बड़प्पन स्वीकार किया और फिर वहां से वह सेना रामपुरा पहुंची और जब वहां का मामला तय हो गया तब वहां से मंत्री बिहारीदास, राठोड़ वीर दुर्गादास को वहां के प्रबंध का भार सौंपकर रवाना हो गया। फिर देवलिया, बांसवाड़ा, डूंगरपुर आदि स्थानों में ठहरता हुआ आश्विन सुदि १० को वह उदयपुर पहुंचा[1]। अनुमान होता है कि महारावत पृथ्वीसिंह का कुंवर पहाड़सिंह वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) में देवलिया से उदयपुर चला गया था, इस कारण से महाराणा की सेना ने वहां कुछ भी कार्यवाही न की। "वीर-विनोद" के इस कथन में कि कुंवर पहाड़सिंह का उदयपुर में रहते समय परलोकवास हुआ[2], यदि कोई तथ्य हो तो यही मानना पड़ेगा कि वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में भी उक्त कुंवर उदयपुर गया था; क्योंकि देवलिया के बड़े जैन मंदिर की वि० सं० १७७४ माघ सुदि १३ (ई० स० १७१८ ता० २ फ़रवरी) रविवार की प्रशस्ति[3] में महारावत पृथ्वीसिंह और

---

(१) राठोड़ दुर्गादास का महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के मन्त्री पंचोली बिहारीदास के नाम का वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ६ (ई० स० १७१७ ता० १४ अक्टोबर) भोमवार का पत्र (वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ९६३-४)।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६३।

(३) संवत् १७७४ वर्षे शाके १६३९ प्रवर्तमाने माह (माघ) सुदि १३ रवौ श्रीदेवगढनगरे महाराजधान्यां महाराजाधिराजमहारावतश्रीप्रथवी-(पृथ्वी)सिंघजीविजयीराज्ये कुंवरश्रीपहाड़सिंघविराजमाने........।

देवलिया के बड़े जैन मंदिर के भीतर लगी हुई प्रशस्ति।

कुंवर पहाड़सिंह के नाम अंकित हैं। इससे पाया जाता है कि उक्त सम्वत् के माघ सुदि १३ तक तो उक्त कुंवर जीवित था। इसके बाद ही उसका उदयपुर में रहते समय देहांत होना संभव है।

महारावत के उत्तराधिकारी कुंवर पहाड़सिंह[1] का उसकी विद्यमानता में वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८) के लगभग देहांत हो गया, जिसका महारावत

---

(१) "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में जहां महारावत पृथ्वीसिंह के पुत्रों के नाम दिये हैं, वहां पहाड़सिंह का नाम प्रथम और फिर उम्मेदसिंह, पद्मसिंह, कल्याणसिंह आदि नाम दिये हैं। इससे पाया जाता है कि पहाड़सिंह, महारावत का ज्येष्ठ पुत्र था, परंतु प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात का कथन इसके विपरीत है और उससे पद्मसिंह का पृथ्वीसिंह के पीछे गद्दी बैठने का संदेह हो सकता है, इसलिए "वीरविनोद" के लेखक ने (पृ० १०६३ टिप्पण १ में) इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ संकेत किया है। पद्मसिंह के राजगद्दी पर बैठने का अन्य जगह उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः पृथ्वीसिंह के बाद उसका पौत्र संग्रामसिंह, जिसको रामसिंह भी कहते थे, गद्दी बैठा था। उसके कुछ दानपत्र भी मिले हैं। समय क्रम को देखते हुए पद्मसिंह का गद्दी पर बैठना सिद्ध नहीं होता।

बड़वे की ख्यात में कुंवर पद्मसिंह की पत्नी का नाम भी दिया है। उसमें पहाड़सिंह का नाम पृथ्वीसिंह के तीसरे पुत्र के रूप में लिखा है एवं पहाड़सिंह की पत्नी और उसके पुत्र संग्रामसिंह (रामसिंह) का नाम ही नहीं है। प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात (पृ० १०) में पहाड़सिंह को पद्मसिंह का पुत्र बतलाकर संग्रामसिंह (रामसिंह) को पहाड़सिंह का पुत्र लिखा है, पर महारावत पृथ्वीसिंह के समय के वि० सं० १७६६ (ई० स० १७१२) और वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) के शिलालेखों में पहाड़सिंह का नाम महारावत के नाम के साथ लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि पहाड़सिंह, पृथ्वीसिंह का वास्तविक उत्तराधिकारी था, जिससे उसका नाम शिलालेखों में खोदा गया। संभव है वि० सं० १७६६ (ई० स० १७१२) के पूर्व कुंवर पद्मसिंह का देहांत हो गया हो, तब उसके स्थान पर पहाड़सिंह, जिसको बड़वे की ख्यात में पृथ्वीसिंह का तीसरा पुत्र बतलाया है, प्रचलित प्रथा के अनुसार पद्मसिंह की स्त्री के दत्तक बिठलाकर प्रतापगढ़ राज्य का भावी उत्तराधिकारी निर्वाचित किया गया हो। इस अवस्था में, जैसी कि प्रणाली है, वह पद्मसिंह का पुत्र भी लिखा जा सकता है; परन्तु जब तक यथेष्ट प्रमाण न मिले, इस संबंध में निश्चित मत प्रकट नहीं किया जा सकता।

महारावत का देहांत

को बड़ा दुःख हुआ और वह विशेष न जिया तथा वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८) में परलोक सिधारा। "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में महारावत का देहांत वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) में दिया है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८) तक उसके विद्यमान होने के कई लेख मिल चुके हैं, जो नीचे दिये गये हैं। उसके ६ राणियां थीं, जिनमें से एक विजयकुंवरी बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह की पौत्री और पद्मसिंह की पुत्री थी[1]। उसकी राणियों से पद्मसिंह, कल्याणसिंह, पहाड़सिंह, उम्मेदसिंह, गोपालसिंह और गुमान-सिंह नामक ६ कुंवर तथा कल्याणकुंवरी, पद्मकुंवरी, अनूपकुंवरी, रत्न-कुंवरी एवं सूरजकुंवरी नामक पांच पुत्रियां हुई[2]।

महारावत पृथ्वीसिंह के समय के कई दानपत्र और शिलालेख मिले हैं[3], जिनमें से कुछ इतिहास के लिए उपयोगी हैं। उनका सारांश यहां दिया जाता है—

महारावत के समय के शिलालेख और दानपत्र

(१) वि० सं० १७६५ आषाढ सुदि ६ (ई० स० १७०८ ता० १२ जून)

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ६। प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी ख्यात; पृ० १०।

(२) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात पृ० ६। प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी ख्यात; पृ० १०। "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में महारावत पृथ्वीसिंह के कुंवरों के नाम इस क्रम से दिये हैं—पहाड़सिंह, उम्मेदसिंह, पद्मसिंह, कल्याणसिंह और गोपालसिंह। उसमें गुमानसिंह का नाम नहीं है। प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी ख्यात में महारावत की राणियों की संख्या केवल ६ दी है, जिनमें से चार राणियों के नाम और उनके वंश आदि बड़वे की ख्यात से मिलते हैं, बाक़ी नाम और उनके पितृकुल परस्पर नहीं मिलते। राजकुमारी रत्नकुंवरी तथा सूरजकुंवरी के नाम भी उपर्युक्त ख्यात में नहीं हैं। ख्यातों की पारस्परिक विभिन्नता को देखते हुए यह कहना कठिन है कि उनमें से किसका कथन सही है, पर यह स्पष्ट है कि अट्ठारहवीं शताब्दी तक बड़वे, भाटों को वास्तविकता का बिल्कुल ज्ञान नहीं था।

(३) प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त शिलालेखों और दानपत्रों की छापों में उसके समय

का विलाईखेड़ु गांव का दानपत्र, जिसमें उक्त गांव गढ़वी चारण नाथा को प्रदान करने का उल्लेख है और उक्त दानपत्र में लेखक का नाम विद्या-शिरोमणि राय देकर शाह वर्द्धमान-द्वारा आज्ञा होने पर उसके लिखे जाने का उल्लेख है।

(२) वि० सं० १७६५ आषाढ सुदि १५ (ई० स० १७०८ ता० २१ जून) का मोरभर गांव का ताम्रपत्र, जिसमें विद्या-शिरोमणि राय गोपाल को महारावत प्रतापसिंह-कथित उक्त गांव प्रदान करने का उल्लेख है एवं उसमें लेखक का नाम कोठारी लाला दिया है।

(३) वि० सं० १७६६ कार्तिक सुदि१३ (ई० स० १७१२ ता० ३१ अक्टोबर) का दानपत्र, जिसमें अमलावद गांव में वर्द्धमान के खेतों में से १८ बीघा ज़मीन जोशी नाथू को देने का उल्लेख है। इस दानपत्र का लेखक कोठारी किशन दिया है एवं इसपर जो उर्दू मुहर लगी हुई है, उसमें "बादशाह जहांदारशाह ग़ाज़ी हि० स० ११२६" और "फ़िदवी पृथ्वीसिंह रावत राव" अंकित है[१]।

का एक ताम्रपत्र वि० सं० १७६४ पौष वदि का भी दिया है। उसमें महारावत पृथ्वीसिंह का जोशी किशना को ६१ बीघा ज़मीन जीमखेड़ा खेड़ी में रघुनाथ के यज्ञोपवीत में माता झाली (महारावत प्रतापसिंह की राणी)-द्वारा पुण्य देने का उल्लेख है; परंतु महारावत प्रतापसिंह के प्रसङ्ग में ऊपर पृ० १८७ में बतलाया गया है कि वि० सं० १७६५ के ज्येष्ठ मास में जब बादशाह बहादुरशाह का साथ छोड़कर मालवे से जोधपुर का महाराजा अजीतसिंह और जयपुर का महाराजा सवाई जयसिंह देवलिया होते हुए उदयपुर में पहुंचे उस समय महारावत प्रतापसिंह विद्यमान था। इस अवस्था में वि० सं० १७६४ के पौष वदि में पृथ्वीसिंह देवलिया का स्वामी नहीं हो सकता। इस अवस्था में उपर्युक्त ताम्रपत्र की वास्तविकता में सन्देह होना स्वाभाविक है।

(१) उपर्युक्त ताम्रपत्र पर फ़ारसी अक्षरों में जो छाप खुदी हुई है, उसमें बादशाह जहांदारशाह का नाम देकर हि० स० ११२६ अंकित है और फ़िदवी रावत राव पृथ्वीसिंह दिया है। जहांदारशाह हि० स० ११२४ (वि० सं० १७६६ = ई० स० १७१२) में बहादुरशाह की मृत्यु हो जाने पर अपने भाइयों को हराकर बादशाह हुआ, परंतु नौ महीने बाद ही फर्रुख़सियर ने उससे सल्तनत छीन ली। इस अवस्था में हि० स० ११२६ में जहांदारशाह बादशाह नहीं हो सकता। संभव है कि छाप में अंकित ६ का अङ्क ४ हो और उसको ६ पढ़ लिया गया हो। इस छाप को देखते हुए यह

(४) वि० सं० १७६९ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १७१३ ता० १८ फ़रवरी) का देवलिया के बड़े जैन मंदिर के बाहर का शिलालेख, जिसमें कुंवर पहाड़सिंह और शाह वर्द्धमान के नाम अंकित हैं तथा तेलियों को प्रत्येक पंचमी तिथि पालने (घानी न जोतने) की आज्ञा दी गई है[1]।

(५) वि० सं० १७७४ माघ सुदि १३ (ई० स० १७१८ ता० २ फ़रवरी) का देवलिया के छोटे जैन मंदिर के बाहर का शिलालेख, जिसमें तेलियों को वर्ष भर में ४४ दिन तेल की घानी चलाने का निषेध किया गया है[2]।

(६) वि० सं० १७७४ माघ सुदि १३ (१७१८ ता० २ फ़रवरी) रविवार

अनुमान होता है कि महारावत पृथ्वीसिंह को 'रावत राव' का ख़िताब जहांदारशाह ने दिया हो, परंतु शीघ्र ही उससे राज्य छिन गया। फिर फर्रुख़सियर ने बादशाह बनने पर उक्त ख़िताब को बहाल रक्खा, जिससे फर्रुख़सियर द्वारा यह ख़िताब मिलने की बात प्रसिद्ध हुई और इसी प्रसिद्धि के आधार पर उदयपुर के महाराणा अरिसिंह ने भी अपने वि० सं० १८२८ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १७७२ ता० २७ फ़रवरी) गुरुवार के परवाने में उक्त ख़िताब महारावत पृथ्वीसिंह को बादशाह फर्रुख़सियर-द्वारा मिलने का समर्थन किया है (वीरविनोद; द्वितीय भाग; १०६४-५)।

(१) संवत् १७६९ फागुन सुदि ५ महाराजश्री रावतश्रीप्रथी-(पृथ्वी) सींघजी कुंअर श्रीपहाड़सींघजी वचनातु······।

मूल शिलालेख की छाप से।

(२) स्वस्त (स्ति) श्री संवत् १७७[४] वर्षे माघसुदि १३ रवौ श्रीदेवगढ़नगरे महारावत श्रीप्रथी(पृथ्वी)सिंघजी विजेराज्ये साह रहीआ जीवराज तथा पंच महाजन तेलीआं पासे पुंन धर्म्म अर्थ पालाव्युं समस्त तेलीए राजी थई ने पाल्युं तेनी वगत १ पजुसण सुतांबर दन ······। पजुसण दीगंबर दन १०। १ उली २ चैत्र सुदि ७ थी दन ······। आसोज सुदि ७ थी दन ९। १ अठाई। असाढ सुद ८ थी दन ८। जुमले दन ४४ अंके चुंआलीस ·····कोई घानी जोते [ते] श्रीजी[नो] खुंनी ······।

मूल शिलालेख की छाप से।

की देवलिया के बड़े जैन मंदिर की प्रशस्ति, जिसमें शाह घर्षा के पुत्र शाह वर्द्धमान-द्वारा मल्लिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा होने का उल्लेख है और महारावत पृथ्वीसिंह और उसके कुंवर पहाड़सिंह के नाम दिये हैं[1]। इससे प्रकट है कि वि० सं० १७७४ माघ सुदि १३ (ई० स० १७१८ ता० २ फ़रवरी) तक तो उक्त कुंवर विद्यमान था।

(७) वि० सं० १७७४ माघ सुदि १३ (ई० स० १७१८ ता० २ फ़रवरी) रविवार की देवलिया के छोटे जैन मंदिर की प्रशस्ति, जिसमें देवलिया-निवासी हूंबड़ जाति के मात्रेश्वर गोत्रीय अमात्य शाह रहिश्रा और उसके पुत्र जीवराज आदि का अपने कुटुंब-सहित मूलनायक पार्श्वनाथ का बिंब स्थापित करने का उल्लेख है[2]।

(८) वि० सं० १७७४ माघ सुदि १४ (ई० स० १७१८ ता० ३ फ़रवरी) का देवलिया के छोटे जैन मंदिर के बाहर का शिलालेख, जिसमें पर्यूषणों अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी और आदित्यवार को शराब की भट्टियां निकालने और शराब पिलाने का निषेध किया गया है[3]।

---

(१) देखो ऊपर पृ० २०५ टि० ३।

(२) ...संवत् १७७४ वर्षे। शाके १६३९ प्रवर्त्तमान्ये। उत्तरा-यनगते श्रीसूर्ये। माहा मांगल्यप्रदे मासोत्तममासे। शुभकारिमाघमासे। शुक्लपक्षे। त्रयोदशतिथौ। रविवासरे। श्रीमन्मालवदेशे। काठल मंडले। राणाश्रीहमीरवंशविभूषण। महाराजाधिराज। महारावत श्रीप्रथिसिंघजी विजयराज्ये। श्रीमद्देवगढ़ नगर वास्तव्य। हुवड ज्ञातीय। लघुशाखायां। मात्रेश्वर गोत्रे......अमात्यपद धारि। साह श्री रहिश्रा......लघुभ्राता। साहश्री जीवराज।......इत्यादि सकल कुटुंब युतेन। श्रीमद्देवगढ़ नगरे। मूलनायक श्रीविघ्नहर पार्श्वनाथस्य बिंब स्थापितं...... ॥

मूल शिलालेख की छाप से।

(३) स्वस्त श्री संवत् १७७४ वर्षे। माहासु[द] १४ श्रीदेवगढ़ नगरे। महारावत श्रीश्रीप्रथीसिंघजी वजेराज्ये। साह रहीश्रा जीवराज।

(६) वि० सं० १७७५ मार्गशीर्ष वदि १२ (ई० स० १७१८ ता० ८ नवंबर) का बांगाखेड़ी गांव का ताम्रपत्र, जिसमें उक्त गांव मेहता रंगदेव को देने का उल्लेख है। ताम्रपत्र में लेखक का नाम विद्याशिरोमणि का पुत्र गोपाल दिया है और मेहता द्वारिकादास, हारमेड़ राजसिंह और शाह जीवराज के द्वारा महारावत की आज्ञा होने पर उसके लिखे जाने का उल्लेख है। उसमें महारावत पृथ्वीसिंह को महाराजाधिराज, महाराज, महारावत और महारावतेंद्र लिखा है तथा उसके अंतिम भाग में उक्त महारावत की राणी वीरपुरी का पलथाणा में दस बीघा क्षेत्र देने का भी उल्लेख है[1]।

महारावत का व्यक्तित्व

महारावत पृथ्वीसिंह धर्मशील, दानी, उदार और विवेक-शील राजा था। मुग़ल साम्राज्य की स्थिति बिगड़ती हुई देख उसने पुराने वैमनस्य को मिटाकर उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह से पुनः मेल बढ़ाया, जिससे उसकी नीतिज्ञता का परिचय मिलता है। उसने वर्ष में कई दिन मादक पदार्थ शराब की बिक्री एवं शराब की भट्टी निकालने का निषेध किया था। इसी प्रकार उसने

तथा पंच माहाजने। कलाल पासे पुंन्यार्थे धरमार्थे। पलाव्युं। ते समस्त कलाले राजी थई न इं पाल्यु छे तेनी बीगत बइ॥ थोक ४ पलाव्या १ पजुसण सेतंबरी दिन ८ पालवा १ पजुसण दीगंबर दिन १० जुंमले दिन १८। १ चउदस २४ आठम २४ वरस १ दन ४८ वरस १ ना दीतवार जे आवे ते पालवाणी विगते पले सही। दिन एतलामां हेइ कोई भाटी गालइ। तथा दारु पावइ ते श्री जीनो खूंनी रूपीआ १५ भेरे रही।

मूल शिलालेख की छाप से।

(१) ······स्वस्ति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज श्रीमहाराव-[त] श्रीमहारावतेंद्र श्री प्रथ्वीसिंहजी वचनातु······।

मूल शिलालेख की छाप से।

वर्ष में कई दिन तेल की घानी चलाने की मनाही करवाई थी। स्वभावतः मुग़लों की अधीनता उसको अप्रिय थी, क्योंकि देवलिया राज्य के शाही अधीनता में रहने पर भी जागीर आदि का कुछ अधिक लाभ नहीं हुआ था और धरियावद का पैतृक परगना भी छूट गया था। इसलिए अपने पिछले समय में उसने शाहंशाह के प्रतिकूल आचरण करना आरंभ किया। अपने पूर्वजों की भांति वह भी विद्वानों का आदर करता और निर्वाह के लिए उन्हें जीविका में गांव आदि देकर उनका सम्मान करता था, जैसा कि उसके दानपत्रों से प्रकट है। बादशाह फर्रुख़सियर के राज्यकाल में उसके दिल्ली जाकर निशान, रावतराव का खिताब एवं टकसाल चलाने की इजाज़त भी प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है, परन्तु उसके समय में टकसाल प्रचलित होना पाया नहीं जाता[1]। कुछ स्थल पर ऐसा भी लिखा मिलता है कि रतलाम के राठोड़ों-द्वारा कोटड़ी में थाना स्थापित करने पर उसका

---

(१) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ८०। मेजर के० डी० अर्सेकिन-कृत "गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट" (पृ० १६८) में महारावत पृथ्वीसिंह के बादशाह शाहआलम बहादुरशाह की सेवा में पहुंचने पर उसका अच्छा सम्मान होने एवं ख्यातों के आधार पर उस (पृथ्वीसिंह) को उक्त बादशाह-द्वारा सिक्का बनाने का स्वत्व प्राप्त होने का उल्लेख है; परंतु कुछ स्थल पर महारावत पृथ्वीसिंह को बादशाह फर्रुख़सियर-द्वारा यह सम्मान मिलना लिखा है। सीतामऊ राज्य के विद्याप्रेमी महाराजकुमार डॉक्टर रघुवीरसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी० ने लिखा है कि उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए दूसरा कोई विश्वसनीय आधार नहीं मिलता। ऊपरी दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि साम्राज्य के अधीन किसी भी राज्य को ऐसा अधिकार मिलना असम्भव है (मालवा इन ट्रान्ज़िशन; पृ० १२६ टिप्पण ४। मालवा में युगान्तर; पृ० १४० टिप्पण २)। सर जॉन माल्कम ने, जो आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व मालवे का उच्च अधिकारी था, परिश्रमपूर्वक मालवा के संबंध की सुविस्तृत रिपोर्ट तैयार कर भारत के तत्कालीन गवर्नर-जेनरल मार्किस ऑव् हेस्टिंग्स के पास भेजी थी। उसमें बादशाह मुहम्मदशाह के समय महारावत सालिमसिंह का सिक्का बनाने की आज्ञा प्राप्त करना लिखा है (पृ० २२५), पर यह कथन भी ठीक नहीं प्रतीत होता। सर माल्कम के समय महारावत पृथ्वीसिंह को शाहआलम अथवा फर्रुख़सियर-द्वारा सिक्का ढालने की आज्ञा होने की बात प्रसिद्ध न थी। यदि यह बात प्रसिद्ध होती

वहां के राठोड़ों से युद्ध हुआ था, जिसमें उनकी हार होकर उनका नक़ारा महारावत के हाथ लगा, जो रणजीत नक़ारा कहलाता है और अब तक प्रतापगढ़ राज्य में विद्यमान है[1]।

संग्रामसिंह

महारावत पृथ्वीसिंह के कुंवर पहाड़सिंह का, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, कुंवरपदे में ही परलोकवास हो गया था; अतएव उस-

महारावत की गद्दीनशीनी और मृत्यु

(पृथ्वीसिंह) का देहांत होने पर कुंवर पहाड़सिंह का पुत्र संग्रामसिंह, जिसको रामसिंह भी कहते थे, वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८) में देवलिया की गद्दी पर बैठा; परंतु उसने अधिक समय तक राज्य नहीं किया

तो वह अपनी रिपोर्ट में इसका उल्लेख अवश्य करता। मुहम्मदशाह हि० स० ११३१ (वि० सं० १७७६ = ई० स० १७१९) में दिल्ली का स्वामी हुआ और हि० स० ११६१ (वि० सं० १८०५ = ई० स० १७४८) में उसकी मृत्यु हुई। प्रतापगढ़ का स्वामी महारावत सालिमसिंह वि० सं० १८१४ (ई० स० १७५७) में गद्दी पर बैठा और वि० सं० १८३१ (ई० स० १७७४) में परलोक सिधारा। ऐसी अवस्था में सालिमसिंह को मुहम्मदशाह-द्वारा सिक्का बनाने की आज्ञा मिलने की बात भी स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि सालिमसिंह मुहम्मदशाह का समकालीन न था। वस्तुतः सालिमशाही सिक्का, जिसकी बाबत उपर्युक्त वर्णन है, शाहआलम द्वितीय (वि० सं० १८१६-१८६३ = ई० स० १७५९-१८०६) के समय सन् जुलूस २५ हि० स० ११९९ में महारावत सामन्तसिंह के समय प्रतापगढ़ में बनना आरंभ हुआ, जिसपर शाहआलम का नाम होने और शाहआलम और सालिमसिंह नाम एकसा होने से वह 'शाहआलमशाही' के स्थान में 'सालिमशाही' प्रसिद्ध हो गया, जैसा कि हम ऊपर पृ० १४ में बतला चुके हैं। यह संभव है कि शाहआलम दूसरे के समय महारावत सालिमसिंह ने सिक्का बनाने की आज्ञा प्राप्त की हो। फिर उसका देहांत हो जाने से, जैसा कि सिक्के पर उल्लेख है, उक्त बादशाह के २५ वें सन् जुलूस में महारावत सांमतसिंह ने यह सिक्का जारी किया हो।

(१) कैप्टेन सी० ई० येट; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० ८०। मेजर के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट; पृ० १९८।

और वि० सं० १७७६ (ई० स० १७१६) में उसकी निःसंतान मृत्यु हो गई।

उसके समय के वि० सं० १७७६ आषाढ वदि २[1] (ई० स० १७१६ ता० २४ मई) और आषाढ वदि ६[2] (ई० स० १७१६ ता० ३१ मई)

---

(१) श्री मन्महाराजाधिराज महारावतजी श्रीसंग्रामसिंहजी वचनातु जोशी रोड़ाजी सुष(ख)रामजी जोग्य यत् षे (खे) त वीघा ६१ एकाणु श्री प्रथीसिंहजी तथा पहाड़सिंह दीधा छै जे मे आ चंद्रार्क यावत उदक आघाटे पाले दीधी। जेरा विगत वीघा ६० वर मंडल अरधोदये चंद्र ग्रहणे दीधा वीघा ३१ अमलावदे पहाड़ जी निमिच जोमले ६१ [वीघा] जेम दीधी......... । दुए साह जीवराज मेता द्वारिकादास लिषि(खि)तं विद्या शिरोमणि राय संवत १७७६ वर्षे......अषाढ़ वदि २.......

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

(२) महारावतेंद्र श्रीसंग्रामसिंघजी वचनातु जोसी रोडाजी सुष-(ख)रामजी जोग्य यत् गाम अमलावद मांहे गोहरा वालु षे (खे)-त वीगा १३) अंके तेरे मा झालीजी थाने दीदु गोतमजी माहे दीदु जे मे आ चंद्रार्क यावत कृष्णार्पणे दीदु जी टकी लागट(त) बल-(त) माफ करे दीदाजी......लिषि(खि)तं विद्या शिरोमणि रायजी दुए सा जीवराज में [ह] ता द्वारकादासजी संवत १७७६ वर्षे असाड वदि ६ दीने।

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

प्रतापगढ से प्राप्त शिलालेखों और ताम्रपत्रों की सूची में महारावत उम्मेदसिंह का संवत् १७७६ ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० स० १७१६ ता० १५ मई) का एक ताम्रपत्र और बतलाया है; परंतु उसकी छाप अथवा प्रतिलिपि हमारे देखने में नहीं आई। ऐसी अवस्था में उक्त ताम्रपत्र की वास्तविकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि वह ताम्रपत्र सही हो तो संवत् १७७६ (ई० स० १७१६) के आषाढ में संग्रामसिंह प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी नहीं हो सकता और उपर्युक्त दोनों ताम्रपत्र कृत्रिम ठहरेंगे;

महारावत के समय के ताम्रपत्र

के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जिनसे पाया जाता है कि उपर्युक्त संवत् के आषाढ मास के पीछे उसका देहांत हुआ हो, जैसा कि ख्यातों में उल्लेख है[1]। "वीरविनोद" में वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में उसकी गद्दीनशीनी और इसके छः महीने बाद मृत्यु होने का उल्लेख है[2], जो ठीक नहीं है; क्योंकि वि० सं० १७७५ मार्गशीर्ष वदि १२ (ई० स० १७१८ ता० ८ नवंबर) का तो महारावत पृथ्वीसिंह का ताम्रपत्र मिल चुका है, जिसका उल्लेख ऊपर आ गया है[3]।

उम्मेदसिंह

ऊपर लिखा जा चुका है कि महारावत संग्रामसिंह के कोई संतान नहीं थी। इसपर सरदारों आदि ने उस (संग्रामसिंह) के पितृव्य उम्मेद-

राज्यप्राप्ति और देहांत

सिंह को, जो महारावत पृथ्वीसिंह का छोटा पुत्र था, वि० सं० १७७६[4] (ई० स० १७१९) में

परन्तु इन दोनों ताम्रपत्रों में उल्लिखित व्यक्ति विद्याशिरोमणि राय, शाह जीवराज और मेहता द्वारिकादास, महारावत संग्रामसिंह के समकालीन थे। ऐसी स्थिति में बिना किसी पुष्ट प्रमाण के इन दोनों ताम्रपत्रों की वास्तविकता में संदेह करना निर्मूल है।

प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात और वहां से आई हुई प्राचीन ख्यात में महारावत संग्रामसिंह की राणियों के नाम नहीं हैं और उपर्युक्त प्राचीन ख्यात (पृ० १०) में उसकी बालक अवस्था में अविवाहित मृत्यु होना बतलाया है।

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ७। प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात; पृ० १०।

(२) द्वितीय भाग, पृ० १०६३।

(३) देखो ऊपर पृ० २११; टि० १।

(४) "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में महारावत उम्मेदसिंह की गद्दीनशीनी का संवत् १७७४ (ई० स० १७१७) दिया है, जो ठीक नहीं है। वि० सं० १७७६ (ई० स० १७१९) के महारावत संग्रामसिंह के दानपत्र मिल चुके हैं, अतएव वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में उम्मेदसिंह का गद्दी पर बैठना संभव नहीं है।

राजगद्दी पर बिठलाया। वह भी अधिक समय तक राज्यसुख का उपभोग न कर सका और वि० सं० १७७८[1] (ई० स० १७२१) में उसकी मृत्यु हो गई।

महारावत के शिलालेख और दानपत्र

प्रतापगढ़ से प्राप्त शिलालेखों और ताम्रपत्रों की सूची में उस-(उम्मेदसिंह) का सबसे पहला लेख वि० सं० १७७६ ज्येष्ठ सुदि ७[2] (ई० स० १७१६ ता० १५ मई) और अंतिम लेख वि० सं० १७७७ माघ वदि ३०[3] (ई० स० १७२१ ता० १६ जनवरी) का दिया है। वि० सं० १७७७ आषाढ सुदि १५[4] (ई० स० १७२० ता० ८ जुलाई) के उसके ताम्रपत्र की छाप तथा उसी वर्ष के मार्गशीर्ष वदि ५[5] (ता० ८ नवम्बर) बुधवार के ताम्रपत्र की प्रतिलिपि हमारे पास आई हैं, जिनसे उसका समय निश्चित करने के अतिरिक्त और कोई वृत्तांत ज्ञात नहीं होता।

---

(१) महारावत गोपालसिंह के सबसे पहले वि० सं० १७७८ वैशाख सुदि १ (ई० स० १७२१ ता० १६ अप्रेल) के दानपत्र का प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त शिलालेखों की सूची में उल्लेख है, जिससे स्पष्ट है कि वि० सं० १७७८ (ई० स० १७२१) के प्रारंभ में गोपालसिंह प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हो चुका था।

इसकी पुष्टि उक्त महारावत के वि० सं० १७७८ श्रावण सुदि १२ (ई० स० १७२१ ता० २६ जुलाई) बुधवार के सेखड़ी गांव के गोसाइँ गंगागिरि के नाम के दानपत्र से भी होती है, जिसमें उसके उदयपुर जाने और वहां यह दानपत्र लिखाने का उल्लेख है।

(२) देखो ऊपर पृ० २१४, टि० २।

(३) प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त शिलालेखों की सूची से।

(४) जोशी रोड़ा सुखराम के नाम बसाड़ में ३५ बीघा ज़मीन देने के संबंध के ताम्रपत्र की मूल छाप से।

(५) भाट फत्ता के नाम के महारावत उम्मेदसिंह के ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से। तिथि और वार का मिलान करने पर उस दिन (मार्गशीर्ष वदि ५ को) बुधवार के स्थान में मंगलवार आता है।

वि० सं० १७७६ ज्येष्ठ सुदि ७ के ताम्रपत्र के संबंध में हम ऊपर अपना मत प्रकट कर चुके हैं[1]।

महारावत उम्मेदसिंह दानी राजा था। उसने अपने अल्प शासन-काल में कई व्यक्तियों को गांव और भूमि दी एवं भाट फत्ता को कुंवरपदे की सेवा में वेलाली गांव, जो पहले मेहडु रणछोड़ चारण का था, देकर उसके एवज़ में रणछोड़ को संचई गांव दिया था। उक्त महारावत ने पुष्कर-यात्रा के अवसर पर भूमिदान भी किया था। प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में उसके चार राणियां और एक कुंवरी अमृतकुंवरी होने का उल्लेख है[2]।

महारावत की राणियां और संतति

---

(१) देखो ऊपर पृ० २१४, टि० २।

(२) पृ० ७। "जोधपुर राज्य की ख्यात" (द्वितीय भाग, पृ० ११६) में लिखा है कि सीसोदिया उम्मेदसिंह जगतसिंहोत की राठोड़ पत्नी देवलिया छूट जाने पर जोधपुर चली गई। उसके दो पुत्र सालिमसिंह और खुमाणसिंह थे। महाराजा अजीतसिंह उस (उम्मेदसिंह की पत्नी) का सहोदर भगिनी के समान आदर करता था। जब वि० सं० १७८१ आषाढ सुदि १३ (ई० स० १७२४ ता० २३ जून) को महाराजा अजीतसिंह अपने पुत्र बख़्तसिंह-द्वारा मार डाला गया, तब उसके साथ उसकी जिन राणियों, सेवकों आदि ने अग्नि में जलकर प्राण विसर्जन किये उनमें उम्मेदसिंह की पत्नी भी थी। उक्त ख्यात का यह कथन कहां तक ठीक है, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों से इसका समर्थन नहीं होता है। "जोधपुर राज्य की ख्यात" का यह कथन कि उम्मेदसिंह जगतसिंह का पुत्र था, निर्मूल है; कारण वहां जगतसिंह नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात से पाया जाता है कि वहां के महारावत उम्मेदसिंह के राठोड़ कुल की तीन राणियां थीं। संभव है कि उसकी इन राणियों में से कोई जोधपुर जाकर भी रही हो। वहां ऐसी भी प्रसिद्धि है कि महारावत उम्मेदसिंह की मृत्यु के समय उसकी एक राणी केसरकुंवरी (कछवाहा राजावत कुशलसिंह की पुत्री) अपने बालक-पुत्र सालिमसिंह को प्राणभय से कुछ लोगों के बहकाने पर जयपुर की तरफ़ लेकर चली गई। इसपर कल्याणपुरा के सरदार फ़तहसिंह की सम्मति से उम्मेदसिंह का छोटा भाई गोपालसिंह देवलिया राज्य का स्वामी हो गया। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता

गोपालसिंह

वि० सं० १७७८ (ई० स० १७२१) में अपने ज्येष्ठ भ्राता उम्मेदसिंह का परलोकवास होने पर महारावत गोपालसिंह प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हुआ और उसी वर्ष उसने उदयपुर जाकर[1] वहां के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) से मुलाक़ात कर अपनी गद्दीनशीनी की रसम को सुदृढ़ कर लिया, क्योंकि कुछ कारणों से उसको झगड़ा होने की आशंका थी।

राज्य-प्राप्ति

है कि उम्मेदसिंह का पुत्र सालिमसिंह बाल्यावस्था के कारण राज्याधिकार से वंचित रहा और उसका चाचा गोपालसिंह (उम्मेदसिंह का भाई) कुछ सरदारों को मिलाकर राज्य का स्वामी बन बैठा।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत जोधपुर के राजाओं, राणियों, कुंवरों, कुंवरियों आदि की नामावली की पुस्तक से पाया जाता है कि वि० सं० १७८१ आषाढ सुदि ६ (ई० स० १७२४ ता० १६ जून) को देवलिया की एक राजकुमारी से जोधपुर में ही महाराजा अजीतसिंह का विवाह हुआ था एवं इसके कुछ (चार) दिन बाद ही उक्त महाराजा अपने पुत्र बख़्तसिंह के हाथ से मारा गया। अनुमान होता है कि वह उम्मेदसिंह की ही कोई पुत्री हो, जिसका नाम बड़वे की ख्यात में अमृतकुंवरी दिया है।

(१) श्रीमहाराजाधिराज महारावतजी श्रीगोपालसींघजी बचनातु गुसाईं श्रीगंगागिरजी जोग्य यत् मोजे गाम १ सेखड़ी गांव भूमिहरा तथा टकरावद तीरेरी गाम नाथूखेड़ी पहेली रावत श्रीप्रथीसिंघजी संवत् १७७२ रा जेठ सुदि १५ रे दिन चढावी जीरे बदले रावत श्रीगोपालसिंघजी उदेपुर पधारया मठे जदी गाम सेखड़ी कथकावल रहित लागट विलगट रहित उदक आघाट करे दीधी। मारा वंश रो कोई चोलण करसी नहीं। स्वदत्तं परदत्तं वा ये हरन्ति वसुंधरा षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। दुए शाह चंद्रभाणजी प्रेरक ठाकर फतेसिंघजी, लिखावत राव रिणछोड़दासजी मामा रामचंदजी उदेपुर मांहे हुकम थी लिखायो। संवत् १७७८ सावण सुदि १३ बुधे

मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से।

उन दिनों मुग़ल बादशाहत की स्थिति बहुत ही गंभीर हो रही थी। फ़र्रुख़सियर के सैयद बंधुओं-द्वारा बंदी बनाकर कठिन यातना देने के उपरांत मरवा डालने से मुग़ल साम्राज्य को बड़ा धक्का लगा और चारों तरफ़ अराजकता फैल गई। सैयदों ने औरंगज़ेब के वंशधरों में से ही रफ़ीउद्दरजात[1] और रफ़ीउद्दौला[2] को क्रमशः दिल्ली के तख़्त पर बैठाया, किन्तु सात महीनों में ही वे दोनों व्याधिग्रस्त होकर काल-कवलित हो गये। रफ़ीउद्दौला के समय कतिपय व्यक्तियों ने औरंगज़ेब के शाहज़ादे अकबर के पुत्र निकोसियर को आगरे में बादशाह बनाया, जहां वह क़ैद था, परंतु इसमें उनको सफलता न हुई और सैयद बंधुओं ने वहां पहुंच निकोसियर को पुनः क़ैद कर लिया तथा उसके सहायकों को दंड देकर अपना मार्ग निष्कंटक कर लिया। फिर उन्होंने रफ़ीउद्दौला के निःसंतान मर जाने पर बहादुरशाह के शाहज़ादे जहांशाह के पुत्र रोशनअख़्तर को वि० सं० १७७६ (ई० स० १७१९) में मुहम्मदशाह नाम रख बादशाह बनाया, परंतु सुव्यवस्था स्थापित न हो सकी। यह अवसर मरहटों को अपनी शक्ति बढ़ाने में बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ और उनके उत्तरी भारत में आक्रमण होने लगे।

मुग़ल बादशाहत की तत्कालीन स्थिति

---

(१) रफ़ीउद्दरजात, बादशाह बहादुरशाह के तीसरे शाहज़ादे रफ़ीउश्शान का पुत्र था। बादशाह फ़र्रुख़सियर को बंदी बनाने के पीछे सैयद बंधुओं ने हि० स० ११३१ ता० ६ रबीउस्सानी (वि० सं० १७७५ फाल्गुन सुदि १० = ई० स० १७१९ ता० १८ फ़रवरी) को उसको दिल्ली के तख़्त पर बिठलाकर उसका नाम "शम्सुद्दीन अबुल्बरक़ात रफ़ीउद्दरजात" रखा। तख़्तनशीनी के समय वह रोगग्रस्त था, जिससे तीन मास बाद ही उसकी मृत्यु हुई।

(२) रफ़ीउद्दौला, रफ़ीउद्दरजात का बड़ा भाई था। ता० २० रजब हि० ११३१ (वि० सं० १७७६ आषाढ वदि ६ = ई० स० १७१९ ता० २९ मई) को वह "शम्सुद्दीन रफ़ीउद्दौला मुहम्मद शाहजहांसानी" नाम से दिल्ली का स्वामी हुआ और उसी वर्ष ता० ७ ज़िल्काद (प्रथम आश्विन सुदि ९=ता० ११ सितंबर) को उसका देहांत हुआ।

मालवे में मरहटों का सबसे पहला आक्रमण वि० सं० १७५६[1] (ई० स० १६९९) में बादशाह औरंगज़ेब की विद्यमानता में हुआ था, पर वह आक्रमण केवल शाही इलाक़े में लूट-मारकर दक्षिण से बादशाह का ध्यान हटाने के लिए ही था।

मरहटों का उत्थान

औरंगज़ेब के जीवन-काल में दक्षिण में मरहटों के साथ की लड़ाइयां जारी रहीं और उसकी मृत्यु के साथ ही उनमें कमी आ गई। पच्चीस वर्ष से दोनों दल निरन्तर युद्ध कर रहे थे। अब उनका थक जाना स्वाभाविक था। उन दिनों मरहटों में भी कुछ गृह-कलह उत्पन्न हो गया, पर वे शीघ्र ही चेत गये। इसके विपरीत मुग़ल साम्राज्य में ऐसी शिथिलता उत्पन्न हुई कि मुग़ल अपनी सत्ता को सुदृढ़ न कर सके। छत्रपति शिवाजी ने भारत में पुनः जिस हिन्दू-साम्राज्य की नींव डाली थी, उसको दृढ़ करने का वह उपयुक्त समय था; क्योंकि उन दिनों शिवाजी के संस्थापित सतारा राज्य के स्वामी शाहू का मंत्री पेशवा बाजीराव[2] बल्लाल योग्य व्यक्ति था। उसके समय में राजा शाहू

---

(१) डॉ० रघुबीरसिंह; मालवा में युगांतर; पृ० ६०-१। यह आक्रमण मरहटों के एक सेनापति कृष्णाजी सावंत ने किया था। उसके साथ उस समय पन्द्रह हज़ार सवार थे और नर्मदा नदी पारकर वह धामुनी इलाक़े में लूट मारकर वापिस चला गया।

(२) पेशवा जाति के ब्राह्मण थे। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद शाहज़ादे आज़मशाह ने मरहटा राजा शंभा के पुत्र शाहू को क़ैद से छोड़ दिया। फिर उसने सेना एकत्र कर सतारा पर अधिकार किया। तदनन्तर शाहू ने वि० सं० १७७१ (ई० स० १७१४) में बालाजी विश्वनाथ को पेशवा (प्रधान) का पद दिया। उस-(बालाजी)ने राजा शाहू के समय अपने अधिकारों को बढ़ा लिया। वि० सं० १७७७ (ई० स० १७२०) में बालाजी की मृत्यु हुई और उसका पुत्र बाजीराव बल्लाल पेशवा बना, जिसने मरहटों का प्रभाव उत्तरी भारत में फैलाकर मालवा पर अधिकार किया और राजपूताना तथा मुग़ल साम्रज्य पर मरहटों का आतंक स्थापित कर दिया। वि० सं० १७९७ वैशाख सुदि १ (ई० स० १७४० ता० १६ अप्रेल) को बाजीराव का देहांत होने पर उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना, जिसने राजा शाहू के मरने पर (जब रामराजा का पुत्र शिवाजी (दूसरा) कोल्हापुर से गोद आकर सतारा राज्य का स्वामी बना) पूना में रहना स्थिर कर पृथक् राज्य की सृष्टि की और सतारा

केवल नाममात्र का शासक रह गया और पेशवा का प्रताप इतना बढ़ा कि दिल्ली के मुग़ल बादशाह भी उसको हर प्रकार से प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। पेशवा के सेनापति मल्हारराव होल्कर[1], राणोजी सिंधिया[2] और

पर शिवाजी का अधिकार रहा, परंतु वह सतारा के राजा को ही अपना मालिक मानता रहा।

(१) होल्कर राज-वंश के लिए इतिहासकारों के भिन्न भिन्न मत हैं। इस वंश में मल्हारराव होल्कर अट्ठारहवीं शताब्दी में एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ। मल्हारराव होल्कर का जन्म वि० सं० १७५० (ई० स० १६९३) के लगभग हुआ। उसका बाल्यकाल बड़ी विपत्ति में गुज़रा। उसका पिता उसको छोटी अवस्था में छोड़कर मर गया था, इसलिए उसका पालन-पोषण उसके मामा नारायणराव के यहां हुआ, जिसको उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) की तरफ़ से बूढ़ा की जागीर मिली थी। फिर वह अपने मामा के पास २५ सवारों की टोली का अफ़सर बना और बढ़ते-बढ़ते पेशवा के मुख्य सेनापतियों में हो गया। उसने केवल दक्षिण भारत के युद्धों में ही नहीं बल्कि उत्तर भारत की अनेक लड़ाइयों में समय-समय पर बड़ी वीरता दिखलाई थी। मालवा में पेशवा का अधिकार होने पर उसको वहां एक बड़ी आय की जागीर मिली। अनन्तर उसने अपने वंशजों के लिए इंदौर राज्य की स्थापना की। वि० सं० १८२३ (ई० स० १७६६) में उसका देहांत हुआ। होल गांव में रहने से यह राजवंश होल्कर कहलाता है।

(२) सिंधिया वंश के राजा नागवंशी क्षत्रिय हैं। महाराष्ट्र में सिंदे गांव में निवास होने से वे सिंदे (सिंधिया) कहलाने लगे। इस वंश की एक कन्या का विवाह प्रसिद्ध राजा शिवाजी के पौत्र राजा शाहू से हुआ था। मध्यभारत में ग्वालियर का विशाल राज्य सिंधिया के अधिकार में है, जिसका संस्थापक राणोजी सिंधिया था। प्रारंभ में वह पेशवा के छोटे नौकरों में था, परंतु धीरे-धीरे उच्च पद पर पहुंचा और पेशवा के प्रधान सेनापतियों में हो गया। उसने मालवा में मरहटा राज्य स्थापित करने में पूर्ण वीरता दिखलाई थी। वह पेशवा की तरफ़ से संपूर्ण अधिकारों के साथ दिल्ली के बादशाह के पास भेजा गया था, जहां उसने पेशवा और मुग़ल साम्राज्य के साथ होनेवाले संधिपत्र पर पेशवा के प्रतिनिधि की हैसियत से हस्ताक्षर किये थे। वि० सं० १८०२ श्रावण सुदि २ (ई० स० १७४५ ता० १९ जुलाई) को शुजालपुर में राणोजी की मृत्यु हुई। फिर उसका पुत्र जयआपा अपने पिता की संपत्ति का अधिकारी हुआ, जिसको जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) में छल से मरवाया।

आनंदराव[1] पंवार युद्ध-निपुण थे, जिन्होंने थोड़े समय में ही भारत में मरहटों का आतंक जमा दिया। शाही सेना के साथ दक्षिण में निरन्तर पच्चीस वर्ष तक युद्ध में संलग्न रहने के कारण मरहटों की आर्थिक स्थिति संतोषप्रद नहीं रही थी एवं वे ऋणग्रस्त भी थे, इसलिए प्रारंभ में उन्होंने उत्तर भारत के आक्रमणों में धन बटोरने की ही नीति रखी और फिर उन्होंने मालवे में बढ़कर वहां पर अधिकार किया, जैसा आगे बतलाया जायगा।

आंबेर और जोधपुर के राजाओं की शक्ति बढ़ना

मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता के समय राजपूताना के राजाओं की भी अपने-अपने राज्य बढ़ाने की लालसा जाग उठी। उनमें उदयपुर, जयपुर और जोधपुर के नरेशों के नाम उल्लेखनीय हैं, पर उदयपुर के महाराणा तो स्वयं शाही दरबार में कभी न गये, जिससे मुग़ल साम्राज्य की राजनीति में उनका कुछ हाथ न रहा। आंबेर (जयपुर) के महाराजा सवाई जयसिंह तथा जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह का वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) के पीछे मुग़ल साम्राज्य के उलट-फेर में बड़ा हाथ रहा, जिससे उनकी शक्ति बढ़ गई। उस समय के मुग़लों के इतिहास में आंबेर और जोधपुर के नरेशों का महत्वपूर्ण स्थान है। बादशाह की तरफ़ से मरहटों के आक्रमणों को रोकने के लिए जयसिंह को मालवे[2]

---

(१) धार के परमार राजा मालवे के प्रसिद्ध परमारों के वंशधर हैं। महाराष्ट्र में उनका निवास होने से वे मरहटा कहलाये। इस राज्य का संस्थापक ऊदाजी पंवार हुआ, जो सतारां के राजा शाहू का बड़ा विश्वासपात्र सेवक था। पेशवा बाजीराव के उन्नतिकाल में उसका उक्त पेशवा से मतभेद रहता था, इसलिए मरहटा-राज्य के विस्तार में पूर्ण रूप से भाग लेने पर भी उसको कोई बड़ी जागीर नहीं मिली और अपनी जागीर से भी उसे संबंध त्यागना पड़ा। फिर पेशवा ने वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३२) के लगभग उसका सब अधिकार उसके छोटे भाई आनंदराव को दिया, जो अपने भाई के समान वीर था। वि० सं० १८०६ (ई० स० १७४९) में उसकी मृत्यु होना पाया जाता है।

(२) सवाई जयसिंह की मालवे की प्रथम सूबेदारी लगभग पांच वर्ष तक

और अजीतसिंह को गुजरात[1] का भार सौंपा गया। अजीतसिंह तथा बादशाहों के बीच मन-मुटाव बना ही रहता था। अंत में वह इसी कारण से अपने छोटे कुंवर बख़्तसिंह-द्वारा वि० सं० १७८१ (ई० स० १७२४) में मारा गया[2]। फिर उसका ज्येष्ठ कुंवर अभयसिंह जोधपुर राज्य का स्वामी हुआ, जो साम्राज्य-भक्त बना रहा। मुहम्मदशाह के समय वह गुजरात का सूबेदार भी बनाया गया[3], परंतु अपने कर्मचारियों की लूट-खसोट के कारण वहां सुव्यवस्था स्थापित न कर सका। फिर भी गुजरात की तरफ़ से मरहटों को उसने आगे नहीं बढ़ने दिया। वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में उदयपुर, जयपुर और जोधपुर के नरेशों ने एकता के सूत्र में बंधे रहने के लिए संधि भी की[4]; किन्तु जयसिंह की राजनैतिक

ई० स० १७१३ फ़रवरी से ई० स० १७१७ नवंबर (वि० सं० १७६९-१७७४) तक रही थी (डॉ० रघुबीरसिंह; मालवा इन् ट्रान्ज़िशन; पृ० ९९-१०१)।

(१) गुजरात की सूबेदारी महाराजा अजीतसिंह को वि० सं० १७७१ (ई० स० १७१५) में मिली थी, और वह लगभग दो वर्ष अर्थात् वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) तक वहां का सूबेदार रहा था (बंबई गैज़ेटियर; भा० १, खं० १, पृ० २९९)।

(२) टॉड; राजस्थान, जि० २, पृ० ८२९-३७, १०२८-२९। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० ११५। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ८४२।

(३) महाराजा अभयसिंह वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में गुजरात का सूबेदार हुआ और वि० सं० १७९४ (ई० स० १७३७) तक वह सूबा उसके नाम पर रहा। वि० सं० १७९० (ई० स० १७३३) के पीछे उक्त महाराजा गुजरात में नहीं गया और उसके कर्मचारी भंडारी रतसी आदि ही वहां का प्रबन्ध करते रहे (वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ८४४-७)।

(४) देखो मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास, जि० २, पृ० ६०४-५। इस सन्धि का आशय मुख्यतः उदयपुर की राजकुमारी का महत्व प्रमाणित करना था। मुग़ल बादशाहों के साथ कुछ राजपूताने के राज्यों ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, जिसपर महाराणा प्रतापसिंह ने जयपुर आदि राज्यों से विवाह-सम्बन्ध बन्द कर दिया। उसको पुनः जारी करने के लिए यह इक़रारनामा जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह से लिखवाया गया था। वस्तुतः इस संधिपत्र से कोई राजनैतिक महत्व सिद्ध नहीं हुआ और उदयपुर तथा जयपुर राज्य को इस इक़रार के कारण जयसिंह की मृत्यु के बाद

चालों से वह कागज़ का रद्दी टुकड़ा ही रही। स्वार्थपरता और पारस्परिक वैमनस्य से जयपुर और जोधपुर के नरेश शीघ्र ही उपर्युक्त संधि से पराङ्मुख हो गये एवं एक दूसरे का विनाश चाहने लगे। उदयपुर का महाराणा उनके पारस्परिक वैमनस्य को मिटाने का प्रयत्न करता था, पर वह बढ़ता ही गया। इससे कहा जा सकता है कि राजपूताना के राज्यों में उस समय कोई राजा नेतृत्व के योग्य नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि आपसी द्वेष से राजपूताना के राज्यों की दशा हीन हो गई।

महारावत को धरियावद का परगना मिलना

इस अशांतिमय वातावरण में छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व लुप्त होने की पूरी संभावना थी। अस्तु, संगठन-शक्ति की भावना छोटे-छोटे राज्यों में भी जागृत होकर वे बड़े राज्यों का सहारा ढूंढने लगे। उदयपुर राज्य, प्रतापगढ़ राज्य के समीप होने एवं वहां के राजाओं के एक ही वंश के होने के कारण उनमें कभी मेल और कभी-कभी वैमनस्य भी हो जाता था; किंतु आपत्तिकाल के समय देवलिया राज्य, उदयपुर राज्य को सहायता देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करता था। इसके एवज़ में वहां के रावत को धरियावद की जागीर मिली थी, जो महारावत हरिसिंह के समय जाती रही। ऊपर बतलाया जा चुका है कि महारावत पृथ्वीसिंह ने उदयपुर राज्य से पुनः अपना राजनैतिक संबंध जोड़ा था और धरियावद का परगना पीछा मिलने की बात स्थिर हो गई थी, परंतु उक्त महारावत और उसके कुंवर का देहांत हो जाने एवं वहां उसके दो उत्तराधिकारियों के थोड़े समय तक ही राज्य करने से धरियावद का परगना नहीं मिल सका था। महारावत गोपालसिंह ने राज्यासन पर बैठते ही पुनः धरियावद का परगना प्राप्त करने के लिए प्रयत्न आरंभ किया और अपने कुंवर सालिमसिंह को उदयपुर भेजा[1]। इसी प्रकार उसने पेशवा बाजीराव का अभ्युदय देख उससे

दुःखदायी परिणाम भोगना पड़ा, जिसका हम उदयपुर राज्य के इतिहास में विस्तृत रूप से उल्लेख कर चुके हैं।

(१) "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में उपर्युक्त धरियावद का परगना

भी मित्रता कर ली[1], क्योंकि देवलिया राज्य मालवे से मिला हुआ होने से उसको मरहटों से भी अच्छा सम्बन्ध रखने की आवश्यकता थी।

महारावत का डूंगरपुर से महाराणा की सेना का घेरा उठवाना

वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में डूंगरपुर के महारावल रामसिंह का देहांत होने पर उसका कुंवर शिवसिंह वहां की गद्दी पर बैठा। उस समय उदयपुर राज्य की सेना ने डूंगरपुर पहुंच वहां घेरा डाल दिया और चार लाख रुपयों आदि का रुक्का लिखवाकर वहां से लौटी[2]। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि महाराणा की सेना के डूंगरपुर को घेर लेने पर महारावत गोपालसिंह ने महाराणा की सेना के आदमियों से बात-चीत कर वहां का घेरा उठवाया[3]। इस कथन का समर्थन उदयपुर और डूंगरपुर राज्य की ख्यातों से नहीं होता, परन्तु यह संभव है कि महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) और उक्त महारावत का अच्छा संबंध होने से उसने डूंगरपुर के स्वामी शिवसिंह तथा महाराणा के बीच संधि करवाकर वहां का घेरा उठवा दिया हो।

महाराणा अरिसिंह (वि० सं० १८१७ से १८२९ = ई० स० १७६१ से १७७३) के राज्य-काल में महारावत सालिमसिंह को मेवाड़ के गृह-युद्ध के समय की गई सेवा के उपलक्ष्य में मिलने का उल्लेख है, परंतु यह बात ठीक नहीं है; क्योंकि वहां महारावत पृथ्वीसिंह को मिली हुई 'रावत-राव' की उपाधि प्रयोग में लाने की महाराणा अरिसिंह की सनद तो दी गई, किंतु धरियावद परगने की कोई सनद नहीं दी और न धरियावद परगना मिलने का सम्वत् और मास दिया है। यदि वस्तुतः धरियावद का परगना सालिमसिंह को मिला होता तो उसकी सनद अवश्य उद्धृत की जाती एवं वर्ष तथा मास भी दिया जाता। हमारा अनुमान है कि मेवाड़ में महाराणा अरिसिंह के समय होनेवाले गृह-युद्ध के कई वर्ष पूर्व धरियावद का परगना महारावत गोपालसिंह को मिल चुका था, जिसके कारण ही गोपालसिंह ने उदयपुर में विशेष रूप से आना-जाना जारी किया।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६३।

(२) वही; द्वितीय भाग, पृ० १०११।

(३) वही; द्वितीय भाग, पृ० १०६३।

मालवे के लिए मरहटों की लड़ाइयां

मालवे में होनेवाले मरहटों के आक्रमणों को शाही सेना ने रोकने का यथासाध्य प्रयत्न किया और आंबेर का स्वामी सवाई जयसिंह भी इस कार्य के लिए नियत किया गया, परंतु इसमें सफलता नहीं हुई और मरहटों की शक्ति बढ़ती गई। इस असफलता का मुख्य कारण शाही अफ़सरों का पारस्परिक मनोमालिन्य, ईर्ष्या और स्वार्थ-परायणता ही थी। उस समय स्वामी-सेवक के भाव नष्ट होने लगे थे और शाही अफ़सरों में से अधिकांश विद्रोही होकर स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा में थे। ऐसी स्थिति में असफलता होना स्वाभाविक था। मालवे की भांति उन दिनों मरहटों के गुजरात में भी आक्रमण होने लगे, जिससे स्थायी शांति का होना कठिन हो गया। प्रतापगढ़ राज्य मालवा के अंतर्गत था और उसके चारों तरफ़ संघर्ष मच रहा था, तथापि वह महारावत गोपालसिंह के कुशल-शासन से अक्षुण्ण रहा। इतिहास के प्रसङ्ग को मिलाने के लिए संक्षेप में हम यहां मालवे में बादशाह मुहम्मदशाह के समय जो उलट-फेर हुए, उनका वर्णन करते हैं—

फ़र्रुखसियर की मृत्यु के पीछे सैयदों ने निज़ामुलमुल्क को वि० सं० १७७५ फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १७१६ ता० २० फ़रवरी) को मालवे का सूबेदार बनाया। ई० स० १७२२ ता० ३० अगस्त (वि० सं० १७७६ भाद्रपद वदि ३०) तक वह वहां का सूबेदार रहा। फिर बादशाह मुहम्मद-शाह के समय सैयदों का दमन होने के पीछे निज़ामुल्मुल्क तो वज़ीर बनाया गया और राजा गिरधर बहादुर मालवे का सूबेदार नियत हुआ, परंतु वह पूरा एक वर्ष भी वहां न रहने पाया था कि बादशाह ने निज़ामुलमुल्क पर ही मालवे का भार डाल दिया। निज़ामुल्मुल्क की शक्ति उस समय बहुत बढ़ गई थी, जिसको बादशाह ने भयावह जान पुनः राजा गिरधर बहादुर की वि० सं० १७८२ प्रथम आषाढ सुदि ३ (ई० स० १७२५ ता० २ जून) को मालवे के सूबे पर नियुक्ति की। राजा गिरधर बहादुर इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम नागर (ब्राह्मण) का भतीजा था

और साम्राज्य-भक्त था। उसने मालवा में मरहटों का प्रभाव न बढ़ने देने के लिए स्तुत्य प्रयत्न किया और अंत में वह आमझरा में मरहटों से युद्ध करता हुआ ई० स० १७२८ ता० २६ नवंबर (वि० सं० १७८५ मार्गशीर्ष सुदि ६) को मारा गया। उसके बाद उसका पुत्र भवानीराम मालवे का सूबेदार बनाया गया। उसने भी मरहटों को मालवा में न बढ़ने देने का उद्योग किया, किन्तु आवश्यक सहायता न मिलने से वह असफल रहा। मालवा ही नहीं अपितु गुजरात में भी मरहटों के आक्रमण होते देख बादशाह मुहम्मदशाह को बड़ी चिंता हुई। वि० सं० १७८६ (ई० स० १७२६) में उसने सवाई जयसिंह को दूसरी बार मालवे का सूबेदार बनाया और सैन्य-संगठन के लिए तेरह लाख रुपये भी दिये, परन्तु वह अपनी मेल-मिलाप की नीति से कुछ दे-दिलाकर मरहटों का वहां से कब्ज़ा उठाना चाहता था। उस समय मालवा में मरहटे मुकासा नामक कर उगाहते थे, इसलिए वहां से उनका यह अधिकार उठाने एवं उनके आक्रमणों को रोकने के लिए जब वह (जयसिंह) मालवे की तरफ़ आगे बढ़ा तो उसके साथ वहां के प्रायः सब राजा उपस्थित हो गये[1]। फिर वह उज्जैन से मांडू की तरफ़ बढ़ा और ई० स० १७३० के जनवरी (वि० सं० १७८६ माघ) मास में उसने वह क़िला मरहटों से ख़ाली करवा लिया[2]। महाराजा जयसिंह का विचार मरहटों से मालवा ख़ाली करवाकर उसे अपने राज्य में मिलाने का था। इस बात को ताड़कर राजपूताना के नरेश उससे शंकित रहते थे, क्योंकि उन्हीं दिनों उसने बूंदी से राव बुधसिंह को हटाकर दलेलसिंह को वहां का स्वामी बना दिया था[3] और रामपुरे का परगना भी चंद्रावतों (सीसोदियों की एक शाखा) से ज़ब्त करवाकर

(१) डॉ० रघुबीरसिंह; मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० १७८। मालवा में युगान्तर; पृ० २००। सूर्य्यमल; वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३१३७-३८।

(२) सूर्य्यमल; वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३१३८। डॉ० रघुबीरसिंह; मालवा में युगान्तर; पृ० २०१। मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० १७८।

(३) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३१३२-३६।

महाराणा संग्रामसिंह से अपने छोटे कुंवर माधवसिंह को दिलवा दिया था[1]।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ६७४-५। मालवा में रामपुरा चंद्रावत सीसोदियों का प्राचीन स्थान है। मालवे के सुलतान होशंग के समय इस ठिकाने की स्थापना हुई और बहुत समय तक इसका वहां के सुलतानों से संबंध रहा। फिर मेवाड़ के उत्कर्ष के पिछले समय में यहां के स्वामी मेवाड़ राज्य के अधीन हो गये और राव दुर्गभान ने कई युद्धों में महाराणा उदयसिंह का साथ दिया। जब वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर की चित्तौड़ पर चढ़ाई हुई उस समय वह रामपुरा पर भी शाही आक्रमण होने के भय से चित्तौड़ में चला गया था। तदनंतर उक्त दुर्ग पर अकबर का अधिकार हो जाने पर दुर्गभान ने भी शाही अधीनता स्वीकार की और बादशाह अकबर से लगाकर मुहम्मदशाह तक दुर्गभान एवं उसके वंशधर साम्राज्य के भक्त रहे तथा युद्ध के अवसरों पर उन्होंने मुसलमान बादशाहों को पूरी सहायता पहुंचाई। बादशाह औरंगज़ेब के समय दुर्गभान के वंशज गोपालसिंह ने, जब वह (बादशाह) दक्षिण में मरहटों की सेना से लड़ने में व्यस्त था, अच्छा पराक्रम दिखलाया था। शाही नौकरों के बहकाने से उस (गोपालसिंह) के पुत्र रत्नसिंह ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इसपर बादशाह ने उसका नाम इस्लामख़ां रखकर रामपुरा का नाम इस्लामपुरा कर दिया। इस गड़बड़ी में रत्नसिंह को रामपुरा से निकालने के लिए गोपालसिंह ने बहुत झगड़ा किया और उदयपुर के महाराणा अमरसिंह (दूसरा) को भी अपना सहायक बनाया। जहांदारशाह के समय रत्नसिंह शाही सेना से लड़कर मारा गया। तब गोपालसिंह ने वहां पर पुनः अपना अधिकार जमाने की चेष्टा की। इसी बीच महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) ने वह इलाक़ा बादशाह फ़र्रुख़सियर के समय अपने अधिकार में लेने का प्रयत्न कर उक्त बादशाह से रामपुरे का फ़रमान अपने नाम करा लिया। फिर उसने सेना भेजकर अपनी अधीनता में रहने के इक़रार पर आधा इलाक़ा चंद्रावतों के पास रहने दिया और आधा अपने ख़ालसे में मिलाकर वहां के प्रबंध के लिए राठोड़ दुर्गादास को नियत किया। फिर जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने वह इलाक़ा महाराणा से वि० सं० १७८६ (ई० स० १७२६) में अपने छोटे पुत्र माधवसिंह (जो महाराजा का भानजा था) के नाम लिखवा लिया। जयसिंह की मृत्यु पर जयपुर के राज्य की प्राप्ति के लिए मेवाड़ राज्य ने कई बार माधवसिंह की सहायतार्थ सेना रवाना की, जिसमें मल्हारराव होल्कर आदि भी थे। अंत में ईश्वरीसिंह की मृत्यु पर माधवसिंह जयपुर का स्वामी हुआ। फिर भी उसने रामपुरा पर अपना अधिकार कुछ दिनों तक और बनाये रखा और वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) के आस-पास वह ठिकाना मल्हारराव होल्कर को जयपुर पर अधिकार कराने के एवज़ में दे दिया।

मांडू पर अधिकार करने के थोड़े ही दिनों पीछे जयसिंह मालवे का कार्य अपूर्ण छोड़कर अपनी राजधानी को लौट गया और साम्राज्य एवं अन्य कार्यों में व्यस्त हो गया, किन्तु मरहटों के साथ उसकी बात-चीत चलती रही। उसका कुछ परिणाम निकलनेवाला ही था कि इसी बीच उसके स्थान पर मुहम्मद बंगश वहां का सूबेदार बना दिया गया। उधर मरहटों ने जब जयसिंह के साथ जारी की हुई बात-चीत का परिणाम न निकलता देखा और मुहम्मद बंगश की कार्यवाहियां अपने विपरीत समझीं तो पुनः मालवे पर आक्रमण जारी कर दिये, जिससे वहां की स्थिति गंभीर हो गई और उसे मुहम्मद बंगश सम्हाल नहीं सका; क्योंकि शाही दरबार से उसको यथेष्ट सहायता नहीं मिली तथा निज़ाम आदि अन्य शाही अमीरों ने भी (जिन्होंने उसको सहायता देने का क़रार किया था) अवसर आने पर मौन साध लिया। अंत में वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३२) में तीसरी बार पुनः जयसिंह मालवे का सूबेदार बनाया गया। फ़रवरी मास में, जब जयसिंह मंदसोर के पास ठहरा हुआ था, होलकर और सिंधिया ने उस (जयसिंह) को घेर लिया। यह समाचार सुनकर बादशाह ने स्वयं सेना के साथ मालवे की तरफ़ प्रस्थान कर दिया, जिसका संवाद पाने पर जयसिंह के साथी राजपूतों का भी उत्साह बढ़ गया और वे मरहटों के मुक़ाबले को आगे बढ़े। फिर मल्हारराव होल्कर और जयसिंह के बीच छोटा सा युद्ध भी हो गया, जिसमें मल्हारराव होल्कर को वहां से हट जाना पड़ा। जयसिंह ने होल्कर का पीछा किया, परंतु उसकी कुशलता से वह (जयसिंह) स्वयं घिर गया[1]। बादशाह तब तक राजधानी से थोड़ी दूर ही आगे बढ़ा था और सहायक सेना भी उस समय तक न पहुंची थी। अतएव विवश होकर उस (जयसिंह) को मरहटे सेनापतियों से संधि का प्रस्ताव चलाना पड़ा। निदान दो किश्तों में पांच लाख रुपये लेकर मालवा

(१) डॉ० रघुबीरसिंह; मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० २२४। मालवा में युगान्तर; पृ० २५५।

छोड़ने की शर्त पर उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह के धायभाई राव नगराज[1] की मध्यस्थता में संधि हो गई। जयसिंह का मरहटों को विश्वास न था, इसलिए दो लाख रुपये तो एक महीने बाद और तीन लाख रुपये मालवा छोड़कर मरहटी सेना के गुजरात की सीमा पर पहुंच जाने पर मरहटों को देने का इक़रारनामा वि० सं० १७८९ चैत्र वदि ९ (ई० स० १७३३ ता० २७ फ़रवरी) को धायभाई नगराज ने मरहटा सेनापति मल्हारराव होल्कर, राणोजी सिंधिया और आनंदराव पंवार के नाम लिख दिया। ऐसी तहरीर उन तीनों सेनापतियों की तरफ़ से भी नगराज के नाम लिखी गई। फिर मरहटे सेनापतियों ने उस समय इक़रार का पालनकर मालवा से अपनी सेना हटा ली और नगराज ने भी इक़रार के अनुसार उन्हें रुपये देकर रसीदें ले लीं[2]। इसके बाद महाराजा जयसिंह की मालवा की तरफ़ से चिंता मिट गई और वह वहां से लौट गया। उसके वहां से लौटने के छः महीने बाद ही मरहटों ने पुनः मालवे पर धावा किया और वि० सं० १७९१ वैशाख वदि ३० (ई० स० १७३४ ता० २२ अप्रेल) को बुधसिंह की सहायतार्थ मरहटे सेनापति रामचंद्र, मल्हारराव होल्कर, राणोजी सिंधिया और आनंदराव पंवार ने दलेलसिंह को वहां से निकालने के लिए उस (दलेलसिंह) के भाई प्रतापसिंह के छः लाख रुपये देने का इक़रार करने पर बूंदी पर चढ़ाई की और वहां से दलेलसिंह का अधिकार उठा दिया; परन्तु थोड़े दिनों बाद ही जयसिंह ने वहां पुनः दलेलसिंह का

(१) नगराज गूजर जाति का था और महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) का धायभाई था। वह महाराणा का पूर्ण विश्वासपात्र होने से मुसाहब के पद तक पहुंच गया था। युद्ध के अवसरों पर महाराणा की सेना का सेनापतित्व भी बहुधा वही किया करता था। वीर और नीतिकुशल व्यक्ति होने से महाराणा ने उसका सम्मान बढ़ाने के लिए उसे 'राव' की उपाधि प्रदान की थी। इस समय महाराणा ने सवाई जयसिंह के लिखने पर अपनी सेना के साथ उसको मरहटों की गति रोकने के लिए भेजा था। फलतः उसने मध्यस्थ बनकर उपर्युक्त समझौता करवा दिया।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १२१९।

अधिकार करा दिया[1]।

राजपूताने में मरहटों के हस्तक्षेप करने का यह पहला अवसर था। उन्हीं दिनों उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) का देहांत[2] होकर उसका कुंवर जगतसिंह (दूसरा) राजगद्दी पर बैठा। मेवाड़ राज्य की सीमा मालवे से मिली हुई होने के कारण वहां के महाराणाओं को मरहटों के बढ़ते हुए प्रभाव से पूरा भय था, इसलिए संग्रामसिंह और जगतसिंह मरहटों से मेल रखते थे एवं उन्होंने मल्हारराव होल्कर के साले नारायणराव को बूढ़ा की जागीर भी दी थी और उस (नारायणराव) के दक्षिण में चले जाने पर उक्त परगने की आय भी उसके पास पहुंचा दी जाती थी[3]। पूर्वी राजपूताना के इस आक्रमण से वहां के नरेशों की भी आंखें खुलीं। अतएव वि० सं० १७६१ श्रावण वदि १२ (ई० स० १७३४ ता० १७ जुलाई) को मेवाड़ के हुरडा गांव में उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी, करोली आदि के राजा एकत्रित हुए और उन्होंने सलाहकर परस्पर एकता रखने, एक के शत्रु को सबका शत्रु समझने एवं बरसात के बाद रामपुरा में अपनी-अपनी सेना के साथ एकत्र होने का इक़रारनामा लिखा; किंतु पारस्परिक फूट और स्वार्थ-परता की भावनाओं के कारण इस इक़रारनामे का कुछ भी परिणाम नहीं निकला[4]।

---

(१) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३२१६-२०।

(२) महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) वि० सं० १७९० माघ वदि ३ (ई० स० १७३४ ता० ११ जनवरी) को परलोक सिधारा और उसी दिन उसके कुंवर जगतसिंह (द्वितीय) ने राज्यासीन होकर वि० सं० १७९१ ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १७३४ ता० ३ जून) को अपना राज्याभिषेकोत्सव किया।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १२१८।

(४) देखो मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६२८-९। "वंशभास्कर" (चतुर्थ भाग, पृ० ३२२७) में हुरडा के मुकाम पर वि० सं० १७९१ के कार्तिक (ई० स० १७३४ अक्टोबर) मास में और "जोधपुर राज्य की ख्यात" (जि० २, पृ० १४२) में वि० सं० १७९२ (ई० स० १७३५) में राजपूताने के सब राजाओं का एकत्र होना लिखा है, जो ठीक नहीं है। उदयपुर में असली इक़रारनामा मौजूद है,

उसी वर्ष के नवंबर मास में वज़ीर कमरुद्दीन[1] ने मरहटों को दबाने के लिए मालवे की ओर प्रस्थान किया और दूसरी तरफ़ से खानदौरां[2] भी

जिसमें श्रावण मास में सब राजाओं का एकत्र होना लिखा है और "वीरविनोद" तथा कर्नल टॉड ने भी वि० सं० १७६१ का श्रावण मास ही दिया है।

(१) यह एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीनख़ां का पुत्र और निज़ामुल्मुल्क आसफ़-जाह का भतीजा था। इसका असली नाम मीर मुहम्मद फ़ाज़िल लिखा मिलता है। बादशाह मुहम्मदशाह ने निज़ामुल्मुल्क चिनक़लीचख़ां आसफ़जाह के वज़ीर का पद परित्याग करने पर वि० सं० १७६१ (ई० स० १७३४) में इसको अपना वज़ीर बनाया और एतमादुद्दौला नवाब कमरुद्दीनख़ां बहादुर नसरतजङ्ग की उपाधि से विभूषित किया। वि० सं० १८०४ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७४८ ता० ११ मार्च) को मुहम्मदशाह के राज्य-काल में अहमदशाह अब्दाली (दुर्रानी) के आक्रमण के समय सरहिंद के युद्ध में इसकी मृत्यु हुई। "मेमोरंडम ऑन इंडियन स्टेट्स" तथा ए० वेदी वेलू-कृत "रूलिंग चीफ़्स, नोवल्स एंड ज़मींदार्स ऑव् इंडिया" आदि पुस्तकों में हैदराबाद के निज़ाम को उपर्युक्त वज़ीर कमरुद्दीन का वंशधर लिखकर उसका उपनाम चिनक़लीचख़ां लिखा है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि अधिकांश स्थलों पर उसे चिनक़लीचख़ां का ही वंशज बतलाया है, जिसका उपनाम निज़ामुल्मुल्क था।

(२) ख़ानदौरां का पूरा नाम अब्दुलसमंदख़ां था और इसकी पूरी उपाधि "नवाब शम्सुद्दौला बहादुरजंग" थी। यह ख़्वाजा अब्दुलकरीम का पुत्र था। बादशाह औरंगज़ेब के समय इसने प्रारंभ में छः सौ सवारों का मंसब पाया, जो बढ़ते-बढ़ते पंद्रह सौ सवारों तक पहुंच गया। जहांदारशाह ने इसको सात हज़ारी मंसबदार बनाकर "अलीजंग" का ख़िताब दिया। फ़र्रुख़सियर के समय यह लाहोर का सूबेदार था। जब उक्त बादशाह ने सिखों के विरुद्ध इसको सेना देकर भेजा, तब इसने सिक्खों को परास्त कर बंदा बैरागी को क़ैद किया। मुहम्मदशाह के समय यह मुलतान का सूबेदार बनाया गया और इसको 'अमीरुल्उमरा शम्सुद्दौला" की उपाधि मिली। वि० सं० १७९६ (ई० स० १७३९) में भारत पर नादिरशाह की चढ़ाई के समय यह मारा गया। यह महाराजा सवाई जयसिंह का पूरा पक्षपाती एवं साम्राज्य का भी भक्त रहा। मरहटों का उत्थान देख यह उनसे मेल करना चाहता था और वस्तुतः बाजीराव बल्लाल को मालवे की सूबेदारी इसकी सिफ़ारिश से ही मिली थी; शाही अमीर निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह, वज़ीरुल्मुल्क कमरुद्दीनख़ां, बुर्हानुल्मुल्क, सआदतख़ां आदि के अनैक्य, राजपूत राजाओं की महत्वाकांक्षा तथा राज्य-वृद्धि की लालसा एवं मरहटों का उत्कर्ष देख यह बार बार समझौते की चेष्टा किया करता था; क्योंकि उस समय सलतनत की हालत कमज़ोर थी।

मरहटों से समझौते के लिए देवलिया के समीप एकत्र होने की विफल योजना

मरहटों को दवाने के लिए आगे वढ़ा, जिसके साथ सवाई जयसिंह, कोटा का महाराव दुर्जनसाल, जोधपुर का महाराजा अभयसिंह आदि भी विद्यमान थे[1]। मरहटा-दल ने शाही सेना को घेरकर रसद का मार्ग रोक दिया और कोटा, बूंदी की तरफ़ होते हुए उन्होंने जयपुर तथा जोधपुर राज्य में पहुंचकर लूट-मार आरंभ की। छः मास तक शाही फ़ौज मरहटों की सेना का पीछा कर उसको दवाने में व्यस्त रही, परंतु इससे मरहटों की गति मंद न हुई। उनका सैन्य-संगठन और परिचालन इतना अच्छा था कि शाही फ़ौज घिर गई और उसकी बड़ी हानि हुई। अंत में महाराजा जयसिंह के परामर्श के अनुसार खानदौरां ने उस समय सिंधिया और होल्कर से संधि कर चौथ के बाईस लाख रुपये देना स्वीकार किया[2]। कर्नल टॉड-कृत "राजस्थान" में महाराणा जगतसिंह (दूसरा) का अपने मन्त्री विहारीदास के नाम वि० सं० १७९१ आश्विन (ई० स० १७३४) में भेजा हुआ पत्र दिया है, जिससे प्रकट है कि महाराणा ने इस अवसर पर आश्विन मास के पूर्व ही अपने मन्त्री पंचोली विहारीदास को ससैन्य भेज दिया था। इस पत्र में उसने लिखा था—"मरहटों का मामला अच्छी तरह से तय किया जाय एवं इस संबंध में विचार-विमर्ष के लिए किसी स्थान पर एकत्रित होना स्थिर हो तो देवलिया के समीप एकत्र होना बुद्धिमानी नहीं होगी। तुम अपने साथ की सेना की संख्या कम कर दो, जिससे रुपयों की आवश्यकता न होगी। रामपुरा का कार्य गत वर्ष की भांति तय किया जाय और दौलतसिंह[3] को

(१) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३२२७। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १४४। मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० २३१। मालवा में युगान्तर; पृ० २६२।

(२) मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० २३२। मालवा में युगान्तर; पृ० २६३।

(३) "वंशभास्कर" (चतुर्थ भाग, पृ० ३२२५-२६) से पाया जाता है कि यह परमार जाति का राजपूत और महाराणा का सरदार था। संभव है कि यह महाराणा की तरफ़ से मरहटों के पास वकील के रूप में रहता हो।

कह दिया जाय कि फिर ऐसा अवसर न हो[1]।" इससे अनुमान होता है कि मरहटों का उपद्रव देवलिया राज्य के निकट तक पहुंच गया था और संभव है कि वह मरहटी सेना के आवागमन के कारण उपद्रवों से सुरक्षित न हो एवं मरहटों तथा राजा लोगों के परामर्श के निमित्त देवलिया के आस-पास एकत्र होने से उक्त राज्य तथा वहां की प्रजा को कष्ट होने की संभावना हो।

पेशवा के राजपूताना में पहुंचने पर महारावत का उसके पास जाना

बादशाह की तरफ़ से मालवे में मरहटों की गति रोके जाने और चौथ की वसूली के स्वत्व की बाबत कोई बात तय न होने से पेशवा बाजीराव किसी भी दशा में मालवे के संबंध में सम्मानपूर्ण समझौता करने को उत्सुक था। उसने इसके लिए उदयपुर और जयपुर के राजाओं को अपनी ओर मिलाकर कोई मार्ग निकालना चाहा। वैसे तो उक्त दोनों राज्यों का मरहटों से मेल था, पर क्रियात्मक रूप से वे मरहटों का साथ न देते थे। कहा जाता है कि शाही दरबार में मरहटों से मिलावट रखने की सवाई जयसिंह की पूर्ण शिकायत हो रही थी, इसलिए उसको शाही दरबार से घृणा हो गई और वह मरहटों को उकसाने लगा। फलतः पेशवा ने इस अवसर से लाभ उठाने के लिए अपनी माता को, जो गया आदि की यात्रा के हेतु जानेवाली थी, मार्ग में उदयपुर तथा जयपुर के राजाओं के पास भेजना स्थिर किया और वि० सं० १७९२ (ई० स० १७३५) में महाराणा के वकील जयसिंह शक्तावत[2] के साथ उसको रवाना कर उस (जयसिंह) को आदेश दिया कि वह महाराणा से निवेदन कर सवाई जयसिंह को कहलादे कि वह शाही इलाक़े में राहदारी और तीर्थ

---

(१) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ४६१-२।

(२) जयसिंह शक्तावत मेवाड़ में पीपलिया के ठिकानेवालों का पूर्वज था। उसके पिता शक्तावत बाघसिंह को महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने छत्रपति राजा शाहू की सहायतार्थ भेजा था। शाहू के यहां बाघसिंह का बड़ा सम्मान था। उसकी मृत्यु के बाद जयसिंह वहां रहकर महाराणा की तरफ़ से राजदूत का कार्य करता था।

कर माफ़ कराने की व्यवस्था कर दे। तदनन्तर जयसिंह शक्तावत पेशवा की माता के साथ उदयपुर गया और उसने महाराणा से सब वृत्तांत निवेदन किया[1]। ता० ६ मई (ज्येष्ठ वदि १०) को पेशवा की माता के उदयपुर पहुंचने पर महाराणा ने उसकी अग्रगामिता कर बड़ा सम्मान किया। फिर वहां से नाथद्वारा होती हुई वह जयपुर गई[2]। महाराणा ने उसके साथ जयपुर तक शक्तावत जयसिंह और सलूंबर के रावत केसरीसिंह को भेजा[3], जिन्होंने सवाई जयसिंह से कहकर पेशवा की माता से राहदारी और तीर्थ-कर न लेने की व्यवस्था करवा दी।

सवाई जयसिंह की गुप्त अभिसंधि जारी थी, इसी बीच उदयपुर और जयपुर में जाने पर पेशवा की माता का अच्छा सम्मान हुआ, जिसका उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा। फिर उसने स्वयं उन दोनों जगहों के राजाओं के पास उपस्थित होकर चौथ और मालवा आदि का मामला तय कर लेना चाहा। बादशाह मुहम्मदशाह भी साम्राज्य की स्थिति नाजुक देख पेशवा का मामला निबटाना चाहता था और सवाई जयसिंह की मारफ़त ही, जो मालवे का सूबेदार था[4], इसकी बात चल रही थी। निदान पेशवा के पास

(१) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३२२२-२४।

(२) मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० २३३। मालवा में युगान्तर; पृ० २६४।

(३) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३२२४।

(४) मालवा पर सवाई जयसिंह की अंतिम सूबेदारी वि० सं० १७८६ कार्तिक वदि ६ (ई० स० १७३२ ता० २८ सितंबर) से वि० सं० १७६४ भाद्रपद वदि ४ (ई० स० १७३७ ता० ३ अगस्त) तक रही थी। इसके पीछे बादशाह ने वहां की सूबेदारी निज़ामुल्मुल्क के ज्येष्ठ पुत्र गाज़ीउद्दीनखां को सौंपी। पेशवा से जयसिंह ही मिलावट न रखता था, प्रत्युत् निज़ामुल्मुल्क भी उससे दबता था और वि० सं० १७८८ (ई० स० १७३१) के लगभग उसने ऐसी गुप्त संधि भी की थी कि उत्तर भारत के सम्बन्ध में पेशवा जो कार्यवाही करेगा, उसमें निज़ामुल्मुल्क उसका बाधक न होगा (मालवा में युगान्तर; पृ० २४६); किंतु फिर उसको अपना विरोधी देख, मरहटों ने उसके साथ संघर्ष जारी कर दिया। अन्त में मरहटों की युद्ध-कुशलता से निज़ामुल्मुल्क का भी साहस कम हो गया और वि० सं० १७६४ माघ वदि १२

बादशाह के इशारे से ज्योंही महाराजा सवाई जयसिंह का निमन्त्रण पहुंचा, वह कार्तिक सुदि ५ (ता० ६ अक्टोबर) को पूना से रवाना

(ई० स० १७३८ ता० ६ जनवरी) को मालवे का सारा अधिकार पेशवा को सौंप देने की बात स्थिर हुई; परन्तु उन दिनों नादिरशाह के भारत पर आक्रमण करने की आशङ्का बढ़ रही थी। इसलिए इस समझौते को क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सका और लिखित रूप से बादशाह की भी स्वीकृति नहीं हुई। इसी बीच बाजीराव पेशवा की वि० सं० १७९७ ज्येष्ठ वदि ११ (ई० स० १७४० ता० १० मई) को मृत्यु हो गई और उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। इस गड़बड़ी के कारण बादशाह का विचार बदल गया और निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के प्रस्ताव करने पर उसका चचेरा भाई अज़ीमुल्ला वि० सं० १७९७ (ई० स० १७४०) के लगभग मालवे का सूबेदार बनाया गया, जिससे पुनः मालवा से मरहटों के सब अधिकार उठ जाने की संभावना दीख पड़ी, जिसका विरोध करने के लिए पेशवा ने पृथक्-पृथक् रूप से उत्तर भारत में अपने विभिन्न दलों को रवाना किया। बादशाह ने शम्सुद्दौला आज़मख़ां और सवाई जयसिंह को मरहटों के मुक़ाबले के लिए भेजा, किंतु शाही सेना की इतनी क्षमता नहीं थी कि वह मरहटा-दल से जमकर मुक़ाबला करती। निदान बादशाह की आज्ञानुसार सवाई जयसिंह ने मरहटों से पुनः बात-चीत जारी की। अन्त में सल्तनत के सम्बन्ध के कार्यों में हस्तक्षेप न करने और चौथ उगाहने का दावा पेशवा के छोड़ने पर गुजरात और मालवा प्रांत का समस्त अधिकार शाही फ़रमान-द्वारा वि० सं० १७९८ भाद्रपद सुदि ८ (ई० स० १७४१ ता० ७ सितम्बर) को पेशवा बालाजी बाजीराव को सौंप दिया गया और बादशाहत का इन प्रांतों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

औरंगज़ेब की मृत्यु के पिछले चालीस वर्षों की उलटापलटी में भारत के भाग्य ने बड़ा पलटा खाया। साम्राज्य की इस निर्बल स्थिति में शाही सरदार दोस्तमुहम्मदख़ां ने बादशाह से कुछ जागीर प्राप्तकर क्रमशः आस-पास की भूमि पर अधिकार कर भोपाल राज्य की स्थापना कर ली, पर मरहटा-संघर्ष में उनसे मेल रखते हुए धन आदि देकर ही वह अपना अस्तित्व स्थिर रख सका था। पेशवा बालाजी बाजीराव की विद्यमानता में ही उसके होल्कर, सिंधिया आदि सेनाध्यक्ष बड़े शक्तिशाली हो गये थे और वे मनमानी कार्यवाही करने से न चूकते थे। फिर भी वे अपने को पेशवा के अधीन ही समझते थे और पेशवा भी सतारा के स्वामी को अपना मालिक मानता था। समय की गति के परिवर्तन के साथ ही सतारा राज्य और पेशवा की सत्ता निर्बल होने पर उन्होंने उनकी आज्ञा मानना छोड़ दिया और स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण कर लूट-खसोट-द्वारा धन संग्रह करने की नीति को अपनाया। फलतः एकतन्त्र शासन के

होकर गुजरात की तरफ़ के राज्यों से चौथ का मामला तय कराता हुआ लूणावाड़ा और डूंगरपुर के मार्ग से उदयपुर पहुंचा[1]। देवलिया प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों से पाया जाता है कि इस अवसर पर पेशवा ने डूंगरपुर पर घेरा डाल दिया था और महारावत गोपालसिंह ने पेशवा को समझा-कर मरहटी सेना का घेरा उठवाया[2]। डूंगरपुर राज्य की ख्यातों में पेशवा की सेना के वहां घेरा डालने का वृत्तांत नहीं दिया है, पर यह संभव है कि पेशवा के बृहत् लश्कर के डूंगरपुर पहुंचने पर वहां के तत्कालीन महारावल शिवसिंह ने उसका यथोचित् सत्कार न किया हो और न कुछ द्रव्य ही दिया हो, जिससे पेशवा ने वहां घेरा डाला हो और फिर महारावत गोपालसिंह के, जो संभवतः पेशवा के साथ हो अथवा मित्रता के कारण महारावल के बुलाने पर वहां पहुंचा हो, कहने-सुनने पर खिराज (चौथ) की रक़म निर्दिष्ट होकर घेरा उठा दिया गया हो। इस घटना का समय माघ सुदि १३ (ई० स० १७३६ ता० १५ जनवरी) के आस-पास होना चाहिये, क्योंकि उस तिथि को पेशवा मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर पहुंच गया था[3]।

महाराणा ने अपने राज्य में होकर पेशवा के जयपुर जाने का समाचार सुना तो उसको लाने के लिए अपने पिता महाराणा संग्रामसिंह के

अभाव में सर्वत्र अशांति और अव्यवस्था बढ़ने लगी। इसमें संदेह नहीं कि इस अवधि में कई राज्यों का विकास भी हुआ और कुछ नये राज्य भी स्थापित हुए, परन्तु कई प्राचीन और प्रतिष्ठित राज्यों के बिगड़ने में भी कसर नहीं रही, जिनका हमने यथा-प्रसङ्ग उल्लेख किया है और आगे भी करेंगे।

(१) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३२३५। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० २३७। मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० २३७। मालवा में युगान्तर; पृ० २६८।

(२) "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में वि० सं० १७८८ (ई० स० १७३१) में पेशवा बाजीराव का डूंगरपुर को घेरना लिखा है, किंतु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती, क्योंकि वि० सं० १७८८ में पेशवा का उधर जाना नहीं हुआ था।

(३) मालवा इन ट्रांज़िशन; पृ० २३७। मालवा में युगान्तर; पृ० २६८।

काका महाराज तख़्तसिंह[1] और सलूंबर के रावत केसरीसिंह को मेवाड़ की सीमा तक सामने भेजा और जब पेशवा उदयपुर के निकट पहुंचा तो वह स्वयं बड़े समारोहपूर्वक सामने जाकर उसको अपनी राजधानी में ले आया[2]। पेशवा ने इस असाधारण सम्मान के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हुए महाराणा से प्रार्थना की कि आप मुझे सोलह उमरावों के समान एक उमराव समझें। फिर चौथ तथा मालवा आदि के संबंध में बात-चीत हुई। इसपर महाराणा ने बनेड़ा[3] परगने की आय प्रति वर्ष पेशवा को देना स्वीकार किया। कर्नल टॉड-कृत "राजस्थान" में महाराणा जगतसिंह का उसके प्रधान बिहारीदास पंचोली के नाम का पत्र

---

(१) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग; पृ० ३२३५। यह महाराणा जयसिंह द्वितीय का चतुर्थ पुत्र था और मेवाड़ में बाकरोल (जिसको हम्मीरगढ़ कहते हैं) इसकी जागीर में था।

(२) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, पृ० ३२३५-३६। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १२३२।

(३) बनेड़ा का परगना मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत था, परन्तु औरंगज़ेब के समय में यह मेवाड़ राज्य से पृथक् हो गया और उक्त बादशाह ने महाराणा राजसिंह (प्रथम) के छोटे कुंवर भीमसिंह को शाही सेवा स्वीकार करने के एवज़ में जागीर के साथ अन्य परगनों के सहित दे दिया। भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके वंशजों का शाही दरबार में विशेष प्रभाव न रहा। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् बादशाहत की निर्बलता और मरहटों की लूट-खसोट की नीति से उनकी स्थिति डांवा-डोल हो गई और मालवा में बदनावर आदि के उनके परगने छिन गये। इस अवसर पर महाराणा जगतसिंह (दूसरा) ने भी बनेड़ा अपने राज्य में मिलाकर भीमसिंह के वंशज सरदारसिंह को अपना सरदार बना लिया। अनुमान होता है कि इस परगने की सनद महाराणा के नाम न होने से पेशवा के दबाव देने पर ही इसकी आय उसको देना महाराणा ने स्वीकार किया हो एवं मरहटों का मेवाड़ में दख़ल न बढ़ने देने के लिए ही वह उक्त परगने की आय वि० सं० १७९९ (ई० स० १७४२) तक उसके पास पहुंचाता रहा हो। इसके बाद उसने बादशाह के पास अपना वकील भेज वि० सं० १८०० आश्विन सुदि ७ (ई० स० १७४३ ता० १३ सितम्बर = हि० स० ११५६ ता० ५ शाबान) को बादशाह मुहम्मदशाह के वज़ीर कमरुद्दीन से शाहपुरा, सावर, जहाजपुर और बनेड़ा के परगनों

उद्धृत किया है। उससे प्रकट है कि बाजीराव महाराणा से ज़मीन के अतिरिक्त अन्य राजाओं की अपेक्षा बीस गुना अधिक धन लेना चाहता था[1]। इस मुलाक़ात के समय बिहारीदास उदयपुर में नहीं था और संभवतः जयपुर या बादशाही दरबार में गया होगा। इसलिए महाराणा ने उसको पत्र लिखकर सूचना दी होगी।

से, जो महाराणा के कुटुम्बियों के थे, सूबेदारों-द्वारा नज़राने की रक़म की वसूली की मुआफ़ी की सनद करा ली हो, जिसको "वीरविनोद" के लेखक ने (द्वितीय भाग, पृ० १२४२-४४ में) उद्धृत किया है।

कर्नल टॉड ने "राजस्थान" (जि० १, पृ० ४६४) में इस अवसर पर महाराणा का पेशवा को चौथ के एक लाख साठ हज़ार रुपये वार्षिक देते रहने की बात स्थिर करने और उसके एवज़ में बनेड़ा परगने की आय देते रहने का इक़रार करने का उल्लेख किया है, जिसका समर्थन "वंशभास्कर" से भी होता है; परन्तु वहां रुपयों की संख्या एक लाख पचास हज़ार ही दी है (चतुर्थ भाग; पृ० ३२३७)। "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १२२८-६) में इस सम्बन्ध में एक पत्र उद्धृत किया गया है, जिसमें बनेड़ा परगने की आय के सं० १७६२ से १७६६ (ई० स० १७३५ से ४२) तक के नौ लाख पचीस हज़ार रुपये तथा पेशवा उदयपुर गया, उस समय मिहमानी के दो लाख रुपये देने का विवरण है। इससे स्पष्ट है कि मरहटों को वार्षिक १६०००० रुपया महाराणा-द्वारा ख़िराज के देने की बात में कोई तथ्य नहीं है। यह ठीक है कि वि० सं० १७६२ से ६६ (ई० स० १७३५ से ४२) तक उक्त परगने की आय, जिसका औसत लगभग एक लाख पचीस हज़ार रुपया वार्षिक था, पेशवा के पास पहुंचती रही, जिसका कारण हम ऊपर दिखला चुके हैं।

(१) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ४६२।

"वंशभास्कर" से प्रकट है कि बाजीराव को उदयपुर में किसी ने बहकाया कि जगमंदिर नामक महल को दिखाने के बहाने ले जाकर तुम्हें मार डालेंगे। इसपर वह बड़ा क्रोधित हुआ। फिर महाराणा ने उस (बाजीराव) के क्रोध को शांत करने के लिए सात लाख रुपये देकर उसको वहां से विदा किया (भाग ४, पृ० ३२३७)। महाराणा के मंत्री बिहारीदास के नाम के उपर्युक्त पत्र से प्रतीत होता है कि पेशवा ने कोई बहाना निकालकर महाराणा से अधिक रक़म लेने के लिए दबाव डाला होगा। फलतः महाराणा ने उसको प्रसन्न रखने के लिए उपर्युक्त बनेड़ा परगने की आय उसके पास पहुंचाने की बात स्थिर कर उसको वहां से विदा किया हो।

उदयपुर से पेशवा जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के पास गया। उस समय उसके साथ प्रतापगढ़ का महारावत गोपालसिंह भी था। ता० ३ शव्वाल हि० स० ११४८ (फाल्गुन सुदि ४ = ता० ५ फ़रवरी) को पेशवा ने महारावत को रुख़्सत देकर ख़ासा अस्तबल से आभूषण-सहित घोड़े महाराणा के लिए उसके साथ रवाना किये[1]।

महारावत का महाराणा के साथ सवाई जयसिंह की सहायतार्थ जाना

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह के समय वि० सं० १७९७ (ई० स० १७४०) में बड़ी सेना के साथ बीकानेर पर चढ़ाई कर चारों तरफ़ से राजधानी एवं दुर्ग को घेर लिया। महाराजा जोरावरसिंह ने बहुत दिनों तक जोधपुर की सेना का सामना किया, परंतु जोधपुर की बड़ी सेना के आगे वह छुटकारा न पा सका। अन्त में नागोर के स्वामी राजाधिराज बख़्तसिंह (अभयसिंह का छोटा भाई) की सम्मति के अनुसार जोरावरसिंह ने जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के पास अपने आदमी भेज सहायता के लिए कहलाया। जयसिंह ने अभयसिंह को बीकानेर से घेरा उठाने के लिए कहलाया, परंतु जब उसने वहां से घेरा उठाना स्वीकार न किया तो उस(जयसिंह)-ने विशाल सेना के साथ जोधपुर की ओर प्रयाण किया एवं उदयपुर के महाराणा जगतसिंह (दूसरा) को भी सेना लेकर आने के लिए लिखा। सवाई जयसिंह के लेखानुसार महाराणा ने सलूंबर के रावत केसरीसिंह को कुछ सेना के साथ तत्काल ही भेज दिया[2] और पीछे से वह स्वयं भी पुष्कर-यात्रा के बहाने अपनी सेना के साथ महाराजा जयसिंह को जोधपुर के घेरे में सहायता पहुंचाने के निमित्त रवाना हुआ[3] और उसके साथ कोटा से महाराव दुर्जनसाल, डूंगरपुर से महारावल शिवसिंह तथा प्रतापगढ़ से

(१) सिलेक्शन्स फ्रॉम पेशवाज़ दफ़्तर; जि० ३, पृ० ३२१, सं० ३२१।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १२२४।

(३) वही; द्वितीय भाग, पृ० १२२४। "वंशभास्कर" (चतुर्थ भाग, पृ० ३२१६) में महाराणा के साथ ८०००० सेना होना बतलाया है।

महारावत गोपालसिंह भी जाकर सम्मिलित हो गये[1], किंतु जयसिंह ने महाराणा के पहुंचने के पूर्व ही जोधपुर पहुंच वहां घेरा डाल दिया। जयपुर की सेना-द्वारा जोधपुर के घेरे जाने का समाचार पाकर अभयसिंह बीकानेर का घेरा उठाकर जोधपुर लौट गया और फिर संधि की बातचीत होने पर उन्नीस लाख रुपये लेकर जयसिंह ने जोधपुर का घेरा उठाकर जयपुर की तरफ़ प्रयाण किया। इस बीच महाराणा भी अजमेर की सीमा में जा पहुंचा और मार्ग में जयसिंह तथा जोरावरसिंह जाकर उससे मिले[2]। फिर महाराणा और डूंगरपुर एवं प्रतापगढ़ के स्वामी भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

महारावत का देहांत और राणियां आदि

महारावत गोपालसिंह का वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) के लगभग देहांत हुआ[3]। उसके ग्यारह राणियां थीं, जिनसे चार कुंवर—बख़्तावरसिंह, सालिमसिंह, रत्नसिंह और जैतसिंह—एवं सूरजकुंवरी तथा एजनकुंवरी नामक दो कुंवरियां हुई[4]।

---

(१) ठा० चतुरसिंह; चतुरकुल चरित्र; द्वितीय भाग, पृ० १३२।

(२) देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; पांचवी जिल्द; प्रथम खंड, पृ० ३१६।

(३) "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६३) में तथा कुछ दूसरे स्थलों पर वि० सं० १८१४ (ई० स० १७५७) में उक्त महारावत का देहांत होना लिखा है और एक स्थान पर उसकी मृत्यु उसी वर्ष श्रावण वदि १४ (ता० १५ जुलाई) को दी है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि उक्त महारावत के उत्तराधिकारी सालिमसिंह की एक सनद वि० सं० १८१३ माघ सुदि १ (ई० स० १७५७ ता० २० जनवरी) की कल्याणपुरा के ठाकुर फ़तहसिंह के छोटे पुत्र दौलतसिंह के नाम देवद और कराड्या गांव जागीर में देने की विद्यमान है। ऐसी अवस्था में उक्त महारावत का वि० सं० १८१४ में देहांत होने का कथन नितान्त असङ्गत है। प्रतापगढ़ से प्राप्त शिलालेखों आदि की सूची में उक्त महारावत का अन्तिम लेख वि० सं० १८१२ वैशाख वदि ३ (ई० स० १७५५ ता० ३० मार्च) का दिया है, अतएव महारावत गोपालसिंह का देहांत वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में मानना पड़ेगा।

(४) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ७-८। प्रतापगढ़ राज्य की एक

उस(गोपालसिंह)के समय के वि० सं० १७७८ से १८१२ (ई० स० १७२१ से १७५५) तक के शिलालेख और दानपत्र आदि मिले हैं, जिनमें से निम्नलिखित इतिहास के लिए उपयोगी हैं—

महारावत के समय के शिलालेख और दानपत्र

(१) वि० सं० १७७८ आषाढ सुदि १३ (ई० स० १७२१ ता० २६ जून) का बसाड़ गांव के पटेल लाभा दकेचा नरसिंहदास के नाम का आज्ञापत्र, जिसमें दवे गोरधन को अडाण (कुआं) ज़मीन बीघा ८ देने का उल्लेख है। इसमें महारावत गोपालसिंह को 'महाराजा', और 'रावतजी-श्री' लिखा है एवं यह सनद दुए शाह चंद्रभाण होने का उल्लेख है। इस-पर जो छाप लगी हुई है उसमें 'श्रीमहारावत श्रीगोपालसिंघजी दुए शाह चंद्रभाणजी' लेख अंकित है, जिससे पाया जाता है कि हूंबड़ जाति का महाजन चंद्रभाण उक्त महारावत का मंत्री था।

(२) वि० सं० १७७८ श्रावण सुदि १३ (ई० स० १७२१ ता० २५ जुलाई) का सेखड़ी गांव का गुंसाईं गंगागिरि के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें महारावत पृथ्वीसिंह-द्वारा वि० सं० १७७३ ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १७१६ ता० २५ मई) को दिये हुए नाथूखेड़ी गांव के एवज़ में उसको गोपालसिंह का उदयपुर की यात्रा के समय उक्त गांव प्रदान करने का उल्लेख है[१]।

(३) वि० सं० १७७६ वैशाख सुदि २ (ई० स० १७२२ ता० ६ अप्रेल) का भट्टावर के नाम गांव अबलेसर में अट्ठारह बीघा खेत देने का आज्ञापत्र। इसमें उक्त महारावत को श्रीमंत महाराजाधिराज महारावत और दुए शाह चंद्रभाण लिखा है तथा विद्या शिरोमणि-द्वारा यह आज्ञापत्र लिखे जाने का उल्लेख है।

पुरानी ख्यात (पृ० ११-१२) में महारावत की राणियों की संख्या १० दी है और बख़्तावरसिंह को चतुर्थ पुत्र लिखा है। उसमें कुंवरियों के नाम नहीं दिये हैं। उसमें दिये हुए कुछ राणियों के नाम और पितृकुल भी भिन्न हैं।

(१) देखो ऊपर पृ० २१८, टिप्पण संख्या १।

(४) वि० सं० १७८१ आषाढ वदि १० (ई० स० १७२४ ता० ५ जून) का शाह चंद्रभाण के नाम का आज्ञापत्र जिसमें उसको डोराणु गांव जागीर में देने का उल्लेख है। इस सनद में लेखक का नाम पंचोली ईसरदास दिया है और उक्त महारावत की उपाधि 'महाराजा रावत' लिखी है।

(५) वि० सं० १७८३ आषाढ सुदि १३ (ई० स० १७२६ ता० १ जुलाई) का नाथद्वारे में श्रीनाथजी के मंदिर को गांव धनेसरी भेंट करने का ताम्रपत्र, जिसमें उक्त महारावत का विवाह के लिए घाणेराव जाते समय उपर्युक्त गांव श्रीनाथजी को भेंट करने का उल्लेख है। इसमें दुए शाह चंद्रभाण तथा लेखक का नाम विद्याशिरोमणि राय दिया है और अंत में धनेसरी गांव के बदले में गांव जेठ्याखेड़ी चढ़ाने का उल्लेख होकर ये पंक्तियां शाह चंद्रभाण और सुंदर-द्वारा लिखी जाने का भी उल्लेख है।

(६) वि० सं० १७८३ भाद्रपद सुदि १३ (ई० स० १७२६ ता० २८ अगस्त) की दुवे गोरधन, लखमेश्वर तथा वंसीधर के नाम की सनद, जिसमें महारावत हरिसिंह के समय का दान किया हुआ टीकर्या गांव एवं देवलिया के घर, बाग़ आदि, जो दुबे जगन्नाथ जगनेश्वर के भाग के थे, देने का उल्लेख है। इस सनद में मुद्रा लगी हुई है, जिसमें बादशाह मुहम्मदशाह का नाम है और यह सनद दुए शाह चंद्रभाण होने का उल्लेख है।

(७) वि० सं० १७८८ माघ सुदि ६ (ई० स० १७३२ ता० २१ जनवरी) शुक्रवार की देवलिया में लगी हुई ताबूतों की बावड़ी की प्रशस्ति, जिसमें महारावत गोपालसिंह और कुंवर सालिमसिंह के राज्यकाल में उसके महामन्त्री शाह चंद्रभाण का दस सहस्र रुपये लगाकर उक्त बावड़ी और वाटिका बनाने का उल्लेख है। इस प्रशस्ति में उपर्युक्त चंद्रभाण के पूर्वजों की नामावली के अतिरिक्त उसके पुत्र सुंदर और लक्ष्मीचंद के भी नाम दिये हैं।

(८) वि० सं० १७९६ ज्येष्ठ वदि ३ (ई० स० १७३९ ता० १४ मई) का दसूंदी (भाट) कान्हा के नाम का वरखेड़ी गांव का ताम्रपत्र, जिसमें महारावत गोपालसिंह का दसूंदी कान्हा को लाख पसाव में वरखेड़ी गांव

और लखणा की लागत देने का उल्लेख है। इस ताम्रपत्र में लेखक का नाम मेहता गोविंद दिया है।

(९) वि० सं० १७९९ आश्विन वदि २ (ई० स० १७४२ ता० ६ सितंबर) की पाडलिया लसाण के नाम की सनद, जिसमें चाकरी में उसको गांव थड़ा देने का उल्लेख है।

(१०) वि० सं० १८०६ माघ वदि ३० (ई० स० १७५० ता० २६ जनवरी) शुक्रवार की व्यास हरिराम के नाम की सनद, जिसमें नीनोर गांव में बीस बीघा भूमि महोदय अमावास्या के अवसर पर गौतमेश्वर में मंदाकिनी के तट पर दान करने का उल्लेख है। इस सनद में उपर्युक्त अमावास्या पर महारावत का दश महादान भी करने का उल्लेख है। यह सनद दोसी रूपजी के दुप होने का उल्लेख है और इसके लेखक का नाम अस्पष्ट है। इसमें महारावत को 'महाराजाधिराज महारावत' लिखा है।

(११) वि० सं० १८१० आश्विन सुदि ७ (ई० स० १७५३ ता० ३ अक्टोबर) का प्रतापगढ़ में केशवरायजी के मंदिर के पास लगा हुआ शिलालेख, जिसमें वहां के निवासी वोहरों पर भविष्य में किसी प्रकार की सख़्ती न होने का उल्लेख है। इस शिलालेख में महारावत को 'महाराजरावत' लिखा है।

(१२) वि० सं० १८११ भाद्रपद वदि ८ (ई० स० १७५४ ता० ११ अगस्त) का ताम्रपत्र, जिसमें महारावत का अपने कुंवर सालिमसिंह के साथ नाथद्वारे जाकर वहां के गोस्वामी गोवर्द्धन की गद्दीनशीनी पर गोवर्धनपुर नामक गांव भेंट करने का उल्लेख है।

(१३) वि० सं० १८११ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १७५४ ता० ५ नवंबर) की शाह कपूरचंद पाडलिया के नाम की सनद, जिसमें उसको राज्य-सेवा सौंपने एवं गांव मोहेड़ा तथा गांव देवासला का ख़िराज हाथ ख़र्च के लिए दिये जाने तथा आज्ञानुसार राज्य-सेवा करते रहने का उल्लेख है।

महारावत गोपालसिंह वीर, नीतिकुशल और धर्मपरायण शासक था। वह अपने पूर्वजों के समान ही परमार्थ के कार्यों में रुचि रखता था।

महारावत का व्यक्तित्व

उसका अपने राज्य की उन्नति की तरफ़ पूरा ध्यान था। व्यापार की वृद्धि के लिए वह बाहर से व्यापारियों को बुलवाकर अपने राज्य में आबाद करता और उनपर किसी प्रकार का अत्याचार न हो, इसका सदैव ध्यान रखता था। प्रजा पर भविष्य में अत्याचार न हो, इस दृष्टि से उसने शिलालेख लगवा दिये थे। वह समय की गति के अनुसार आचरण करता था। उसने उस समय के प्रबल राजनीतिज्ञ, महाराष्ट्र के कर्णधार पेशवा बाजीराव की प्रीति सम्पादन की, जिसका परिणाम यह हुआ कि मालवे में चारों तरफ़ मरहटों का उपद्रव होने पर भी उसका राज्य, जो मालवे से मिला हुआ था, क्षति से बचा रहा। पेशवा उसका बड़ा सम्मान करता और उसकी बात मानता था। आपत्तिकाल में महारावत अपने मित्रों की सहायता करना अपना परम कर्त्तव्य समझता था। उसने डूंगरपुर पर महाराणा और पेशवा के आक्रमणों के समय समझौते का प्रयत्न किया तथा बीकानेर पर जोधपुर के महाराजा की चढ़ाई के समय, जब महाराणा अपनी सेना के साथ जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह की सैन्य-योजना को सफल बनाने के लिए गया, वह भी अपनी सेना के साथ जाकर उसके शामिल हुआ। वह दानी राजा था। उसने कई गांव आदि दान में दिये थे। उसने अपने नाम पर प्रतापगढ़ में गोपालगंज नामक मोहल्ला आबाद किया एवं देवलिया में एक महल भी बनवाया, जिसको गोपाल-महल कहते हैं।

सालिमसिंह

राज्य-प्राप्ति

महारावत गोपालसिंह का परलोकवास होने पर उसका कुंवर सालिमसिंह वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) के लगभग अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ।

इसके कुछ वर्ष बाद ही वह (सालिमसिंह) दिल्ली गया और तत्कालीन बादशाह शाहआलम से मिला, जिसने उसे चंवर आदि राज-

महारावत का दिल्ली जाकर बादशाह से सम्मान प्राप्त करना

चिह्न, ज़री का निशान और नक़ारा रखने का सम्मान तथा प्रतापगढ़ में टकसाल खोलकर नवीन सिक्का, जो 'सालिमशाही' कहलाता है, बनाने का हक़ प्रदान किया। दिल्ली से लौटते हुए महारावत ने उदयपुर जाकर वहां के तत्कालीन महाराणा राजसिंह (दूसरा) से भेंट की।

तुकोजी का देवलिया पर घेरा डालना

उस समय तक प्रतापगढ़ राज्य मरहटों के आक्रमणों से अक्षुण्ण रहा था और वह चौथ आदि से मुक्त था। पेशवा के तीन प्रमुख सेनापति सिंधिया, होल्कर और पंवार के बीच मालवे के परगनों का विभाग होकर प्रतापगढ़ राज्य की चौथ होल्कर के हिस्से में रखी गई। अतएव चौथ की वसूली के लिए मल्हारराव होल्कर की तरफ़ से उसके सेनापति तुकोजी ने ससैन्य प्रतापगढ़ पर चढ़ाई कर वि० सं० १८१८ (ई० स० १७६१) में उसे चारों तरफ़ से घेर लिया, किंतु महारावत की कुशलता से होल्कर के सेनापति को सफलता नहीं मिली। इसी बीच रामपुरा पर अधिकार करने के लिए मल्हारराव होल्कर और उदयपुर राज्य के बीच संघर्ष छिड़ गया तथा उदयपुर के महाराणा की सेना होल्कर के मुक़ाबले के लिए अमरदास चीडक (चंडक, माहेश्वरी वैश्य) की अध्यक्षता में जावद में एकत्रित हुई[1]। फलतः उस समय होल्कर की सेना को वहां से अपना घेरा उठाना पड़ा। दो वर्ष पीछे जब मल्हारराव होल्कर वि० सं० १८२० (ई० स० १७६३) में उदयपुर की तरफ़ सेना लेकर बढ़ा, तब उसने प्रतापगढ़ पर घेरा डालकर वहां से कुछ धन वसूल किया[2]।

(१) कान्होड़ के रावत जगतसिंह के नाम उदयपुर राज्य के मंत्री सदाराम देपुरा (माहेश्वरी वैश्य) का वि० सं० १८१८ फाल्गुन सुदि ८ (ई० स० १७६२ ता० ३ मार्च) का पत्र।

(२) प्रतापगढ़ राज्य से मरहटों (होल्कर) को ख़िराज किस वर्ष से मिलना आरंभ हुआ, इसका विवरण प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों और मरहटा-काल के इतिहासों से नहीं पाया जाता। इसलिए इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा

महाराणा जगतसिंह (दूसरा) वि० सं० १८०८ (ई० स० १७५१) में परलोक सिधारा और उसके पीछे उसका कुंअर प्रतापसिंह (दूसरा) उदयपुर राज्य का स्वामी हुआ, जिसकी थोड़े समय बाद ही वि० सं० १८१० (ई० स० १७५४) में मृत्यु हुई। तदनन्तर उस (प्रतापसिंह) का पुत्र राजसिंह (दूसरा) दस वर्ष की आयु में महाराणा हुआ, परन्तु वि० सं० १८१७ चैत्र वदि १३ (ई० स० १७६१ ता० ३ अप्रेल) को वह भी निःसंतान काल-कवलित हो गया। इसपर राज-महिषियों की आज्ञा से उस (राजसिंह) का चाचा अरिसिंह, जो जगतसिंह का छोटा पुत्र और प्रतापसिंह का भाई था, मेवाड़ की गद्दी पर बैठाया गया। अरिसिंह आतुर और क्रोधी स्वभाव का था, अतएव गद्दीनशीनी के थोड़े दिनों बाद ही ऐसी घटना घटी, जिससे सरदारों आदि का उससे मनोमालिन्य हो गया और वहां विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई। राज्य के अधिकांश बड़े-बड़े सरदारों ने अरिसिंह को राज्यच्युत करने के लिए राजगद्दी के दूसरे दावेदार रत्नसिंह का, जो राजसिंह की मृत्यु के पीछे उस (राजसिंह) की झाली राणी से उत्पन्न हुआ था, पक्ष लिया। उन्होंने गुप्त रूप से उस शिशु राजकुमार को उदयपुर से निकालकर उसके नाना गोगूंदे के स्वामी झाला जसवन्तसिंह के पास पहुंचाया[1]। महाराणा इस घटना से बड़ा नाराज़ हुआ और उसने सरदारों का दमन करना स्थिर कर संदेह ही संदेह में अपने पितृव्य बागोर के महाराज नाथसिंह को मरवा डाला और उसके कुछ समय बाद राज्य के सच्चे हितैषी सलूंबर के रावत जोधसिंह का भी प्राण हरण किया, जिससे कुछ सरदारों को छोड़कर कई बड़े-बड़े सरदार प्रत्यक्ष रूप से रत्नसिंह के पक्ष में मिल गये और कुछ तटस्थ रहकर तत्समयक स्थिति को देखने लगे। फिर वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६५) में विद्रोही सरदारों ने शिशु रत्नसिंह

महाराणा अरिसिंह की सहायतार्थ महारावत का सेना भेजना

जा सकता। महारावत गोपालसिंह की पेशवाओं से मित्रता थी, अतएव उसकी मृत्यु के बाद अर्थात् उक्त समय के आस-पास ही होल्कर के साथ वहां का ख़िराज स्थिर हुआ होगा।

(१) देखो मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६४८।

को कुंभलगढ़ ले जाकर उसको मेवाड़ का महाराणा घोषित किया और तटस्थ एवं अरिसिंह के पक्षपाती सरदारों को भी वे लोभ देकर अपनी तरफ़ मिलाने लगे। उधर अरिसिंह ने भी भेद-नीति का आश्रय लेकर कई बड़े-बड़े सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया। विद्रोही सरदारों ने नागों (साधुओं) आदि को नौकर रखकर चारों तरफ़ लूट-मार आरम्भ की और मेवाड़ में कई स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया, पर शीघ्र ही अरिसिंह ने अपने सहायक सरदारों एवं वैतनिक सिन्धी सेना की सहायता से किसी क़दर उनका दख़ल उठा दिया[1]। मेवाड़ के इस गृह-कलह को बढ़ाने में जोधपुर के महाराजा विजयसिंह का भी हाथ था। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अरिसिंह की तरफ़ से उक्त महाराजा के पास वकील पहुंचने पर उस(विजयसिंह)ने सेना-व्यय देने के इक़रार करने पर सिंघवी फ़तेचंद और भीमराज को अपनी सेना देकर रवाना किया और उनके साथ नागोर की फ़ौजं भी भेज दी, जिसने जाकर भांडेसर (जोधपुर राज्य) में अपना मुक़ाम डाला। वहां कुंभलगढ़ से रत्नसिंह के वकील पहुंचे और उन्होंने कहा कि जितना रुपया अरिसिंह देगा उतना हम लोग दे देंगे, तुम उसकी मदद मत करो। फिर रत्नसिंह की तरफ़ से रुपये मिलने पर वह सेना हटा दी गई और सिंघवी फ़तेचंद तथा भीमराज दोनों जोधपुर चले गये। रत्नसिंह की तरफ़ से खींवसर के ठाकुर जोरावरसिंह के पास भी सहायता देने के लिए रक़म भेजी गई, जिससे वह अपने राजपूतों के साथ रत्नसिंह के शामिल हो गया। उसको दो वर्ष तक तो वह तनख़्वाह देता रहा और उसके बाद सेरा (सायरा) का परगना देना स्थिर हुआ[2]। संयोग से सात वर्ष की आयु होने पर शीतला रोग से रत्नसिंह का देहांत हो गया[3]। उस समय उसके पक्षपाती सरदारों को विश्वास दिलाने

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग; पृ० १५५२। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० ३, पृ० ४७।

(३) देखो मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५४।

पर बेदला का राव रामचंद्र, भींडर का महाराज मुहकमसिंह (शक्तावत) आदि सरदार और अमरदास देपुरा महाराणा के पास उपस्थित हो गये[1]; किंतु इससे बचे हुए रत्नसिंह के पक्षपाती सरदारों का साहस कम न हुआ और उन्होंने शिशु रत्नसिंह के स्थान में एक कृत्रिम लड़के को खड़ा कर उपद्रव ज्यों का त्यों जारी रखा। उन दिनों कोटा से झाला ज़ालिमसिंह भी जाकर महाराणा के शामिल हो गया। उस समय अरिसिंह का विरोधियों की अपेक्षा बल बढ़ गया था, इसलिए देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह और उसके पुत्र राघवदेव ने माधवराव सिंधिया को उदयपुर पर अधिकार हो जाने पर सवा करोड़ रुपया देने का इक़रार कर अपना सहायक बना लिया। उधर महाराणा ने माधवराव के प्रतिद्वंद्वी वेहरजी ताकपीर और पंडित राघवराम के द्वारा पेशवा से बातचीत कर उन दोनों को अपनी तरफ़ मिला विपक्षियों का मूलोच्छेद हो जाने पर बीस लाख रुपया देना तय किया[2]। महाराणा अरिसिंह ने सलूंबर के रावत पहाड़-सिंह, देलवाड़ा के राज झाला राघवदेव और शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह को माधवराव सिंधिया के पास भेज रत्नसिंह का पक्ष छोड़ देने को कह-लाया[3]; किन्तु लोभी माधवराव ने रत्नसिंह का पक्ष छोड़ना स्वीकार न

(१) महाराणा अरिसिंह का कानोड़ के रावत जगतसिंह के नाम का वि० सं० १८२५ श्रावण वदि ८ (ई० स० १७६८ ता० ७ जुलाई) गुरुवार का ख़ास रुक्का। कानोड़ के रावत जगतसिंह के नाम बेदला के राव रामचन्द्र, सलूंबर के रावत पहाड़-सिंह, देलवाड़ा के राज झाला राघवदेव और भींडर के महाराज मुहकमसिंह का वि० सं० १८२५ श्रावण वदि ८ (ई० स० १७६८ ता० ७ जुलाई) का पत्र। अमरदास देपुरा का कानोड़ के रावत जगतसिंह के नाम का वि० सं० १८२५ श्रावण वदि ९ (ई० स० १७६८ ता० ८ जुलाई) का पत्र।

(२) देखो मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५१। यह इक़रार-नामा वि० सं० १८२५ भाद्रपद सुदि १४ (ई० स० १७६८ ता० २५ सितम्बर) को हुआ था।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १५५४। सलूंबर के रावत पहाड़सिंह, देलवाड़ा के राज राघवदेव और शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह का महाराणा अरिसिंह के

किया। इसके बाद अरिसिंह ने कुछ लोगों के बहकाने पर झाला राघवदेव को भी रत्नसिंह से मिला हुआ होने के संदेह में मरवा डाला[1]। इससे जो सरदार महाराणा के पास उपस्थित हो गये थे, वे भी पीछा विपक्षियों से जा मिले। इस अवसर पर रघुजी पायगिया और दौला मियां भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ अरिसिंह से जा मिले और जब महाराणा ने उनके बल पर विरोधियों पर अधिक दबाव डाला, तब माधवराव ने भी उदयपुर की तरफ़ प्रयाण करना निश्चय कर लिया। इसपर अरिसिंह ने माधवराव के मेवाड़ में पहुंचने के पूर्व ही अपनी सेना उज्जैन भेजकर वहीं उस(माधवराव)से युद्ध करने की योजना बनाई और वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६८) के शीतकाल में अपनी बीस हज़ार सेना उज्जैन रवाना की। पौष सुदि ६ (ई० स० १७६९ ता० १३ जनवरी) को क्षिप्रा के तट पर माधराव की सेना से महाराणा की सेना का मुक़ाबला हुआ। तीन दिन तक बराबर युद्ध होता रहा। मेवाड़ी सेना ने वीरतापूर्वक युद्ध कर शत्रु सैन्य को हटा दिया और विजयोन्मत्त हो नगर में लूटमार आरंभ की। इतने में ही जयपुर से देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह की भेजी हुई पंद्रह हज़ार नागों की सेना ने आकर अरिसिंह की सेना पर धावा बोल दिया, जिससे उसमें भगदड़ मच गई। फिर भी महाराणा के सरदारों, रघुजी पायगिया तथा दौला मियां ने शत्रु पक्ष का वीरता से मुक़ाबला किया। अंत में सलूंबर के रावत पहाड़सिंह, शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह, बनेड़ा के राजा रायसिंह, रघुजी पायगिया, दौला मियां आदि कई सरदारों के मारे जाने और झाला ज़ालिमसिंह, रावत मानसिंह तथा मेहता अगरचंद के घायल होकर युद्धक्षेत्र में गिर जाने पर अरिसिंह की सेना भाग गई। शत्रुओं ने झाला ज़ालिमसिंह, रावत मानसिंह और

नाम का वि० सं० १८२५ आश्विन वदि १४ (ई० स० १७६८ ता० ९ अक्टोबर) का प्रार्थनापत्र।

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १५५५। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५१।

मेहता अगरचंद को क़ैद कर दिया[1]। तोपों और बंदूकों के सामने खड़े होकर तलवारों और बरछियों से वीरता दिखलाने का मेवाड़ी राजपूतों का यह अन्तिम युद्ध था। इसके बाद पारस्परिक संघर्ष से उनकी स्थिति ऐसी हो गई कि वे फिर न संभल सके।

उज्जैन के युद्ध में माधवराव ने महाराणा की सेना को परास्त कर वहाँ से अपने लश्कर को उदयपुर की तरफ़ मोड़ा और शीघ्र ही उदयपुर को घेर लिया। उज्जैन के युद्ध में महाराणा की बहुत सी सेना का नाश हो गया था, फिर भी उसके पास सेना की कमी नहीं थी। वैतनिक सिंधी सेना के अतिरिक्त उसके पास बहुत से लड़ मरनेवाले स्वामिभक्त राजपूत विद्यमान थे, जिनके बल पर उसने उदयपुर नगर की चारों ओर से मोर्चाबंदी कर उसकी रक्षा का यथेष्ट प्रबंध कर लिया। छः महीने के लगभग महाराणा के सरदारों ने सिंधिया का मुक़ाबला किया। जब उदयपुर पर अधिकार करने में सिंधिया को सफलता न मिली, तब उसने साढ़े तिरसठ लाख रुपये सैन्य-व्यय के महाराणा से लेना तय कर उदयपुर से घेरा उठाना और रत्नसिंह का साथ छोड़ना स्वीकार किया। फलतः ज़ेवर, नक़द आदि मिलाकर साढ़े तेंतीस लाख रुपये तो उस समय पूरे कर दिये गये और बाकी रक़म के एवज़ में जावद, जीरण, नीमच, मोरवण आदि मेवाड़ के ज़िले, जबतक रुपये अदा न हों तबतक के लिए, सिंधिया को सौंप दिये गये[2]।

इसके बाद कुछ और सरदार विद्रोहियों का साथ छोड़कर महाराणा से जा मिले, जिससे कृत्रिम रत्नसिंह की ताक़त घट गई; फिर भी उसके पक्षपातियों ने उपद्रव में कमी न आने दी और वि० सं० १८२६ (ई० स० १७७०) में टोपला गांव के पास तथा वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१)

---

(१) वीरविनोद, द्वितीय भाग, पृ० १५५५-८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५२-३।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १५६०-६६। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५४-७।

में गंगराड़ में उनका महाराणा की सेना से मुक़ाबला हुआ, जिसमें उनकी हार हुई और उनका बल टूट गया[1]। तदनन्तर महाराणा ने विद्रोहियों के अधिकृत क़िलों पर अधिकार जमाना शुरू किया और चित्तौड़ पर भी अधिकार कर लिया[2]।

प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि मेवाड़ के इस गृह-कलह के समय महाराणा अरिसिंह की तरफ़ से आदेश पाते ही महारावत सालिमसिंह ने अपनी सेना भेज दी थी, जिसने युद्ध के प्रत्येक अवसर पर शत्रु-सैन्य से वीरतापूर्वक युद्ध किया था; किंतु इसका मेवाड़ के इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। इतिहास के संरक्षण का अनुराग न होने से उस समय का क्रम-बद्ध वृत्तांत मिलना असंभव है। इसलिए प्रतापगढ़ के राजपूतों ने इस अवसर पर कब-कब और कहां-कहां युद्ध में भाग लिया इसपर अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सकता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि महारावत सालिमसिंह के पास उस समय मेवाड़ राज्य की तरफ़ से दिया हुआ धरियावद का परगना विद्यमान था, जिसके कारण युद्ध के अवसर पर उसका महाराणा के पास अपनी सेना भेजना असंभव नहीं है। इसकी पुष्टि महाराणा अरिसिंह के वि० सं० १८२८ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १७७२ ता० २७ फरवरी) गुरुवार के महारावत सालिमसिंह के नाम के परवाने से भी होती है, जिसमें बादशाह फ़र्रुखसियर-द्वारा महारावत पृथ्वीसिंह को 'रावत राव' की उपाधि मिलने का उल्लेख है[3]। उपर्युक्त परवाने से स्पष्ट है कि मेवाड़ के इस गृहकलह में महारावत सालिमसिंह, महाराणा अरिसिंह का सहायक था, इसी कारण से उसकी दी हुई सहायता के पुरस्कार में उक्त महाराणा ने उसके नाम यह परवाना भेज, महारावत का

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १५६६। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५८।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १५७०-७१। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ६५६।

(३) देखो ऊपर पृ० २२४-५, टिप्पण संख्या १।

सम्मान बढ़ाया। "वीरविनोद" के लेखक महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने इस विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए अपने बृहद् ग्रंथ में प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास के प्रसङ्ग में निम्नलिखित उल्लेख किया है—

"जब माधवराव सिंधिया ने उदयपुर को विक्रमी १८२५ (हि० स० ११८२ = ई० स० १७६८) में जा घेरा, तब रावत सालिमसिंह भी अपनी सेना लेकर महाराणा अरिसिंह के पास गये और घेरा उठने के बाद तक मददगार रहे। इस खैरख्वाही के एवज़ में इनको महाराणा अरिसिंह ने धरियावद का परगना जागीर में दे दिया और 'रावत राव' का खिताब भी, जो बादशाह ने दिया था, इनके नाम पर बहाल रक्खा[1]।"

उपर्युक्त कथन से प्रत्यक्ष है कि मेवाड़ के गृहकलह के समय प्रतापगढ़ राज्य से केवल सेना ही नहीं, प्रत्युत् महारावत सालिमसिंह भी स्वयं उदयपुर के सिंधिया-द्वारा घेरे जाने पर महाराणा अरिसिंह की सहायतार्थ गया था और युद्ध के अवसर पर उसने वीरता प्रदर्शित की थी। संभव है कि उस समय के भी इतिहास के साधन पूरे न मिलने से "भीमविलास" के लेखक कवि कृष्ण अहाड़ा और कर्नल टॉड ने महारावत की सहायता का उल्लेख छोड़ दिया हो।

महारावत सालिमसिंह का वि० सं० १८३१ कार्तिक वदि ७ (ई० स० १७७४ ता० २६ अक्टोबर) को देहांत होना पाया जाता है।

महारावत का देहांत और उसकी राणियां आदि

उसके ग्यारह राणियां थीं[2], जिनमें से एक कुन्दनकुंवरी आमझरा[3] के राव लालसिंह की पुत्री और जसरूपसिंह की पौत्री थी। उक्त राणी के

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग; पृ० १०६४। प्रतापगढ़ राज्य की कुछ ख्यातों में भी धरियावद का परगना मेवाड़ के गृहकलह के समय महारावत सालिमसिंह-द्वारा महाराणा अरिसिंह को सहायता देने के एवज़ में मिलने का उल्लेख है, परन्तु हमारे अनुमान से धरियावद का परगना महारावत गोपालसिंह के समय मिला था। इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए देखो ऊपर पृ० २२४, टिप्पण संख्या १ तथा पृ० २४२।

(२) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ८-६।

(३) आमझरा, दक्षिणी मालवे में गुजरात की सीमा से मिला हुआ वर्तमान

उदर से कुंवर सामन्तसिंह का जन्म हुआ। महारावत के अन्य कुंवर रोड़सिंह, विजयसिंह, गजसिंह, महताबसिंह, लालसिंह तथा मयाकुंवरी और रूपकुंवरी नामक दो कन्याएं हुई थीं। उनमें से रोड़सिंह से महतावसिंह तक के चारों कुंवर बाल्य-काल में ही मृत्यु को प्राप्त हुए और सामन्तसिंह तथा लालसिंह[1] उस (सालिमसिंह) की मृत्यु के पीछे विद्यमान थे।

उस (सालिमसिंह) के समय के निम्नलिखित शिलालेख और ताम्रपत्र मिले हैं—

महारावत के समय के शिलालेख, दानपत्र आदि

(१) वि० सं० १८१३ माघ सुदि १ (ई० स० १७५७ ता० २० जनवरी) की देवद और कराड्या गांव की कुंवर दौलतसिंह (कल्याणपुरा) के नाम की सनद, जिसमें सेवा के एवज़ देवद और कराड्या गांव प्रदान करने और बदले में एक हज़ार रुपये वार्षिक ख़िराज जमा कराने का उल्लेख है।

(२) वि० सं० १८१४ भाद्रपद सुदि १२ (ई० स० १७५७ ता० २६ अगस्त) का व्यास हरिराम, खीमराम, नाथूराम और भवानीशंकर के नाम का ३० बीघा ज़मीन का ताम्रपत्र, जिसमें महारावत का उपर्युक्त व्यक्तियों को नीनोर गांव में ज़मीन देने का उल्लेख है।

(३) वि० सं० १८१५ श्रावण सुदि १ (ई० स० १७५८ ता० ४ अगस्त) की शाह सुंदर के नाम की सनद, जिसमें उसकी जागीर और मान-

झाबुआ राज्य के निकट एक राठोड़ राज्य था, जहां के स्वामी जोधपुर राज्य के स्वामी मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र राम के वंशधर थे। मुग़ल साम्राज्य की अवनति के समय आम-झरा मरहटा-युद्ध का केन्द्र रहा और वहीं पर मालवा की रक्षार्थ मरहटी सेना से युद्ध करते हुए मालवा के सूबेदार राजा गिरधरबहादुर और दयाबहादुर मारे गये थे। तदनन्तर उक्त राज्य सिंधिया का ख़िराजगुज़ार रहा और वि० सं० १६१४ (ई० स० १८५७) के सिपाही विद्रोह में वहां का स्वामी बख़्तावरसिंह बाग़ी दल से मिल गया। इसपर अंग्रेज़ सरकार ने उसको गिरफ़्तार कर इंदौर में फांसी का दंड दिया और उक्त राज्य ज़ब्त कर सिंधिया (ग्वालियर राज्य) को दे दिया।

(१) लालसिंह के वंशज अरणोद के स्वामी हैं।

मर्यादा बनी रहने का उल्लेख है।

(४) वि० सं० १८१६ भाद्रपद वदि १४ (ई० स० १७६२ ता० १८ अगस्त) बुधवार की गांव अवेली की पाडलिया शाह कपूरचंद के नाम की सनद, जिसमें अवेली गांव राजकीय सेवा के एवज़ में प्रदान किये जाने का उल्लेख है।

(५) वि० सं० १८१६ आश्विन सुदि १० (ई० स० १७६२ ता० २७ सितंबर) का नीनोर गांव के शिव-मंदिर का शिलालेख, जिसमें सात हज़ार पैंतीस रुपये के व्यय से वीसलनगरा नागर ब्राह्मण खीमज तथा हरनाथ-द्वारा व्यापार में लाभ होने पर महारावत सालिमसिंह के समय वह मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख है।

अपने पूर्वजों के समान ही महारावत सालिमसिंह उदार विचार का राजा था। उसने शाही दरबार में अपना प्रभाव बढ़ाया और प्रतापगढ़ राज्य में टकसाल खोलने की इजाज़त प्राप्त की।

महारावत का व्यक्तित्व

फलतः महारावत के कुंवर सामंतसिंह के राज्य-काल में बादशाह शाहआलम (द्वितीय) के समय उक्त बादशाह के सन् जुलूस १५ में नवीन सिक्का ढलकर जारी हुआ, जो "सालिमशाही" नाम से प्रसिद्ध है। इस नवीन सिक्के के निर्माण से पाया जाता है कि प्रतापगढ़ राज्य उस समय मालवे के राज्यों में समृद्ध था और छोटा होने पर भी वहां का सिक्का आस-पास के बहुधा सब राज्यों—डूंगरपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर, सीतामऊ, रतलाम, जावरा, ग्वालियर के मंदसोर परगने और टोंक के नींबाहेड़े परगने—में चलता था। यही नहीं अंग्रेज़ सरकार ने भी संधि के समय आवश्यकता पड़ने पर प्रतापगढ़ की टकसाल से सालिमशाही रुपये ढलवाकर दिये जाने की विशेष शर्त रक्खी। इससे उक्त राज्य का महत्त्व प्रकट होता है। महारावत के समय प्रतापगढ़ राज्य पर भी होल्कर का आक्रमण हुआ, परंतु वह अक्षुरण बना रहा। यह उक्त रावत की नीति-कुशलता का सूचक है। मालवा में उसका राज्य सिंधिया के इलाक़े से मिला हुआ होने पर भी उसने माधवराव; का कुछ भी भय

न कर मेवाड़ के गृह-कलह के समय स्वयं उदयपुर जाकर महाराणा अरिसिंह को सैनिक सहायता दी। यह भी उसके लिए गौरवप्रद बात है। वह नीति-कुशल, दानी और शांतिप्रिय शासक था। उसके समय राज्य के वैभव में अच्छी वृद्धि हुई। पड़ोस के इंदौर आदि राज्यों के साथ उसका संबंध अच्छा रहा। वि० सं० १८१८ और १८२० (ई० स० १७६१ और १७६३) में वहां होल्कर की चढाइयां हुईं, पर अंत में सम्मानपूर्वक समझौता हो जाने से उसके राज्य की अधिक क्षति नहीं हुई। वह होल्कर के यहां किसी वैवाहिक कार्य के अवसर पर वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में इंदौर भी गया था; परंतु इसका वर्णन इंदौर राज्य के इतिहास में नहीं मिलता है, जिसका कारण यही हो सकता है कि वहां के इतिहास लेखकों ने ऐसी घटनाओं को उपयुक्त न समझ छोड़ दिया हो। उसने प्रतापगढ़ कस्बे में अपने नाम से सालिमपुरा नामक मोहल्ला आबाद कर जनता के साथ किसी प्रकार की अनुचित छेड़-छाड़ न की जावे, इस दृष्टि से वहां पर पाषाण लेख खुदवाकर लगा दिया, जो प्रताप-गढ़ के सूरजपोल दरवाज़े के बाहर एक चबूतरे पर विद्यमान है। अपने नाम से उसने सालिमगढ़ गांव बसाया, जो वहां के प्रथम वर्ग के सरदारों का एक ठिकाना है। उसने देवलिया के दुर्ग का जीर्णोद्धार कराने के अति-रिक्त वहां एक महल और प्रतापगढ़ कस्बे का प्राकार भी बनवाया एवं द्वारिका में अपनी तरफ़ से सदाव्रत जारी किया, जो उसकी धार्मिक रुचि और कृष्ण-भक्ति का परिचायक है।

सामन्तसिंह

महारावत सामन्तसिंह का जन्म वि० सं० १८२४ आश्विन सुदि १३ (ई० स० १७६७ ता० ५ अक्टोबर) को हुआ था और वह वि० सं० १८३१ कार्तिक वदि ७ (ई० स० १७७४ ता० २६ अक्टोबर) को सात वर्ष की आयु में प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हुआ। उसकी बाल्यावस्था के कारण राजमाता कुंदनकुंवरी की

राज्य-प्राप्ति

तत्त्वावधानता में शासन-कार्य शाह कपूर पाडलिया, महारावत का मामा सरदारसिंह, राघव बख़्शी और शाह गुमान चलाते थे।

धरियावद का परगना महाराणा-द्वारा खालसा होना

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि उन दिनों प्रतापगढ़ के स्वामी के पास उदयपुर राज्य की तरफ़ से धरियावद की जागीर थी, जिसके एवज़ में वहां से उदयपुर में सेवा के लिए सेना भेजनी पड़ती थी। सामन्तसिंह की बाल्यावस्था के कारण राजमाता ने उदयपुर में सेना भेजना बंद कर दिया और महारावत ने वय प्राप्त होने पर भी सेना भेजना जारी नहीं किया। उन दिनों उदयपुर राज्य की स्थिति भी अत्यंत कमज़ोर हो गई थी। वि० सं० १८२९ (ई० स० १७७३) में महाराणा अरिसिंह का देहांत होने पर उसके दोनों पुत्रों हम्मीरसिंह (दूसरा) और भीमसिंह के क्रमशः बालक अवस्था में महाराणा होने के कारण राज्यरक्षा के लिए राजपूत-सैनिकों की पूरी आवश्यकता रहती थी। ऐसी स्थिति में महारावत का अपनी सेना उदयपुर में सेवा के लिए न भेजना महाराणा और उसके मुसाहबों आदि को अखरने लगा। वि० सं० १८५० (ई० स० १७९४) में उदयपुर से महाराणा भीमसिंह अपना विवाह करने के लिए दूसरी बार ईडर गया। वहां से पीछा लौटते समय उक्त महाराणा ने डूंगरपुर पर घेरा डाल दिया और फिर वहां से वह बांसवाड़ा की तरफ़ रवाना हुआ। जब माही नदी के तट पर महाराणा की सेना का मुक़ाम हुआ तो बांसवाड़ा के स्वामी महारावल विजयसिंह ने गढ़ी के ठाकुर जोधसिंह की मारफ़त तीन लाख रुपये दंड के भेजकर महाराणा से सुलह कर ली। उसी स्थान पर महारावत सामंतसिंह ने भी महाराणा की सेवा में अपने वकील के साथ तीन लाख रुपये भेज, धरियावद की जागीर छोड़ देने का इक़रार लिख भेजा। इसपर महाराणा ने वहां से अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया और धरियावद की जागीर महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) के वंशधर राणावत रघुनाथसिंह को प्रदान की[1], जिसके वंशजों का अब भी वहां अधिकार है।

(१) प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों में महारावत सामन्तसिंह-द्वारा धरियावद की

होल्कर का प्रतापगढ़ राज्य से ख़िराज स्थिर करना

पेशवा बाजीराव बल्लाल के समय से ही मालवा के इलाक़े पर मरहटों का आधिपत्य हो गया था। फिर बालाजी बाजीराव को उक्त सूबे पर अधिकार रखने की बादशाह की तरफ़ से सनद भी मिल गई, जिसपर उसने मालवा अपने सरदारों में बांट दिया; परंतु इसके पूर्व ही पेशवा तथा उसके सेनापतियों ने आतंक जमाकर मालवा तथा राजपूताने के राजाओं से चौथ की वसूली का सिलसिला शुरू कर दिया था। प्रतापगढ़ राज्य से चौथ की वसूली का स्वत्व होल्कर का रहा, किन्तु पेशवाओं के साथ महारावत गोपालसिंह की मित्रता होने से उसपर चौथ की बाबत अधिक दबाव न पड़ा। विभिन्न ख्यातों के लेखों से पाया जाता है कि देवलिया प्रतापगढ़ राज्य की ओर से पहले शाही दरबार में पंद्रह हज़ार रुपये वार्षिक ख़िराज के दिये जाते थे। बादशाहत की निर्बलता देख महारावत ने वह होल्कर को देना स्वीकार कर लिया था; किंतु होल्कर ने केवल पंद्रह हज़ार रुपये वार्षिक ख़िराज पर ही संतोष न किया और संभवतः महारावत सामन्तसिंह के समय में दबाव डाल वार्षिक ७२७२० रुपये सालिमशाही लेना स्थिर किया[1], जो अंग्रेज़ सरकार से संधि होने के पूर्व तक वहां से होल्कर को मिलते रहे।

जागीर छोड़ देने का उल्लेख तो इसी प्रकार मिलता है, परन्तु उनमें महाराणा को तीन लाख रुपये देने का वर्णन नहीं है। महाराणा भीमसिंह के समय अहाड़ा कवि किशन ने 'भीमविलास'-नामक काव्य की रचना की। उसमें इस घटना का निम्नलिखित वर्णन है—

···ऊपरि मुकाम तट महिय आय, घर वंसवार आतंक पाय।
रावल विजेस करि मंत्र साम, कर जोध भेज त्रय लक्ख दाम।
ताही मुक्काम सामंत राव, भेजिय वकील महरान पाव।
तिन सीस दंड मनमान थप्प, त्रय लक्ख दाम इक ठाम अप्प।
छंडाय घरावद ग्राम लीन, रघुनाथ राव कहुं पटे दीन···॥२६॥

पृ० ११६।

(१) के० डी० अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़; पृ० १९१। माल्कम की

निरन्तर उपद्रवों के कारण उस समय प्रतापगढ़ राज्य की स्थिति संतोषप्रद न थी और महारावत इतना अधिक वार्षिक ख़िराज होल्कर सरकार को देने में सर्वथा असमर्थ था। ख़िराज बहुधा चढ़ भी जाया करता था, जिसकी वसूली के लिए होल्कर को अपनी सेना भेजनी पड़ती थी जिससे राज्य को बहुत हानि होती थी और अंत में ज़ेवर, सामान, घोड़े आदि देकर किसी तरह होल्कर की सेना को विदा किया जाता था। एक बार होल्कर की सेना के ख़िराज की वसूली के लिए प्रतापगढ़ राज्य में जाने पर अर्थ-संकट होने से महारावत की तरफ़ से ख़िराज न दिया जा सका और कई दिन तक होल्कर की सेना प्रतापगढ़ को घेरे रही। अंत में जब तक ख़िराज की रक़म बेबाक न हो, तब तक के लिए महारावत ने अपने तेरह वर्ष के कुंवर दीपसिंह को होल्कर की ओलो में देना तय किया। फिर होल्कर की सेना दीपसिंह को लेकर इंदौर पहुंची। दो-तीन वर्ष तक उक्त कुंवर होल्कर सरकार के यहां ओल में रहा। फिर वहां से विदा मिलने पर वह प्रतापगढ़ लौटा[1]।

होल्कर सरकार को ख़िराज की रक़म न देने से कुंवर दीपसिंह का ओल में जाना

होल्कर सरकार का प्रतापगढ़ राज्य से ख़िराज का संबंध हो जाने से सिंधिया सरकार का प्रतापगढ़ राज्य से ख़िराज आदि का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहा था, परंतु उन दिनों भारत में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी और न्याय तथा अन्याय का विचार न कर

सिंधिया की सेना का प्रतापगढ को घेरना

---

[1] "रिपोर्ट ऑन दि प्राविंस ऑव् मालवा एंड एडज्वाइनिंग डिस्ट्रिक्ट्स" (पृ० २२५) में होल्कर का ७५००० रुपये सालिमशाही वार्षिक ख़िराज लेने का उल्लेख है। "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०६५) में मल्हारराव होल्कर का महारावत पर दबाव डाल ख़िराज की रक़म ७२००० रुपये स्थिर करने का ही उल्लेख है। मल्हारराव की मृत्यु वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६) उस समय प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी सालिमसिंह था। ऐसी सालिमसिंह के समय ही) होना मानना पड़ेगा
(१ भाग, पृ० १०६५।

सबल निर्बल को दबाने में कुछ भी संकोच नहीं करता था। ऐसे समय में सिंधिया का एक सेनापति जग्गु बापू सेना लेकर प्रतापगढ़ पर चढ़ गया और उसने वहां घेरा डाल दिया। इस अवसर पर कुंवर दीपसिंह ने सिंधिया की सेना का वीरतापूर्वक मुक़ाबला किया, जिससे सिंधिया की सेना का एक अफ़सर मारा गया। बीस दिन तक सिंधिया की सेना का वहां घेरा रहा और जब जग्गु बापू को प्रतापगढ़ राज्य से कुछ भी रुपया मिलने की आशा न दीख पड़ी तो वह वहां से लौट गया[1]।

अंग्रेज़ सरकार के साथ महारावत की प्रथम संधि

मरहटे अफ़सरों की लूट-खसोट और आर्थिक शोषण की नीति से प्रतापगढ़ राज्य का भी अधिकतर भाग ऊजड़ हो गया था। धनी-मानी व्यक्तियों पर तो और भी अधिक विपत्ति थी तथा उनका इस अराजकता के युग में कोई रक्षक न था। प्रतापगढ़ राज्य में भी चारों तरफ़ दरिद्रता का निवास हो गया और आय के साधन बंद हो जाने से राज्य सम्बन्धी साधारण व्यय का चलना भी कठिन हो गया तथा खिराज की रक़म भी बराबर न पहुंचने लगी। परिणाम स्वरूप होलकर सरकार-द्वारा प्रतापगढ़ राज्य में भी लूट-मार का बाज़ार गर्म रहा। इन कारणों से राजपूत राज्यों और मरहटे सरदारों के बीच पूरी शत्रुता उत्पन्न हो गई। मरहटे सरदारों की अनुदार नीति से वीरवर शिवाजी का संस्थापित मरहटा साम्राज्य, जिसकी उन्नति बुद्धिमान पेशवाओं-द्वारा हुई थी, छिन्न-भिन्न होने लगा और उनमें परस्पर फूट उत्पन्न हो गई। पेशवा के सैनिक अफ़सरों में गायकवाड़, सिंधिया और होलकर बड़े शक्तिशाली थे। उन्होंने अवसर पाते ही पेशवा की अधीनता से मुख मोड़कर अपनी जागीरों को स्वतंत्र राज्य का रूप दे दिया। उनकी देखा-देखी पेशवा के अन्य सैनिक अफ़सर परमार (धारवाला) आदि भी स्वतंत्र हो गये और उन्होंने जिस तरह हो सके रुपया वसूल करने की नीति से मध्यभारत और राजपूताने के राज्यों को सैनिक अड्डा बना लिया तथा वे वहां से अत्याचारपूर्वक रुपये वसूल करने

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६९।

लगे। उनमें से सिंधिया का प्रभाव तो उस समय बहुत बढ़ा हुआ था और दिल्ली के नाम मात्र के बादशाह शाह आलम का जीवन भी सिंधिया के दिये हुए धन पर ही अवलंबित था। यह समय केवल राजपूताना में ही नहीं वरन् भारतवर्ष भर में पूर्ण अशांति का था और चारों तरफ़ लूट-खसोट और अत्याचार का बाज़ार गर्म था। राजपूताना के राज्यों में अंग्रेज़ सरकार से संधि होने के पूर्व होलकर और सिंधिया का बड़ा ज़ोर था और समय-समय पर उनके आक्रमणों से राजपूताना के तीन प्रधान राज्यों उदयपुर, जयपुर और जोधपुर की बड़ी दुर्दशा हुई थी।

उन दिनों शक्तिशाली अंग्रेज़ जाति के पैर भारत में अच्छी तरह जम गये थे। उनकी सैनिक शक्ति और नीति-युक्त शासन-प्रणाली से मरहटे अफ़सर भी उनको युद्ध में अजेय मानकर अपने बचाव का मार्ग ढूंढ़ने लगे। अंग्रेज़ सरकार से जसवंतराव होलकर का युद्ध छिड़ जाने पर उसको निरंतर हार खानी पड़ी। अंत में जसवन्तराव होलकर का घमंड नष्ट करने का अंग्रेज़ सरकार ने दृढ़ संकल्प कर लिया। महारावत सामन्तसिंह ने भी अपने दुःखों से त्राण पाने का यह उपयुक्त अवसर समझा, क्योंकि होलकर आदि के जुल्म से उसका राज्य भी जर्जर हो गया था। उसने अंग्रेज़ सरकार के संरक्षण में आने का विचार कर वि० सं० १८६१ (ई० स० १८०४) में संधि का प्रस्ताव किया। गुजरात और मालवा के अंग्रेज़ सेनापति कर्नल मरे-द्वारा संधि की बातचीत तय होकर ता० २५ नवंबर (मार्गशीर्ष वदि ८) को दोनों के बीच आठ शर्तों का निम्नलिखित संधिपत्र लिखा गया—

शर्त पहली—जसवंतराव होलकर की अधीनता तथा बड़प्पन को राजा सब प्रकार से अस्वीकार करते हैं।

शर्त दूसरी—राजा प्रतिज्ञा करते हैं कि वे जितना ख़िराज पहले जसवंतराव होलकर को देते थे, उतना अंग्रेज़ सरकार को दिया करेंगे और यह ख़िराज उस समय दिया जायगा, जब सम्माननीय गवर्नर जेनरल इसके वसूल किये जाने की आज्ञा देना उचित समझेंगे।

सबल निर्बल को दबाने में कुछ भी संकोच नहीं करता था। ऐसे समय में सिंधिया का एक सेनापति जग्गु बापू सेना लेकर प्रतापगढ़ पर चढ़ गया और उसने वहां घेरा डाल दिया। इस अवसर पर कुंवर दीपसिंह ने सिंधिया की सेना का वीरतापूर्वक मुक़ाबला किया, जिससे सिंधिया की सेना का एक अफ़सर मारा गया। बीस दिन तक सिंधिया की सेना का वहां घेरा रहा और जब जग्गु बापू को प्रतापगढ़ राज्य से कुछ भी रुपया मिलने की आशा न दीख पड़ी तो वह वहां से लौट गया[1]।

अंग्रेज़ सरकार के साथ महारावत की प्रथम संधि

मरहटे अफ़सरों की लूट-खसोट और आर्थिक शोषण की नीति से प्रतापगढ़ राज्य का भी अधिकतर भाग ऊजड़ हो गया था। धनी-मानी व्यक्तियों पर तो और भी अधिक विपत्ति थी तथा उनका इस अराजकता के युग में कोई रक्षक न था। प्रतापगढ़ राज्य में भी चारों तरफ़ दरिद्रता का निवास हो गया और आय के साधन बंद हो जाने से राज्य सम्बन्धी साधारण व्यय का चलना भी कठिन हो गया तथा ख़िराज की रक़म भी बराबर न पहुंचने लगी। परिणाम स्वरूप होलकर सरकार-द्वारा प्रतापगढ़ राज्य में भी लूट-मार का बाज़ार गर्म रहा। इन कारणों से राजपूत राज्यों और मरहटे सरदारों के बीच पूरी शत्रुता उत्पन्न हो गई। मरहटे सरदारों की अनुदार नीति से वीरवर शिवाजी का संस्थापित मरहटा साम्राज्य, जिसकी उन्नति बुद्धिमान पेशवाओं-द्वारा हुई थी, छिन्न-भिन्न होने लगा और उनमें परस्पर फूट उत्पन्न हो गई। पेशवा के सैनिक अफ़सरों में गायकवाड़, सिंधिया और होलकर बड़े शक्तिशाली थे। उन्होंने अवसर पाते ही पेशवा की अधीनता से मुख मोड़कर अपनी जागीरों को स्वतंत्र राज्य का रूप दे दिया। उनकी देखा-देखी पेशवा के अन्य सैनिक अफ़सर परमार (धारवाला) आदि भी स्वतंत्र हो गये और उन्होंने जिस तरह हो सके रुपया वसूल करने की नीति से मध्यभारत और राजपूताने के राज्यों को सैनिक अड्डा बना लिया तथा वे वहां से अत्याचारपूर्वक रुपये वसूल करने

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६६।

लगे। उनमें से सिंधिया का प्रभाव तो उस समय बहुत बढ़ा हुआ था और दिल्ली के नाम मात्र के बादशाह शाह आलम का जीवन भी सिंधिया के दिये हुए धन पर ही अवलंबित था। यह समय केवल राजपूताना में ही नहीं वरन् भारतवर्ष भर में पूर्ण अशांति का था और चारों तरफ़ लूट-खसोट और अत्याचार का बाज़ार गर्म था। राजपूताना के राज्यों में अंग्रेज़ सरकार से संधि होने के पूर्व होल्कर और सिंधिया का बड़ा ज़ोर था और समय-समय पर उनके आक्रमणों से राजपूताना के तीन प्रधान राज्यों उदयपुर, जयपुर और जोधपुर की बड़ी दुर्दशा हुई थी।

उन दिनों शक्तिशाली अंग्रेज़ जाति के पैर भारत में अच्छी तरह जम गये थे। उनकी सैनिक शक्ति और नीति-युक्त शासन-प्रणाली से मरहटे अफ़सर भी उनको युद्ध में अजेय मानकर अपने बचाव का मार्ग ढूंढ़ने लगे। अंग्रेज़ सरकार से जसवंतराव होल्कर का युद्ध छिड़ जाने पर उसको निरंतर हार खानी पड़ी। अंत में जसवन्तराव होल्कर का घमंड नष्ट करने का अंग्रेज़ सरकार ने दृढ़ संकल्प कर लिया। महारावत सामन्तसिंह ने भी अपने दुःखों से त्राण पाने का यह उपयुक्त अवसर समझा, क्योंकि होल्कर आदि के ज़ुल्म से उसका राज्य भी जर्जर हो गया था। उसने अंग्रेज़ सरकार के संरक्षण में जाने का विचार कर वि० सं० १८६१ (ई० स० १८०४) में संधि का प्रस्ताव किया। गुजरात और मालवा के अंग्रेज़ सेनापति कर्नल मरे-द्वारा संधि की बातचीत तय होकर ता० २५ नवंबर (मार्गशीर्ष वदि ८) को दोनों के बीच आठ शर्तों का निम्नलिखित संधिपत्र लिखा गया—

शर्त पहली—जसवंतराव होल्कर की अधीनता तथा बड़प्पन को राजा सब प्रकार से अस्वीकार करते हैं।

शर्त दूसरी—राजा प्रतिज्ञा करते हैं कि वे जितना ख़िराज पहले जसवंतराव होल्कर को देते थे, उतना अंग्रेज़ सरकार को दिया करेंगे और यह ख़िराज उस समय दिया जायगा, जब सम्माननीय गवर्नर जेनरल इसके वसूल किये जाने की आज्ञा देना उचित समझेंगे।

शर्त तीसरी—राजा अंग्रेज़ सरकार के शत्रुओं को अपना शत्रु समझेंगे और वे प्रतिज्ञा करते हैं कि उन्हें अपने इलाक़े में रहने न देंगे।

शर्त चौथी—सारी अंग्रेज़ी सेना और उसके लिए प्रत्येक प्रकार का सामान बिना रोक-टोक तथा महसूल के राजा के इलाक़े में होकर गुज़रेगा। इसके अतिरिक्त राजा प्रतिज्ञा करते हैं कि वे हर प्रकार से उसकी सहायता और रक्षा करेंगे।

शर्त पांचवीं—राजा के इलाक़े से मल्हारगढ़ में पांच हज़ार मन चावल, दो हज़ार मन चना और तीन हज़ार मन ज्वार दी जायगी, जिसे सौंप देने पर अंग्रेज़ सरकार उचित मूल्य देगी, जिसका आधा तो चौदह और बाकी अट्ठाइस दिनों में चुका दिया जायगा।

शर्त छठी—इस विश्वास से कि राजा ऊपर लिखी हुई शर्तों पर पूरी तरह से अमल करेंगे अंग्रेज़ी सेना का अफ़सर कर्नल मरे प्रतिज्ञा करता है कि न तो वह स्वयं कोई सहायता रुपये, मवेशी या ग़ल्ले की लेगा और न अंग्रेज़ी सेना के जत्थों को, जो उनके अधीन होंगे, ऐसा करने देगा।

शर्त सातवीं—राजा इक़रार करते हैं कि अंग्रेज़ी सेना में सिक्के की आवश्यकता होने पर, उसके अफ़सर जितनी चांदी भेजेंगे, उसका सिक्का प्रतापगढ़ की टकसाल से तैयार करके वे भेज देंगे। उसका उचित व्यय अंग्रेज़ सरकार देगी।

शर्त आठवीं—यह संधिपत्र शीघ्र मान्यवर गवर्नर-जेनरल के हस्ताक्षर के लिए भेजा जायगा, किन्तु उपर्युक्त शर्तों का पालन हस्ताक्षर होकर आने तक अंग्रेज़ सरकार के अफ़सर और राजा को उचित और आवश्यक होगा।

उपर्युक्त संधिपत्र चंबल नदी के किनारे अंग्रेज़ सरकार की सेना के अफ़सर कर्नल मरे के कैम्प में तय होकर लिखा गया, परंतु तत्कालीन गवर्नर-जेनरल लॉर्ड कार्नवालिस की देशी राज्यों के प्रति उदासीनता की नीति के कारण स्वीकृत नहीं हुआ[1] और चौदह वर्ष तक प्रतापगढ़ राज्य

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४५८-६०।

फिर दुःख-सागर में गोते खाता रहा।

वि० सं० १८६५ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १८०८ ता० ८ नवंबर) को महारावत के कुंवर दीपसिंह की भिणायवाली कुंवराणी के उदर से भंवर केसरीसिंह[1] और मार्गशीर्ष सुदि ६ (ता० २६ नवंबर) शनिवार को फ़तहगढ़ (किशनगढ़ राज्य)-वाली कुंवराणी के उदर से भंवर दलपतसिंह[2] का जन्म हुआ। एक ही महीने में भिन्न-भिन्न कुंवराणियों के उदर से दो पौत्र उत्पन्न होने का समाचार सुनकर महारावत के हर्ष का पारावार न रहा और इस अवसर पर उसने अपने राज्य की स्थिति के अनुसार बहुत कुछ उदारता प्रकट की।

भंवर केसरीसिंह और दलपतसिंह का जन्म

लार्ड हेस्टिंग्ज़ के समय अंग्रेज़ सरकार की नीति में परिवर्त्तन

---

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २५७३।

(२) वही; संख्या २५७४।

प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त बड़वे की ख्यात में भंवर केसरीसिंह का कोठारिया (मेवाड़) के सरदार रावत सामन्तसिंह की पुत्री और संग्रामसिंह की पौत्री रत्नकुंवरी से उत्पन्न होना बतलाया है तथा ऐसा ही प्रतापगढ़ राज्य से आई हुई प्राचीन ख्यात में भी लिखा है; परन्तु कोठारिया के सरदारों में सामन्तसिंह नामक कोई व्यक्ति नहीं हुआ। संग्रामसिंह कोठारिया का रावत अवश्य हुआ था, जो महारावत सामन्तसिंह का समकालीन था। संभव है सामन्तसिंह उसका कुंवर हो, पर हमारे संग्रह में कोठारिया के स्वामियों की जो वंशावली है, उसमें संग्रामसिंह के पीछे मुहकमसिंह का नाम दिया है, जो उस (संग्रामसिंह) की मृत्यु के बाद वहां का रावत हुआ था। उपर्युक्त ख्यातों में कुंवर दीपसिंह का भिणाय (अजमेर) के इस्तमरारदार राजा उदयभाण की पुत्री और दलेलसिंह की पौत्री राजकुंवरी से भी विवाह होना लिखा है। ऐसी अवस्था में केसरीसिंह का भिणायवाली कुंवराणी के उदर से अथवा कोठारियावाली कुंवराणी के उदर से जन्म हुआ, इसका निर्णय होना कठिन है। बड़वा भाटों की ख्यातों में कई स्थल पर उन्नीसवीं शताब्दी तक के वृत्तान्तों में विभिन्नता पाई जाती है। केसरीसिंह के भिणाय ठिकाने का भागिनेय होने का कथन ही विश्वसनीय मानना पड़ेगा, क्योंकि कविराजा बांकीदास ने यह संग्रह अपने जीवनकाल में लिखा था और वह महारावत सामन्तसिंह का समकालीन भी था।

होकर देशी राज्यों को अंग्रेज़ सरकार के संरक्षण में लेना निश्चित हुआ और मालवा तथा गुजरात से मिले हुए राज्यों से संधि करने का कार्य सर जॉन मालकम को सौंपा गया। महारावत सामन्तसिंह ने अपनी तरफ़ से पंडित रामचंद्र भाऊ को पूरे अधिकार के साथ संधि की बातचीत करने के लिए नीमच भेजा। अंत में कप्तान कॉलफ़ील्ड और रामचंद्र भाऊ-द्वारा संधि की शर्तें तय होकर ई० स० १८१८ ता० ५ अक्टोबर (वि० सं० १८७५ आश्विन सुदि ६) को नीचे लिखा संधिपत्र लिखा गया—

अंग्रेज़ सरकार के साथ दूसरी संधि

शर्त पहली—राजा इक़रार करते हैं कि उनका दूसरे राज्यों के साथ जो (राजनैतिक) संबंध है, उसको वे त्याग देंगे और यथा संभव अंग्रेज़ सरकार की अधीनता करते रहेंगे। इसके एवज़ में अंग्रेज़ सरकार स्वीकार करती है कि वह उन्हें अपने राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करने में सहायता देगी और अन्य राज्यों के दावों तथा ज्यादतियों से उनकी रक्षा करेगी।

शर्त दूसरी—राजा इक़रार करते हैं कि वे कुल बाक़ी खिराज, जो मल्हारराव होलकर को देना वाजिब है और जिसकी तादाद एक लाख चौबीस हज़ार छ:सौ सत्तावन रुपये छ:आने होती है, नीचे लिखे अनुसार अंग्रेज़ सरकार को देंगे—

पहले वर्ष ई० स० १८१८-१९, हि० स० १२२९, वि० सं० १८७५				रु० १००००
दूसरे वर्ष	...	...	...	रु० १५०००
तीसरे वर्ष	...	...	...	रु० २००००
चौथे वर्ष	...	...	...	रु० २५०००
पांचवें वर्ष	...	...	..	रु० २५०००
छठे वर्ष	...	...	...	रु० २९६५७-६ आने

राजा यह भी स्वीकार करते हैं कि ऊपर लिखी हुई रक़म अदा न होने की अवस्था में अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से एक प्रतिनिधि नियत होगा, जो प्रतापगढ़ शहर की चुंगी (सायर) की आय से उसे वसूल करेगा।

शर्त तीसरी—देवलिया प्रतापगढ़ के राजा अपनी और अपने वारिसों की ओर से प्रतिज्ञा करते हैं कि वे अंग्रेज़-सरकार को अपनी रक्षा के एवज़ में इतना ख़िराज और नज़राना देंगे, जितना वे अब तक मल्हार राव होल्कर को दिया करते थे। यह ख़िराज नीचे लिखे अनुसार अदा किया जायगा—

प्रथम वर्ष ई० स० १८१८-१९, हि० स० १२२६, वि० सं० १८७५				रु० ३५०००
द्वितीय वर्ष	...	...	...	रु० ४५०००
तृतीय वर्ष	...	...	...	रु० ५५०००
चतुर्थ वर्ष	...	...	...	रु० ६५०००

पांचवें वर्ष ख़िराज की पूरी रक़म अर्थात् ७२७०० रुपये सालिमशाही, दो किश्तों में अदा की जायगी। आधी माघ तथा आधी जेठ अर्थात् मार्च और जुलाई में।

शर्त चौथी—राजा यह भी स्वीकार करते हैं कि वे अरबों और मकरानियों को नौकर न रक्खेंगे, पर वे पचास सवार और दो सौ सैनिक प्रतापगढ़ इलाक़े के निवासियों में से नौकर रक्खेंगे। जब कभी प्रतापगढ़ इलाक़े के समीप इन सवारों और पैदल सेना की आवश्यकता होगी, तब ये अंग्रेज़ सरकार की सेवा में रख दिये जावेंगे।

शर्त पांचवीं—प्रतापगढ़ के राजा अपने राज्य के स्वामी रहेंगे और लुटेरी जातियों का दमन करने एवं पुनः शांति एवं सुशासन स्थापित करने के अतिरिक्त उनके प्रबंध में अंग्रेज़ सरकार कभी हस्तक्षेप न करेगी। राजा इक़रार करते हैं कि वे अंग्रेज़ सरकार की राय पर चलेंगे और अपने देश में टकसाल या सौदागरों तथा व्यापार की वस्तुओं पर कोई अनुचित कर न लगावेंगे।

शर्त छठी—अंग्रेज़ सरकार इक़रार करती है कि वह प्रतापगढ़ के राजा के उन बंधु-बांधवों या संबंधियों की सहायता न करेगी जो उनकी आज्ञा न मानेंगे, बल्कि उनका दमन करने में राजा को सहायता देगी।

शर्त सातवीं—अंग्रेज़ सरकार इक़रार करती है कि वह मीनों, भीलों आदि के दमन करने में राजा की सहायता करेगी।

शर्त आठवीं—अंग्रेज़ सरकार प्रतिज्ञा करती है कि वह राजा के प्रजा-संबंधी उचित तथा पुराने दावों में, जो प्राचीन प्रथा के अनुकूल होंगे, हस्तक्षेप न करेगी।

शर्त नवीं—अंग्रेज़ सरकार इक़रार करती है कि वह राजा के उन प्रजा-संबंधी स्वत्वों को, जो वाजिब होंगे और जिन्हें वे खुद हासिल न कर सकेंगे, प्राप्त करने में उनकी सहायता करेगी।

शर्त दसवीं—यदि पड़ोस की किसी रियासत या आस पास के ठाकुरों पर प्रतापगढ़ राज्य का कोई उचित दावा होगा तो अंग्रेज़ सरकार प्रतिज्ञा करती है कि वह उसको हासिल कराने या उसका फ़ैसला कराने में उन्हें अपनी ओर से मदद देगी। उनके तथा ऐसे राजाओं के बीच यदि कोई विरोध या झगड़ा पैदा होगा तो वह उसका निपटारा करने के लिए मध्यस्थ भी बनेगी।

शर्त ग्यारहवीं—अंग्रेज़ सरकार इक़रार करती है कि वह ख़ैरात की ज़मीन के मामलों में दख़ल न देगी और हमेशा राजा तथा प्रजा के धार्मिक रस्मों और दस्तूरों का पूरा लिहाज़ रक्खेगी।

शर्त बारहवीं—इस संधिपत्र की तीसरी शर्त में राजा ने वादा किया है कि वे अंग्रेज़ सरकार को ख़िराज दिया करेंगे और इत्मीनान के लिए इक़रार करते हैं कि वे ख़िराज उस व्यक्ति को दे देंगे, जो उसे वसूल करने के लिए अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से नियत होगा और यदि उसके अदा होने में कोई ग़फ़लत होगी तो राजा मंज़ूर करते हैं कि अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से एक कार्यकर्त्ता मुक़र्रर किया जाय, जो प्रतापगढ़ शहर की चुंगी की आय से ख़िराज वसूल करे।

यह अहदनामा, जिसमें बारह शर्तें दर्ज हैं, आज के दिन आनरेबल कम्पनी की ओर से ब्रिगेडियर-जेनरल सर माल्कम, के० सी० बी०, के० एल० एस०, की आज्ञानुसार कप्तान जेम्स कॉलफ़ील्ड और देवलिया-प्रतापगढ़ के राजा सामन्तसिंह की ओर से रामचन्द्र भाऊ-द्वारा तय हुआ। कप्तान कॉलफ़ील्ड ने अंग्रेज़ी, फ़ारसी तथा हिन्दी में इसकी एक नक़ल

करा और उसपर अपनी मुहर तथा हस्ताक्षर करके उस(रामचन्द्र भाऊ)-को इसलिए दिया है कि वह उसे देवलिया-प्रतापगढ़ के राजा के पास भेज दे और रामचन्द्र भाऊ ने उसकी एक नक़ल अपने दस्तख़त तथा मुहर के साथ उक्त कप्तान को दी है।

कप्तान कॉलफ़ील्ड इक़रार करता है कि माननीय गवर्नर जेनरल के तस्दीक़ किये हुए अहदनामे की एक प्रति, जो उस अहदनामे की जिसे अभी उसने स्वयं तैयार किया है अक्षरशः नक़ल होगी, दो महीने के अरसे में रामचंद्र भाऊ को इसलिए दी जायगी कि वह उसे देवलिया प्रतापगढ़ के राजा सामंतसिंह को दे और राजा को वह प्रति सौंप दी जाने पर ब्रिगेडियर-जेनरल सर जॉन मालकम, के० सी० बी०, के० एल० एस०, की आज्ञा से कप्तान कॉलफ़ील्ड-द्वारा तैयार किया हुआ अहदनामा लौटा दिया जायगा। इसी प्रकार रामचंद्र भाऊ प्रतिज्ञा करता है कि उक्त अहदनामे की दूसरी प्रति, जिसपर देवलिया प्रतापगढ़ के राजा सामन्तसिंह का हस्ताक्षर होगा और जो उस अहदनामे की, जिसको रामचंद्र भाऊ ने स्वयं तैयार किया है, अक्षरशः नक़ल होगी, आज की तारीख़ से आठ दिन के अरसे में कप्तान कालफील्ड को दी जायगी, ताकि वह उसको माननीय गवर्नर जेनरल के सुपुर्द कर दे। ऐसा होने पर वह अहदनामा, जिसे रामचंद्र भाऊ ने, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है अपने प्राप्त किये हुए अधिकार के अनुसार तैयार किया है, वापस कर दिया जायगा।

आज ५ वीं अक्टोबर ई० स० १८१८ ता० ४ ज़िलहिज्ज हि० स० १२३३ तदनुसार आसोज सुदि ६ वि० सं० १८७५ को तैयार हुआ।

(दस्तख़त) हेस्टिंग्ज़
,, जी० डॉड्सवेल
,, जे० स्टूअर्ट
,, सी० एम० रिकेट्स

आज ७ वीं नवम्बर ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५ कार्तिक सुदि १०) को फ़ोर्ट विलियम (कलकत्ता) में हिज़ एक्सेलेंसी मोस्ट नोबल

गवर्नर-जेनरल ने कौंसिल में तस्दीक़ की[1]।

(दस्तख़त) जे० एडम,

गवर्नमेंट का चीफ़ सेक्रेटरी

अंग्रेज़ सरकार और देवलिया प्रतापगढ़ राज्य के बीच की यह संधि सूखती हुई कृषि के लिए वर्षा के समान लाभदायक सिद्ध हुई। प्रजा में नवजीवन का संचार हुआ। कृषि-जीवी तथा अन्य व्यवसायी जन, जो उपद्रवों के कारण बाहर चले गये थे, पुनः अपने देश में आकर बस गये, जिससे चारों तरफ़ खेती लहलहाने लगी। संधि होने के पूर्व इस राज्य की औसत आमदनी दो लाख रुपये थी। संधि होने के वर्ष ही आय में बयालीस हज़ार रुपये और दूसरे वर्ष लगभग पचासी हज़ार रुपये की वृद्धि हुई[2]।

प्रतापगढ़ राज्य की आर्थिक स्थिति में उन्नति होना

डूंगरपुर का महारावल जसवंतसिंह (दूसरा) दुर्बल-हृदय शासक था। उसके कोई कुंवर न था। निरन्तर विपत्तियों से ग्रसित रहने के कारण युवावस्था में ही उसको शासन-कार्य से उदासीनता हो गई और अपना अपुत्र होना खटकने लगा। उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के नरेश एक ही वंश के हैं, परंतु उदयपुर और प्रतापगढ़ डूंगरपुर से पीढ़ियों में बहुत दूर जाकर मिलते हैं। प्रचलित रीति के अनुसार आवश्यकता के समय अपने समीपी बंधु-बांधवों में से ही दत्तक पुत्र ग्रहण किया जाता है। इसके विपरीत महारावल ने अपनी अविवेकता और अस्थिर-चित्तता के कारण प्रतापगढ़ के स्वामी सामंतसिंह के द्वितीय पौत्र दलपतसिंह को अपना दत्तक पुत्र बनाया[3],

दलपतसिंह का डूंगरपुर गोद जाना

---

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनदज़; जि० ३, पृ० ४६०-६३।

(२) माल्कम; रिपोर्ट ऑन् दि प्रॉविंस ऑव् मालवा एंड दि एडजॉइनिंग डिस्ट्रिक्ट्स; पृ० ३३५।

(३) प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त राजकीय पत्रादि से पाया जाता है कि वि० सं० १८७७

जिसको अंग्रेज़-सरकार ने भी स्वीकार कर लिया। इसका कारण यही हो सकता है कि डूंगरपुर के राज-कुटुंब में उस समय योग्य पुरुष का अभाव था और दलपतसिंह में बाल्यकाल से ही प्रतिभा विद्यमान थी।

सेना-व्यय के एवज़ अंग्रेज़-सरकार को नक़द रुपये देने का क़रार होना

अंग्रेज़ सरकार से संधि होने के पीछे प्रतापगढ़ राज्य बाहरी आक्रमणों से तो सुरक्षित हो गया, परंतु भीतरी उपद्रव; भील, मीणों आदि दुर्दमनीय लोगों की लूट-खसोट या ग़ारतगिरी आदि से मुक्त न था। ऐसे उपद्रवों को मिटाकर शांति स्थापित करने के लिए सैनिक शक्ति की आवश्यकता

(ई० स० १८२०) में महारावल जसवन्तसिंह (दूसरा) देवलिया आया, तब वह युवा था, तो भी उसने महारावत सामन्तसिंह से भंवर दलपतसिंह को अपने गोद देने के लिए आग्रह किया। इसपर कई शर्तों के साथ दलपतसिंह डूंगरपुर गोद दे दिया गया, जिसको अंग्रेज़ सरकार के पोलिटिकल अफ़सरों ने भी स्वीकार किया। वि० सं० १८७८ (ई० स० १८२१) में सर जॉन मालकम उदयपुर गया, उस समय वहां के महाराणा भीमसिंह ने इस गोदनशीनी को ठीक नहीं बतलाया। इसपर उस (सर जान माल्कम)-ने उत्तर दिया कि मैं इतिहास से वाक़िफ़ न था, इसलिए ऐसा हुआ, परन्तु अब यह बात बदली नहीं जा सकती। इससे पाया जाता है कि वि० सं० १८७७ (ई० स० १८२०) के आसपास ही दलपतसिंह की गोदनशिनी की बात तय हो चुकी थी, अतएव उस समय के बाद ही दलपतसिंह का डूंगरपुर में आना-जाना शुरू हुआ होगा और वि० सं० १८८१ से वह वहां स्थायी रूप से रहने लगा।

डूंगरपुर राज्य से महारावल जसवन्तसिंह (दूसरा) की जन्मपत्री और वर्षफल प्राप्त हुए हैं। उनसे पाया जाता है कि उसका जन्म आषाढादि वि० सं० १८५५ शाके १७२१ (चैत्रादि वि० सं० १८५६) अमांत वैशाख वदि १० उपरांत ११, (पूर्णिमांत ज्येष्ठ वदि १० उपरांत ११ = ई० स० १७९९ ता० २९ मई) बुधवार, उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र उपरांत रेवती को हुआ था। अतएव वि० सं० १८७७ में उक्त महारावल की आयु २१ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती। अभिप्राय यह कि जसवन्तसिंह ने अपनी २१ वर्ष की आयु में ही दलपतसिंह को, जब कि वह केवल १२ वर्ष का था, अपना दत्तक बना लिया था। इतनी अल्प आयु में ही उस(जसवन्तसिंह)का दलपतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाना निश्चय ही एक प्रकार का भ्रांति मूलक विचार ही कहा जायगा।

थी। अतएव अंग्रेज़ सरकार की अध्यक्षता में सेना रखना निश्चय होकर वि० सं० १८८० मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० स० १८२३ ता० ६ दिसंबर) को संधिपत्र की तीसरी शर्त के अनुसार पचास सवार और दो सौ पैदल सेना रखने के एवज़ में १२००० रुपये सालिमशाही वार्षिक देने और वि० सं० १८८३ (ई० स० १८२६-२७) से चौवीस हज़ार रुपये देते रहने का अंग्रेज़ सरकार के साथ कप्तान ए० मेकडॉनल्ड-द्वारा नीचे लिखा इक़रारनामा हुआ—

अहदनामे में दो सौ पैदल और पचास सवार दर्ज हैं, उनके ख़र्चे के लिए नियत किश्तों में एक हज़ार रुपये माहवार अर्थात् बारह हज़ार रुपये वार्षिक सरकार को दिये जायंगे। वि० सं० १८८३ (ई० स० १८२६-७) से दो हज़ार रुपये माहवार अर्थात् चौबीस हज़ार रुपये वार्षिक कंपनी की सरकार को दिये जायंगे और इससे विपरीत कभी न होगा। रुपये सालिमशाही होंगे[1]।

उपर्युक्त इक़रारनामे से प्रतापगढ़ राज्य पर चौवीस हज़ार रुपये वार्षिक का बोझ और भी बढ़ गया, जिसको देने में वह समर्थ न था। फिर भी वह किसी प्रकार ख़िराज आदि नियमित रूप से देकर अपने ऊपर ऋण न बढ़ने देता था। अन्त में वि० सं० १८९७ (ई० स० १८४०) में महारावत सामन्तसिंह के पौत्र दलपतसिंह के (जब कि वह अपने बड़े भ्राता केसरीसिंह की मृत्यु हो जाने के कारण प्रतापगढ़ का भी भावी स्वामी मान लिया गया था) अंग्रेज़ सरकार से लिखा-पढ़ी करने पर प्रतापगढ़ राज्य को इस बोझ के उठाने में असमर्थ देख इस अहदनामे को मंसूख़ कर दिया गया[2]।

महारावत सामंतसिंह ने अंग्रेज़ सरकार से संधि होने के पीछे अपनी वृद्धावस्था का विचार कर राज्य-कार्य अपने कुंवर दीपसिंह को

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३ पृ० ४६३।

(२) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४४२।

कुंवर दीपसिंह का उपद्रव करना

सौंप दिया था, किंतु कुछ स्वार्थी लोगों ने पिता-पुत्र के बीच द्वेष उत्पन्न करा दिया, जिससे राज्य-कार्य में खराबी होने लगी। अपने उग्र स्वभाव के कारण कुंवर ने कतिपय मनुष्यों को, जो उसके कार्य में बाधक थे, मरवा डाला। अंग्रेज़ सरकार ने कुंवर के इस कृत्य से अप्रसन्न होकर उसको राज्य-कार्य से वंचित कर दिया और देवलिया में रहने की आज्ञा दी। तदनुसार कुंवर देवलिया में रहने लगा, परन्तु उसको वहां रहना पसन्द नहीं था, जिससे वह फिर प्रतापगढ़ में जाकर उपद्रव करने लगा। जब उसका उपद्रव चरम सीमा तक पहुंच गया तो अंग्रेज़ सरकार ने उसका दमन करने के लिए अपनी सेना रवाना की, जिसका कुंवर से मुक़ाबला हुआ। थोड़ी लड़ाई के बाद कुंवर अंग्रेज़ी सेना-द्वारा बंदी कर लिया गया[1]। महारावत ने उसको करनोरा (कनोरा) के क़िले में क़ैद रखना चाहा और इस बात का इक़रार भी वि० सं० १८८० मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १८२३ ता० ३ दिसम्बर) को कप्तान मेकडॉनल्ड के नाम लिख दिया[2], परंतु यह बात अंग्रेज़

(१) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट; पृ० १९९।

(२) मूल इक़रार की प्रतिलिपि से।

जी० बी० मैलिसन ने "हिस्टॉरिकल स्केचिज़ ऑव् दि नेटिव स्टेट्स ऑव् इंडिया" (पृ० १३३-४) में भी कुंवर दीपसिंह को कनोरा के दुर्ग में रखने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'वक़ाये राजपूताना' (पृ० ४७७), 'हिंद राजस्थान' (गुजराती, अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या कृत; पृ० ६७४) आदि में भी ऐसा ही लिखा है। कनोरा प्रतापगढ़ राज्य के अन्तर्गत है, जिससे उसके वहां रहने से फिर वहां उपद्रव होने की संभावना थी। इस दृष्टि से उसका प्रतापगढ़ राज्य से बाहर अचेरे की गढ़ी में रखा जाना ही ठीक प्रतीत होता है।

बिशप हेबर अपनी यात्रा के समय ई० स० १८२५ (वि० सं० १८८२) में प्रतापगढ़ भी गया था। वह अपनी पुस्तक 'नरेटिव ऑव् ए जर्नी थ्रू दि अपर प्रॉविंसेज़ ऑव् इंडिया' में लिखता है कि दीपसिंह ने तीन वर्ष पूर्व स्वयं अपने हाथ से तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा छः आदमियों को मरवा डाला था। उसका पिता, वहां का राजा बड़ा सीधा

सरकार को स्वीकार नहीं हुई। अंत में वह ग्वालियर-राज्यान्तर्गत अचेरे की गढ़ी में रखा गया। उन दिनों महारावत ने शासन-कार्य पीछा अपने हाथ में ले लिया था। स्नेहवश उस (महारावत) ने कुंवर का अपराध क्षमाकर उसे पीछा प्रतापगढ़ में बुला लेना चाहा और इसके लिए अंग्रेज़ अफ़सरों से लिखा-पढ़ी भी प्रारंभ की[1]। संभव था कि कुंवर का अपराध अंग्रेज़ सरकार भी क्षमा कर देती, पर इसी बीच वि० सं० १८८३ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १८२६ ता० २१ अप्रेल) को दीपसिंह की मृत्यु हो गई[2]।

और वृद्ध था एवं उस (दीपसिंह) का दमन नहीं कर सकता था तो भी वह उस (दीपसिंह) को क़ैद से छुड़ाने के लिए बड़ा व्यग्र था।

कुछ लोगों का यह कथन है कि सरकारी सेना से कुंवर का मुक़ाबला होने पर एक अंग्रेज़ अफ़सर भी मारा गया, जिसका स्मारक प्रतापगढ़ क़स्बे के बाहर पश्चिम की ओर बना हुआ है। एक स्थल पर यह भी लिखा मिलता है कि कुंवर दीपसिंह ने कप्तान मेकडॉनल्ड को मार डाला था। वस्तुत: ये सब कथन भ्रांतिमूलक हैं। उपर्युक्त स्मारक बङ्गाल की पैदल सेना के ४६ वीं रेजिमेंट के लेफ़्टेनेन्ट और रामपुरा की देशी बटालियन के एडज्यूटेंट जॉन बायली का है, जिसकी ई० स० १८२६ ता० १४ अक्टोबर (वि० सं० १८८३ आश्विन सुदि १४) को वहां पर मृत्यु हुई थी। इसके छः मास पूर्व ही कुंवर दीपसिंह का देहावसान हो गया था। इसी प्रकार कप्तान मेकडॉनल्ड के वहां मारे जाने और उसका स्मारक सालमगढ़ में होने की बात भी निर्मूल है। कप्तान मेकडॉनल्ड दीपसिंह के बंदी होने के पीछे तक विद्यमान था, जैसा कि संधिपत्रों से निश्चित है।

(१) महारावत सामन्तसिंह का मि० वेलेज़ली के नाम का वि० सं० १८८२ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १८२६ ता० १ मार्च) का पत्र।

(२) के० डी० अर्सकिन ने अपने प्रतापगढ़ राज्य के गैज़ेटियर में ता० २१ मई ई० स० १८२६ को दीपसिंह की मृत्यु होना लिखा है। इसी प्रकार मैलेसन के "हिस्टोरिकल स्केचिज़", "वक़ाये राजपूताना" आदि में उसके देहांत की यही तारीख़ दी है, जिसका हिन्दी तिथियों से मिलान करने पर उस दिन वि० सं० १८८३ वैशाख सुदि १४ आती है, किन्तु प्रतापगढ़ राज्य के राजाओं की निधन-तिथियों की सूची में दीपसिंह की निधन-तिथि वि० सं० १८८३ चैत्र सुदि १४ दी है। उसका मिलान करने पर उस

महारावत सामंतसिंह के पिछले समय में राज्य का काम शाह नवलचंद करता था। वह होशियार और पूरा स्वामिभक्त था, अतएव महारावत ने कुंवर दीपसिंह के अंग्रेज़ सरकार-द्वारा अचेरे की गढ़ी में भेज दिये जाने पर वि० सं० १८८० पौष सुदि ३ (ई० स० १८२४ ता० ४ जनवरी) रविवार को फिर शाह नवलचंद को कामदार (मुख्य मंत्री) के पद पर नियत किया। दीपसिंह की मृत्यु के पश्चात् महारावत ने अपने ज्येष्ठ पौत्र केसरीसिंह को राज्य-कार्य सौंप दिया। उस (केसरीसिंह) ने भी शाह नवलचंद की पूरी तसल्ली कर उसको उसी पद पर बहाल रक्खा। उसकी कार्य-शैली अच्छी होने से अंग्रेज़ सरकार के पोलिटिकल अफ़सरों ने भी समय-समय पर उसकी ख़ातिरी कर उसको उत्साहित किया था[1]।

महारावत का नवलचंद पाडलिया को कामदार बनाना

महारावत के कुंवर दीपसिंह के एक पुत्री प्रतापकुंवरी थी। उसका संबंध बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह के महाराजकुमार सरदारसिंह के साथ निश्चय होकर वि० सं० १८८६ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १८३२ ता० १२ फ़रवरी) विवाह की तिथि स्थिर हुई[2]। तदनुसार उक्त महाराजकुमार की बरात प्रतापगढ़ पहुंचने पर पूर्ण आतिथ्य कर महारावत ने बड़े समारोह के साथ विवाह-कार्य सम्पन्न किया।

महारावत की पौत्री का बीकानेर के कुंवर सरदारसिंह से विवाह

पुत्र शोक का घाव भर भी नहीं पाया था कि ऐसे में वि० सं० १८९१ वैशाख सुदि ४ (ई० स० १८३४ ता० १२ मई) को महारावत के

दिन ता० २१ अप्रेल आती है। अतएव दीपसिंह की मृत्यु की कौनसी तिथि सही है, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; परन्तु गैज़ेटियर आदि में दी हुई तारीख़ ही सही होनी चाहिये, क्योंकि वह तत्कालीन सरकारी काग़ज-पत्रों के आधार पर लिखे गये हैं।

(१) शाह नवलचन्द के नाम विलियम बोरविक का वि० सं० १८८९ ज्येष्ठ वदि ९ (ई० स० १८३२ ता० १९ मई) का ख़त।

(२) मेरा बीकानेर राज्य का इतिहास; भाग २, पृ० ४२०।

भंवर केसरीसिंह का देहावसान

ज्येष्ठ पौत्र केसरीसिंह का असमय २८ वर्ष की युवावस्था में निःसंतान देहांत हो गया। महारावत के शरीर पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। वृद्धावस्था में युवा पुत्र एवं पौत्र की मृत्यु के कठोर दुःख को सहन करना बड़ा कठिन था, फिर भी इन दैविक आपत्तियों को सहन कर उसने धैर्य न छोड़ा और वह राज्य-कार्य बराबर चलाता रहा।

शासन में अव्यवस्था होना

वृद्धावस्था, शारीरिक स्थिति की निर्बलता तथा दैविक विपत्तियों के कारण महारावत अपने पिछले समय में राज्य-कार्य में पूर्ण रूप से ध्यान न दे सका। इससे समय-समय पर कुछ अव्यवस्था भी उत्पन्न हुई और भील, मीणों, ठगों तथा अन्य जरायम-पेशः लोगों ने अपना धंधा जारी कर दिया, पर राज्य की आर्थिक स्थिति में इससे कुछ अन्तर नहीं हुआ और महारावत के उत्तम आचरण से अंग्रेज़ सरकार ने उसको हर प्रकार से सहायता देकर शासन-व्यवस्था में बाधा न पड़ने दी[1]।

महारावत का डूंगरपुर से दलपतसिंह को बुलाकर शासन-कार्य सौंपना

महारावत सामंतसिंह के छोटे पुत्र दलपतसिंह को डूंगरपुर के महारावल जसवंतसिंह-द्वारा दत्तक लेने की स्वीकृति अंग्रेज़ सरकार से प्राप्त होने पर वह वहां चला गया था; फिर भी पितृ-प्रेम से प्रेरित होकर वि० सं० १८८१ माघ वदि ५ (ई० स० १८२५ ता० ६ जनवरी) को महारावत ने उसको वार्षिक २४००० रुपये की आय का कलथाणा का पट्टा प्रदानकर वि० सं० १८८७ (ई० स० १८३०) से उसका खिराज एक हज़ार रुपये लेना स्थिर किया[2]। प्रारम्भ में दलपतसिंह और महारावल के बीच मेल रहा, परन्तु फिर महारावल के साथ उसकी नहीं निभी। वि० सं० १८८१ (ई० स० १८२४) में वहां भीलों का उपद्रव हो गया,

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५२८।

(२) महारावत सामन्तसिंह का भंवर दलपतसिंह के नाम का वि० सं० १८८१ माघ वदि ५ (ई० स० १८२५ ता० ६ जनवरी) का परवाना।

जिसको महारावल दबा नहीं सका, इसलिए महारावल से अंग्रेज़ सरकार ने शासन-कार्य अपने हाथ में ले लिया। फिर कुछ वर्षों बाद दलपतसिंह की योग्यता का अनुभव कर सब अधिकार उसको सौंप दिये गये। दलपतसिंह ने शासनाधिकार पाकर पट्टे परवानों पर पहले तो महारावल के नाम के साथ अपना नाम लिखना आरम्भ किया, फिर वह केवल अपना ही नाम लिखने लगा। इससे भी दोनों में द्वेष की वृद्धि हुई और यह वैमनस्य यहां तक बढ़ा कि महारावल डूंगरपुर छोड़कर गढ़ी ठिकाने में जा बैठा। ऐसे में प्रतापगढ़ राज्य के स्वत्वाधिकारी केसरीसिंह का, जो दलपतसिंह का ज्येष्ठ भ्राता था, देहांत हो गया। उस समय महारावत सामंतसिंह ने दलपतसिंह को प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी बनाने का विचार-कर उस(दलपतसिंह)को वहां बुलवा लिया और देवलिया में रहते हुए वह डूंगरपुर का शासन-कार्य भी करता रहा। फिर अंग्रेज़ सरकार ने भी महारावत की इच्छा स्वीकार कर दलपतसिंह को प्रतापगढ़ राज्य का भावी महारावत मान लिया।

महारावत का देहांत

वि० सं० १९०० पौष सुदि १५ (ई० स० १८४४ ता० ५ जनवरी) को महारावत सामन्तसिंह का ७० वर्ष राज्य करने के पश्चात् ७९ वर्ष की आयु में परलोकवास हो गया।

राणियां और संतति आदि

महारावत सामन्तसिंह के आठ विवाह हुए थे, जिनसे उसके पद्मसिंह, दीपसिंह और सरदारसिंह नामक तीन कुंवर और प्राणकुंवरी, अजबकुंवरी, चिमनकुंवरी, चंदनकुंवरी, तख्तकुंवरी एवं रत्नकुंवरी नामक छः पुत्रियां हुई[1]। महारावत का एक विवाह किशनगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह की पुत्री सरूपकुंवरी से हुआ था[2], जिसके उदर से एक कुंवर और प्राणकुंवरी नामक कुंवरी हुई। प्राणकुंवरी का विवाह ईडर के स्वामी गंभीरसिंह के ज्येष्ठ कुंवर उम्मेदसिंह

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ९-१०। प्रतापगढ़ राज्य की पुरानी ख्यात; पृ० १३-४।

(२) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १३१२।

से हुआ तथा उस (सामंतसिंह) की राठोड़ राणी मेड़तणी के उदर से चिमनकुंवरी नामक पुत्री हुई, जिसका विवाह लूणावाड़ा के सोलंकी महाराणा फ़तहसिंह से वि० सं० १८७८ (ई० स० १८२१) में हुआ[1]।

महारावत सामन्तसिंह के दीर्घ शासन-काल में देवलिया के राजमहलों में कई प्रकार का सुधार हुआ। इसी प्रकार प्रतापगढ़ में भी कई मकान और महल बने। उसकी माता कुंदनकुंवरी ने देवलिया में विष्णु आदि के पांच मंदिर बनवाकर बावड़ी बनवाई एवं उन मंदिरों तथा बावड़ी की प्रतिष्ठा के अवसर पर तुलादान भी किया। महारावत ने स्वयं देवलिया में रघुनाथ-द्वारा नामक मंदिर बनवाकर वि० सं० १८५९ (ई० स० १८०२) में बड़े समारोह के साथ उसकी प्रतिष्ठा की। प्रतापगढ़ राज्य के राजकीय देवालयों में आय की दृष्टि से रघुनाथ-द्वारा विशेष स्थान रखता है[2]। उसकी पुत्री चिमनकुंवरी ने देवलिया में चंद्रशेखर का शिव-मंदिर

महारावत के समय के बने हुए देवालय आदि

---

(१) लूणावाड़ा राज्य की ख्यात; पत्र ८०, पृ० १।

(२) देवलिया के रघुनाथ-द्वारे का वि० सं० १८५९ (ई० स० १८०२) में महारावत सामन्तसिंह ने बड़े समारोहपूर्वक प्रतिष्ठा-महोत्सव कर निम्बार्क सम्प्रदाय के साधु रामकृष्णदास को, जो बर्दवान (कलकत्ता) की तरफ़ से आया हुआ भगवद्भक्त था, महन्त बनाकर उक्त देवालय का सारा प्रबन्ध उसको सौंप दिया। फिर उसका शिष्य पोखरदास वहां का महन्त हुआ, जिसने देवलिया के राजप्रासाद के पीछे 'रघुनाथ सागर' नामक जलाशय बनवाया, जो सार्वजनिक दृष्टि से देवलिया के जलाशयों में बड़ा उपयोगी है। पोखरदास के पीछे क्रमशः केशवदास, उदयदास और मनोहरदास वहां के महन्त हुए। वर्तमान महन्त बालमुकुंददास वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में वहां की गद्दी का स्वामी हुआ, जो सरल-चित्त और संतोषी पुरुष है। इस देवालय को मुवांसा, कोखवी और दोतड़ गांव प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से भेंट में दिये गये हैं और सब मिलाकर यहां की आय पांच सहस्र रुपये वार्षिक मानी जाती है।

दशहरे के अवसर पर जब महारावत की सवारी रावण-वध के लिए देवलिया आती है, तब रघुनाथद्वारे से रामचन्द्र आदि की मूर्तियां भी धूम-धाम से सवारी में स्वयं महारावत साथ रहकर ले जाते हैं और फिर वहां रावण-वध की लीला का प्रदर्शन होता है।

बनवाया। उसकी राणी मेड़तणी दौलतकुंवरी ने देवलिया में युगलकिशोर का विष्णु मंदिर बनवाया।

महारावत के समय के शिलालेख और दानपत्र आदि

महारावत के समय के शिलालेख, दानपत्र आदि पर्याप्त संख्या में मिलते हैं, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उनमें से कुछ ही महत्वपूर्ण हैं, जिनका सारांश नीचे दिया जाता है—

(१) वि० सं० १८३८ माघ सुदि ५ (ई० स० १७८२ ता० १८ जनवरी) शुक्रवार की देवलिया के बड़े जैन मंदिर की प्रशस्ति, जिसमें हूंबड़ जाति और पाडलिया गोत्र के गोविंद आदि का आदिनाथ का प्रासाद बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है।

(२) वि० सं० १८५६ आषाढ वदि १३ (ई० स० १७९९ ता० १ जुलाई) का प्रतापगढ़ के बाज़ार का शिलालेख, जिसमें प्रतापगढ़ के निवासियों से बिना अपराध के दण्ड न लेने का उल्लेख है।

(३) वि० सं० १८५९ माघ सुदि १३ (ई० स० १८०३ ता० ४ फ़रवरी) का ब्राह्मण वेणीराम के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें रघुनाथद्वारे की प्रतिष्ठा के अवसर पर गांव अमलावद में १० बीघा ज़मीन पुण्य करने का उल्लेख है।

(४) वि० सं० १८७३ ज्येष्ठ सुदि ४ (ई० स० १८१६ ता० ३० मई) सोमवार का द्वारिका के लक्ष्मी, सत्यभामा और राधिका के मंदिरों के पुजारी बालकृष्ण, जयदेव और भंडारी जगन्नाथ के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें महारावत की द्वारिका की यात्रा के समय राणी चौहान पूरबणी का अपनी जागीर का चाचाखेड़ी गांव उक्त मंदिरों की भोग सामग्री के लिए भेंट करने और कुंवर दीपसिंह के कथन से उक्त ताम्रपत्र होने का उल्लेख है।

(५) वि० सं० १८७४ द्वितीय श्रावण सुदि १५ (ई० स० १८१७ ता० २६ अगस्त) भौमवार का ताम्रपत्र; जिसमें ज्येष्ठ वदि ३० को सूर्य पर्व के समय अपने राज्य में ब्राह्मणों पर, जो "टंकी" की लागत लगती थी, उसके छोड़ने का संकल्प अमलावद के पंडित तारा के नाम होने का उल्लेख है[1]।

(१) श्रीमन्महाराजाधिराज महारावतजी श्रीसामन्तसिंघजी बचनात्

इससे प्रकट है कि वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) में महारावत ने द्वारिका की यात्रा की थी और उक्त संवत् के ज्येष्ठ वदि ३० (ता० १६ मई) शुक्रवार को ब्राह्मणों को दी हुई ज़मीन आदि की आय पर टंकी नामक लागत, जो प्रति रुपया एक आना के हिसाब से लगती थी, शंखोद्धार तीर्थ पर छोड़ देने अर्थात् नहीं लेने का संकल्प किया। यह ताम्रपत्र महारावत के कुंवर दीपसिंह के आज्ञा देने पर मेहता वेचरलाल ने लिखा।

(६) वि० सं० १८८२ (प्रथम) श्रावण सुदि १५ (ई० स० १८२५ ता० २६ जुलाई) शुक्रवार का भचूंडला, पिपरोड़ा का खेड़ा और माताखेड़ी गांव का ताम्रपत्र; जिसमें उपर्युक्त तीनों गांव द्वारिका में सदाव्रत के लिए कृष्णार्पण करने का उल्लेख है।

(७) वि० सं० १८९२ आषाढ सुदि २ (ई० स० १८३५ ता० २६ जून) चन्द्रवार का सेमलखेड़ी गांव का ताम्रपत्र, जिसमें राणी मेड़तणी के बनवाये हुए मंदिर को गांव सेमलखेड़ी भेंट करने का उल्लेख है।

कांठलदेश ना समस्त ब्राह्मणां जोग्य अप्रंच श्रीद्वारिकानाथजी नी जात्रा कीदी जदी श्रीवेट शंखोद्धार में ज्येष्ठ विदि ३० अमावस्या रे दिन सूर्य पर्व मध्ये त्राम्बा पत्रिक सर्व ब्राह्मणा ने टंकी लागती हती ते गाम अमलावद नो पंडित तारा साथे हतो तेने हाते श्रीकृष्णार्पण करी दीधी आचन्द्रार्क यावत् उदक अघाट करी सारी लागट वलगट सहित निर्दोष करे दीधी तेनी हमारा वंसनो थई ने ब्राह्मणां थी चोलण करे नहीं चोलण करे जणी ने चित्तोड़ नो पाप छे। अत्र दान वाक्य भूमिं दत्वा भाविनो भूमिपालान् भूयो भूयो याचते रामचंद्रः। सामान्योऽयं दानधर्मो नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः॥ १ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् षष्टि वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। २ । हुकम श्री हजूर नो। दुवे महाराजकुंवरजी श्रीदीपसिंघजी लिखितं मेता वेचरलाल संवत् १८७४ रा वर्षे मास द्वितीय श्रावण सुदि १५ भौमवासरे।

मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से।

महारावत सामन्तसिंह वीर, उदार और बुद्धिमान राजा था। उसके समय में भी अन्य राज्यों की भांति मरहटों का उपद्रव रहा। कभी-कभी उसके अधीनस्थ राजपूत सरदार भी वहां पारस्परिक वैमनस्य के कारण सिर उठाकर बखेड़ा मचाते और भील, मीणे आदि भी अपना पेशा जारी कर देते थे, पर वह उनके बखेड़े को साम, दाम, दंड और भेद नीति का प्रयोग कर बढ़ने नहीं देता था। मरहटे सरदारों को भी वह कुछ दे-दिलाकर चुप करता था और वे भी उसकी सरलता के कारण उसका मान रखते थे। मरहटों के उपद्रव और भीतरी कलह से उसके समय देश ऊजड़ होकर आबादी कम हो गई, जिससे आय के साधन बन्द होकर समृद्धि घट गई, तो भी उसने अपनी स्वाभाविक उदारता में कमी न आने दी। राज्य-रक्षा के लिए पर्याप्त सैनिक शक्ति की आवश्यकता होती है, पर उस समय आर्थिक स्थिति ठीक न होने से महारावत अच्छी सेना नहीं रख सकता था तथापि जागीरदारी प्रथा का प्रचार रहने से उसके राज्य की रक्षा के योग्य वहां लड़ाकू राजपूत सेना का अभाव न था। महारावत की सहृदयता से उसके अधीनस्थ राजपूतों को उसपर पूरा विश्वास था और वे उक्त राज्य की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा देते थे। वह अपने सरदारों, राजकर्मचारियों, भृत्यों आदि को समय-समय पर जागीर, इनाम आदि देकर सम्मानित करता रहता था, जिससे राज्य-व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं होने पाया और न उसके राज्य की सीमा में कमी हुई, जब कि कई पुराने और प्रतिष्ठित राज्य नष्ट हो गये। ऐसे समय में उसकी दयालुता और उदारता ने ही उसकी कीर्ति को दूर-दूर तक फैलाया। तीर्थ-यात्रा का प्रेमी होने के कारण उसने द्वारिका की यात्रा के समय वहां अपनी राणी के द्वारा भोग सामग्री के लिए गांव भेंट कराया और वहां अपनी तरफ़ से नियमित रूप से पुण्य होते रहने के लिए सदाव्रत जारी रख तीन गांव दिये। उसके राज्य-काल में देवलिया के राज्य-महलों में सुधार हुआ और वहां कई देवालय भी बने। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उसने रघुनाथ द्वारे की प्रतिष्ठा के समय तुलादान भी

महारावत का व्यक्तित्व

किया। प्रजा से वह प्रेम रखता और उससे अन्यायोचित ढंग से द्रव्य लेना बुरा समझता था। इसलिए भविष्य में बिना किसी अपराध के दण्ड न लेने का पाषाण लेख खुदवाकर उसने प्रतापगढ़ में लगवाया। उसके समय में वि० सं० १८६० (ई० स० १८३३) में प्रतापगढ़ राज्य में अकाल पड़ा और दैवी प्रकोप से महामारी की व्याधि उत्पन्न होकर सहस्रों मनुष्य काल-कवलित हो गये। उस समय उसने प्रजा-पालकता का परिचय देकर वहां के निवासियों को धैर्य बंधाया। वह ईश्वर-भक्त, निरभिमानी और मितव्ययी होने के साथ ही शुद्ध हृदयवाला था। अपनी प्रजा, सामंतवर्ग तथा अन्य राज्यों के साथ उसका व्यवहार अच्छा रहा। दैवी विपत्तियों, मरहटों, सरदारों आदि के उपद्रवों के समय वह कभी विचलित नहीं होता और धैर्य-पूर्वक उनको निवारण करने की चेष्टा करता था। राज्य-वृद्धि की लालसा उसमें न थी। स्वात्माभिमान भी उसमें विद्यमान था, इससे उदयपुर के महाराणाओं के अधीन सामन्तभाव से रहकर उसने धरियावद के परगने का उपभोग करना अपमानजनक समझ, उसे त्याग दिया। उसके एकमात्र कुंवर दीपसिंह ने कई पुरुषों को मार डाला। इस बात को सुनते ही उस-(महारावत)ने अंग्रेज़ अफ़सरों की राय से उस(दीपसिंह)को अधिकार-च्युत् कर देवलिया में रहने की आज्ञा दी, परन्तु कुंवर ने अपना आचरण नहीं सुधारा एवं प्रतापगढ़ में जाकर फिर उपद्रव करने लगा। तब उसने पुत्र-मोह त्यागकर अंग्रेज़ी सेना-द्वारा उसको दबाकर बंदी करवा दिया, जो उसकी न्यायवृत्ति का द्योतक है। वह विनम्र, प्रसन्न-चित्त और मृदुभाषी होने के साथ ही शांति-प्रिय शासक था। अंग्रेज़ अफ़सर भी उसका पूरा सम्मान करते थे। उस(सामंतसिंह)का शरीर पतला, क़द लंबा, वर्ण गौर और मुंह गोल था।

छठा अध्याय

महारावत दलपतसिंह से वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी तक

दलपतसिंह

महारावत सामन्तसिंह ने अपने जीवनकाल में ही अपने पौत्र दलपतसिंह को, उसके डूंगरपुर गोद चले जाने पर भी, प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी बनाना स्थिर कर अंग्रेज़ सरकार की स्वीकृति ले ली थी। तदनुसार सामन्तसिंह का परलोकवास होने के पीछे वि० सं० १६०० पौष सुदि १५ (ई० स० १८४४ ता० ५ जनवरी) को वह प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हुआ। उसका जन्म वि० सं० १८६५ मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० १८०८ ता० २६ नवम्बर) शनिवार को हुआ था[1]।

राज्य-प्राप्ति

तदनन्तर भारत सरकार की तरफ़ से मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट कर्नल रॉबिन्सन महारावत की गद्दीनशीनी की ख़िलअत और गवर्नर जेनरल का खरीता लेकर देवलिया गया। वहां उसने एक दरबार में महारावत को गवर्नर जेनरल का खरीता देकर ख़िलअत में चांदी के हौदे-सहित हथिनी, चांदी के ज़ेवर-सहित घोड़ा, मोतियों की माला, सरपेच, मंदील, शाल जोड़ा, चुगा, शाली, रूमाल, परतले-सहित तलवार, दुनाली बंदूक, तमंचे की जोड़ी, गोशवारा आदि दिये[2]।

अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से गद्दीनशीनी की ख़िलअत आना

---

(१) देखो; ऊपर पृ० २६३।

(२) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६६।

दलपतसिंह के प्रतापगढ़ में रहने का अवसर पाकर डूंगरपुर का महारावल जसवन्तसिंह पुनः अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उद्योग कर रहा था। अब दलपतसिंह के प्रतापगढ़ का स्वामी होने पर डूंगरपुर से उस(दलपतसिंह) का स्वत्त्व उठाने का उसे पुख़्ता कारण मिल गया। कहा जाता है कि दलपतसिंह को डूंगरपुर के साथ-साथ प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी बनाने में जसवन्तसिंह भी रज़ामन्द था, परन्तु फिर उसको कुछ उपद्रवियों ने बहकाया, जो स्वार्थ-साधन में संलग्न थे, जिससे वह प्रत्यक्ष रूप से अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर दलपतसिंह का डूंगरपुर से अधिकार उठाने की चेष्टा करने लगा और डूंगरपुर के स्वत्त्वाधिकारी भी यह अवसर अपने अनुकूल समझ हक़दारी का दावा पेश करने लगे। महारावल ने परिणाम का कुछ विचार किये बिना ही नांदली के ठाकुर हिम्मतसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को गोद लेकर गुप्त रूप से गोदनशीनी का दस्तूर करना चाहा[1]। उस समय डूंगरपुर का राज्य-कार्य दलपतसिंह की ओर से सूरमा अभयसिंह और सोलंकी उदयसिंह चलाते थे। उन्होंने एक तरफ़ तो नांदली के ठाकुर के पुत्र को दत्तक लेने के लिए महारावल को सलाह दी और दूसरी तरफ़ महारावत को, महारावल की इस कार्यवाही का विवरण लिख भेजा और खेरवाड़ा जाकर कप्तान हंटर को—जो डूंगरपुर राज्य के राजनैतिक कार्य के लिए पोलिटिकल अफ़सर था—यह सारा हाल बतलाया। दलपतसिंह की डूंगरपुर में गोदनशीनी और डूंगरपुर के साथ-साथ प्रतापगढ़ का स्वामी बनाने की स्वीकृति अंग्रेज़ सरकार ने दे दी थी। अतएव मोहकमसिंह की गोदनशीनी में दलपतसिंह की अनुमति और अंग्रेज़ सरकार की स्वीकृति आवश्यक थी, परन्तु महारावल ने बिना स्वीकृति के यह कार्य किया। इसलिए कप्तान हंटर महारावल की कार्यवाही को रोकने के लिए मेवाड़ भील कोर के साथ डूंगरपुर पहुंचा और उसने वहां घेरा डाल दिया। इसके

महारावल जसवन्तसिंह का डूंगरपुर से वृन्दावन भेजा जाना

---

(१) मेरा डूंगरपुर राज्य का इतिहास; पृ० १५५।

साथ ही सूरमा अभयसिंह और सोलंकी उदयसिंह ने भी राज्य-महलों पर आक्रमण कर दिया, जिससे महारावल का सारा कार्यक्रम निष्फल हो गया और गोदनशीनी की कार्यवाही बंद हो गई। उस समय कर्नल रॉबिन्सन मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट था[1]। ज्योंही उसके पास यह समाचार पहुंचा, उसने महारावत दलपतसिंह को शीघ्र ही डूंगरपुर पहुंचने के लिए लिखा। तब वह (दलपतसिंह) भी अपनी सेना-सहित वहां गया। इस अवसर पर जसवन्तसिंह ने उदयपुर के महाराणा के पास अपना आदमी भेज सहायता चाही[2]। महाराणा ने प्रत्यक्षरूप से तो उसको कोई सहायता न दी और पोलिटिकल एजेंट कर्नल रॉबिन्सन से इस मामले में

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य का राजनैतिक सम्बन्ध प्रारम्भ में मालवा के एजेंट गवर्नर-जेनरल के साथ रखा गया। फिर राजपूताना के राज्यों के लिए पृथक् एजेंट गवर्नर-जेनरल का पद निर्धारित होने पर उसकी अधीनता में मेवाड़ में पोलिटिकल एजेंट रखा गया, जो नीमच में रहता था। इसी कारण मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल रॉबिन्सन को डूंगरपुर के मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा, क्योंकि डूंगरपुर राज्य का राजनैतिक सम्बन्ध भी मेवाड़ की एजेंसी के अन्तर्गत था। कर्नल रॉबिन्सन ई० स० १८३८ से ५० (वि० सं० १८९५ से १९०७) तक मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट रहा और ई० स० १८५० ता० १७ जून (वि० सं० १९०७ ज्येष्ठ सुदि ८) को उसकी मृत्यु हुई। बांसवाड़ा के महारावल लछमणसिंह और कुशलगढ़ के राव हमीरसिंह के बीच होनेवाले झगड़े में बांसवाड़ा की तरफ़ से ज़्यादती के अतिरिक्त जालसाज़ी भी प्रमाणित हुई। तब वहां मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट का असिस्टेन्ट रहना तय पाया गया, जिसके साथ पीछे से प्रतापगढ़ राज्य का सम्बन्ध भी रखा गया। तदनन्तर मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट के ओहदे में परिवर्तन होकर उसका नाम रेज़िडेन्ट मेवाड़ रखा गया। उस समय बांसवाड़ा में रहनेवाला सरकारी अफ़सर असिस्टेन्ट रेज़िडेन्ट मेवाड़ कहलाने लगा। इसके पीछे असिस्टेन्ट रेज़िडेन्ट मेवाड़ का पद टूटकर उसके स्थान में दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट के नवीन पद की सृष्टि हुई और डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ राज्य तथा कुशलगढ़ ठिकाने का राजनैतिक सम्बन्ध उससे रखा गया, जो इस समय तक जारी है।

(२) महारावल जसवन्तसिंह (दूसरा) का उदयपुर राज्य के भूतपूर्व मन्त्री मेहता रामसिंह के नाम का वि० सं० १९०० फाल्गुन वदि १४ (पूर्णिमांत चैत्र वदि १४ = ई० स० १८४४ ता० १७ मार्च) का पत्र।

लिखा-पढ़ी कर उसे यह सुझाया कि दलपतसिंह एक ही जगह का स्वामी रह सकता है, दोनों जगहों का नहीं। इसपर अंग्रेज़ अफ़सरों ने इस विषय को विचारणीय रक्खा; परन्तु जसवन्तसिंह का डूंगरपुर में रहना उपद्रव-जनक समझ उसका वृन्दावन में रहना स्थिर होकर वि० सं० १६०१ (ई० स० १८४५) में वह वृन्दावन भेज दिया गया और एक सहस्र रुपये प्रति मास उसके व्यय के लिए नियत हुए[1]। नांदली का ठाकुर हिम्मतसिंह, जो इस उपद्रव का मूल कारण बतलाया गया था, बंदी किया गया और महारावल को बहकानेवाले कुछ आदमी भी बंदी किये गये, जिससे उस समय उपद्रव शांत हो गया। फिर पूर्ववत दलपतसिंह ही, कई बाधाएं उपस्थित होने पर भी, डूंगरपुर का राज्य-कार्य चलाता रहा।

वि० सं० १६०२ पौष सुदि ६ (ई० स० १८४६ ता० ३ जनवरी) को महारावल जसवन्तसिंह का वृन्दावन में ही देहान्त हो गया;

महारावल जसवन्तसिंह का वृन्दावन में देहान्त होना और सावली के ठाकुर के पुत्र उदयसिंह का डूंगरपुर का स्वामी होना

महारावत दलपतसिंह प्रतापगढ़ में रहता हुआ डूंगरपुर राज्य को भी अपने अधिकार में रखना चाहता था। यह बात जसवन्तसिंह को अखरती थी, इसलिए उसने दलपतसिंह को डूंगरपुर के राज्य से वंचित रखने के लिए अंग्रेज़ अफ़सरों से प्रकट वा अप्रकट रूप से कई वार अनुरोध भी किया; परन्तु महारावत सामन्तसिंह की विद्यमानता के कारण उस समय इस विषय पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। सामन्तसिंह के देहावसान के पीछे दलपतसिंह के प्रतापगढ़ की गद्दी पर बैठने, डूंगरपुर में जसवन्तसिंह के नांदली के ठाकुर के पुत्र मोहकमसिंह को गोद लेने के बारे में उपद्रव होने और फिर जसवन्तसिंह का वृन्दावन में देहान्त हो जाने पर उसकी राणियों, सरदारों आदि-द्वारा वहां उत्तराधिकारी नियत करने के सम्बन्ध में प्रार्थनाएं होने पर अंग्रेज़ सरकार का इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह-द्वारा पोलिटिकल अफ़सरों के पास दलपतसिंह के डूंगरपुर

(१) एचिसन; ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४४१।

पर अधिकार रहने के सम्बन्ध में विरोध किया गया। इस प्रश्न पर अंग्रेज़ सरकार गंभीरतापूर्वक विचार करने लगी। महारावत दलपतसिंह के उस समय कोई कुंवर न था। इसलिए बहुत कुछ सोच-विचार के पीछे यह निश्चय किया गया कि महारावत दलपतसिंह डूंगरपुर के राजवंश में से किसी व्यक्ति को अपना दत्तक बना लेवे, जो डूंगरपुर का स्वामी रहे। अंग्रेज़ सरकार के इस निर्णय को डूंगरपुर की राजमहिषियों, सरदारों आदि ने भी स्वीकार किया। अन्त में डूंगरपुर के राजवंश में से साबली के ठाकुर जसवन्तसिंह के तृतीय पुत्र उदयसिंह को वहां की राजमहिषियों तथा सरदारों ने दलपतसिंह की गोद बिठाया और उस(उदयसिंह)को दलपतसिंह के पास भेजा, जिसको उस(दलपतसिंह)ने भी स्वीकार कर अंग्रेज़ सरकार के पास इस निर्णय की स्वीकृति के लिए आकांक्षा प्रकट की। अंग्रेज़ सरकार ने भी उदयसिंह की गोदनशीनी को स्वीकार किया और वि० सं० १९०३ (ई० स० १८४६) में वह (उदयसिंह) डूंगरपुर का स्वामी बनाया गया[1]; किन्तु उसकी बाल्यावस्था के कारण वहां का शासन दलपतसिंह की सम्मति के अनुसार होना स्थिर हुआ और उसकी विद्यमानता में अंग्रेज़ अधिकारी उस(उदयसिंह)को कुंवर ही लिखते रहे।

वि० सं० १९०५ आषाढ बदि १३ (ई० स० १८४८ ता० २९ जून) को महारावत दलपतसिंह के कुंवर उदयसिंह का जन्म हुआ। एक लंबी अवधि के बाद महारावत के यहां कुंवर का जन्म होने से बड़ा हर्ष मनाया गया और वहां की प्रजा भी प्रफुल्लित हो गई। महारावत ने अपने राज्य की स्थिति के अनुसार इस अवसर पर बहुत कुछ उदारता प्रकट की।

महाराजकुमार उदयसिंह का जन्म

डूंगरपुर राज्य का प्रबन्ध महारावत दलपतसिंह की आज्ञानुसार वि० सं० १९०९ (ई० स० १८५२) तक होता रहा, परन्तु वहां के सरदार

---

(१) मेरा डूंगरपुर राज्य का इतिहास; पृ० १५०।

डूंगरपुर का शासनाधिकार छूटना

सूरमा अभयसिंह और सोलंकी उदयसिंह, जब भी उनका स्वार्थ सिद्ध न होता, राज्य में कोई उपद्रव कर बैठते थे। इससे राज्य-प्रबन्ध में सुधार नहीं हो पाता था और राज्य ऋण-ग्रस्त हो गया। इस ओर पोलिटिकल अफ़सरों के ध्यान दिलाने पर महारावत दलपतसिंह ने सूरमा अभयसिंह और सोलंकी उदयसिंह को कामदार के पद से हटाकर ठाकरड़े के ठाकुर गुलाबसिंह और गुलाबचन्द गांधी को उस पद पर नियत किया। उन्हीं दिनों अंग्रेज़ सरकार ने भी वहां के शासन-प्रबन्ध को ठीक करने के लिए मुंशी सफ़दरअलीख़ां को डूंगरपुर भेजा, जिसके वहां पहुंचने पर सूरमा अभयसिंह आदि ने अपना स्वार्थ सिद्ध न होता देख पांच हज़ार भीलों को एकत्रित कर उपद्रव करना चाहा, जिसका खेरवाड़ा से कप्तान ब्रुक ने जाकर दमन किया और कर्नल रॉबिन्सन के लिखने पर उपद्रवियों को दण्ड देने के लिए महारावत दलपतसिंह ने भी प्रतापगढ़ से अपनी सेना भेज दी। कप्तान ब्रुक के साथ मेवाड़ भील-कोर के डूंगरपुर पहुंचने और उस समय प्रतापगढ़ से भी सेना आ जाने से अभयसिंह और उसके साथी भयभीत हो गये, जिससे वहां का उपद्रव शांत हो गया। अन्त में अभयसिंह और उदयसिंह प्रतापगढ़ जाकर महारावत के पास उपस्थित हुए और उन्होंने पच्चीस हज़ार रुपये महारावत को नज़राने के देकर अपने क़ुसूरों की माफ़ी चाही और भविष्य के लिए इमानदार बने रहने का इक़रार लिख दिया। उपर्युक्त कार्यवाही के पीछे भी वहां शासन-कार्य में गड़बड़ी होने लगी और लोग अव्यवस्था का सारा दोष महारावत दलपतसिंह के मत्थे मढ़कर उसकी शिकायत कराने लगे। तब कप्तान ब्रुक ने खेरवाड़ा से डूंगरपुर जाकर इस मामले की तहक़ीक़ात की और महारावत के डूंगरपुर के कार्यों में हस्तक्षेप से ही अव्यवस्था होना बतलाया। इसपर मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट जॉर्ज लारेंस डूंगरपुर गया। उस समय सूरमा अभयसिंह आदि ने कई सरदारों और प्रजा आदि को मिलाकर महारावत की शिकायत करवाई। जॉर्ज लारेंस ने महारावत को प्रतापगढ़ से डूंगरपुर

में बुलाया और वहां के प्रबन्ध के विषय में महारावत को नौ शर्तें लिखकर दीं, परन्तु महारावत ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। इसपर लॉरेंस ने दलपतसिंह-द्वारा डूंगरपुर के शासनकार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होने के लिए सदर में रिपोर्ट की, जिसकी स्वीकृति आने पर महारावत का डूंगरपुर से दखल उठा दिया गया।

भारत के गवर्नर जेनरल लॉर्ड डलहौज़ी की अनुदार नीति के कारण सारे भारत में असंतोष फैल गया था, ऐसे में बंगाल के सैनिकों में एक नई बंदूक़, जिसके कारतूस के सिरे को दांत से काटना पड़ता था, प्रचार किया गया। इस बन्दूक़ के संबंध में ई० स० १८५७ के जनवरी (वि० सं० १९१३ माघ) मास में यह अफ़वाह फैली कि इसके कारतूस पर गाय और सूअर की चर्बी लगी है। क्रमशः भारत के प्रत्येक स्थान में फैलती हुई जब यह बात धर्मभीरु भारतीय सैनिकों के कानों तक पहुंची, तब वे धर्मनाश की आशंका से विचलित होकर अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध हो गये। सर्वप्रथम कलकत्ते के पास दमदम की छावनी में सिपाही विद्रोह के लक्षण प्रकट हुए। फिर शनैः-शनैः बारकपुर, मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, बरेली, झांसी आदि स्थानों के सैनिक भी बिगड़ उठे और इस विद्रोह में अन्य कई व्यक्तियों ने भी, जिनका स्वार्थ सिद्ध न होता था, भाग लिया[1]।

सिपाही विद्रोह के समय अंग्रेज़ सरकार को प्रतापगढ़ राज्य से सहायता मिलना

ब्रिटिश भारत के इस सिपाही विद्रोह का प्रभाव राजपूताने की अंग्रेज़ी छावनियों पर भी बहुत कुछ पड़ा और वहां भी अधिकांश स्थानों में सिपाही विद्रोह हो गया। ता० २७ मई (वि० सं० १९१४ ज्येष्ठ सुदि ४) को मुहम्मदअली नामक सवार के बहकाने से नीमच की सेना भी बाग़ी हो गई और उसने छावनी जलाकर ख़ज़ाना लूट लिया। उस समय मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स आबू से उदयपुर गया हुआ था। ता० ६ जून (ज्येष्ठ सुदि १४) को यह समाचार पाते ही वह वहां से उदयपुर की

(१) मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ७६७।

सेना के साथ रवाना हुआ। मार्ग में उसने डूंगला गांव में बाग़ियों से घिरे हुए चालीस अंग्रेज़, जिनमें औरतें और बच्चे आदि भी शामिल थे, छुड़वाकर उदयपुर पहुंचाये। तदनंतर वह नीमच पहुंचा और वहां पुनः अधिकार कर छावनी का प्रबन्ध कप्तान लॉयड को सौंपकर स्वयं बाग़ियों के पीछे रवाना हुआ[1]। उस समय कप्तान लॉयड के पास छावनी की रक्षा के लिए सैनिकों की पूर्ण आवश्यकता थी, अतएव उसने महारावत दलपतसिंह से भी सेना भेजने की दर्ख्वास्त की। इसपर महारावत ने कप्तान लॉयड के पास अपने यहां से सेना भेज दी, जिसने नीमच की रक्षा का अच्छा प्रबंध किया। फिर वहां अंग्रेज़ी सेना पहुंच जाने पर कप्तान लॉयड ने महारावत की सेना को सीख दी। इस सेवा के सम्बन्ध में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स ने वि० सं० १९१४ श्रावण सुदि २ (ई० स० १८५७ ता० २३ जुलाई) को महारावत के नाम शुक्रगुज़ारी का ख़रीता भेजा, जिसका सारांश नीचे लिखे अनुसार है—

"........आपने नीमच के सुपरिन्टेन्डेन्ट कप्तान लॉयड की दर्ख्वास्त पर अंग्रेज़ सरकार की मित्रता का ध्यान रखते हुए नीमच की छावनी की रक्षार्थ सवार और पैदल भेजे। उन्होंने सरकार की इच्छा के अनुसार बड़े यत्न और होशियारी के साथ काम किया, जिसके लिये हम अनुगृहीत हैं। हम उनकी सेवा से बहुत प्रसन्न रहे। अब सरकारी सेना नीमच की छावनी में आ गई है, इसलिए वहां की सेना को कष्ट देना उचित न समझकर विदा करता हूं[2]।"........

उन्हीं दिनों फ़ीरोज़ नामक एक हाजी अपने को दिल्ली के मुग़ल वंश का शाहज़ादा बतलाकर मंदसोर के पास कचरोद गांव (खाचरोद, ग्वालियर राज्य) में पहुंचा और वहां के निवासियों को बहकाकर उसने उपद्रव खड़ा कर दिया, जिसपर मंदसोर के सूबेदार ने उसको वहां से भगा दिया।

---

(१) शॉवर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव इंडियन म्युटिनी; पृ० ८-३२।

(२) महारावत दलपतसिंह के नाम मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स का हिन्दी ख़रीता।

फिर उसने दो हज़ार आदमियों के साथ जाकर ता० ७ सितंबर (आश्विन वदि ४) को मंदसोर पर आक्रमण किया, जिसमें वहां का सूबेदार मारा गया और वहां उसका अधिकार हो गया। फिर निम्बाहेड़ा (वर्त्तमान टोंक राज्य का क़स्बा) का मुसलमान हाकिम नीमच ज़िले के जीरण गांव पर मंदसोर के बाग़ियों को चढ़ा लाया। जब यह ख़बर नीमच पहुंची, तब बाग़ियों का सामना करने के लिए ता० २३ अक्टोबर (कार्त्तिक सुदि ५) को कप्तान टॉकर, कप्तान सिम्पसन आदि ११ अफ़सरों, चारसौ सिपाहियों और दो तोपों के साथ जीरण पहुंचे, परंतु वहां अंग्रेज़ी सेना की हार हुई। फिर बाग़ी-दल जीरण लूटकर मंदसोर चला गया। ता० ८ नवम्बर (मार्गशीर्ष वदि ७) को उनका नीमच पर आक्रमण हुआ। वहां अंग्रेज़ी सेना से लड़ाई होने पर अंग्रेज़ सैनिक क़िले में चले गये। कप्तान शॉवर्स ने उदयपुर की सेना के साथ बाग़ियों का मुक़ाबला किया, किन्तु सायंकाल हो जाने से लड़ाई बंद हो गई और कप्तान शॉवर्स उदयपुर की सेना के साथ दारू गांव (वर्त्तमान ग्वालियर राज्य) में होता हुआ केसूंदा गांव (मेवाड़ राज्य) में चला गया। दूसरे दिवस बाग़ियों ने छावनी को लूटकर जला दिया। इसके उपरान्त जावद, रतनगढ़, सींगोली आदि नीमच के समीपवर्ती गांवों और क़स्बों में भी विद्रोह हो गया। ज्योंही यह समाचार कप्तान शॉवर्स को मिला, वह तत्काल लेफ़्टेनेंट फ़र्क्वहर्सन को लेकर वहां से चला और बगाणा तथा निकसनगंज में बाग़ियों के ठहरने की ख़बर पाकर वहां पहुंचा। फिर बाग़ियों से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें बहुत से विद्रोही मारे गये और शेष तितर-बितर हो गये। इस घटना के अनन्तर मालवे की ओर से मध्य भारत का एजेंट गवर्नर-जेनरल कर्नल ड्यूरेंड मह्व के सिपाहियों को साथ लेकर मंदसोर पहुंचा। वहां विद्रोहियों से उसका मुक़ाबला हुआ, जिसमें फ़ीरोज़ तो हारकर भाग गया, पर उसके बहुत से साथी और सिपाही पकड़े गये। मंदसोर से वह (ड्यूरेंड) नीमच गया। उसके पहुंचते ही वहां से भी बाग़ी भाग गये[1]। नवम्बर ई० स० १८५७ (मार्गशीर्ष वि० सं० १९१४) में

(१) सी० एल० शॉवर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव् इंडियन म्युटिनी; पृ० ११२-२०।

बाग़ियों का एक दल प्रतापगढ़ की ओर गया। उस समय महारावत स्वयं अपने राजपूतों को साथ लेकर उनके मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। बाग़ी दल का मुखिया क़ासिमख़ां विलायती अपने ८० आदमियों-सहित मारा गया। कर्नल ड्यरेंड की अधीन सेना को रसद-सामग्री भिजवाने आदि का भी महारावत ने यथेष्ट प्रबंध किया था और बाग़ी दल के मुखिया का मस्तक काटकर महारावत ने कर्नल ड्यूरेंड के पास भेजा। महारावत की इस सेवा से अंग्रेज़ अफ़सरों तथा कर्नल ड्यूरेंड को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने ता० १ दिसंबर (मार्गशीर्ष सुदि १५) मंगलवार को कप्तान शॉवर्स पोलिटिकल एजेंट, मेवाड़ के पास नीचे लिखी सूचना भेजी—

"...मैंने प्रतापगढ़ के स्वामी के मोतमिद को एक पत्र दिया है और आपको लिखता हूं कि मैं प्रतापगढ़ के राजा से बहुत प्रसन्न हूं, क्योंकि उन्होंने सेना के लिए रसद (सामान) अच्छी तरह से भिजवाई और अराजकों को सज़ा देने में पूर्ण प्रयत्न किया। वे उन (बाग़ियों) के सरदार को गिरफ़तार कर भेजते, किन्तु मुक़ाबला करने से उन्होंने उसको मारा और उस (मुखिया) का सिर मेरे पास आया है[1]।..."

पोलिटिकल-एजेंट मेवाड़-द्वारा यह सम्वाद कर्नल-जॉर्ज लॉरेंस (स्थानापन्न एजेंट गवर्नर-जेनरल, राजपूताना) को मिलने पर उसने ई० स० १८५८ ता० ५ फ़रवरी (वि० सं० १९१४ फाल्गुन वदि ७) को महारावत के नाम नीचे लिखे आशय का ख़रीता भेज प्रसन्नता प्रकट की—

"...इन दिनों मुझको मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट के पत्र से मालुम हुआ है कि आपने सरकारी आदमियों को सहायता देने में बहुत प्रयत्न किया है और कर्नल ड्यूरेंड एजेंट गवर्नर जेनरल, सेंट्रल इंडिया के साथ रहनेवाली सेना को आवश्यक रसद सामग्री पहुंचाने में पूरी सहायता दी है। यह ख़बर सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और जैसी ख़ैरख़्वाही की सरकार को आपसे आशा थी, वैसी प्रकट हुई। अब मैं आपको

(१) मध्यभारत के एजेंट गवर्नर जेनरल कर्नल डयूरेंड के पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ के नाम के अंग्रेज़ी ख़त का आशय।

इस ख़ैरख़्वाही की सूचना सदर को कर रहा हूं। साहेब आलीशान आपकी इस मित्रता से बहुत प्रसन्न होंगे[1]।"

क़ासिमख़ां विलायती आदि बाग़ी दल के लोगों के महारावत-द्वारा मारे जाने की रिपोर्ट मालवा तथा सेंट्रल इंडिया के एजेंट गवर्नर-जेनरल-द्वारा भारत के तत्कालीन गवर्नर जेनरल (बड़े लाट) लॉर्ड कैनिङ्ग के पास पेश होने पर उसको बड़ा संतोष हुआ और उसने राजपूताना के एजेंट गवर्नर जेनरल को महारावत के नाम प्रसन्नता-सूचक पत्र भेजने को लिखा। इसपर राजपूताना के एजेंट गवर्नर-जेनरल कर्नल जॉर्ज लारेंस ने वि० सं० १९१५ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १८५८ ता० २० मार्च) को महारावत के नाम निम्नलिखित आशय का खरीता भेजा—

"....इन दिनों एजेंट गवर्नर-जेनरल, सेंट्रल इंडिया तथा पोलिटिकल एजेंट, मेवाड़ की तरफ़ से यह रिपोर्ट हुई है कि आपने स्वयं और सेना को साथ में रखकर कर्नल ड्यूरेंड एवं सरकारी सेना को मंदसोर के फ़सादियों को सज़ा देने में यथेष्ट सहायता दी है। आपकी इस ख़ैरख़्वाही और उत्तम मित्रता से नव्वाब गवर्नर जेनरल अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा मुझको यह आज्ञा मिली है कि उनकी ओर से खुशनूदी मिज़ाज की सूचना दूं और इस ख़त के ज़रिये आपकी सहानुभूति का धन्यवाद करूं[2]।..."

झांसी, सतारा आदि राज्यों के उत्तराधिकारी के अभाव में लॉर्ड डलहौज़ी-द्वारा ज़ब्त हो जाने के कारण कई मरहटे सरदार भी अंग्रेज़ सरकार से असंतुष्ट थे और भारत में पुनः मरहटा साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे। इस अवसर से लाभ उठाने के लिए कुछ मरहटे सरदारों ने भी विद्रोह पर कमर बांधी और पेशवा के वंशज राव साहब

(१) जॉर्ज लारेंस, एजेंट गवर्नर जेनरल, राजपूताना का महारावत दलपतसिंह के नाम का खरीता।

(२) राजपूताने के एजेंट गवर्नर कर्नल जॉर्ज लारेंस के उर्दू खरीते का आशय।

तथा उसके सहायक तांतिया टोपी ने विद्रोहियों का नेतृत्व कर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। ई० स० १८५८ के जुलाई (वि० सं० १६१५ आषाढ) मास में सर ह्यूरोज़ ने उनको वहां से निकाल दिया। तब वे पांच हज़ार बाग़ियों के साथ मेवाड़ के पूर्वी भाग में जालिंधरी के घाटे के मार्ग से मांडलगढ़, रतनगढ़ तथा सींगोली होते हुए रामपुरे की ओर रवाना हुए; किंतु ब्रिगेडियर पार्क तथा मेजर टेलर ने उस ओर का रास्ता रोक लिया. तब वे बरसल्यावास होते हुए भीलवाड़ा पहुंचे। ता० ६ अगस्त (श्रावण वदि ३०) को सांगानेर के पास कोटेश्वरी नदी के किनारे जेनरल रॉबर्ट्स की सरकारी सेना से उनका मुक़ाबला हुआ, जिसमें वे हारकर भागे और मेवाड़ के पश्चिम की तरफ़ चल दिये। अंग्रेज़ी सेना ने उनका पीछा किया और नाथद्वारा के पास कोठारिया के समीप ता० १४ अगस्त (श्रावण सुदि ६) को बाग़ियों का सरकारी सेना से मुक़ाबला हुआ, जिसमें वे हारकर वहां से भी भागे। अनन्तर आकोला के मार्ग से चित्तोड़ से दक्षिण की तरफ़ होकर जाट और सींगोली को लूटते हुए वे झालावाड़ पहुंचे। वहां भी ब्रिगेडियर पार्क ने उनका पीछा न छोड़ा। तब वे छोटा उदयपुर पहुंचे, जहां उक्त ब्रिगेडियर ने उनको परास्त किया। राव-साहब, देवगढ़ बारिया से पृथक् हो गया था, परंतु तांतिया टोपी कुशलगढ़ के रास्ते से बांसवाड़ा पहुंचा। इधर से कप्तान लियरमाउथ फ़ौज समेत वहां जा पहुंचा, जिससे तांतिया टोपी वहां से भागकर सलूंबर होता हुआ, भींडर की तरफ़ बढ़ा। उसका इरादा उदयपुर जाने का था, किंतु उधर का मार्ग रुका हुआ होने तथा सरकारी सेना-द्वारा नाकेबंदी हो जाने से वह पहाड़ी मार्ग-द्वारा प्रतापगढ़ की तरफ़ बढ़ा। उस समय तीन-चार हज़ार भील भी तांतिया के शामिल हो गये थे। प्रतापगढ़ के महारावत-द्वारा बाग़ी-दल के मुखिया क़ासिमअली आदि के मारे जाने से तांतिया टोपी प्रतापगढ़ के क़स्बे को, जो संपन्न था, लूटना चाहता था; परंतु ठीक समय पर सरकारी सेना के साथ मेजर रॉक वहां पहुंच गया, जिससे बाग़ी दल प्रतापगढ़ को न लूट सका और वहां से वह पौष वदि ३ (ई० स० १८५८ ता० २३ दिसंबर)

को शिकस्त खाकर भागा[1]। इस लड़ाई में बाग़ियों के बहुत से आदमी पकड़े तथा मारे गये और उनके हाथी, घोड़े आदि छीन लिये गये। तांतिया टोपी मंदसोर होता हुआ जीरापुर पहुंचा। वहां कर्नल बेंसन से उसकी पराजय हुई; किंतु इसी अवसर पर दो हज़ार आदमियों के साथ बाग़ी फ़ीरोज़शाह उससे जा मिला, जिससे वह माघ सुदि १५ (ई० स० १८५९ ता० १७ फ़रवरी) को फिर मेवाड़ होता हुआ कांकरोली चला गया; पर ब्रिगेडियर सॉमरसेट तथा कप्तान शॉवर्स के पहुंच जाने से उसके वहां पैर न टिके और पहाड़ों में होता हुआ वह पुनः बांसवाड़े के क़रीब जा पहुंचा। ब्रिगेडियर सॉमरसेट उसका पीछा करता हुआ वहां भी गया और उसने बाग़ियों को रास्ते में ही जा दबाया। बाग़ियों के कई सरदार फ़ीरोज़शाह, अब्दुल्शतरख़ां, पीर हज़ूरअली आदि ने आत्मसमर्पण किया। तांतिया टोपी पेरोन के जंगल में जा छिपा। ता० ७ अप्रेल (वि० सं० १९१६ चैत्र वदि ४) को वहां पकड़ा जाकर वह सिप्री लाया गया, जहां उसे फांसी दी गई[2]।

उपर्युक्त सिपाही-विद्रोह का प्रभाव भारत में लगभग दो वर्ष के ऊपर बना रहा। अंग्रेज़ अधिकारियों की कार्यतत्परता और स्फूर्ति तथा भारत के नरेशों के सहयोग से उसका दमन शीघ्र हो गया। ग़दर के अंतिम दिनों में भारत का शासन-सूत्र ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से स्वर्गीय महाराणी विक्टोरिया ने अपने हाथ में लेकर भारत के तत्कालीन गवर्नर जेनरल को शासन-कार्य के लिए अपना वाइसरॉय (प्रतिनिधि) बनाया। भारतीय नरेशों और प्रजा वर्ग में संतोष की वृद्धि के लिए महाराणी की ओर से ई० स० १८५८ ता० १ नवम्बर (वि० सं० १९१५ कार्तिक वदि ११) को शाही घोषणापत्र जारी किया गया, जिसमें भारतीय नरेशों की मान मर्यादा बनी रहने, उनके स्वत्वों एवं धार्मिक मामलों में किसी प्रकार का

(१) सी० एल० शॉवर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव् इंडियन म्युटिनी; पृ० १४०-१। ज्वालासहाय; दि लॉयल राजपूताना; पृ० २५२-३।

(२) सी० एल० शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव् इंडियन म्युटिनी; पृ० १४३-४६। ज्वालासहाय; दि लॉयल राजपूताना; पृ० २५२-३।

हस्तक्षेप न होने तथा ईस्ट इंडिया कंपनी-द्वारा की गई संधियां बहाल रहने, प्रजा के स्वत्व, इज़्ज़त, ओहदे तथा धर्म को अपने धर्म के समान ही मानने आदि का उल्लेख है[1]।

महारावत दलपतसिंह-द्वारा सिपाही विद्रोह के समय पूर्ण सहायता दी गई थी, जिसकी सरकारी अफ़सरों ने भी पूर्ण सराहना की। फिर ग़दर समाप्त हो जाने पर अंग्रेज़ सरकार ने उसके लिए दो हज़ार रुपये के मूल्य की खिलअत भेजना तजवीज़ किया और वॉइसरॉय लॉर्ड केनिङ्ग तथा एजेंट गवर्नर जेनरल के महारावत के नाम के खरीते भी मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर-द्वारा भेजे गये[2] तथा उपर्युक्त खिलअत भी उसको यथा-समय प्राप्त हुई।

सिपाही विद्रोह के समय महारावत की आज्ञानुसार उसके मन्त्री निहालचंद खासगीवाले, शाह भोजराज और जोधकरण पाडलिया ने अच्छी सेवा बजाई और उन्होंने प्रतापगढ़ क़स्बे की रक्षा का, जो मंदसोर के निकट है, अच्छा प्रबन्ध रखा एवं प्रतापगढ़ के इलाक़े में बागियों-द्वारा कोई हानि न पहुंचने दी, जिसकी महारावत को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उन लोगों की क़द्र की।

गोदनशीनी की सनद मिलना

अपुत्रावस्था में राज्य ज़ब्त करने की लॉर्ड डलहौज़ी की नीति को विग्रहकारी समझ ग़दर समाप्त होने के पीछे अंग्रेज़ सरकार ने भारत के देशी राजाओं का दत्तक पुत्र रखने का अधिकार वाजिब समझा। तदनुसार महाराणी विक्टोरिया की आज्ञानुसार समस्त देशी राज्यों के पास लॉर्ड केनिङ्ग के हस्ताक्षर-सहित सनदें भेजी गईं। तदनुसार अंग्रेज़ सरकार की ओर से प्रतापगढ़ राज्य में भी ई० स० १८६२ ता० ११ मार्च (वि० सं० १६१८ फाल्गुन सुदि १०)

(१) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० ११८०-८८। मेरा उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० २, पृ० ७८६।

(२) मेजर टेलर, पोलिटिकल एजेंट, मेवाड़ का महारावत दलपतसिंह के नाम का वि० सं० १६१७ आषाढ वदि १ ई० स० १८६० (ता० ४ जून) का पत्र।

की लिखित वाइसरॉय लॉर्ड कैनिङ्ग के हस्ताक्षर-सहित यह सनद पहुंची, जो नीचे लिखे अनुसार है—

"श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की यह इच्छा है कि भारत के राजाओं तथा सरदारों का अपने-अपने राज्यों पर अधिकार तथा उनके वंश की जो प्रतिष्ठा एवं मान-मर्यादा है, वह हमेशा बनी रहे; इसलिए उक्त इच्छा की पूर्ति के लिए मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वास्तविक उत्तराधिकारी के अभाव में यदि आप या आपके राज्य के भावी शासक हिंदू धर्मशास्त्र और अपनी वंश-प्रथा के अनुसार दत्तक लेंगे तो वह जायज़ समझा जायगा।

"आप यह निश्चय जानें कि जब तक आपका घराना सरकार का खैरख्वाह रहेगा और उन अहदनामों, सनदों तथा इक़रारनामों का पालन करता रहेगा, जिनमें अंग्रेज़ सरकार के प्रति उसके कर्त्तव्य दर्ज हैं, तब तक आपके साथ के इस इक़रार में कोई बात बाधक न होगी"[1]।

महारावत का परलोकवास और राणियां आदि

महारावत दलपतसिंह का वि० सं० १९२० चैत्र वदि ७ (ई० स० १८६४ ता० ३० मार्च) को परलोकवास हुआ। उसके चार राणियां थीं जिनके नाम प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात में नामली (रतलाम राज्य) के सोनिगरा ठाकुर फ़तहसिंह की कुंवरी दौलतकुंवरी, कुशलगढ़ (बांसवाड़ा राज्य) के राठोड़ राव ज़ालिमसिंह की पुत्री मोतीकुंवरी एवं उसी ज़ालिमसिंह की पौत्री और हम्मीरसिंह की पुत्री केसरकुंवरी तथा बांसणा (गुजरात) ठिकाने के केरणया गांव के राठोड़ ठाकुर दौलतसिंह की पुत्री कल्याणकुंवरी दिये हैं[2]। उसके केवल एक ही पुत्र महाराजकुमार

---

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनदज़; जि० ३, पृ० ४४२ तथा पृ० ३४।

(२) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ११। प्रतापगढ़ राज्य से प्राप्त एक ख्यात में उक्त महारावत के चार ही राणियां लिखी हैं; परन्तु उनके नामों में अन्तर है। वहां उसकी दूसरी राणी कुशलगढ़वाली का नाम केसरकुंवरी और उसका राज

उदयसिंह था, जिसका जन्म कुशलगढ़वाली राणी के उदर से हुआ था[1]।

महारावत दलपतसिंह, प्रतापगढ़ राज्य में नीतिकुशल राजा हुआ है। उसमें राज्य प्रबंध की अच्छी योग्यता थी, अतएव उसने डूंगरपुर और प्रतापगढ़ राज्य का प्रबंध कुशलतापूर्वक किया। वह मित्रता का निवाहनेवाला राजा था। सिपाही-विद्रोह में स्वयं उसने अपनी सेना के साथ भाग लिया था। वह गुणवानों का सम्मान कर उन्हें पुरस्कृत करता और अपने कार्यकर्ता मंत्रियों आदि को पुरस्कार, जागीर आदि देकर सदा उत्साहित करता था। उसकी अपनी प्रजा के साथ गहरी सहानुभूति थी। उसके समय में राज्य-कोष परिपूर्ण था। प्रतापगढ़ राज्य में जो वैभव है, उसका अधिकांश श्रेय उसी को है। उसने देवलिया में सोनेलाव तालाव वनवाकर दलपत-निवास नामक महल वनवाया था। उसकी प्रतिष्ठा के अवसर पर उसने बारहट चारण लछमणदान को दो गांव और हाथी तथा महाराजकुमार उदयसिंह के जन्म के अवसर पर पांच हाथी, दो सौ घोड़े और पांचसौ सिरोपाव दिये थे एवं उसी अवसर पर उसने लाख पसाव में उपर्युक्त लछमणदान को एक गांव, हाथी, घोड़ा, वस्त्राभूषण और दस सहस्र रुपये देकर उसको अपना कविराज बनाया था। सरदारों आदि के साथ उसका व्यवहार सदा अच्छा रहा। उसके मन्त्री शाह जड़ावचन्द, शाह निहालचंद (खासगीवाला), जोधकरण पाडलिया आदि कार्यनिपुण व्यक्ति थे, जिससे उक्त महारावत के समय प्रजा की आवादी वढ़ी और राज्यश्री में भी वृद्धि हुई। नांदली के ठाकुर हिम्मतसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को डूंगरपुर के

महारावत का व्यक्तित्व

हंमीरसिंह की पुत्री होना दिया है तथा उसी के उदर से कुंवर उदयसिंह का जन्म होना बतलाया है। इसी प्रकार तीसरी राणी कडाया के पंवार बख्तावरसिंह की पुत्री भवानकुंवरी और चतुर्थ राणी भी कुशलगढ के राव हंमीरसिंह की पुत्री लालकुंवरी लिखी है। इन दोनों राणियों का तो बड़वे की ख्यात में कुछ भी उल्लेख नहीं है। एक स्थान पर उसके छः राणियें भी लिखी हैं और दो विवाह डूंगरपुर में रहते हुए होने का उल्लेख है।

(१) प्रतापगढ़ राज्य की एक प्राचीन ख्यात; पृ० १९।

महारावल जसवन्तसिंह (दूसरा) के दत्तक रखने के सम्बन्ध में वहां बखेड़ा होकर हिम्मतसिंह क़ैद किया गया। उसके प्रति भी महारावत ने अपने शासन-काल में सौजन्य दिखलाकर उसको मुक्तकर उसकी जागीर पीछी उसे दे दी, जो उसकी उदार नीति का परिचय देती है। उसकी एक राणी लालकुंवरी ने वृन्दावन में राधावल्लभ का मन्दिर बनवाया था।

उदयसिंह

जन्म, गद्दीनशीनी और पुत्र-जन्म

महारावत उदयसिंह का जन्म वि० सं० १६०५ आषाढ वदि १३ (ई० स० १८४८ ता० २६ जून) को हुआ था और वह वि० सं० १६२० चैत्र वदि ७ (ई० स० १८६४ ता० ३० मार्च) को अपने पिता के पीछे प्रतापगढ़ राज्य का स्वामी हुआ। उस (उदयसिंह) का प्रथम विवाह भूतपूर्व महारावत दलपतसिंह की विद्यमानता में नामली (रतलाम राज्य) के ठाकुर तख़्तसिंह की पुत्री सरूपकुंवरी से हुआ था, जिसके उदर से कुछ समय बाद ही वि० सं० १६२२ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १८६५ ता० २६ मई) सोमवार को उसके महाराजकुमार हम्मीरसिंह का जन्म हुआ, परंतु पांच वर्ष का होकर उक्त राजकुमार वि० सं० १६२६ (ई० स० १८६६) में काल-कवलित हो गया।

शासन-कार्य चलाने के संबंध में महारावत के नाम पोलिटिकल एजेंट का खरीता जाना

राज्यारोहण के समय महारावत की आयु केवल सोलह वर्ष की थी, इसलिए मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल ईडन ने राजपूताना के एजेंट गवर्नर जेनरल की स्वीकृति से भूतपूर्व महारावत दलपतसिंह की इच्छा के अनुसार शाह जोधकरण पाडलिया और पंडित आपा की सलाह से शासन-कार्य चलाने के लिए महारावत के नाम खरीता भेजा और उन दोनों को भी वि० सं० १६२१ आषाढ सुदि ४ (ई० स० १८६४ ता० ६ जुलाई) को पत्र भेज इसकी सूचना दी[1]।

(१) कर्नल ईडन का शाह जोधकरण और पंडित आपा के नाम का वि० सं० १६२१ आषाढ सुदि ४ (ई० स० १८६४ ता० ६ जुलाई) का पत्र।

इसके थोड़े समय बाद ही वि० सं० १६२२ पौष वदि १४ (ई० स० १८६५ ता० १७ दिसंबर) को राजपूताना के एजेंट गवर्नर जेनरल कर्नल ईडन ने मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल निक्सन के साथ प्रतापगढ़ जाकर अंग्रेज़ सरकार की ओर से महारावत को गद्दीनशीनी की खिलअत दी और उसी अवसर पर सरकारी तौर से राज्याधिकार सौंपने की रसम भी अदा की गई[1]।

एजेंट गवर्नर-जेनरल का गद्दीनशीनी की खिलअत लेकर जाना

महारावत ने राज्यासीन होते ही शासन-कार्य लगन के साथ करना आरंभ किया। सर्वप्रथम उसने भील, मीणों आदि का दमन करने का निश्चय किया, जो लूट-खसोट कर जनता को कष्ट पहुंचाते थे[2]। महारावत जहां कहीं अपने राज्य में लूट-खसोट का समाचार सुनता, तत्काल घोड़े पर सवार होकर अपने राजपूत सवारों से पहले वहां जा पहुंचता[3] और उनसे मुक़ाबला कर उनको ऐसा दंड देता कि वे फिर कभी ऐसा कार्य करने का साहस न करते। उसकी इस तत्परता को देख प्रतापगढ़ राज्य के भील, मीणे आदि उसके नाम से कांपने लगे और अधिकांश ने लूट-खसोट करना बन्द कर दिया, जिससे राज्य में चारों तरफ़ शांति स्थापित हो गई और राज्य की आबादी तथा आय बढ़ने लगी।

भील और मीणों को दंड देना

व्यापार एवं गमनागमन की कठिनाइयों को मिटाने के लिए अंग्रेज़ सरकार ने मालवा की ओर रेल्वे लाइन निकालने का विचार किया और उस समय प्रतापगढ़ राज्य की कोई भूमि यदि रेल्वे के लिए आवश्यक हो तो देने के लिए महारावत से प्रस्ताव किया। इसपर वि० सं० १६२२ (ई० स० १८६५) में महारावत ने कुछ शर्तों के

रेल्वे निकालने के संबंध में अंग्रेज़ सरकार की महारावत से बातचीत

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५५६।

(२) वही; जि० १, पृ० ५६०।

(३) वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०६६-७।

साथ अपने राज्य की भूमि विना मूल्य रेल्वे लाइन निकालने के लिए अंग्रेज़ सरकार को देना स्वीकार किया; परंतु फिर प्रतापगढ़ राज्य में होकर अंग्रेज सरकार ने रेल्वे लाइन निकालने का विचार स्थगित कर दिया, इसलिए अंतिम लिखा-पढ़ी नहीं हुई[1]।

इसके दूसरे वर्ष वि० सं० १६२३ (नवंबर ई० स० १८६६) में भारत के तत्कालीन वाइसरॉय और गवर्नर-जेनरल, लॉर्ड लारेंस का आगरे में आगमन हुआ। उस अवसर पर महारावत उदयसिंह भी उक्त वाइसरॉय से मुलाक़ात करने के लिए आगरे गया[2], जहां वाइसरॉय ने महारावत से मिलकर प्रसन्नता प्रकट की। इस सफ़र से उस (महारावत) को अंग्रेज़ी अमलदारी में होनेवाली उन्नति का हाल ज्ञात हुआ। आगरा से लौटने के बाद युवक महारावत ने भी अपने राज्य में लाभदायक काम करने चाहे; परंतु कई बाधाएं उपस्थित हो गईं, जिससे उसके विचार कार्यरूप में परिणत न हो सके।

महारावत का वाइसरॉय लॉर्ड लॉरेंस से मुलाकात करने आगरे जाना

देवलिया का जल-वायु अस्वास्थ्यकर होने से महारावत ने प्रतापगढ़ क़सबे की, जो स्वास्थ्य-प्रद है, उन्नति करने का विचार कर आबादी से एक मील दूर पूर्व की तरफ़ खुले मैदान में वि० सं० १६२४ (ई० स० १८६७) में अंग्रेज़ी तर्ज़ का बंगला बनवाकर वहां रहना आरंभ किया, जिससे देवलिया की आबादी घटने लगी और वि० सं० १६३२ (ई० स० १८७५) में वहां के कई महल खाली हो गये। फलस्वरूप उसके समय से ही प्रतापगढ़ इस राज्य की राजधानी हुई और भूतपूर्व महारावत रघुनाथसिंह, महाराजकुमार मानसिंह और वर्तमान महाराजकुमार सर रामसिंहजी ने वहां कई इमारतें बनवाकर उसकी बहुत कुछ उन्नति की है।

प्रतापगढ मे राजधानी स्थिर होना

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४४३ (पांचवां संस्करण)।

(२) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० ३, पृ० ५५१।

अंग्रेज सरकार की तरफ़ से प्रतापगढ राज्य के स्वामी की सलामी की तोपें नियत होना

उस समय तक प्रतापगढ़ राज्य की अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से सलामी की तोपों की संख्या नियत न थी। वि० सं० १९२४ (ई० स० १८६७) में अंग्रेज़ सरकार ने इस राज्य की सलामी की पन्द्रह तोपें स्थायी रूप से नियत कीं[1]।

वि० सं० १९२५ के अकाल में महारावत की उदारता

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) में राजपूताना में भयङ्कर अकाल पड़ा, जिससे प्रतापगढ़ राज्य भी बचा न रहा। थोड़ी वर्षा होने के कारण वहां उस साल नाज तथा घास कम पैदा हुई और फिर मारवाड़ आदि अन्य स्थानों से हज़ारों मनुष्य भूख-प्यास से व्याकुल हो अपने पशुधन को लेकर मालवा में चले गये। प्रतापगढ़ राज्य मालवा के निकट होने से यहां भी अकाल-पीड़ित व्यक्तियों के झुंड के झुंड जाने लगे। उस अवसर पर महारावत ने अपने राज्य की प्रजा और पशुओं की रक्षा करने के अतिरिक्त बाहर से आये हुए मनुष्यों एवं पशुओं की रक्षा करना भी अपना कर्त्तव्य समझा। इस कार्य के लिए बाहर से ग़ल्ला मंगवाकर सस्ते भाव से बेचने की व्यवस्था की गई; ग़रीबों के लिए ख़ैरातखाने खोले गये, कई स्थानों पर सहायक कार्य जारी कर जागीरदारों को भी अकाल-पीड़ित व्यक्तियों को काम में लगाने के लिए आज्ञाएं जारी की गईं, बाहर से आनेवाले ग़ल्ले आदि सामान पर सायर का महसूल माफ़ किया गया तथा ता० १३ दिसंबर ई० स० १८६८ (वि० सं० १९२५ पौष वदि ३०) को इस सम्बन्ध में नीचे लिखा इश्तिहार जारी किया गया—

"वर्षा न होने से मारवाड़ तथा अन्य स्थानों में घास और नाज उत्पन्न नहीं हुआ है। इस वास्ते वहां के लोग पशुओं को बड़ी संख्या में लेकर मालवा में आये हैं। वहां अनाज तथा घास-पानी का अभाव होना स्पष्ट है। ईश्वर उनकी रक्षा करे। अकाल वर्ष के आरंभ से ही है और आगामी वर्ष की फ़सल शुरू होने तक रहेगा। अतएव आवश्यकता है कि

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४४३।

इस मुल्क के लिए प्रचुर अनाज मंगवाने का प्रयत्न किया जावे। यह आज्ञा दी जाती है कि तमाम जागीरदार, अहलकार, पटेल, पटवारी आदि निम्नलिखित बातों की तामील करें तथा जब तक ज़माना ठीक न हो, यहां के निवासियों और बाहर के मनुष्यों को कष्ट न पहुंचावें—

(१) श्रावण सुदि १५ तक अनाज की निकासी तथा रवानगी पर महसूल माफ़ किया जाता है।

(२) जो परदेशी परिश्रम कर सकते हों वे इमारती कार्य में लगाये जावें, जैसे कुएं खुदवाना, तालाब बनवाना आदि ताकि मुसिबत के समय वे अपना निर्वाह कर सकें।

(३) प्रतापगढ़ में राज्य का एक और साहुकारों के कई सदाव्रत हैं। उनके कार्य-कर्ताओं को सूचित किया जाता है कि मारवाड़ी तथा अन्य लोग जो खैरात मांगें, उनको पूरे तौर से अर्थात् प्रत्येक आदमी को सेर भर आटे से कम न दें।

(४) अनाज को राज्य में लाकर एकत्रित करने की रोक नहीं है, तथापि इश्तिहार जारी किया जाता है कि अनाज के व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध न होगा। इस मुल्क के समस्त व्यापारी अनाज अपने तौर पर खरीद कर बेचें। यही नहीं, उनको राज्य से सहायता भी दी जायगी। यदि कोई परदेशी सौदागर प्रतापगढ़ इलाक़े में ग़ल्ला लाना चाहे और रक्षा के लिए पहरा चाहे तो राज्य में सूचना करने पर पहरा मिल जावेगा। मार्ग रक्षित नहीं है, जिससे इस अकाल के समय सावधानी और निगरानी की आवश्यकता है।

(५) जो पशु मारवाड़ तथा अन्य स्थानों से आये हुए हैं, वे पहाड़ के नज़दीक कटे हुए घास के बीड़ में बिना महसूल चरेंगे। यदि कोई शिकायत आवेगी कि किसी ने उनसे महसूल लिया है, तो महसूल लेने-वालों को सज़ा दी जावेगी।

(६) रियासत के अहलकारों, जागीरदारों और मुत्सद्दियों को ज़रूरी है कि इस विषय में एजेंट-गवर्नर-जनरल, राजपूताना ने जो इश्तिहार भेजा

है, उसका पूरा लिहाज़ रखें[१]।"

उन दिनों महारावत की प्रवृत्ति कुछ ऐयाशी की ओर बढ़ने लगी थी, जिससे शासन-प्रबंध में अव्यवस्था होने लगी। इसपर पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ ने प्रतापगढ़ के वकील को, जो उसके पास नियत था, महारावत को समझाने के लिए भेजा, जिसका महारावत पर अच्छा प्रभाव पड़ा और उसने फिर रियासत के कार्य में ध्यान देना आरंभ किया तथा फिर रतलाम से कामदार के पद पर ओंकारलाल व्यास को बुलाकर नियत किया[२]।

शासन-व्यवस्था में गड़बड़ी होना

तदनन्तर महारावत ने अपने राज्य की न्याय-व्यवस्था ठीक करने के लिए दीवानी तथा फ़ौजदारी अदालतें स्थापित कीं, परंतु अपराधियों के देन-लेन के विषय में क़ौल-क़रार न होने से उनकी गिरफ़्तारी में बाधाएं उपस्थित होती थीं। अतएव वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) में महारावत और अंग्रेज़ सरकार के बीच कर्नल हचिन्सन, पोलिटिकल एजेंट, मेवाड़ के द्वारा नीचे लिखा अहदनामा हुआ—

अंग्रेज सरकार से अपराधियों के देन-लेन का इकरारनामा होना

अपराधियों को एक दूसरे को सौंपने के सम्बन्ध में अंग्रेज़ सरकार तथा देवलिया प्रतापगढ़ के राजा हिज़ हाइनेस उदयसिंह, उनके बाल-बच्चों, वारिसों तथा और उत्तराधिकारियों के बीच का अहदनामा, जिसको एक तरफ़ लेफ़्टेनेंट-कर्नल अलेक्ज़ेंडर रॉस इलियट हचिन्सन, स्थानापन्न पोलिटिकल एजेन्ट, मेवाड़ ने लेफ़्टेनेंट कर्नल रिचर्ड हार्ट कीटिङ्ग, सी० एस० आई० तथा वी० सी० एजेंट गवर्नर-जेनरल राजपूताना के आदेश से, जिसे हिंदुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर-जेनरल दि राइट आनुरेबल सर जॉन लॉर्ड मेयर लारेंस बैरोनेट, जी० सी० बी० एवं जी० सी० एस० आई० से तत्सम्बन्धी पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए थे और दूसरी तरफ़ राजा उदयसिंह ने तैयार किया—

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५६०-१।
(२) वही; जि० १, पृ० ५५६।

शर्त पहली—कोई व्यक्ति चाहे वह अंग्रेज़ी इलाके की प्रजा हो, या किसी और की, अंग्रेज़ी इलाके में कोई संगीन जुर्म करे और प्रतापगढ़ राज्य की सीमा के भीतर पनाह ले तो प्रतापगढ़ राज्य उसको गिरफ़्तार करेगा और तलब किये जाने पर साधारण नियम के अनुसार अंग्रेज़ सरकार को सौंप देगा।

शर्त दूसरी—कोई व्यक्ति जो प्रतापगढ़ की प्रजा हो, प्रतापगढ़ राज्य की सीमा के भीतर कोई भारी अपराध कर अंग्रेज़ी इलाक़े में शरण ले तो अंग्रेज़ सरकार उसको गिरफ़्तार करेगी और तलब करने पर रीति के अनुसार प्रतापगढ़ राज्य को सौंप देगी।

शर्त तीसरी—कोई आदमी, जो प्रतापगढ़ की प्रजा न हो, प्रतापगढ़ राज्य की सीमा के भीतर कोई बड़ा अपराध कर अंग्रेज़ी इलाके में आश्रय ले तो वह गिरफ़्तार किया जायगा और उसके मुक़दमे का फ़ैसला वह अदालत करेगी, जिसको अंग्रेज़ सरकार आज्ञा दे। साधारण नियम के अनुसार ऐसे मुक़दमों का निर्णय उस पोलिटिकल एजेंट के इजलास में होगा, जिसके साथ प्रतापगढ़ राज्य का सम्बन्ध हो।

शर्त चौथी—किसी भी अवस्था में कोई सरकार किसी व्यक्ति को, जिसपर किसी बड़े अपराध का अभियोग लगाया गया हो, तब तक सौंपने की पाबन्द न होगी, जब तक कि वह सरकार, जिसके इलाक़े में अपराध हुआ हो, अभियुक्त को क़ायदे के अनुसार तलब न करे और जुर्म की ऐसी शहादत पेश न हो, जिसके द्वारा जिस इलाक़े में वह (अपराधी) पाया जाय, उसके क़ानून के अनुसार उसकी गिरफ़्तारी वाजिब समझी जाय और यदि वही अपराध उस इलाके में किया जाता तो वहां भी अभियुक्त अपराधी ठहराया जाता।

शर्त पांचवीं—नीचे लिखे हुए अपराध संगीन अपराध समझे जायँगे—

(१) मनुष्य बध

(२) मनुष्य बध करने का प्रयत्न

(३) उत्तेजना की दशा में किया हुआ दंडनीय मनुष्य बध

(४) ठगी

(५) विष-प्रयोग

(६) बलात्कार

(७) सख़्त चोट पहुंचाना

(८) बालक चुराना
(९) औरतों को बेचना
(१०) डाका डालना
(११) लूट करना
(१२) सेंध लगाना
(१३) पशुओं की चोरी
(१४) मकान जलाना
(१५) जालसाज़ी
(१६) जाली सिक्के बनाना तथा खोटे सिक्के चलाना
(१७) दंडनीय विश्वासघात
(१८) माल-असबाब गबन (हजम) करना, जो जुर्म समझा जाय
(१९) ऊपर लिखे हुए अपराधों में सहायता देना

शर्त छठी—ऊपर लिखी हुई शर्तों के अनुसार किसी अपराधी को गिरफ़्तार करने, रोक रखने या सुपुर्द करने में जो व्यय पड़ेगा, वह उस सरकार को देना पड़ेगा, जो उसको तलब करेगी।

शर्त सातवीं—ऊपर लिखा हुआ अहदनामा तब तक क़ायम रहेगा, जब तक अहदनामा करनेवाले दोनों पक्षों में से कोई उसको तोड़ने की अपनी इच्छा दूसरे को न बतलावे।

शर्त आठवीं—इस अहदनामे में जो शर्तें दी गई हैं, उनमें से किसी का भी असर ऐसे किसी अहदनामे पर न होगा, जो दोनों पक्षों के बीच पहले हुआ है, सिवाय किसी अहदनामे के उस अंश के जो इसके विरुद्ध हो।

आज २२वीं दिसंबर ई० स० १८६८ (वि० सं० १९२५ पौष सुदि ८) को प्रतापगढ़ में तय हुआ।

मुहर	(दस्तखत) ए० आर० ई० हचिंसन् लेफ़्टेनेंट-कर्नल, स्थानापन्न पोलिटिकल एजेंट मेवाड़।
मुहर	प्रतापगढ़ देवलिया के राजा की मुहर तथा दस्तखत।

(दस्तखत) मेयो,
भारत का वाइसरॉय और गवर्नर-जेनरल।

ई० स० १८६९ ता० १९ फ़रवरी (वि० सं० १९२५ फाल्गुन सुदि ८) को फ़ोर्ट विलियम (कलकत्ता) में भारत के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल ने इस अहदनामे की तस्दीक़ की[1]।

(दस्तख़त) डबल्यू० एस० सेटनकर,

सेक्रेटरी, भारत गवर्नमेंट, वैदेशिक विभाग।

अट्ठारह वर्ष बाद इस अहदनामे की एक शर्त में परिवर्त्तन हुआ, जो नीचे लिखे अनुसार है—

ई० स० १८६९ ता० १९ फ़रवरी को अपराधियों के सौंपने के संबंध में अंग्रेज़ सरकार एवं प्रतापगढ़ राज्य के बीच जो अहदनामा हुआ था, उसमें अंग्रेज़ी इलाक़े से भागकर प्रतापगढ़ राज्य में शरण लेनेवाले अपराधियों को सौंप देने के लिए जो तजवीज़ हुई थी, वह अनुभव से बृटिश भारत में प्रचलित क़ानूनी अमल से कम आसान और कम कारगर पाई गई। इसलिए इस इक़रारनामे के द्वारा अंग्रेज़-सरकार तथा प्रतापगढ़ राज्य के बीच स्थिर हुआ है कि भविष्य में अहदनामे की शर्तें, जिनमें अभियुक्तों की सुपुर्दगी की बाबत तजवीज़ हुई है, वह बृटिश भारत से भागकर प्रतापगढ़ राज्य में आश्रय लेनेवाले अपराधियों की सुपुर्दगी के विषय में लागू न होंगी और इस समय ऐसे प्रत्येक मामले में अपराधियों को सौंपने के संबंध में बृटिश भारत में जो क़ानूनी अमल जारी है, उसकी पाबंदी करनी होगी।

ई० स० १८८७ ता० २९ अगस्त (वि० सं० १९४४ भाद्रपद सुदि ११) को प्रतापगढ़ में दस्तख़त हुए।

(दस्तख़त, हिन्दी भाषा में)

| मुहर |

महारावत प्रतापगढ़।

(दस्तख़त) ए० एफ० पिन्हे, लेफ़्टेनेन्ट,

| मुहर |

असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट,

बांसवाड़ा और प्रतापगढ़।

ई० स० १८८८ ता० २८ मार्च (वि० सं० १९४५ द्वितीय चैत्र वदि १)

(१) एचिसन; ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४९३-५।

को फ़ोर्ट विलियम में हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल ने इस अहदनामे को मंज़ूर कर इसकी तसदीक़ की[1]।

(दस्तख़त) एच्० एम्० डयूरंड,
सेक्रेटरी, भारत गवर्नमेंट, फ़ॉरेन विभाग।

बांसवाड़ा राज्य के साथ सीमा संबंधी झगड़ा होना

प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा राज्य की सीमाएं मिली हुई होने से कभी-कभी इन दोनों राज्यों के बीच सीमा संबंधी झगड़े और उपद्रव होकर विरोध हो जाया करता था। उन दिनों (बांसवाड़ा के महारावल लक्ष्मणसिंह के राज्य समय) बांसवाड़ावालों ने प्रतापगढ़ राज्य के रायपुर ठिकाने के बोरी, रींछड़ी आदि गांवों का नवीन झगड़ा उठाया, जो प्रतापगढ़ राज्य के अधिकार में बहुत वर्षों से चले आते थे। इस झगड़े ने बड़ा भीषण रूप धारण किया और वि० सं० १६२३ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १८६६ ता० १४ अक्टोबर) को रात्रि के समय बांसवाड़ावालों ने एक बड़ी सेना के साथ जाकर रायपुर के ठाकुर पर, जो उस समय वहां के थाने पर सीमा की रक्षा के लिए प्रतापगढ़ की तरफ़ से नियत था, आक्रमण कर दिया। रायपुर के ठाकुर और उसके साथी (प्रतापगढ़ के सरदार) उस समय असावधान थे, इसलिए बांसवाड़ावालों का आक्रमण वे सह न सके और उनके आदमियों में से आंबीरामा के ठाकुर का पुत्र केसरीसिंह, रायपुर का अजीतसिंह, हिम्मतसिंह, चौहान लक्ष्मणसिंह, हम्मीरसिंह आदि ३५ व्यक्ति मारे गये और ५६ घायल हुए तथा बांसवाड़ावाले वहां से कई हज़ार रुपयों का माल भी लूट ले गये। इस झगड़े में बांसवाड़ा राज्य के दो आदमी मारे गये और चार घायल हुए। फिर पोलिटिकल अफ़सरों-द्वारा इस मुक़दमे की तहक़ीक़ात होने पर बांसवाड़ा राज्य की ज़्यादती प्रमाणित हुई और बांसवाड़ा राज्य के कामदार कोठारी चिमनलाल पर एक हज़ार रुपये जुर्माना होकर वह दस वर्ष के लिए बांसवाड़ा राज्य से निर्वासित कर दिया गया एवं पांच दूसरे अहलकार, जो इस झगड़े में

(१) एचिसन; ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४६५।

शामिल थे, पांच-पांच वर्ष के लिए क़ैद कर उदयपुर के जेलखाने में रखे गये। अंत में मेवाड़ भील कोर के कमांडेंट मेजर गनिंग ने मौक़े पर जाकर वि० सं० १६३१ (ई० स० १८७५) में उचित फ़ैसला कर दोनों राज्यों की सीमा पर मीनारे खड़े करवा दिये[1]। इस फ़ैसले से तनाज़े की २६ वर्ग मील भूमि पर प्रतापगढ़ राज्य का अधिकार बहाल रहा और इस मुक़दमे में प्रतापगढ़ राज्य के कामदार ओंकारलाल व्यास, मोतमिद अमृतराव दक्षिणी तथा बड़ा सेलारपुरा के ठाकुर विशनसिंह की कारगुज़ारी अच्छी रही, जिसकी मेजर गनिंग ने महारावत के पास प्रशंसा लिख भेजी।

इसी प्रकार एक दूसरा झगड़ा प्रतापगढ़ राज्य के सांडनी गांव के नील के पठार नामक खेतों के सम्बन्ध में बांसवाड़ा राज्य के सेमलिया पट्टे के सूरजपुरा गांव के बीच वि० सं० १६२६ (ई० स० १८७२) में उत्पन्न हुआ। उसमें भी बांसवाड़ावालों ने अपनी सेना भिजवाकर प्रतापगढ़ राज्य के दो आदमियों को मार डाला। उसका फ़ैसला ई० स० १८७४ ता० १६ सितम्बर (वि० सं० १६३१ भाद्रपद सुदि ५) को मेवाड़ के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट पारसी फ़्रामजी भीकाजी ने, जो बांसवाड़ा में नियत था, किया। उसके अनुसार नील के पठार के क्षेत्रों का अधिकार प्रतापगढ़ राज्य का स्वीकार किया गया और सांडनी तथा सूरजपुरा गांव की सीमाएं निर्धारित कर मीनारे खड़े करवा दिये गये। इस मुक़दमे में महारावत के कामदार ओंकारलाल व्यास, मोतमिद शाह जोधकरण और अर्जुनसिंह की कारगुज़ारी अच्छी रही।

बांसवाड़ा राज्य ने प्रतापगढ़ राज्य के अजंदा गांव को वि० सं० १६१७ (ई० स० १८६०) में बलपूर्वक दबा लिया था, जिसका मुक़दमा महारावत दलपतसिंह के समय से ही चल रहा था। उसका भी उन्हीं दिनों

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ४२८ तथा ४४७। उक्त पुस्तक में प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से इस झगड़े में मारे जानेवाले व्यक्तिय की संख्या २६ और घायलों की ४४ दी है। "वीरविनोद" (द्वितीय भाग, पृ० १०३६) में बांसवाड़ा के कामदार चिमनलाल कोठारी पर दस हज़ार रुपये जुरमाना होने का उल्लेख है।

फ़ैसला हुआ, जिसमें उक्त गांव पर प्रतापगढ़ राज्य का अधिकार कराया गया और बांसवाड़ा राज्य की ओर से सुबूत में जो पत्र आदि पेश किये गये वे जाली माने गये। इस घटना से अंग्रेज़ सरकार का बांसवाड़ा के महारावल लक्ष्मणसिंह के प्रति बिलकुल विश्वास उठ गया और उसकी बहुत बदनामी हुई। फलस्वरूप अंग्रेज़ सरकार ने छः वर्ष तक के लिए उसकी सलामी की चार तोपें घटा दीं[1], जो पीछी ई० स० १८७६ (वि० सं० १९३६) तक न बढ़ीं।

महारावत का नीमच जाकर वाइसरॉय लॉर्ड नॉर्थब्रुक से मुलाक़ात करना

वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५ नवंबर) में भारत का वाइसराय और गवर्नर जेनरल लॉर्ड नॉर्थब्रुक बम्बई से मालवे की तरफ़ होकर उदयपुर गया। उस समय नीमच के मुक़ाम पर महारावत उदयसिंह ने जाकर उक्त वाइसरॉय से मुलाक़ात की[2] और फ़रवरी ई० स० १८७६ (वि० सं० १९३२) में उसने राजपूताना के एजेंट गवर्नर-जेनरल सर ए० सी० लॉयल से भी नीमच जाकर मुलाक़ात की[3]।

मोधियों को महारावत का अपने राज्य में न ठहरने देना

मेवाड़ तथा टोंक राज्य के नींबाहेड़ा परगने में बसनेवाले मोधिये बड़े जरायम पेशा थे। उन दिनों वे अवसर पाकर प्रतापगढ़ राज्य में जा घुसे और वहां आबाद होने का विचार कर कुछ चौकीदारों में नौकर हो गये। इसकी इत्तला महारावत को मिलने पर उसने ऐसे जरायम पेशा लोगों को अपने राज्य में आबाद करने में हानि समझ, वहां उनको न ठहरने दिया[4], जिससे उसके राज्य में चोरी-धाड़ों का भय कम हो गया।

---

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५५०। वीरविनोद; द्वितीय भाग, पृ० १०३६। अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा स्टेट; पृ० १६५। एचिसन; ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४५५-६।

(२) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५६४।

(३) वही; जि० १, पृ० ५६४।

(४) वही; जि० १, पृ० ५६३-४।

महारावत का कामदार ओंकारलाल व्यास कारगुज़ार व्यक्ति था। वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) में उसको एक बदमाश सिपाही ने तलवार का प्रहार कर घायल कर दिया, जिससे वह कुछ दिनों पीछे मर गया। घातक उसी समय मार डाला गया और उसके शामिल रहनेवाले व्यक्तियों को क़ैद की सज़ा दी गई। महारावत ने उस (ओंकारलाल) के पुत्र कोमलराम के प्रति सहानुभूति प्रकट कर उसको अपने यहां ही रक्खा और उससे राज्य का काम लेने लगे, किन्तु वस्तुतः राज्य का सब कार्य महारावत की आज्ञानुसार ही होता था[1]।

कामदार ओंकारलाल व्यास की मृत्यु

प्रतापगढ़ राज्य की अधिकांश ज़मीन पैदावार के लिए बहुत ही उपयोगी है। वहां पहले अफ़ीम की काश्त अधिकता से होती थी, जो अच्छी ज़ात की होती थी एवं अनाज की पैदावारी भी अच्छी थी। महारावत के उदार विचार और प्रयत्न से वहां के ऊजड़ गांव फिर बस गये और काश्तकारों को रियायतें और तसल्ली देने से वहां की तमाम ज़मीन में खेती होने लगी तथा कृषि-योग्य भूमि में से कुछ भी ख़ाली न बची। केवल एक गांव बांसवाड़ा के भीलों की ज़्यादती से वीरान था। बांसवाड़ा के भील प्रतापगढ़ की प्रजा से चौथ लेने का दावा करते थे। ई० स० १८७४ (वि० सं० १९३१) में मेवाड़ राज्य के धरियावद पट्टे की तरफ़ के गांगा की पाल के मीणों ने कप्तान चार्ल्स स्ट्रेटन पर हमला भी किया[2]; किंतु महारावत के अच्छे प्रबन्ध से प्रतापगढ़ राज्य के निवासी भील-मीणे

महारावत का अपने राज्य की आबादी बढ़ाना

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५६०, ५६२-४। ओंकारलाल व्यास जाति का औदीच्य ब्राह्मण था। उसने कई वर्षों तक रतलाम राज्य में काम किया था, जिससे उसको अच्छा अनुभव हो गया था। वि० सं० १९३२ वैशाख वदि ३ (ई० स० १८७५ ता० २३ अप्रेल) को महारावत ने उसको बांसलाही गांव प्रदान किया, जो अद्यावधि उसके वंशजों के पास विद्यमान है।

(२) वही; जि० १, पृ० ५६४।

किसी भी उपद्रव में सम्मिलित न हुए और वे शांतिप्रिय बने रहे।

श्रीमती महाराणी विक्टोरिया ने भारत का राज्याधिकार अपने हाथ में लेने के पीछे "सम्राज्ञी" (Empress of India) पदवी धारण की।

दिल्ली दरबार के उपलक्ष्य में महारावत को झंडा मिलना

उस सम्बन्ध में ई० स० १८७७ ता० १ जनवरी (वि० सं० १९३३ माघ वदि २) सोमवार को भारत के तत्कालीन गवर्नर जेनरल और वाइसरॉय लॉर्ड लिटन ने दिल्ली नगर में एक वृहत् दरबार करना निश्चित किया। इस अवसर पर भारत के नरेशों को भी दरबार में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण पत्र भेजे गये। तदनुसार भारत के कई नरेश दिल्ली जाकर उक्त दरबार में सम्मिलित हुए। कारण विशेष से महारावत उदयसिंह दरबार में सम्मिलित नहीं हुआ, अतएव उसके लिए वाइसरॉय लॉर्ड लिटन ने शाही झंडा (निशान) भेजना स्थिर किया, जो वि० सं० १९३६ (ई० स० १८७९) में मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट मेजर टी० केडिल प्रतापगढ़ लेकर गया और एक बड़े दरबार में वह महारावत को दिया गया।

वि० सं० १९३७ (ई० स० १८८१) के शीतकाल में इस राज्य में प्रथम बार मनुष्य-गणना हुई। इस अवसर पर उदयपुर राज्य में भीलों

प्रतापगढ़ राज्य में प्रथम बार मनुष्य-गणना होना

का उपद्रव हो गया था। प्रतापगढ़ राज्य, मेवाड़ राज्य से मिला हुआ है और वहां के अधिकांश निवासी भील, मीणे हैं, जिससे वहां भी उपद्रव होने की आशंका हुई; परन्तु महारावत के उत्तम प्रबन्ध से प्रतापगढ़ राज्य में ऐसा उपद्रव न हुआ और शांतिपूर्वक मनुष्य गणना का कार्य होकर वहां की जन संख्या में ७९५६८ व्यक्तियों की गणना हुई[1]।

इसके दो वर्ष पीछे वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८३) में महारावत नीमच की छावनी गया, जहां उस समय इंदौर का भूतपूर्व महाराजा

(१) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट; पृ० २०१।

इंदौर नरेश से मुलाक़ात के लिए महारावत का नीमच जाना

तुकोजीराव होल्कर (द्वितीय) भी गया हुआ था। वहां उपर्युक्त नरेश से उसकी कई मुलाक़ातें हुईं। फिर महाराजा के वहां से लौटने पर महारावत अपनी राजधानी में दाखिल हुआ।

वि० सं० १९४३ (ई० स० १८८६) में महारावत ने मन्त्री पद पर पारसी फ़ामजी भीकाजी को नियत किया, जिसने कई वर्षों तक अंग्रेज़ सरकार के राजनैतिक विभाग में दायित्वपूर्ण पदों पर रहकर सेवाएं की थीं तथा मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट के असिस्टेंट के पद पर रहकर बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ राज्यों के बीच होनेवाले सीमा संबंधी झगड़ों को निपटाया था। उसके और महारावत के बनी नहीं, जिससे उसकी जगह मिर्ज़ा मुहम्मदी बेग वहां का कामदार बनाया गया।

महारावत का पारसी फ़ामजी भीकाजी को कामदार बनाना

उसी वर्ष फाल्गुन सुदि ६ (ई० स० १८८७ ता० १ मार्च) मंगलवार को सैलानेवाली मंझली महाराणी जुहारकुंवरी के उदर से महाराजकुमार अर्जुनसिंह का जन्म हुआ। महारावत के प्रथम राजकुमार का परलोकवास हो जाने के पीछे १७ वर्ष तक कोई संतान न होने से उत्तराधिकारी के विषय में वहां की प्रजा चिंतित थी। अतएव राजकुमार का जन्म होने से उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। महारावत ने उक्त राजकुमार के उत्पन्न होने की प्रसन्नता में सहस्रों रुपये व्यय किये और अपने सगे संबंधी नरेशों में से सैलाना और सीतामऊ के राजाओं तथा कानोड़, आसींद (मेवाड़ राज्य) और कुशलगढ़ के सरदारों को अपने यहां निमंत्रित कर पुत्र-जन्मोत्सव मनाया; किंतु वह राजकुमार केवल डेढ़ वर्ष की आयु में ही काल कवलित हो गया, जिसका उक्त महारावत के शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा और संसार से उसको एकबार ही विरक्ति हो गई।

महारावत की सैलानेवाली महाराणी से कुंवर उत्पन्न होना

वि० सं० १९४४ में महाराणी विक्टोरिया को शासन-सूत्र हाथ में लिये पचास वर्ष पूरे हो गये, जिसके उपलक्ष्य में इंग्लैंड और भारत में

महाराणी विक्टोरिया की स्वर्ण जयन्ती का उत्सव मनाया जाना

स्वर्णजयंती मनाना निश्चित हुआ। तदनुसार महारावत ने भी अपने यहां दरबार कर स्वर्ण जयन्ती-महोत्सव मनाया और इस शुभ दिवस के स्मरणार्थ राजधानी प्रतापगढ़ में आबादी से पूर्व की तरफ़ मंदसोर आने-वाले मार्ग में एक नाले पर पक्का पुल बनवाया।

महारावत का नीमच जाकर ड्यूक ऑव् कनाट से मुलाक़ात करना

उसी वर्ष महाराणी विक्टोरिया के तृतीय शाहज़ादे ड्यूक ऑव् कनाट का नीमच में आगमन हुआ। उस अवसर पर महारावत ने नीमच जाकर उक्त शाहज़ादे से मुलाक़ात की।

महारावत उदयसिंह के समय वि० सं० १६२४ (ई० स० १८६७) में प्रतापगढ़ में रोगियों की चिकित्सा के लिए डिस्पेंसरी खोली गई[1]।

महारावत के अन्य प्रमुख कार्य

शीतला रोग से बचने के लिए उक्त महारावत के समय वि० सं० १६२७ (ई० स० १८७०) में टीका लगवाने की व्यवस्था हुई[2]। बालकों की शिक्षा के लिए वि० सं० १६३२ (ई० स० १८७५) में वहां पाठशाला की स्थापना की गई[3]। स्टांप और कोर्ट फ़ीस का क़ायदा बनाया जाकर वि० सं० १६४० (ई० स० १८८३) में वहां जारी किया गया। उसने अपने यहां सेना को बाक़ायदा क़वायद सिखलाने की भी व्यवस्था की थी[4]। बांसवाड़ा राज्य और प्रतापगढ़ राज्य के सीमा संबंधी मुक़दमे भी उसके समय में तय हुए, जिससे झगड़े मिट गये। पुलिस और गिराई की भी उसके समय में वहां कुछ-कुछ व्यवस्था हुई और वि० सं० १६४१ (ई० स० १८८४) में वहां अंग्रेज़ी डाक-खाना भी खोला गया[5]।

(१) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट; पृ० २२१।

(२) वही; पृ० २२१।

(३) वही; पृ० २२०।

(४) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० २६४।

(५) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् प्रतापगढ़ स्टेट; पृ० २१२।

केवल कुछ दिनों की बीमारी के पीछे वि० सं० १९४६ फाल्गुन वदि ११ (ई० स० १८९० ता० १५ फ़रवरी) को लगभग ४१ वर्ष की आयु में महारावत उदयसिंह का निःसंतान परलोकवास हो गया। उसकी असामयिक मृत्यु से प्रजा में गहरी उदासी छा गई, क्योंकि वह प्रजा-प्रिय राजा था।

महारावत का परलोकवास

महारावत उदयसिंह के तीन विवाह हुए थे। उनमें से एक राणी नामली के ठाकुर तख़्तसिंह की पुत्री सरूपकुंवरी थी। गद्दी बैठने के बाद उसके दो विवाह सैलाना के राजा दुलहसिंह की कुंवरियों—जुहारकुंवरी और फूलकुंवरी—से हुए थे[1]। उनमें से एक विवाह वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) में हुआ था[2]।

महारावत की राणियां

महारावत के छब्बीस वर्ष के शासन में प्रतापगढ़ राज्य में बहुत कुछ लोकोपयोगी कार्य हुए, जिनमें से प्रतापगढ़ की धर्मशाला मुख्य है। उसके समय में प्रतापगढ़ के क़िले में कई मकान बने, जिनमें उदयविलास महल उल्लेखनीय है। अपने निवास के प्रतापगढ़ के नवीन बंगले के निकट रामचंद्रजी का मंदिर बनवाकर उसने उस मंदिर के पूजन व्यय के लिए अमलावद और सींगपुरया गांव में जागीर निकालकर अच्छी व्यवस्था कर दी थी।

महारावत के लोकोपयोगी कार्य

उदयसिंह वीर, प्रबंध-कुशल, प्रजा-प्रिय और उदार राजा था। वह शिकार का प्रेमी अवश्य था, परंतु उधर उसकी अधिक आसक्ति होना पाया नहीं जाता। राज्य के शासन-प्रबंध को वह अपना मुख्य कर्त्तव्य मानता था। उसकी प्रजा उससे सदा प्रेम करती थी, जिसका परिचय तत्कालीन पोलिटिकल एजेंटों को भी उसके राज्य में दौरा करते समय प्रजा से पूछ-ताछ करने पर

महारावत का व्यक्तित्व

---

(१) प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ११। सूवेनीर हिस्ट्री ऑव् सैलाना स्टेट; पृ० ३६-७।

(२) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० २६४।

हुआ था[1]। प्रजा की प्रार्थनाओं को वह स्वयं सुनकर यथाशक्ति उनके कष्टों को मिटाने का यत्न करता था। उसका चोर और डाकुओं पर भी आतङ्क था, जिससे उसके राज्य-काल में प्रतापगढ़ राज्य में उनके उपद्रव कम हो गये। जब कभी वह अपने राज्य में चोरी और डाकों की खबर सुनता तो भोजन करता हुआ भी उठ खड़ा होता था। इससे उसके इलाक़े का फ़ौजदारी सीगे का इंतिज़ाम अच्छा रहा, जिसकी पोलिटिकल अफ़सरों ने भी सराहना की[2]। उसकी अंग्रेज़ अफ़सरों तथा आस-पास के राजाओं से सदा मेल की नीति रही और थोड़ी ही आयु में उसने काफ़ी प्रसिद्धि पाई। वह अपने कर्मचारियों के कार्यों की पूरी देख-भाल करता और समय-समय पर उनकी सेवाओं की क़द्र कर उन्हें पुरस्कृत करता था। विद्वान् और कवि लोगों को वह सदा आश्रय देकर अपने पास रखता एवं उनको जागीरें आदि देकर उनका सम्मान बढ़ाता था। सरदारों का भी वह पूरा आदर और मान रखता था। उसने कितने ही सरदारों से वसूल होनेवाले खिराज में कमी और कई सरदारों के सम्मान में वृद्धि की थी। न्याय की वह अवहेलना नहीं करता था। अपने कर्मचारियों को उसकी पूरी ताकीद थी कि वे प्रजा को प्रसन्न रखें तथा उनके साथ अन्याय न करें और न अनुचित रूप से उनसे धन लें। धमोतर के ठाकुर हंमीरसिंह को जब जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह ने एक चंवर रखने का सम्मान दिया तो महारावत ने उसको अपनी तरफ़ से दूसरा चंवर रखने का सम्मान देकर अपनी नीति-कुशलता का परिचय दिया। उसकी काव्य-साहित्य की ओर रुचि थी, इसलिए अयोध्या (कनकभवन) के महंत जानकीप्रसाद (रसिकबिहारी), प्रसिद्ध साहित्यसेवी स्वामी गणेशपुरी और बाठरडा (मेवाड़ राज्य) के रावत दलेलसिंह के लघु भ्राता गुमानसिंह को (जो काव्य का ज्ञाता और योगी पुरुष था) आदर-पूर्वक अपने यहां रखकर गुण-ग्राहकता का परिचय दिया था। उसने बारहट

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५६२।

(२) वही; जि० १, पृ० ५६२।

ईसरदान और मेहडू चारण गुलाबसिंह को पैर में स्वर्णाभूषण पहनने का सम्मान देकर उसने उनकी प्रतिष्ठा-वृद्धि की थी[1]। उसके राज्य समय में प्रतापगढ़ राज्य ऋण-ग्रस्त हो गया, जिसका कारण उसकी विलासिता की तरफ़ प्रवृत्ति होना भी बतलाया जाता है। वि० सं० १६२५ (ई० स० १८६८) के भयङ्कर अकाल में उसने जो उदारता दिखलाई थी, उसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। वह पूर्ण आस्तिक और धर्म-प्रेमी राजा था। लोकोपकार की तरफ़ सदा उसकी भावना रहती थी। वि० सं० १६२६ (ई० स० १८७२) में उस-(महारावत) ने पुष्कर-यात्रा भी की थी। भील और मीणों से, जो गायों को मारकर खा जाते थे, उक्त महारावत ने इक़रार लिखवाकर उक्त पशु की हिंसा बन्द करवाई और भविष्य में ऐसा कार्य करनेवालों को कठोर दंड देने का शिलालेख खुदवाकर देवलिया में लगवा दिया[2]। प्रतापगढ़ राज्य में सती-प्रथा और राजपूताने में होनेवाली कन्या-वध की प्रथा उसके ही समय से बंद होना मानना चाहिये। उसका वर्ण गौर, बदन भरा हुआ, क़द मंझला, चेहरा गोल, आंखे बड़ी-बड़ी, भुजदंड विशाल, वक्षस्थल चौड़ा और ललाट उन्नत था। उसके चेहरे से राजपूती आभा टपकती थी।

रघुनाथसिंह

जन्म और गद्दीनशीनी

महारावत रघुनाथसिंह, अरणोद के महाराज खुशहालसिंह (कुशलसिंह) का पुत्र था। उसका जन्म वि० सं० १६१५ पौष वदि १० (ई० स० १८५८ ता० २६ दिसंबर) को हुआ था। वह प्रारम्भ से ही पितृप्रेम से वंचित हो गया था, जिससे उसके बाल्यजीवन का अधिकांश भाग आसींद (मेवाड़) के रावत खुम्माणसिंह के यहां व्यतीत हुआ, जहां उसकी माता की ननसार थी। इस कारण वह उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका और तत्कालीन शैली के

(१) वंशभास्कर; तृतीय भाग, पृ० ४४ (भूमिका)।

(२) वि० सं० १६४१ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १८८४ ता० ३१ अगस्त) रविवार का देवलिया के बोहरे की दूकान के सामने का शिलालेख।

अनुसार ही उसने हिंदी भाषा का आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया। वह कुछ वर्ष तक महाराणा शंभुसिंह के समय उदयपुर भी रहा था और जब उक्त महाराणा वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में भारत के तत्कालीन वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल लॉर्ड मेयो से मुलाक़ात करने के लिए अजमेर गया, उस समय वह (रघुनाथसिंह) भी उसके साथ विद्यमान था। महारावत उदयसिंह का वि० सं० १९४६ (ई० स० १८९०) में अपुत्र देहांत होने से प्रतापगढ़ राज्य के सरदारों और राज-कर्मचारियों को बड़ी चिंता हुई; क्योंकि बिना किसी को उत्तराधिकारी निर्वाचित किये राज्य-प्रबन्ध में गड़बड़ी होने की संभावना थी और भूतपूर्व महारावत ने किसी को अपना उत्तराधिकारी नियत नहीं किया था। प्रतापगढ़ राज्य में महारावत के देहावसान होने पर गद्दी ख़ाली नहीं रहती और तत्काल नये महारावत के नाम की दुहाई फेरी जाती है। इस बात को दृष्टिकोण में रखकर धमोतर के ठाकुर तथा अन्य सरदारों एवं कामदार शाह रतनलाल पाडलिया ने अरणोद के महाराज रघुनाथसिंह को (जो समीपी बांधव था) हक़दार होने से गद्दी बिठलाने की राय स्थिर की। तदनन्तर उन्होंने अन्तःपुर की ड्योढ़ी पर जाकर परलोकवासी महारावत की राणियों से यह बात निवेदन करवाई, जिस-पर उन्होंने शाह कपूरचंद खासगीवाले तथा लक्ष्मीराम नागर के-द्वारा महाराज रघुनाथसिंह को गद्दी बिठलाने की स्वीकृति भेजी। फलस्वरूप उपस्थित सरदारों और प्रतिष्ठित कर्मचारियों ने महारावत उदयसिंह की राणियों के आदेशानुसार महाराज रघुनाथसिंह को राजगद्दी पर बिठला कर, उसको अपना स्वामी घोषित किया और राज्य में भी उसके नाम की दुहाई फेर दी।

तदनन्तर उसकी गद्दीनशीनी की सूचना बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के असिस्टेन्ट पोलिटिकल ऑफ़िसर को दी जाने पर कप्तान पिन्हे ने स्वयं प्रतापगढ़ जाकर भूतपूर्व महारावत की राणियों से दर्याफ़्त कराया, तो उन्होंने रघुनाथसिंह को अपनी इच्छानुसार गद्दी बिठलाना स्वीकार किया। इसके पीछे मेवाड़ के रेज़िडेंट कर्नल पिकॉक ने भी प्रतापगढ़ जाकर

परलोकवासी महारावत की राणियों से पूछताछ कराई तो उन्होंने पूर्ववत् ही उत्तर दिया। अन्त में रेज़िडेंट मेवाड़ की तरफ़ से रघुनाथसिंह को भूतपूर्व महारावत का दत्तक स्वीकार करने की मंज़ूरी होने की बाबत सदर में रिपोर्ट की, तब महाराणियों की इच्छानुसार अंग्रेज़ सरकार ने उस(रघुनाथसिंह)की गद्दीनशीनी को स्वीकार कर प्रतापगढ़ सूचना दी। इसपर महारावत रघुनाथसिंह ने वि० सं० १९४७ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १८९० ता० ४ मई) को तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड लैंसडौन के पास महारावत उदयसिंह के परलोकवास होने और अपनी गद्दीनशीनी का खरीता भेजा।

राज्यारोहण के समय महारावत की आयु ३१ वर्ष की थी और वह स्वयं समझदार था तथा उसके कार्यकर्ता अनुभवी थे। इसलिए उस समय रीजेंसी कौंसिल निर्माण करने की आवश्यकता नहीं समझी गई और मुख्य-मुख्य कार्यों में बांसवाड़ा एवं प्रतापगढ़ के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट का परामर्श लेना निश्चित होकर बाक़ी सारा कार्य पूर्ववत् महारावत की आज्ञानुसार चलता रहा।

अंग्रेज़ सरकार की तरफ से गद्दीनशीनी की ख़िलअत पहुंचना

वि० सं० १९४७ पौष वदि ३० (ई० स० १८९१ ता० १० जनवरी) को महारावत के लिए गद्दीनशीनी के सम्बन्ध में उपर्युक्त वाइसरॉय का खरीता और अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से गद्दीनशीनी की ख़िलअत लेकर राजपूताने का एजेंट गवर्नर जेनरल कर्नल ट्रेवर प्रतापगढ़ गया और उसने एक बड़े दरबार में महारावत को गद्दीनशीनी की ख़िलअत देकर वाइसरॉय का ई० स० १८९० ता० २२ दिसम्बर (वि० सं० १९४७ मार्गशीर्ष सुदि ११) का खरीता पढ़कर सुनाया, जो नीचे लिखे अनुसार है—

"मेरे मित्र, आपका ई० स० १८९० ता० ४ मई का लिखा हुआ कृपापत्र, जिसमें महारावत उदयसिंह के देहांत का समाचार था, मुझको मिला। इस ख़बर के सुनने से मुझे बड़ा शोक हुआ। यह लिखकर अब मैं आपको सूचित करता हूं कि मैंने आपकी गद्दीनशीनी को स्वीकृत

किया है। विश्वास है कि आपकी हुकूमत का युग दीर्घकाल तक उन्नतिशील बना रहेगा। आप मेरी मित्रता का पूरा भरोसा रखें। प्रत्येक समय मेरे राजपूताने के एजेंट तथा बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट आपका पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। मैं आपके उत्तम स्वभाव और योग्यता की बात सुन चुका हूं, इसलिए मैं राज्याभिषेकोत्सव के दिन से ही आपको शासन के पूरे अधिकार सौंपता हूं। विश्वास है कि आप हर कार्य में शुभ अनुष्ठान करते हुए अपने को योग्य शासक सिद्ध करेंगे।"

सीमा संबंधी झगड़े तय होना

मेवाड़ और प्रतापगढ़ राज्य की सीमा पर सीतामाता नामक पवित्र और प्राचीन स्थान है। महारावत उदयसिंह के पिछले समय में उसके लिए एक नया विवाद खड़ा हो गया और उक्त स्थान को मेवाड़ राज्य अपनी सीमा में तथा प्रतापगढ़ राज्य अपनी हद के अन्दर बतलाने लगा। कप्तान पिन्हे (असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ राज्य) झगड़े के फ़ैसले के लिए नियत हुआ। उभय पक्ष की तरफ़ से उक्त स्थान अपने-अपने राज्य में होने के कई प्रमाण पेश किये गये और वहां अपना स्वत्व जमाने की दोनों तरफ़ से चेष्टाएं की गईं; परंतु उक्त कप्तान ने ई० स० १८७८ (वि० सं० १९३५) में प्रतापगढ़ राज्य के मोतमिद शाह रत्नलाल-द्वारा पेश किये गये एक पत्र के आधार पर, जो पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ की ओर से महाराणा सज्जनसिंह के उधर आगमन के अवसर पर सरबराह के प्रबंध के लिए लिखा गया था, वह स्थान प्रतापगढ़ राज्य के अन्तर्गत होना मानकर ई० स० १८९१ ता० २५ जून (वि० सं० १९४८ आषाढ वदि ४) को अपना फ़ैसला दिया। उसी समय मेवाड़ राज्य और प्रतापगढ़ राज्य के बीच के सीमा सम्बन्धी और भी कुछ फ़ैसले हुए, जिससे दोनों राज्यों के बीच का सीमा सम्बन्धी विवाद मिट गया।

उन्हीं दिनों महारावत ने मथुरा के नागर ब्राह्मण पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या को, जो उदयपुर में महद्राज सभा का सेक्रेटरी तथा

पंडित मोहनलाल पंड्या का कामदार नियत होना

दीवानी अदालत का हाकिम रह चुका था, अपना कामदार नियत किया। वह नवीन शैली की कार्य-प्रणाली का अच्छा परिचय रखता था, इसलिए शासन-शैली में बहुत कुछ फेर-फार होकर उसके कार्यकाल में कई लोकोपयोगी कार्यों की नींव दी गई। महारावत ने, जो स्वयं लोकोपयोगी कार्यों में अनुराग रखता था और व्यवस्थित रूप से शासन प्रणाली को चलाना चाहता था, ऐसे कार्यों में बड़ी रुचि दिखलाई, जिससे शीघ्र ही वहां कई आवश्यक कार्य हुए, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

राजधानी प्रतापगढ़ में महारावत उदयसिंह के समय ही अस्पताल की स्थापना हो गई थी, परंतु उसका निजी कोई भवन नहीं था;

रघुनाथ हॉस्पिटल का निर्माण होना

अतएव महारावत ने राजधानी प्रतापगढ़ में क़िले के बाहर अस्पताल के लिए वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में नवीन भवन बनवाकर उसका उद्घाटन राजपूताना के एजेंट गवर्नर-जेनरल कर्नल ट्रेवर के हाथ से करवाया और उसका नाम 'रघुनाथ हॉस्पिटल' रखा तथा रोगियों के इलाज की अच्छी व्यवस्था कर अशक्त रोगियों के लिए वहां ही रहकर चिकित्सा करवाने का यथोचित प्रबंध करवा दिया। देवलिया में चिकित्सा का कुछ भी साधन न था, जिससे वहां के निवासी बीमारी के समय पूर्ण कष्ट का अनुभव करते थे। वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में महारावत ने वहां भी चिकित्सालय स्थापित करवा दिया।

प्रतापगढ़ में सफ़ाई, रोशनी आदि का कोई प्रबन्ध न होने से

म्युनिसिपल कमेटी की स्थापना

वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में वहां पर म्युनिसिपल कमेटी की स्थापना हुई, जिससे वहां सफ़ाई, रोशनी आदि का समुचित प्रबन्ध हो गया।

सायर की लागत, पहले ठेके पर दी जाकर ठेकेदारों-द्वारा वसूल होती थी, जिससे आय पूरी नहीं होती थी और व्यापारियों आदि को कष्ट

अख़्तियार तो तुमको होगा, मगर फ़ैसला करने का अख़्तियार सिर्फ़ उन जुर्मों के मुक़दमों का ही होगा, जिनकी सज़ा छः महीने क़ैद और तीन सौ रुपये जुरमाना तक है और इससे अधिक सज़ा के सब मुक़दमे तरतीब और तकमील मिसल होने के बाद मय अपनी राय के फ़ैसले के वास्ते तुमको बाज़ाते अदालत सदर फ़ौजदारी में चालान करने होंगे। उनमें से जो मुक़दमे अदालत सदर फ़ौजदारी-द्वारा फ़ैसला करने के होंगे, उनको तो अदालत मौसूफ़ खुद फ़ैसल करेगी और जो उसके अधिकार के बाहर होंगे, उनको वो अपनी तजवीज़ के साथ आख़िरी फ़ैसले के वास्ते राजेश्री महकमा ख़ास में भेजेगी।

(३) जिन फ़ौजदारी मुक़दमों में मुद्दई ख़ालसे या किसी दूसरी जागीर अथवा किसी दूसरी रियासत का होगा और मुद्दालह तुम्हारे पट्टे का होगा या कोई मुजरिम ख़ालसे या किसी दूसरी जागीर या किसी रियासत ग़ैर का तुम्हारे पट्टे में कहीं पनाह लेगा तो ऐसे मुक़दमे ज़िले के हाकिम की अदालत में दायर होंगे और माल तथा मुजरिम तुमको अदालत मौसूफ़ के सुपुर्द करने होंगे।

(४) जिन दीवानी मुक़दमों में मुद्दई तो ख़ालसे या किसी दूसरी जागीर अथवा किसी रियासत ग़ैर का होगा और मुद्दालह तुम्हारे पट्टे का आसामी होगा वे ज़िला हाकिम की अदालत में दायर होंगे।

(५) जिन दीवानी व फ़ौजदारी मुक़दमों में मुद्दई तो तुम्हारे पट्टे का होगा और मुद्दालह ख़ालसे या किसी दूसरी जागीर अथवा किसी रियासत ग़ैर का होगा वे ज़िले की अदालत में दायर होंगे।

(६) जिन दीवानी यां फ़ौजदारी मुक़दमों में तुम खुद मुद्दई या मुद्दालह होंगे, उनके सुनने और फ़ैसला करने का अख़्तियार तुमको न होगा, बल्कि ऐसे मुक़दमे श्रीदरबार की अदालत में दायर और फ़ैसल होंगे।

(७) जिन दीवानी या फ़ौजदारी मुक़दमों के फ़ैसल करने का अख़्तियार तुमको क़लम एक व दो में दिया गया है, उनमें तुम्हारी

तजवीज़ के ख़िलाफ़ अपील सदर दीवानी व फ़ौजदारी अदालत में होगी और उनके फ़ैसले की अपील राजेश्री महकमा खास मे होगी।

(८) जो दीवानी व फौज़दारी मुक़दमे तुम्हारे अख़्तियार से बाहर हैं, उनकी जो तजवीज़ अदालत ज़िला करेगी उनके ख़िलाफ़ अपील अदालत सदर में होगी। उनकी तजवीज़ की अपील राजेश्री महकमा खास में होगी।

(९) जो दीवानी मुक़दमे अपने पट्टे के आसामियों के, हस्ब मंशा क़लम एक तुम फ़ैसल करोगे, उनकी प्रारम्भिक कार्रवाई अदालत श्री दरबार ने तुमको बख़्शी है। तुम्हारे फ़ैसल किये इन मुक़दमों की अपील की रसूम अदालत तुमको नहीं मिलेगी और उसी तरह बाक़ी और सब क़िस्म के दीवानी मुक़दमों की, जिनको फ़ैसल करने का तुमको हक़ नहीं है, रसूम अदालत भी तुमको नहीं मिलेगी।

(१०) जो फ़ौजदारी मुक़दमे अपने पट्टे के आसामियों के हस्ब मंशा क़लम दो तुम फ़ैसल करोगे, उनका जुरमाना तो तुमको मिलेगा और जो क़ैद की सज़ा तजवीज़ होगी वह यदि तुम्हारे यहां के जेलख़ाने का बन्दोबस्त रियासत हाज़ा के क़ायदे के मुताबिक़ होगा तो वहां भुगताई जावेगी, नहीं तो श्रीदरबार के जेलख़ाने में भुगताई जावेगी और ऐसे क़ैदियों की खुराक वग़ैरा का खर्चा तुमको देना होगा। तुम्हारे फ़ैसल किये हुए इन मुक़दमों की अपील की रसूम अदालत तुमको नहीं मिलेगी और उसी तरह बाक़ी अन्य सब क़िस्म के फ़ौजदारी मुक़दमों का, जिनके फ़ैसल करने के तुम अधिकारी नही हो, जुरमाना तुमको नही मिलेगा।

(११) रसूम सरकारी याने दस्तावेज़ लिखने के लिए जो स्टांप के काग़ज़ तुम्हारे पट्टे की रियाया ख़रीदेगी, उसकी क़ीमत रियासत हाज़ा के ख़ज़ाने में जमा होगी।

(१२) आसामियों की तलबी के लिए किसी अदालत रियासत हाज़ा से माक़ूल मियाद देकर तीन बार लिखे जाने पर भी यदि हुक्म की तामील न होगी, तो आसामियों को तलब करनेवाली अदालत को अधिकार

होगा कि उनको परभारी तलब या गिरफ़्तार कर लेवे।

(१३) जो क़ानून क़ायदे श्रीदरबार की आज्ञानुसार हाल में जारी हुए हैं या भविष्य में तमाम राज देवगढ़-प्रतापगढ़ के लिए बनाकर जारी किये जावेंगे, उनके मुताबिक़ तुमको अपने पट्टे में बखूबी अमल रखना होगा।

(१४) तुमको अपने पट्टे की रियाया को आराम देने और इंसाफ़ करने के लिए अदालत और जेलखाने वग़ैरः का, रियासत हाज़ा के जारी किये हुए क़ानून के मुताबिक़, अच्छा इन्तज़ाम रखना होगा।

(१५) अगर तुम अपने पट्टे की रियाया को हर सूरत आराम पहुंचाओगे और इन्साफ़ के साथ कार्यवाही करोगे तथा श्रीदरबार तुम्हारे चाल-चलन, व्यवहार और अच्छे इंतज़ाम से खुश होंगे, तो तुम्हारे अख़्तियार और भी बढ़ाये जा सकेंगे।

(१६) जो नक्शेज़ात तुम्हारे यहां राजेश्री महक्मा खास से हमेशा भेजे जावेंगे, उनको सही-सही भरकर निश्चित समय पर महक्मा खास में भेजना होगा।

(१७) विलायती, मकरानी, बलोची और अरब आदि क़ौम के लोगों को तुम अपने पट्टे में हरगिज़ नहीं रख सकोगे। अगर उनमें से कोई तुम्हारे पट्टे में गिरफ़्तार होकर सरहद पर भेजा जावेगा, तो उसका खर्चा तुमको देना होगा।

(१८) मोघिये आदि जरायम पेशा क़ौमें, जो तुम्हारे पट्टे में हों, उनको मोघियों के क़ानून की मंशा के बमूजिब तुमको अपने पट्टे में आबाद करना होगा और इंतज़ाम भी रखना होगा। अगर तुम इंतज़ाम और आबाद न कर सकने की वजह से उनको श्रीदरबार की क़ायम की हुई आबादी में आबाद करने के लिए भेजोगे तो उसका खर्चा वग़ैरः तुमको देना होगा।

(१९) जो संगीन वारदात तुम्हारे पट्टे में कहीं होगी, उसकी इत्तिला अविलम्ब राजेश्री महक्मा खास में तुमको देनी होगी तथा उसकी तहक़ी-क़ात पेन वक़्त और मौक़े पर करके राजेश्री महक्मा खास को परिणाम

से सूचित करना होगा और जो हुक्म महक्मा मौसूफ़ से उस बारे में दिया जावेगा उसकी तामील बख़ूबी करनी होगी।

(२०) तुमको अपने ठिकाने की तरफ़ से एक वकील देवगढ़-प्रतापगढ़ में हमेशा हाज़िर रखना होगा, जो तुम्हारे ठिकाने के ताल्लुक़ का कुल काम हर एक महक्मे और अदालत में हाज़िर रहकर किया करे।

(२१)-जो आज्ञाएं राजेश्री महक्मा ख़ास से समय-समय पर जारी होंगी या जो मुक़दमे श्रीदरबार की अदालतों से फ़ैसल होकर तामील के लिए तुम्हारे यहां भेजे जायेंगे, उनकी तुमको पूरी-पूरी तामील करनी होगी।

उसी वर्ष महारावत ने अपने राज्य में स्टांप और कोर्ट फ़ीस के क़ायदे में संशोधन कर उसे जारी किया, जिससे ठिकानों में मनमानी बंद हो गई और ख़ालसे तथा ठिकानों में एक ही प्रकार के क़ायदे चालू हो गये।

पारसी फ़्रामजी भीकाजी को पुनः कामदार नियत करना

महारावत ने अपने कामदार पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का पूरा सम्मान किया। उसको गुरु की उपाधि, ताज़ीम का सम्मान और दो गांव भी प्रदान किये; किन्तु उसने थोड़े ही दिनों बाद महारावत की कृपा खो दी। फिर उस स्थान पर पारसी फ़्रामजी भीकाजी नियत हुआ, जो पहले इस पद का कार्य कर चुका था। उन्हीं दिनों महारावत ने अपने पुराने कामदार मिर्ज़ा मुहम्मदीबेग को, जिसने भूतपूर्व महारावत उदयसिंह तथा उस (रघुनाथसिंह) के समय अच्छी सेवा की थी, एक हज़ार रुपये वार्षिक पेंशन नियत कर दी।

राजकुमारी वल्लभकुंवरी का महाराजा बीकानेर के साथ विवाह होना

गद्दीनशीनी के पूर्व महारावत की राजकुमारी वल्लभकुंवरी का जन्म हुआ था। महारावत ने उसका संबंध बीकानेर के वर्तमान महाराजा सर गंगासिंहजी के साथ स्थिर किया। वि० सं० १९५४ आषाढ सुदि ९ (ई० स० १८९७ ता० ८ जुलाई) को उक्त राजकुमारी का विवाह उपर्युक्त महाराजा के साथ बड़ी धूमधाम से हुआ। इस विवाह का समग्र व्यय लगभग पांच लाख रुपये के हुआ।

इसके एक वर्ष पीछे वि० सं० १९५५ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १८९८ ता० १८ दिसम्बर) को महारावत का अपने जामाता महाराजा सर गंगासिंहजी के आग्रहवश बीकानेर जाना हुआ। महाराजा साहब के स्नेहपूर्ण व्यवहार और सम्मान तथा वहां के शासन में जिन सुधारों का आरंभ हुआ था, उनको देखकर महारावत को पूर्ण संतोष हुआ। इन्हीं दिनों उसने शासन-कार्य चलाने के लिए बीकानेर से ठाकुर रघुवीरसिंह को बुलाकर अपने यहां का कामदार नियत किया।

महारावत का बीकानेर जाना तथा कामदार पद पर ठाकुर रघुवीरसिंह का नियत होना

उसी वर्ष (वि० सं० १९५५ = ई० स० १८९८ में) महारावत ने अपने राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने का निश्चय कर अजमेर के रायबहादुर सेठ सोभागमल ढढ्ढा की, जिसकी व्यापारी-जगत में अच्छी साख थी और ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों में कई स्थानों पर बड़ी-बड़ी दुकानें थीं, अपने यहां दुकान खुलवाई तथा उसको प्रतापगढ़ राज्य का ख़ज़ांची नियत किया।

सेठ सोभागमल ढढ्ढा को ख़ज़ांची बनाना

उन्हीं दिनों महारावत ने न्याय-विभाग को सुचारु रूप से चलाने के लिए महक्मा ख़ास से उसका संबंध तोड़ दिया और न्याय सम्बन्धी अंतिम निर्णय के लिए सर्वोच्च अदालत "राजसभा" नियत की, जिसकी दो शाखाएं—एक इजलास कामिल और दूसरी इजलास मामूली—बनाई गईं। इस राजसभा के सदस्य सरदारों और कर्मचारियों में से योग्यता का विचारकर महारावत-द्वारा नियुक्त होते थे। इजलास क़ामिल में उक्त सभा के सदस्यों के साथ महारावत स्वयं बैठकर मुक़द्दमों को सुनता और उन-पर उनकी सम्मति लेकर अपना हुक्म देता था। इजलास मामूली में पेश होनेवाले मामलों का निर्णय स्वयं उक्त सभा के सदस्य कर मंज़ूरी के लिए उन्हें महारावत के पास भेज देते थे। नीचे की अदालतों के फ़ैसले की अपील सुनना और नीचे की अदालतों के फ़ैसले की निगरानी की मंज़ूरी

न्याय-विभाग को पृथक् कर राजसभा की स्थापना करना

देना एवं उनके अधिकार के बाहर के मुक़दमों को तय करना भी उक्त सभा के ही कार्य थे इस प्रकार न्याय-विभाग पृथक् हो जाने से महकमा ख़ास के सुपुर्द शासन संबंधी आर्थिक और प्रबंध विभाग के कार्य ही रह गये। उस समय नीचे की अदालतों के न्याय संबंधी अधिकार निश्चित नहीं हुए थे। इसलिए न्याय संबंधी कार्य को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए महारावत ने वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) में अपने कामदार रघुबीरसिंह की सम्मति के अनुसार नीचे की अदालतों के निम्नलिखित अधिकार स्थिर किये—

(१) हाकिम अदालत फ़ौजदारी क्रिमिनल जज कहलावेगा और उसको मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल के अधिकार होंगे। वह दो साल क़ैद, एक हज़ार रुपये जुरमाना और एक दर्जन बेंत तक की सज़ा दे सकेगा।

(२) हाकिम अदालत दीवानी सिविल जज कहलावेगा। वह नक़द रुपये के दावे एक हज़ार तक के सुन सकेगा। हक़ के मुक़दमों में एक सौ रुपये के मूल्य के दावे सिविल जज के यहां दायर होंगे। फ़ैसला सिविल जज राजसभा की मंज़ूरी से जारी होगा।

(३) हाकिम ज़िला केवल ढाई सौ रुपये के दावे सुन सकेगा और हक़ के मुक़दमे पच्चीस रुपये तक के उसके पास दायर हो सकेंगे। वह अपने यहां के मुक़दमे सिविल जज के द्वारा राजसभा में भेजेगा और उनकी अपील का हक़ न होगा।

(४) हाकिम ज़िला को तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट का अख़्तियार दिया जाता है। वह एक मास तक क़ैद और पच्चास रुपये तक जुरमाने की सज़ा अपने अधिकार से दे सकेगा।

उसी वर्ष वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९-१९००) में अल्प वर्षा होने से राजपूताने में भयङ्कर अकाल पड़ा और प्रतापगढ़ राज्य में केवल ग्यारह इंच ही वर्षा हुई, जिनसे अन्न और घास की पैदावारी कम हुई। इस अवसर पर महारावत ने अपने राज्य में मदद के कई कार्य जारी किये,

संवत् १९५६ का भयङ्कर अकाल

जिससे लोगों को बड़ा सहारा मिला। बच्चों और अशक्त क्षुधातुर व्यक्तियों के लिए जगह-जगह खैरातखाने खोले गये और वहां से उनको भोजन मिलने की व्यवस्था हुई। अकाल के समय राज्य ने उदारतापूर्वक लगान माफ़ कर दिया। बाहर से अन्न मंगवाया गया, जिससे लोगों को सस्ते भाव से अन्न मिलने लगा। फिर वर्ष समाप्त होने पर सुवर्षा हुई तब जिन लोगों के पास बीज और बैल न थे, उनको बीज तथा बैल आदि राज्य से दिलाये जाकर कृषि-कर्म में लगाया गया। इस भयङ्कर अकाल के समय महारावत ने लगभग पौने दो लाख रुपये व्यय किये, जिसके लिए अंग्रेज़ सरकार से रुपये कर्ज़ लेने पड़े।

इसमें संदेह नहीं कि अकाल के समय महारावत ने अपनी प्रजा की रक्षा के लिए समुचित व्यवस्था की, परंतु ग्रीष्म काल में हैज़े की भयानक व्याधि हुई और वर्षा ऋतु के पीछे ज्वर और पेचिश की व्याधियां उत्पन्न हो गईं, जिनसे सहस्रों मनुष्य मर गये। इसी प्रकार घास की कमी के कारण सहस्रों पशु मर गये, जिससे राज्य की बड़ी क्षति हुई।

गद्दीनशीनी के पूर्व महारावत के दो राजकुमार विद्यमान थे। उनमें से ज्येष्ठ प्रतापसिंह और छोटा मानसिंह था। महारावत के सिंहासनारोहण के समय प्रतापसिंह उत्तराधिकारी माना गया और राजकुमार मानसिंह के नाम पर अरणोद का ठिकाना रहा। महारावत की गद्दीनशीनी के थोड़े ही दिनों बाद (वि० सं० १९४७ द्वितीय भाद्रपद सुदि ५=ई० स० १८९० ता० १९ सितम्बर को) प्रतापसिंह परलोक सिधारा। इसलिए राज्य के उत्तराधिकारी पद पर महाराजकुमार मानसिंह स्थिर हुआ। फिर वि० सं० १९५७ भाद्रपद वदि १४ (ई० स० १९०० ता० २४ अगस्त) शुक्रवार को महारावत की खवास ठिकानेवाली तीसरी महाराणी के उदर से छोटे महाराजकुमार गोवर्धनसिंह का जन्म हुआ। वि० सं० १९५८ भाद्रपद वदि ७ (ई० स० १९०१ ता० ४ सितम्बर) को महारावत ने गोवर्धनसिंह

कुंवर गोवर्धनसिंह का जन्म और उसको अरणोद की जागीर मिलना

को अरणोद की जागीर प्रदान की और उसकी उपाधि "महाराज" हुई।

प्रतापगढ़ राज्य का वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९-१९००) के अकाल से तो छुटकारा ही नहीं हुआ था कि वि० सं० १९५८ (ई० स० १९०१) में पुनः अकाल के लक्षण दिखाई पड़े। उस वर्ष वर्षा औसत से आधी ही हुई, जिससे पैदावार थोड़ी हुई। राज्य ऋणग्रस्त था तथापि महारावत ने उस समय अपनी स्वाभाविक उदारता में अन्तर न आने दिया। प्रजा के निर्वाह के लिए इमदादी काम और निर्धन तथा अशक्त व्यक्तियों के लिए अन्नक्षेत्र खोले गये, जिससे पका-पकाया भोजन उनको मिलने लगा। बाइस हज़ार रुपये तक़ावी में बांटे गये और वर्षा होने पर बैल ख़रीदने तथा बीज बांटने में भी बहुत कुछ सहायता दी गई।

अकाल का पुनः आक्रमण

उसी वर्ष महाराजा बीकानेर-द्वारा बुलाये जाने पर ठाकुर रघुवीरसिंह ने अपने पद से इस्तीफ़ा पेश किया। तब महारावत ने उसके स्थान में अजमेर के बाबू गौरीशंकर वर्मा, बार-एट-लॉ को, जो महाराजकुमार मानसिंह का शिक्षक रह चुका था, कामदार नियत किया।

ठाकुर रघुवीरसिंह का कामदार-पद से पृथक् होना

उन दिनों महाराजकुमार मानसिंह की आयु सत्रह वर्ष के ऊपर हो गई थी। उसका विवाह-संबंध खेतड़ी (जयपुर) के विद्याप्रेमी नरेश राजा अजीतसिंह शेखावत की विदुषी राजकुमारी चांदकुंवरी (चंद्रकुमारी) के साथ होना स्थिर हुआ था। तदनुसार वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में उक्त राजकुमारी का पाणिग्रहण संस्कार महाराजकुमार मानसिंह के साथ बड़े समारोहपूर्वक हुआ। इस अवसर पर वहां के स्वामी जयसिंह की आयु केवल १० वर्ष थी तथापि बरात की अभ्यर्थना में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई।

महाराजकुमार मानसिंह का खेतड़ी में विवाह होना

महाराजकुमारी और महाराजकुमार के विवाह तथा वि० सं० १९५६ और १९५८ (ई० स० १८९९-१९०० एवं १९०१-२) के अकालों के कारण

४२

महारावत का अंग्रेज़ सरकार से ऋण लेकर क़र्ज़ चुकाना

राज्य ऋणग्रस्त हो गया था, जिसकी महारावत को बड़ी चिंता थी। महारावत ने राज्य को ऋण-मुक्त करने का संकल्प कर सारे अनावश्यक व्यय रोक दिये और अंग्रेज़ सरकार से चार लाख रुपये क़र्ज़ लेकर फुटकर लेनदारों के फ़ैसले सुविधानुसार करवा दिये, जिससे उनको भी विशेष हानि नहीं हुई और राज्य क़र्ज़दारों के तक़ाज़ों से मुक्त हो गया।

सालिमशाही के स्थान में कलदार का चलन होना

सालिमशाही रुपये का भाव वि० सं० १६५६ (ई० स० १८६६) के पीछे बहुत गिर गया था। इसके पूर्व उसके तेरह आने कलदार मिल जाते थे। अकाल के समय ग़ल्ला आदि खरीदने के लिए कलदार रुपयों की ज़रूरत रहने से सालिमशाही रुपये का भाव गिरता गया। यही नहीं, पड़ोसी राज्यों में भी जहां-जहां इस सिक्के का चलन था, वहां इसके स्थान में कलदार रुपयों का चलन हो गया, जिससे सालिमशाही का मूल्य साढ़े सात आने कलदार तक हो गया। इस प्रकार भाव घट जाने से प्रतापगढ़ राज्य की प्रजा को प्रत्येक वस्तु महंगी मिलने लगी। निदान महारावत ने भी अपने राज्य में सालिमशाही सिक्के के स्थान में कलदार सिक्का चलाने का विचार कर अंग्रेज़ सरकार से लिखा-पढ़ी आरंभ की। फलस्वरूप दो सौ रुपये सालिमशाही के सौ रुपये कलदार मिलना तय हुआ और डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि राज्यों ने भी इस भाव को स्वीकार किया। वि० सं० १६६० (ई० स० १६०४) में सर्वसाधारण को छः मास के भीतर सालिमशाही रुपये सरकारी खजाने में दाखिल कर उपर्युक्त भाव से कलदार रुपये लेने की आगाही कर दी गई। ई० स० १६०४ (वि० सं० १६६१) के मई मास तक जब सालिमशाही रुपये दाख़िल हो गये तब ता० ३० जून (आषाढ वदि ३) से उसका चलन बंद कर दिया गया और लेन-देन में कलदार रुपयों का चलन जारी हुआ। उसी समय से प्रतापगढ़ की टकसाल से सालिमशाही रुपये का बनना बंद हुआ और सिक्के बनाने के स्वत्व से राज्य को वंचित होना पड़ा। सिक्के के परिवर्तन

से काश्तकारों को जो हानि हुई, उसकी पूर्ति के लिए लगान में उचित कमी कर दी गई।

कलदार का चलन जारी करने में प्रजा को जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति करने के लिए राज्य को लगान आदि में बहुत कुछ कमी करनी पड़ी, जिससे आय आधी रह गई। अंग्रेज़ सरकार को प्रतापगढ़ राज्य से ख़िराज के वार्षिक ७२७०० सालिमशाही रुपये मिलते थे। उसके स्थान में वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) से वार्षिक ३६३५० कलदार रुपये देना स्थिर हुआ, जो नियमित रूप से प्रतापगढ़ राज्य अंग्रेज़ सरकार को देता है।

ख़िराज की रक़म में कमी होकर कलदार रक़म नियत होना

राज्य में पहले नाज-बंटाई के हिसाब से ज़मीन का लगान लिया जाता था, परंतु इसमें असुविधा अधिक होने से महारावत उदयसिंह के समय ख़ालसे के गांवों की साधारण रूप से चकबंदी होकर वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) में ठेके बांध दिये गये और हासिल में नक़द रक़म लेने की प्रणाली स्थिर हुई; परंतु यह व्यवस्था बहुत दिनों तक न चली। जब सालिमशाही रुपये का भाव बहुत गिर गया और कलदार का चलन आरंभ हुआ तो राज्य ने लगान की रक़म में ¼ कमी कर दी। वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०३) में ख़ालसे के गांवों की पैमाइश करना स्थिर हुआ। उस समय राज्य के ख़ालसे में कुल २३३ गांव थे, जिनमें से केवल ११४ की पैमाइश हुई। उनमें से दो गांव वीरान थे। शेष ११२ गांवों में से २४ दस वर्ष के लिए ठेके पर दिये गये और एक गांव इस्तमरारदारी के तरीक़े पर कर दिया गया। वि० सं० १९६३ (ई० स० १९०६) में लगान में संशोधन होकर आय के अनुसार ८७ गांवों की ठेके की रक़म पन्द्रह वर्ष के लिए नियत कर दी गई। मगरे ज़िले के ११९ गांवों में भीलों की आबादी थी—जिनकी स्थिति ख़राब थी, इसलिए वहां की पैमाइश न होकर दस वर्ष के लिए आय की औसत से उनका

ख़ालसे के गांवों की पैमाइश होकर ठेकाबंदी होना

ठेका भी बांध दिया गया। इससे राज्य को अनाज के बजाय लगान में नक़द रक़म मिलने लगी और कृषकों को सुविधा भी हो गई। यह सब कार्य-वाही वि० सं० १९६३ (ई० स० १९०७) तक समाप्त हो गई। उसी समय शिक्षा के प्रचार के लिए लगान के साथ एक आना प्रति रुपया ख़ालसा के काश्तकारों तथा इस्तमरारदारों से प्राप्त होनेवाली रक़म पर वसूल होना स्थिर हुआ और जागीरदारों तथा पावादारों से वसूल होनेवाली रक़म पर भी शिक्षा प्रचार के लिए आध आना प्रति रुपया नियत कर दिया गया।

प्लेग की भयङ्कर बीमारी होना

अकाल की आपत्ति से प्रतापगढ़ राज्य ने छुटकारा पाया ही नहीं था कि वि० सं० १९६० और १९६१ (ई० स० १९०३-४) में वहां प्लेग का भयङ्कर प्रकोप हुआ, जिसमें सैकड़ों घर जन-शून्य हो गये। इससे राज्य को बड़ी क्षति हुई, जो कई वर्षों तक पूरी न हो सकी।

महाराजकुमार मानसिंह को राज्याधिकार मिलना

उन दिनों महाराजकुमार मानसिंह शासन-कार्य चलाने के योग्य हो गया था। इसलिए वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में महारावत ने शासन के मुख्य-मुख्य अधिकार उक्त महाराजकुमार को सौंप दिये। महाराजकुमार मानसिंह ने अपने पिता से शासनाधिकार पाने के पीछे राज्य में बहुत कुछ सुधार किये, जिससे आर्थिक स्थिति संतोषप्रद होकर राज्य ऋणमुक्त हो गया। उक्त महाराजकुमार के जीवन-संबंधी संक्षिप्त वृत्तांत के साथ उसके द्वारा होनेवाले कार्यों का संक्षेप से उल्लेख करना यहां आवश्यक है—

महाराजकुमार मानसिंह का जन्म, महारावत रघुनाथसिंह के प्रताप-गढ़ का स्वामी होने के पूर्व, जब वह अरणोद का स्वामी था, उसकी खवास ठिकाने (अजमेर ज़िला) की राठोड़ राणी उगमकुंवरी के उदर से वि० सं० १९४३ चैत्र सुदि १० (ई० स० १८८६ ता० १३ अप्रेल) को हुआ था। महारावत रघु-नाथसिंह की गद्दीनशीनी के समय उसका ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह विद्यमान

था, इसलिए मानसिंह अरणोद का महाराज माना गया, किन्तु थोड़े ही दिनों बाद प्रतापसिंह काल कवलित हो गया। अतएव मानसिंह भावी उत्तराधिकारी के पद पर स्थिर हुआ तथापि बहुत दिनों तक अरणोद की जागीर उसके नाम पर बनी रही।

शिशुकाल समाप्त होने पर महारावत रघुनाथसिंह ने महाराजकुमार मानसिंह की शिक्षा की उचित व्यवस्था की। प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के अनुसार उसने महाराजकुमार की शिक्षा के लिए अच्छे-अच्छे पंडित और योग्य विद्वानों को रख उसे हिंदी और संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा दिलवाई। फिर अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। महाराजकुमार के साथ कुछ सरदारों के लड़के भी रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे, अतएव महारावत ने उनमें विद्यानुराग उत्पन्न करने के लिए 'पिन्हे नोबल्स स्कूल' की स्थापना की। तदनन्तर वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में वहां से वह (महाराजकुमार) अजमेर भेजा गया, जहां उसने मेयो कॉलेज में विद्याध्ययन कर डिप्लोमा तक की अंग्रेज़ी भाषा में उच्च शिक्षा प्राप्त की। अपने अध्यनकाल में वह बड़ा होनहार विद्यार्थी माना जाता था।

जैसा ऊपर लिखा गया है, वि० सं० १९५९ माघ वदि ५ (ई० स० १९०३ ता० १८ जनवरी) को उक्त महाराजकुमार का विवाह खेतड़ी के विद्याप्रेमी राजा अजीतसिंह[1] की विदुषी राजकुमारी और जयसिंह की

---

(१) खेतड़ी का स्वर्गीय राजा अजीतसिंह राजपूताने के तत्कालीन नरेशों में बड़ा ही विद्याप्रेमी और गुणग्राहक था। हिंदू धर्म की उच्चता को ध्यान में रखते हुए वह सदा उसकी उन्नति में दत्त-चित्त रहता था। उसने प्रसिद्ध स्वामी विवेकानंद के सत्संग से लाभ उठाकर बहुत कुछ ज्ञान वृद्धि की थी। जैसा वह विद्वान् था, वैसी ही उसकी संतति हुई और उसका पुत्र राजा जयसिंह भी बड़ा सुशील तथा होनहार था। जयसिंह ने अजमेर के मेयो कालेज में रहकर डिप्लोमा तक शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षण-काल में ही दुर्भाग्य से उसको राजयक्ष्मा रोग हो गया और उससे ही वि० सं० १९६६ (ई० स० १९१०) में वह उठती हुई जवानी में स्वर्गवासी हुआ। राजा अजीतसिंह की ज्येष्ठ राजकुमारी सूर्यकुंवरी शाहपुरा के स्वर्गीय राजाधिराज सर नाहरसिंह के ज्येष्ठ कुंवर उम्मेदसिंहजी (वर्तमान शाहपुराधीश) को ब्याही गई, पर

बहिन चंद्रकुंवरी के साथ संपन्न हुआ। वि० सं० १९६१ माघ वदि १० (ई० स० १९०५ ता० ४ फ़रवरी) को कुंवराणी शेखावत के उदर से पुत्र भी उत्पन्न हुआ; किन्तु वह थोड़े ही समय पीछे कालकवलित हो गया। फिर महारावत ने महाराजकुमार की शिक्षा समाप्त होने के पीछे उससे शासन-कार्य में योग लेना आरंभ किया और प्रारम्भ में शिक्षा, म्युनिसिपैलिटी, माफ़ी तथा भीतरी सीमा सम्बन्धी निर्णय के कार्य उसको सौंपे गये, जिनका उसने योग्यतापूर्वक सम्पादन किया।

शासन संबंधी उपर्युक्त अधिकार पाकर महाराजकुमार ने मनोयोग-पूर्वक उत्तरदायित्व का पालन किया और प्रत्येक कार्य में तत्परता दिखलाई, जिससे महारावत को उसकी योग्यता का विश्वास हो गया। इसपर महारावत ने अपना पिछला समय ईश्वर भक्ति में लगाने का विचार कर राज्य के कुछ मुख्य अधिकार अपने हाथ में रखकर बाक़ी सारा राज्य-कार्य वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में महाराजकुमार को सौंप दिया। उस समय राज्य ऋण-ग्रस्त था। महारावत के पुराने विचार का प्रेमी होने से राज्य की आर्थिक स्थिति सुधरने न पाई, इसलिए महाराजकुमार ने शासनाधिकार मिलते ही राज्य को ऋण-मुक्त करने और सालिमशाही सिक्के के परिवर्त्तन से आर्थिक स्थिति गिर रही थी, उसको सुधारने का दृढ़ संकल्प किया। खालसा के गांवों की पैमाइश का कार्य पूरा हो जाने पर लगान निश्चित कर दिया गया। इस ठेकेबंदी की योजना में शिक्षा-वृद्धि की भी पूरी गुंजाइश रखी गई थी, इस-

---

उसका भी असमय देहांत हो गया। उसका अमर स्मारक "सूर्यकुमारी ग्रंथमाला" है, जो काशी की नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होती है। अजीतसिंह की दूसरी राजकुमारी चांदकुंवरी विदुषी, कुशाग्रबुद्धि, सुशील, विनम्र और धर्मपरायण महिला है। प्रतापगढ़ राज्य की प्रजा उसके वात्सल्य प्रेम की सराहना करती है। उसकी कोख से वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी बहादुर का जन्म हुआ है, जो अपनी पूजनीय माता के पद-चिन्हों का अनुसरण करते हुए शासन-कार्य चलाते हैं और गंभीर विषयों में सदा राजमाता से परामर्श लेते हैं।

लिए गांवों में कई जगह शिक्षणालय खोले गये। राजधानी की पाठशाला में अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा देने का भी आयोजन किया गया तथा पिन्हे नोबल्स स्कूल का भी कार्य बढ़ाया जाकर उसके लिए छात्रावास बनाने की व्यवस्था हुई। जनता में ज्ञान का विकास करने के लिए प्रतापगढ़ में सरकारी बाग़ के भीतर कर्नल ए० टी० होम की स्मृति में 'होम लाइब्रेरी' स्थापित की गई। स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी कार्यों में भी उस समय समयानुसार उन्नति की गई एवं गमनागमन के मार्ग भी ठीक किये गये। पुलिस के महकमे का संगठन होकर उसमें होनेवाली ख़राबियों को रोका गया और आय-व्यय का बजट प्रतिवर्ष बनाने का सिलसिला भी आरंभ हुआ।

वि० सं० १९६५ चैत्र सुदि ११ (ई० स० १९०८ ता० १२ अप्रेल) रविवार को खेतड़ीवाली शेखावत कुंवराणी के उदर से महाराजकुमार के पुत्र रामसिंहजी का खेतड़ी में जन्म हुआ, जो प्रतापगढ़ के वर्तमान महारावत हैं। लगभग १०० वर्ष के पश्चात् प्रतापगढ़ राज्य में वहां के राजा के पौत्र उत्पन्न होने के शुभ अवसर पर वहां की प्रजा फूली न समाई। महारावत और महाराजकुमार ने इस अवसर पर अपनी स्वाभाविक उदारता में कमी न की। फिर उसी वर्ष महाराजकुमार ने काश्मीर की यात्रा की, जहां के तत्कालीन नरेश महाराजा सर प्रतापसिंह ने उसका बड़ा सम्मान किया और उससे उसकी कई मुलाक़ातें हुईं। तदनन्तर वह वहां की मनोहर छटा और दर्शनीय स्थानों का अवलोकन कर प्रतापगढ़ लौटा। इस यात्रा में उक्त महाराजकुमार ने वहां दो शेरों का शिकार भी किया था।

इसके एक वर्ष पीछे वि० सं० १९६६ (ई० स० १९०९) में महारावत की दूसरी राजकुमारी राजकुंवरी का विवाह सैलाना (मध्य भारत) के स्वर्गीय राजा जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ राजकुमार दिलीपसिंहजी (वर्तमान सैलाना नरेश) के साथ बड़े समारोहपूर्वक हुआ। उस समय तक राज्य ऋण-मुक्त नहीं हुआ था तो भी इस विवाह-कार्य में किसी प्रकार की त्रुटि पैदा न हुई।

वि० सं० १९६७ आश्विन सुदि ४ (ई० स० १९१० ता० ७ अक्टोबर) को महाराजकुमार की शेखावत कुंवराणी के उदर से महारावत के द्वितीय पौत्र का जन्म हुआ। उस अवसर पर महाराजकुमार की बनाई योजना के अनुसार महारावत ने अपने राज्य के चारण-भाटों, ब्राह्मणों तथा साधुओं से नज़राना लेने की प्रथा उठा दी, परंतु थोड़े ही दिनों बाद उक्त शिशु का देहांत हो गया।

उसी वर्ष आश्विन सुदि ९ (ता० १२ अक्टोबर) को महाराजकुमार मानसिंह का दूसरा विवाह टेहरी गढ़वाल के पंवार (परमार) राजा कीर्ति-शाह की राजकुमारी भुवनेश्वरीदेवी से हुआ, जिसके उदर से वि० सं० १९६८ श्रावण वदि १४ (ई० स० १९११ ता० २४ जुलाई) को राजकुमारी मोहनकुंवरी का जन्म हुआ।

वि० सं० १९६७ (ई० स० १९१०) में सम्राट् एडवर्ड सप्तम का लंदन में देहावसान हो जाने पर प्रिंस जॉर्ज, सम्राट् जॉर्ज पञ्चम के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। इस उपलक्ष्य में उक्त सम्राट् ने सम्राज्ञी-सहित वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) में भारत आकर दिल्ली नगर में राज्याभिषेकोत्सव का ता० १२ दिसंबर (पौष वदि ७) को बृहत् दरबार करना निश्चित किया। इस अवसर पर उक्त दरबार में सम्मिलित होने के लिए भारत के समस्त देशी नरेशों और प्रतिष्ठित पुरुषों के नाम तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिंज की तरफ़ से निमन्त्रण पत्र भेजे गये। प्रतापगढ़ में भी वाइसरॉय का निमन्त्रण पत्र पहुंचने पर महारावत की तरफ़ से महाराजकुमार मानसिंह ने कुछ सरदारों-सहित दिल्ली जाकर दर्बार में सम्मिलित होने और सम्राट् से साक्षात्कार करने का सम्मान प्राप्त किया तथा वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिंज से भी उसकी मुलाक़ात हुई। दिल्ली दरबार में महारावत सम्मिलित नहीं हुआ, तो भी सम्राट् की तरफ़ से इसके उपलक्ष्य में उसको के० सी० आई० ई० (नाइट कमांडर ऑव् दि इंडियन एम्पायर) की सम्माननीय उपाधि दिये जाने की भारत सरकार की ओर से सूचना प्रकाशित हुई।

इसके पीछे वि० सं० १९६९ (ई० स० १९१२) के नवंबर में भारत का वाइसरॉय और गवर्नर-जेनरल लॉर्ड हार्डिंज राजपूताने के राज्यों में भ्रमण करता हुआ अजमेर पहुंचा। उसने महारावत को भी वहां आने के लिए निमंत्रित किया। इसपर महाराजकुमार मानसिंह और कुछ सरदारों तथा राजकर्मचारियों के साथ महारावत अजमेर गया। रेल्वे स्टेशन पर अजमेर-मेरवाड़ा के कमिश्नर आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उसका स्वागत किया। फिर वाइसरॉय के आगमन के समय महारावत रेल्वे स्टेशन पर सरकारी अफ़सरों और रईसों के साथ स्वागत-समारोह में शरीक हुआ। अनन्तर वह महाराजकुमार तथा सरदारों आदि के साथ रेज़िडेंसी हाउस में वाइसरॉय से मुलाक़ात करने गया। वाइसरॉय ने भी वापसी की मुलाक़ात के लिए महारावत के निवास-स्थान बीकानेर हाउस (मेयो कॉलेज, अजमेर) में जाकर महारावत को के० सी० आई० ई० के तमगे से विभूषित किया। अजमेर में रहते समय महारावत की डूंगरपुर के स्वर्गीय महारावल विजयसिंह और शाहपुरा के राजाधिराज सर नाहरसिंह से भी मुलाक़ातें हुई। इस अवसर पर महारावत मेयो कॉलेज के पारितोषिक-वितरणोत्सव, किंग एडवर्ड मेमोरियल के शिलान्यासोत्सव, गार्डन पार्टी आदि में भी सम्मिलित हुआ था।

उसी वर्ष महाराजकुमार मानसिंह का तृतीय विवाह ध्रांगध्रा (काठियावाड़) के स्वर्गीय महाराजराणा अजीतसिंह की राजकुमारी और वर्तमान महाराजराणा घनश्यामसिंहजी की बहिन मयाकुंवरीबा से हुआ।

महारावत को राज्यासन पर बैठे हुए वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) के मई मास में चौबीस वर्ष समाप्त होकर पच्चीसवां आरंभ हुआ। महाराजकुमार के आग्रह से इस अवसर पर वहां रौप्य जयंती मनाना स्थिर होकर ता० १२ मई (वि० सं० १९७१ ज्येष्ठ वदि ३) को दरबार हुआ, जिसमें महारावत के समय के उल्लेखनीय कार्यों का वर्णन किया गया। उस समय महारावत ने कितने ही व्यक्तियों की तनख्वाहों तथा जागीरों में वृद्धि

की। घोड़ी-सागथली के ठाकुर बलवंतसिंह के ख़िराज में कमी की गई तथा नागदी के ठाकुर बख़्तावरसिंह, देवद के ठाकुर भोमसिंह और सेलारपुरा के ठाकुर गंभीरसिंह को ताज़ीम तथा पैर में स्वर्ण का कड़ा पहनने का सम्मान दिया गया। राज्य में निःशुल्क शिक्षा देने की आज्ञा होकर प्रजा से ली जानेवाली छोटी-छोटी लागतें माफ़ कर दी गईं। काश्तकारों के बक़ाया साठ हज़ार रुपये माफ़ कर दिये गये। ब्राह्मणों तथा अन्य व्यक्तियों को, जिन्होंने राज्य की अच्छी सेवा की थी, ज़मीन आदि दी जाकर कई व्यक्तियों को सिरोपाव आदि दिये गये। इस अवसर पर उसने अपने छोटे राजकुमार अरणोद के महाराज गोवर्धनसिंह को चंवर रखने का सम्मान प्रदान किया।

उन्हीं दिनों वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में यूरोप में महासमर छिड़ गया। अंग्रेज़-सरकार ने अपने मित्र बेल्जियम और फ्रांस की सरकारों का पक्ष लेकर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। चार वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अंत में जर्मनी की ओर से संधि का प्रस्ताव होने पर युद्ध बन्द हो गया और विजयी होने का श्रेय ब्रिटेन आदि मित्र राज्यों को मिला। इस युद्ध के समय महारावत और महाराजकुमार ने अंग्रेज़ सरकार के प्रति राज-भक्ति प्रकट करते हुए अपने राज्य के समस्त साधन सरकार को प्रदान करने की इच्छा प्रकट की और युद्ध के फ़ंडों तथा युद्ध-ऋण में भी राज्य की ओर से समयानुसार सहायताएं दी गईं।

वि० सं० १९७५ (ई० स० १९१८) में भारत में इन्फ़्लुएंज़ा का प्रबल आक्रमण हुआ, जिसमें सहस्रों मनुष्य काल के ग्रास हो गये। यों तो इस राज्य में वि० सं० १९६०-६१ (ई० स० १९०३-५) में प्लेग की बीमारी का वेग रहा था; परंतु उससे भी भयावह इन्फ्लुएंज़ा का प्रकोप रहा, जिससे सैकड़ों व्यक्तियों का प्राणान्त हुआ। तीन सप्ताह तक इस रोग का आक्रमण रहा और स्वयं महाराजकुमार मानसिंह इस रोग से पीड़ित हो गया। बहुत कुछ चिकित्सा कराने पर भी

उसको कोई लाभ नहीं हुआ और केवल ३२ वर्ष की आयु में वह कार्तिक वदि १० (ई० स० १९१८ ता० २९ अक्टोबर) को परलोक सिधारा।

महाराजकुमार मानसिंह, सुशिक्षित, विनम्र, दयालु और गुणग्राही राजकुमार था। कुल-परंपरागत उदारता का भी उसमें पूर्ण रूप से समावेश था। राज्य-प्रबंध को वह अपना मुख्य कर्त्तव्य समझकर अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से पालन करता था। प्रबंध-कुशल होने के कारण उसने तेरह वर्ष के थोड़े समय में ही प्रतापगढ़ राज्य की बहुत कुछ उन्नति कर राज्य को ऋण-मुक्त कर दिया और वहां की आर्थिक दशा भी सुधार दी। प्रजा के साथ उसका व्यवहार प्रशंसनीय था, जिससे राज्य की आय में वृद्धि होकर आर्थिक दशा दृढ़ हो गई। उसकी कार्य-शैली सुसंगठित थी। वह अपना कार्य नियमित रूप से पूरा करता था। उसकी शासन-प्रणाली से प्रजा को पूरा संतोष था और समय पर न्याय मिलने में कठिनाई न होती थी। अलवर, किशनगढ़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, नरसिंहगढ़, जामनगर, शाहपुरा, ध्रांगधरा, धौलपुर, काश्मीर आदि के नरेशों के साथ उसका मित्रता का व्यवहार था। प्रतापगढ़ के नरेशों का डूंगरपुर और बांसवाड़ा के नरेशों से वैयक्तिक विरोध होने के कारण वैमनस्य चला आता था, वह उस (महाराजकुमार) ने दूर कर दिया। डूंगरपुर के महारावल विजयसिंह (स्वर्गीय) का प्रथम विवाह वि० सं० १९६३ (ई० स० १९०७) में सैलाना के राजा जसवंतसिंह की राजकुमारी देवेन्द्रकुमारी के साथ होने पर वह उक्त महारावल की बारात में सम्मिलित होकर सैलाने गया और इसी प्रकार बांसवाड़ा के वर्त्तमान महारावल सर पृथ्वीसिंहजी को वि० सं० १९७० (ई० स० १९१३) में राज्याधिकार मिलने के अवसर पर जो दरबार हुआ उसमें सम्मिलित होकर उसने उक्त दोनों नरेशों के साथ अपनी मैत्री प्रकट की। उसका स्वभाव सरल और अभिमान-रहित था। अंग्रेज़ सरकार के प्रति उसका आचरण राज-भक्ति का रहा, जिससे बड़े-बड़े अंग्रेज़ अफ़सर उससे मिलकर प्रसन्न होते थे।

प्रायः देखा गया है कि राज्याधिकार मिल जाने पर परस्पर पिता-पुत्रों में भी वैमनस्य हो जाया करता है, परंतु महाराजकुमार मानसिंह बड़ा पितृ-भक्त रहा और अपने जीवन-काल में उसने इस सम्बन्ध में कभी अन्तर नहीं आने दिया। प्रतापगढ़ राज्य में इस समय जो शासन-व्यवस्था है उसका अधिकांश श्रेय उक्त महाराजकुमार को ही है और अब तक भी वह उसकी निर्दिष्ट शैली पर स्थिर है। वह यथासाध्य दीन-दुखियों के कष्टों को दूर करता, उनकी प्रार्थनाएं ध्यानपूर्वक सुनता और उन्हें हर तरह से आराम पहुंचाने की चेष्टा करता था। विद्या-व्यसनी होने से उसने कई विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दे अध्ययन के लिए बाहर भेजकर सदा उनको प्रोत्साहन दिया। उसकी मेधा-शक्ति अच्छी थी, जिससे राज्य-संबंधी प्रत्येक बात को वह सरलता से ग्रहण करता और जटिल से जटिल समस्या को भी थोड़े समय में सुलझा देता था। उसका अधिकांश समय राज्य-कार्य में ही व्यतीत होता था और पूर्ण परिश्रमपूर्वक राज-कार्य में योग देता था। प्रतापगढ़ राज्य को इस होनहार राजकुमार से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं और उसके द्वारा इस राज्य की अधिक से अधिक उन्नति की संभावना थी; परंतु उसका असमय ही स्वर्गवास हो गया। उसके विचार उदार और गंभीर थे। वह बन्दूक़ का निशाना लगाने में चतुर, अच्छा घुड़सवार और आखेट एवं घुड़दौड़ का शौक़ीन था। सनातन धर्म के प्रति उसकी असीम श्रद्धा थी और देहावसान के पूर्व उसकी शैव धर्म की ओर प्रवृत्ति बढ़ गई थी। उसको अपने पूर्वजों का बड़ा अभिमान था और प्रसिद्ध सीसोदिया वंश के गौरव को अक्षुण्ण रखने का वह सदा प्रयत्न करता था। वह व्यवहार-कुशल और दृढ़-प्रतिज्ञ था। उसका क़द मझला, वर्ण गेहुंआ, शरीर बलिष्ठ और मुखाकृति सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक थी। कोई भी व्यक्ति उससे यदि एक बार मिल लेता तो वह उसको न भूलता था और मिलनेवाले व्यक्ति पर उसके सौजन्य का अवश्य प्रभाव पड़ता था।

महाराजकुमार के तीन विवाह और दो संतति हुई, जिनका उल्लेख ऊपर आ गया है। उसकी दूसरी कुंवराणी भुवनेश्वरीदेवी का उसके जीवनकाल में ही वि० सं० १९७० श्रावण सुदि ८ (ई० स० १९१३ ता० ९ अगस्त) को देहांत हो गया। उसकी स्मृति में प्रतापगढ़ राजधानी में क़िले के बाहर "श्रीभुवनेश्वरी देवी ज़नाना हास्पिटल" नामक सुन्दर अस्पताल वर्तमान महारावतजी ने बनवा दिया है, जो बड़ा उपयोगी है और जिसके द्वारा उक्त कुंवराणी की कीर्ति दीर्घ काल तक बनी रहेगी। इस समय महाराजकुमार की ज्येष्ठ और तीसरी कुंवराणियां (शेखावत चांदकुंवरी और झाली मयाकुंवरीबा) विद्यमान हैं। उपर्युक्त दोनों महिलाएं अपने पति के समान ही विद्यानुरागिनी हैं। उनके द्वारा दीन-दुखियों और असहाय व्यक्तियों का सदा पोषण होता है। कुंवराणी शेखावत (वर्तमान राजमाता) ने अपने छोटे भाई खेतड़ी के राजा जयसिंह के शिक्षा-गुरु प्रसिद्ध विद्वान् पंडित चंद्रधर गुलेरी, बी० ए०[1] का असमय देहान्त

---

(१) पंडित चंद्रधर गुलेरी, बी० ए० सारस्वत ब्राह्मण था। पंजाब की तरफ़ से उसके पूर्वज राजपूताना में जयपुर चले गये और वहां के नरेशों के आश्रय में रहकर संस्कृत भाषा की सेवा करने लगे। उसका पिता शिवराम संस्कृत का योग्य विद्वान् था। वह वहां संस्कृत भाषा का प्रवर्त्तक माना जाता है। वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में पंडित शिवराम के पुत्र पं० चंद्रधर गुलेरी का जन्म हुआ। अपने वंश-गौरव के अनुरूप वह अंग्रेज़ी, हिंदी, संस्कृत आदि का उत्कृष्ट विद्वान् था। वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) में मैट्रिक और वि० सं १९६० (ई० स० १९०३) में उसने बी० ए० की परीक्षा सम्मान के साथ पास की। उसकी असाधारण योग्यता, कार्य-दक्षता, सच्चरित्रता एवं शोध की प्रवृत्ति से जयपुर राज्य के उच्चाधिकारियों का उसकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने उसको खेतड़ी के अल्पवयस्क राजा जयसिंह (स्वर्गीय) का शिक्षक नियत किया। उसने उक्त प्रतिभावान् राजा का जीवन सुन्दर सांचे में ढाला, जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। अनन्तर वह मेयो कॉलेज (अजमेर) के जयपुर हाउस में रहनेवाले छात्रों का निरीक्षक और मोतमिद नियत हुआ। उन्हीं दिनों उसकी योग्यता का अनुभव पाकर मेयो कॉलेज के अधिकारियों ने उसको वहां का हेड पंडित नियत किया। उसकी पाठनशैली, विद्वत्ता, सरलता और सौजन्यता का परिचय पाकर महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ने उससे

हो जाने पर उसकी स्त्री के भरण-पोषण की उचित व्यवस्था कर अपने निजी व्यय से उसके पुत्रों को कई वर्ष तक छात्रवृत्ति प्रदान कर विद्या-प्रेम और गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है। इसी प्रकार वह और भी कई व्यक्तियों का पोषण अपने निजी व्यय से करती है। वह बड़ी बुद्धिमती और उदार विचारयुक्त महिला है। उसके द्वारा ही प्रतापगढ़ राज्य में प्राचीन परिपाटियों और राज-रीति का संरक्षण हो रहा है तथा वह सदा महारावतजी को उत्तम सलाह देकर अपना कर्त्तव्य पालन करती है। कुंवराणी झाली मयाकुंवरीबा ने अपने पति की स्मृति को चिर-स्थायी बनाने के लिए प्रतापगढ़ में "मानसिंह कन्या पाठशाला" स्थापित की है और प्रतापगढ़ के क़िले में उसके नाम पर विष्णु का "मान मुरलीधर मंदिर" भी बनवाया है। उक्त मंदिर के व्यय के लिए वर्तमान महारावतजी ने कटकडी गांव भेंट किया है।

महाराजकुमार मानसिंह का परलोकवास होने के पीछे राज-कार्य पीछा महारावत को अपने हाथ में लेना पड़ा। उसने महाराजकुमार की शासन-नीति में फेर-फार न कर उसी शैली से शासन-व्यवस्था को स्थिर रखा। उस (महारावत)-के पिछले दस वर्षों में शिक्षा का क्षेत्र विस्तीर्ण किया गया, न्याय विभागों में अच्छे-अच्छे आदमी नियत कर वहां की त्रुटियां दूर की गईं; माल हासिल और आबपाशी के साधन बढ़ाये गये, जिससे आय में वृद्धि हुई; सीमा सम्बन्धी कई बड़े-बड़े झगड़े तय हुए; तमाम इलाक़े की पट्टेबंदी होकर ज़मीन के लगान में संशोधन किया गया और वि० सं० १९८२ (ई० स० १९२५) में लगान की दर निश्चित हुई, जिससे काश्तकारों के असंतोष में वृद्धि न हुई।

महारावत के समय के पिछले उल्लेखनीय कार्य

हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस की सेवा स्वीकार करने का आग्रह कर उसे वहां बुलवा लिया। वि० सं० १९७९ (ई० स० १९२२) में कुछ दिन ज्वर-ग्रस्त रहकर उसकी ३१ वर्ष की आयु में वहीं मृत्यु हुई। उसके असामयिक निधन से जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति होना कठिन है।

महाराजकुमार को अधिकार मिलने के पीछे प्रतापगढ़ राज्य के कामदार पद से मन्नालाल माचावत हट गया। तब वह पद तोड़ा जाकर सुजानमल बांठिया महाराजकुमार का सेक्रेटरी बनाया गया, जिसको केवल तामीली कार्यवाही करने का अधिकार था। महाराजकुमार की योजना के अनुसार उसके देहांत के पीछे कुछ वर्ष तक तो इसी प्रकार काम चला, परंतु सेक्रेटरी का पद उत्तरदायित्वपूर्ण न होने से शासन-कार्य को चलाने के लिए पुनः कामदार की नियुक्ति की आवश्यकता जान पड़ी। निदान वि० सं० १९७८ आषाढ वदि ११ (ई० स० १९२१ ता० १ जुलाई) को पारसी धनजीशाह कामदार नियत हुआ। उसके साथ ही इस पद के नाम में परिवर्त्तन होकर उक्त पदाधिकारी दीवान कहलाने लगा। उसके कार्यकाल में सालिमगढ़ गांव के संबंध में बांसवाड़ा राज्य के साथ जो सीमा का झगड़ा चल रहा था, उसका संतोषजनक निपटारा हो गया।

महारावत का कामदार, पद पर पारसी धनजीशाह को नियुक्त करना

वि० सं० १९८१ वैशाख सुदि १० (ई० स० १९२४ ता० १४ मई) को महारावत ने अपने पौत्र रामसिंह (वर्त्तमान महारावत) का विवाह सीकर के भूतपूर्व रावराजा माधवसिंह की राजकुमारी से बड़े समारोहपूर्वक किया। इस अवसर पर बीकानेर-नरेश महाराजा सर गंगासिंहजी, सैलाना के राजा दिलीपसिंहजी आदि भी सम्मिलित हुए। उन्हीं दिनों ग्वालियर का परलोकवासी महाराजा सर माधवराव सिंधिया भी देवलिया गया।

महारावत के भंवर रामसिंह का विवाह

इसके दो वर्ष पीछे महारावत ने अंग्रेज़ सरकार के साथ वि० सं० १९८३ (ई० स० १९२६) में एक अहदनामा किया, जिसके अनुसार प्रतिवर्ष अंग्रेज़ी तोल की ५८० मन अफ़ीम दस और ग्यारह रुपये प्रति सेर के भाव से लेना अंग्रेज़ सरकार ने तय किया।

अफीम की खरीद के बारे में अंग्रेज सरकार से बातचीत होना

महारावत रघुनाथसिंह का ३६ वर्ष राज्य करने के पश्चात् वि० सं० १६८५ पौष सुदि ८ (ई० स० १६२६ ता० १८ जनवरी) को ७० वर्ष की आयु में निमोनिया की बीमारी से स्वर्गवास हुआ। वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी ने सर जेम्स रॉबर्ट्स (देवास सीनियर, मध्य भारत का प्रधान मन्त्री और सिविल सर्जन) जैसे प्रसिद्ध और बड़े-बड़े योग्य डाक्टर तथा वैद्यों को बुलवाकर महारावत की चिकित्सा कराई, परन्तु कुछ लाभ न हुआ और देवलिया के राज-महलों में भगवान रामचंद्र के चित्र की तरफ़ दृष्टि रखते हुए उसका जीवन-दीप बुझ गया।

महारावत की बीमारी और परलोकवास

महारावत रघुनाथसिंह के तीन विवाह हुए थे। उनमें से दो अरणोद के महाराज की अवस्था में और एक गद्दीनशीनी के बाद वि० सं० १६४८ फाल्गुन वदि ७ (ई० स० १८६२ ता० ५ मार्च) को हुआ। उसकी इन तीन राणियों में से ज्येष्ठ उगमकुंवरी खवास ठिकाने (अजमेर ज़िला) के राठोड़ ठाकुर महीपालसिंह की पुत्री और शार्दूलसिंह की पौत्री थी, जिसका वि० सं० १६४८ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १८६१ ता० ६ दिसंबर) को देहावसान हुआ। उक्त महाराणी के उदर से क्रमशः महाराजकुमार प्रतापसिंह, राजकुमारी वल्लभकुंवरी और महाराजकुमार मानसिंह अरणोद में ही उत्पन्न हुए। राजकुमारी वल्लभकुंवरी का विवाह वर्तमान महाराजा साहब बीकानेर से हुआ, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। उक्त राजकुमारी के उदर से महाराकुमार शार्दूलसिंह का जन्म हुआ, जो बीकानेर का युवराज है और बहुत शांत-चित्त, गंभीर और होनहार पुरुष है। उक्त राजकुमारी का वि० सं० १६६३ भाद्रपद वदि ३० (ई० स० १६०६ ता० १६ अगस्त) को परलोकवास हो गया। दूसरी महाराणी केसरकुंवरी सेमलिया (मध्य भारत का सैलाना राज्य) के महाराज भवानीसिंह की पुत्री और नाहरसिंह की पौत्री थी। इस राणी का देहांत भी महारावत की विद्यमानता में वि० सं० १६६५ वैशाख वदि १२ (ई० स० १६०८ ता० २८ अप्रेल) मंगलवार को हो गया। उक्त राणी ने

महारावत की राणियां और संतति

देवलिया के राजमहलों के अन्तःपुर में रसिकबिहारी का मंदिर बनवाया। तीसरी राणी व्रजकुंवरी (ज्येष्ठ राणी उगमकुंवरी की बहिन) से महारावत का विवाह वि० सं० १९४८ फाल्गुन वदि ७ (ई० स० १८९२ ता० २० फ़रवरी) को हुआ, जो अभी विद्यमान है और अपने पति महारावत रघुनाथसिंह के देहावसान के बाद से ही अपने पुत्र महाराज गोवर्धनसिंह के साथ अरणोद में रहती है। उसके उदर से राजकुमारी राजकुंवरी और गोवर्धनसिंह का जन्म हुआ। विवाह से थोड़े समय बाद ही वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) में राजकुंवरी का देहांत हो गया।

महारावत के समय के लोकोपयोगी कार्य

महारावत रघुनाथसिंह के समय में बहुत से लोकोपयोगी कार्य हुए। उसके समय में मौखिक कार्यवाहियों का अन्त होकर व्यवस्थित रूप से शासन-प्रणाली स्थिर हुई। उसके समय में ही वहां शिक्षा का विकास हुआ और राजधानी प्रतापगढ़ में अंग्रेज़ी भाषा की मैट्रिक तक शिक्षा दी जाने लगी। गांवों में भी उसके समय में ही शिक्षणालय खुले। राजधानी में बालिकाओं को शिक्षा देने की भी उसके समय में व्यवस्था हुई। संस्कृत भाषा के प्रति अनुराग होने से उसने वि० सं० १९८२ (ई० स० १९२५) में "रघुनाथ संस्कृत पाठशाला" की स्थापना करवाई, जो अब भी ठीक-ठीक चल रही है। इस पाठशाला में वेदांत, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष तथा कर्मकांड की शिक्षा दी जाती है और साहित्य तथा ज्योतिष में आचार्य तक की उच्च परीक्षा वहां से दिलाई जाती है। क्षत्रिय जाति के उत्थान के लिए उनमें शिक्षा का प्रसार करने का समुचित प्रयत्न किया गया और क्षत्रिय कुमारों के प्रतापगढ़ में रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रावास बना दिया गया एवं राज्य में निःशुल्क शिक्षा देने की पद्धति जारी हुई। उसके राज्य के प्रारंभिक समय में वहां वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) के लगभग क्षत्रिय जाति में सामाजिक कुप्रथाओं में सुधार करने के लिए कर्नल सी० के० एम० वाल्टर (एजेंट गवर्नर जेनरल, राजपूताना) के नाम पर "वाल्टर-कृत राजपुत्र-हितकारिणी-सभा" की एक शाखा स्थापित हुई, जिससे

क्षत्रिय जाति का हित होकर विवाह तथा गमी के अवसर पर होनेवाला अपव्यय रुक गया। फिर भी अभी इस विषय में बहुत कुछ सुधार की गुंजाइश है। प्रतापगढ़ राज्य में चिकित्सालयों का भी उसके समय में ही विस्तार हुआ और प्रतापगढ़ तथा देवलिया में अंग्रेज़ी पद्धति पर चिकित्सा करने के लिए वहां चिकित्सालय के भवन निर्माण किये गये। अंग्रेज़ी औषध ग्रहण न करनेवाले व्यक्तियों की आयुर्वेदोक्त रीति से चिकित्सा कराने के लिए महारावत के नाम पर महाराजकुमार मानसिंह ने "रघुनाथ औषधालय" स्थापित किया। उक्त महाराजकुमार के परलोकवास के पीछे वहां अव्यवस्था होने लगी, इसपर महारावत ने उधर ध्यान देकर उसको सुव्यवस्थित बनाया। उसके समय में रजिस्ट्री, स्टाम्प आदि के क़ानून जारी हुए। गांवों में डाक पहुंचाने की भी उसके समय में सुव्यवस्था हुई। प्रतापगढ़ से मंद-सोर तक सड़क बनवाने के अतिरिक्त गांवों में भी कई जगह के मार्ग ठीक बनवाये गये। पुलिस का भी उसके समय में अच्छा प्रबंध रहा और कई बड़े-बड़े उपद्रवी भील पकड़े गये, जिससे अंग्रेज़-सरकार की उसपर प्रसन्नता रही। महारावत ने देवलिया के पुराने महलों का, जीर्णोद्धार करवाकर वहां कुछ नये महल बनवाये। कई स्थानों पर तालाब, कुएं आदि बनवाने के अतिरिक्त कितने ही नये भवन भी बनवाये गये। भिक्षुकों के लिए महारावत ने अपने यहां सदाव्रत भी जारी किया। उसके समय में प्रतापगढ़ में एक छापाखाना भी खोला गया, जो "रघुनाथ यंत्रालय" के नाम से प्रसिद्ध है।

महारावत रघुनाथसिंह शांत, सदाचारी और उदार शासक था। वह अपनी प्रजा से प्रेम करता और प्रजा भी उसको पितृ-तुल्य मानती थी।

महारावत का व्यक्तित्व

उसकी शासन-शैली प्राचीन होने पर भी उसके विचार उदार थे। वह प्रजा की प्रार्थनाओं को सुनकर उनको सन्तुष्ट करने का सदा प्रयत्न करता था। वह मृदुभाषी, पूर्ण ईश्वर-भक्त, धैर्यवान और कष्ट-सहिष्णु था। सब धर्मों के प्रति

उसका समान व्यवहार था। उसका आचरण शुद्ध और चित्त-वृत्ति निष्कपट थी। वह विद्वानों की क़द्र करता तथा उन्हें समय-समय पर पारितोषिक आदि देकर सम्मानित करता था। वह पुराने कर्मचारियों की सलाहों का सदा आदर करता और अपने राज्य के उच्च पदों पर विशेषतः स्वदेश-वासियों को ही नियुक्त करता था। उनकी सेवाओं को स्मरण कर वह उन्हें सदा प्रोत्साहन देता रहता था, जिससे वे अपने कर्त्तव्य से विमुख न होते थे। अनाथ विधवाओं और बालकों की रक्षा का उसे सदैव ध्यान रहता था। मितव्ययी होने पर भी वह ऐसे कार्यों में अपने राज्य की स्थिति के अनुसार दान देने में संकोच नहीं करता था। उसके उत्तम आचरण से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय पर उसकी सज्जनता की छाप जम जाती थी। सामान्य पढ़ा-लिखा होने पर भी विद्या के प्रति उसको अनुराग था। भाषा-काव्य का कुछ ज्ञान होने से वह कभी-कभी स्वयं भी काव्य-रचना किया करता था। चारण और भाट कवियों की कविता सुनने का उसको अनुराग था और वह उनको अपना आश्रय देने में गौरव समझता था। उसको अपने वंश की उच्चता का पूर्ण अभिमान था। निरभिमानी होने से वह किसी से बातचीत करने में संकोच नहीं करता था। राजकीय गंभीर विषयों पर उसको सदा अपने कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता था। उसके अधीनस्थ सरदार संतुष्ट थे; क्योंकि वह उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार उनका आदर करता था। वह पुराने ठिकानों को बनाये रखने की परिपाटी को पसंद करता था। इसलिए रायपुर का ठिकाना वहां के ठाकुर रत्नसिंह के वि० सं० १९७२ (ई० स० १९१५) में निःसंतान देहांत होने के पीछे ज़ब्ती के लायक़ होने पर भी महारावत ने दुलहसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को उस (रत्नसिंह) का उत्तराधिकारी निर्वाचित कर अपनी उदारता का परिचय दिया। उसने कई राजपूत सरदारों को जागीर में नये गांव, भूमि आदि देकर, कई को ताज़ीम और स्वर्ण के पाद-भूषण से भी सम्मानित किया एवं कुछ सरदारों का खिराज भी कम कर दिया, जिससे उसके दीर्घ शासन-काल में सरदारों

को विरोध करने का अवसर नहीं मिला। वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में महारावत के रुग्ण होने पर अजमेर के सुप्रसिद्ध राजवैद्य पंडित रामदयालु शर्मा और उसके दत्तक-पुत्र लोकप्रिय डाक्टर अंबालाल (दाधीच) आयुर्वेदशास्त्री ने सुचारु रूप से चिकित्सा कर महारावत को रोग-मुक्त कर दिया। इसपर महारावत ने उक्त राजवैद्य को पैर में स्वर्ण-भूषण पहिनने का वंशपरंपरा के लिए सम्मान प्रदान किया। इसके कुछ दिनों बाद महारावत के पौत्र भंवर रामसिंह (वर्तमान महारावत) के भी राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित होने के आसार दृष्टिगोचर होने पर उसकी चिकित्सा भी उपर्युक्त पिता-पुत्र ने बड़ी लगन के साथ की, जिससे वह सर्वथा रोग-मुक्त हो गया। इसपर प्रसन्न होकर महारावत ने उनको सदा के लिए अपना चिकित्सक नियत कर "राजवैद्य" की पदवी के साथ जागीर में वार्षिक एक सहस्र रुपये कलदार की आय का कीटखेड़ी गांव वंशपरंपरा के लिए वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२६) में प्रदान किया। उसने राजपूत सरदारों के अतिरिक्त अन्य कई व्यक्तियों को भी उनकी सेवाओं के एवज़ में भूमि तथा गांव पुण्य एवं जागीर में दिये। सेमलखेड़ी गांव उसने देवलिया-स्थित ठाकुर युगलकिशोर और श्रीनाथजी के मंदिरों को भेंट किया। प्रतापगढ़ के नरेशों के पुरोहित आमेटा जाति के ब्राह्मण हैं और यहां इस जाति में दीर्घकाल से संस्कृत भाषा का ज्ञान चला आता है। महारावत ने पुरोहित-पद का सम्मान बढ़ाने के लिए अपने पुरोहित रेवाशंकर को ताज़ीम का सम्मान दिया[1] और आदित्यगिरि नामक गोसाईं को, जो चारण जाति का था और भाषा-काव्य में अच्छी रचना करता था, अपने यहां रखकर आश्रय प्रदान किया। अजमेर में गोशाला बनाने के लिए एक बड़ी

(१) प्रतापगढ़ के नरेशों के अधिकतर दानपत्र उपर्युक्त पुरोहित रेवाशङ्कर के यहां से ही प्राप्त हुए हैं, जिससे पाया जाता है कि दीर्घकाल से उसके घर में पुरोहिताई का पद चला आता है। प्रसिद्ध है कि महारावत विक्रमसिंह के मेवाड़ की बड़ी सादड़ी की जागीर छोड़कर देवलिया में निवास करने पर उसके साथ उस (रेवाशङ्कर) के पूर्वज चले गये थे और तब से अब तक बराबर पुरोहिताई का पद उसके कुटुम्ब में ही विद्यमान है।

रक़म देकर उसके कुंवर मानसिंह ने भी अच्छी उदारता प्रकट की। भगवान् रामचंद्र का उपासक होने से वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) में उसने राममंत्र का अनुष्ठान करवाकर एक यज्ञ भी करवाया था। उसके शासन के कुछ वर्षों में राजकुमार और राजकुमारियों के विवाह, सालिमशाही सिक्के का परिवर्त्तन, अकाल तथा व्यापार में कमी होने से प्रतापगढ़ राज्य की आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी, किंतु महाराजकुमार ने स्थिति को संभाल लिया। भोले स्वभाव का होने से वह कभी-कभी स्वार्थी पुरुषों के चक्कर में भी पड़ जाया करता था। प्रतापगढ़ राज्य में स्त्री-शिक्षा का प्रचार उसके समय में ही हुआ। संस्कृत भाषा की उन्नति का अभिलाषी होने से अपनी राजकुमारी राजकुंवरी को उसने संस्कृत की शिक्षा दिलवाई तथा इस कार्य के लिए वैष्णव कृष्णदास[1] (आमेटा ब्राह्मण) को नियत किया, जो पूर्ण सदाचारी और निःस्पृह व्यक्ति था। उसका अंग्रेज़-सरकार तथा अंग्रेज़ अफ़सरों के साथ सदा अच्छा व्यवहार रहा। भारत के कई प्रमुख नरेशों से उसकी मित्रता थी, जो उसका आदर करते थे। विशाल-हृदय होने से अपने सेवकों का अपराध अक्षम्य होने पर भी वह उनको क्षमा कर देता और उनके द्वारा हानि होने पर भी वह उनपर कभी क्रुद्ध न होता तथा छोटे से छोटे व्यक्ति से भी तुच्छता से पेश नहीं आता था। उसका क़द ठिंगना, शरीर पुष्ट, आंखें छोटी, मुंह गोल और उसपर चेचक के कुछ दाग़ थे।

---

(१) वैष्णव कृष्णदास संस्कृत भाषा का अच्छा विद्वान् था। उसने "मयूरेश-मंदार" नामक काव्य की रचना कर उसमें प्रतापगढ़ के नरेशों का बहुत कुछ वर्णन किया है। उसका पुत्र पंडित जगन्नाथ शास्त्री है, जो संस्कृत भाषा और ज्योतिष का उत्कृष्ट विद्वान् है। उसने "हरिभूषणमहाकाव्य" और प्रतापगढ़ के महारावत जसवंतसिंह तथा प्रतापसिंह-रचित दोहों का संग्रह कर अलग-अलग संपादन किया है, जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है। प्रतापगढ़ राज्य के इस इतिहास के लिखने में उक्त राज्य की तरफ़ से जो सामग्री भेजी गई, उसको एकत्रित करने का श्रेय भी जगन्नाथ शास्त्री को ही है।

महारावत सर रामसिंहजी

महारावत सर रामसिंहजी बहादुर, के० सी० एस० आई० का जन्म वि० सं० १९६५ चैत्र सुदि १२ (ई० स० १९०८ ता० १२ अप्रेल) रविवार को महाराजकुमार मानसिंह की कुंवराणी शेखावत चांदकुंवरी के उदर से खेतड़ी में हुआ और वि० सं० १९८५ पौष सुदि ८ (ई० स० १९२९ ता० १८ जनवरी) को ये अपने पितामह महारावत रघुनाथसिंह का देहावसान होने पर प्रतापगढ़ राज्य के स्वामी हुए।

जन्म और गद्दीनशीनी

बाल्यकाल समाप्त होने पर योग्य पुरुषों के निरीक्षण में इनकी प्रारंभिक शिक्षा प्रतापगढ़ में ही हुई। इसी बीच इनके पिता महाराजकुमार मानसिंह का परलोकवास हो गया तथापि इनके शिक्षण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा और ये वि० सं० १९७६ के मार्गशीर्ष (ई० स० १९१९ नवंबर) मास में उच्च शिक्षा के लिए अजमेर के मेयो कॉलेज में भेजे गये। उस समय इनका शिक्षक मौलवी सय्यद गफ़्फार और अभिभावक सी० सी० एच० टुइस नामक अंग्रेज़ बनाये गये, जिनकी देख-रेख में इनको अपनी बुद्धि के विकास का अच्छा अवसर मिला। वि० सं० १९७६ से १९८५ (ई० स० १९१९ से १९२८) तक इन्होंने वहां विद्याध्ययन किया और वहां की सर्वोच्च परीक्षा पोस्ट-डिप्लोमा को पास करने की भी इनकी इच्छा थी, परन्तु अपने पितामह महारावत रघुनाथसिंह का शरीर अस्वस्थ रहने और फिर उसका स्वर्गवास हो जाने के कारण राजकार्य का बोझ आ पड़ने से इन्हें अपना वह विचार छोड़ना पड़ा। प्रखर-बुद्धि और प्रतिभाशाली होने के कारण अपने अध्ययनकाल में ये प्रत्येक कक्षा में सदा प्रथम रहा करते थे, जिससे इनको कई पुरस्कार भी मिले, जिसका श्रेय इनके शिक्षक मिस्टर एफ़० ए० लेस्ली जोन्स आदि को है।

शिक्षा

सिंहासनासीन होने के समय इनकी आयु इक्कीस वर्ष के ऊपर हो गई थी, अतएव अंग्रेज़ सरकार को उस समय वहां रीजेंसी कौंसिल बनाने

अंग्रेज़ सरकार की तरफ से गद्दीनशीनी की ख़िलअत प्राप्त होना

की आवश्यकता नहीं हुई। फिर अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से राजपूताने का स्थानापन्न एजेंट गवर्नर-जेनरल मिस्टर ए० एन० एल० केटर तथा दक्षिणी राजपूताने का पोलिटिकल एजेन्ट लेफ्टनेंट कर्नल डी० एम्० फ़ील्ड आदि प्रतापगढ़ गये और वि० सं० १९८६ वैशाख सुदि ६ (ई० स० १९२९ ता० १४ मई) को एक बड़े दरबार में उन्होंने महारावत के सम्मुख वाइसरॉय लॉर्ड इर्विन का ता० २० मार्च (वि० सं० १९८५ फाल्गुन सुदि १०) का खरीता पढ़ सुनाया एवं उसे गद्दीनशीनी की ख़िलअत प्रदान की।

मंत्री-पद पर एफ़० सी० केवेन्टरी की नियुक्ति

तदनंतर महारावत ने शासन-कार्य चलाने के लिए मिस्टर एफ़० सी० केवेन्टरी नामक अंग्रेज़ मंत्री नियत किया और उसके परामर्श के अनुसार शासन-कार्य चलाने लगे, परन्तु शासन शैली पूर्व निर्दिष्ट ही रखी।

राजकुमारी मोहनकुंवरी का विवाह

उसी वर्ष मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १९२९ ता० २ दिसम्बर) को इन्होंने अपनी छोटी बहिन राजकुमारी मोहनकुंवरी का विवाह सीतामऊ-नरेश राजा सर रामसिंहजी के ज्येष्ठ राजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०[1] के साथ किया।

---

(१) राजपूताना तथा सेंट्रल इंडिया के वर्तमान राजकुमारों में सीतामऊ के सुयोग्य महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह का विद्याभिरुचि के कारण सर्वोच्च स्थान है। खोज और अन्वेषण के कार्यों से उसको अत्यन्त अनुराग है और वह निरन्तर इन कार्यों में व्यस्त रहता है। उसने थोड़े ही समय में अपने गंभीर अध्ययन-द्वारा साक्षर वर्ग में पूर्ण ख्याति प्राप्त की है। समय-समय पर उसके कई निबन्ध सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। इतिहास उसका प्रिय विषय है और उसकी रचनाओं में 'मालवा में युगान्तर' नामक पुस्तक वहां के इतिहास पर नूतन प्रकाश डालती है। उसके बृहत् पुस्तकालय में अनेक अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थ, मुग़लकाल के हिंदी, फ़ारसी और उर्दू भाषा के पत्र-पत्रादि विद्यमान हैं, जिनका उसने पूर्ण परिश्रम से और अगाध द्रव्य व्यय कर संग्रह किया है। जयपुर राज्य से प्राप्त मुग़ल-काल के अख़बारों का बृहत् संग्रह भी उसने अपने यहां एकत्रित कर लिया है, जो उस समय के इतिहास के लिए

शासन-सूत्र हाथ में लेने के पीछे प्रतापगढ़ राज्य में इनके द्वारा कई लोक-हितकारी कार्य हुए। राज्य में शिक्षा की वृद्धि के लिए प्रतापगढ़ के "पिन्हे नोबल्स स्कूल" को हाई स्कूल के रूप में परिवर्तित कर सर्व साधारण की उच्च शिक्षा-प्राप्ति का सुलभ साधन कर दिया गया है और हाई स्कूल में विज्ञान की शिक्षा देने की व्यवस्था कर उसमें दो नवीन भवन बनवाकर इमारत भी बढ़ा दी गई है। प्रारंभिक शिक्षा के लिए वहां पृथक् प्राइमरी स्कूल स्थापित हो गया है। गांवों में कई स्थलों पर नवीन पाठशालाएं खोली जाकर ग्रामीण जनता को शिक्षा का लाभ उठाने का पूरा अवसर दिया गया है। राजधानी प्रतागढ़ में अपनी विमाता मयाकुंवरी-द्वारा निर्मित "मानसिंह कन्या पाठशाला" की भी इनके समय में पूरी उन्नति हुई है। प्रतापगढ़ की कन्या-पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करनेवाली राजपूत बालिकाओं के लिए उसके पिछले भाग में एक बोर्डिंग हाउस भी बना दिया गया है। स्त्रियों की चिकित्सा के लिए वहां पर कोई खास प्रबन्ध न होने से इन्होंने अपनी विमाता भुवनेश्वरीदेवी के नाम पर "श्रीभुवनेश्वरीदेवी ज़नाना अस्पताल" बनवा दिया है। ग्रामीण प्रजा की चिकित्सा के लिए ट्रैवेलिंग वैद्य नियत कर दिये गये हैं, जो गांव-गांव जाकर पीड़ितों को मुफ़्त औषध बांटते हैं। गांवों की जनता के हित की दृष्टि से वहां पंचायतों की स्थापना कर ग्राम-सुधार का कार्य आरंभ किया गया है। कृषि की उन्नति के लिए कृषि का महकमा स्थापित कर मुफ़्त बीज देने की व्यवस्था

लोक-हितकारी कार्य

उपयोगी है और उससे तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति पर भी पूरा प्रकाश पड़ेगा। वह बड़ा सरल और निरभिमानी पुरुष है। साक्षर वर्ग के लिए उसके यहां जाकर अध्ययन करने का मार्ग खुला हुआ है। प्रतापगढ़ राज्य के इस इतिहास की रचना के समय मुझे उक्त महाराजकुमार से मुग़ल-काल के कुछ अख़बारों का खुलासा प्राप्त हुआ है। आशा है कि उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और लगन से भविष्य में ऐतिहासिक जगत् को बहुत कुछ लाभ होगा। उसके उपर्युक्त प्रतापगढ़ की राजकुमारी मोहनकुंवरी के उदर से एक पुत्र और दो कन्याएं उत्पन्न हुई हैं।

की गई है। कई वर्षों से किसानों पर माल हासिल का ऋण चढ़ा हुआ था, जिसे चुकाने में वे असमर्थ थे। वि० सं० १९९४ (ई० स० १९३७) में इन्होंने सब पुराना बक़ाया माफ़ कर दिया। लोगों को नागरिकता के अधिकार देने के लिए प्रतापगढ़ की म्युनिसिपेलिटी में चुने हुए मेंबर लेने की भी महारावत के राज्य-काल में व्यवस्था हो गई है। बेगार लेना इन्होंने अपने राज्य में बंद कर दिया है। गमनागमन की कठिनाइयों को मिटाने के लिए महारावतजी ने अपने राज्य में मोटरें चलने लायक़ मार्ग बनवा दिये हैं, जिससे ग्रामीण जनता को अकाल के समय खाद्य पदार्थ सुगमतापूर्वक मिलने का साधन हो गया है। व्यापार की वृद्धि के लिए इन्होंने अपने राज्य से वागड़ में जानेवाले माल का दाण (चुंगी, कर) लौटाने की आज्ञा दे दी है। महारावत को उद्योग और धंधों की वृद्धि करने का चाव है। प्रतापगढ़ में जिनिंग फ़ैक्टरी स्थापित हो गई है और बिजली की रोशनी पहुंचाने का भी आयोजन हो गया है।

न्याय-विभाग में राजसभा के अतिरिक्त हाई कोर्ट और बना दिया गया है, जिसमें सेशन जज के ऊपर के तमाम मुक़दमे सुने जाते हैं और नीचे की अदालतों की अपील भी वहीं होती है। राज्य के पुराने मुलाज़िमो को पेंशन देने का नियम न था, परंतु महारावतजी ने उनकी सेवाओं आदि को देख योग्यता के अनुसार पेंशन देने का भी सिलसिला जारी किया है। शिक्षा-विभाग में शिक्षकों के लिए प्रॉविडेन्ड फ़ंड क़ायम कर दिया गया है। इन्होंने नवरात्रि पर होनेवाली जीव-हिंसा और होली के अवसर पर होनेवाले अहेड़े के शिकार को रोककर अहिंसा-प्रेम का परिचय दिया है। हिंदी भाषा के प्रति प्रेम होने से महारावत ने राज-भाषा हिंदी ही रक्खी है।

अंग्रेज़ सरकार के साथ महारावत का अच्छा व्यवहार है। इस राज्य की ओर से अंग्रेज़-सरकार को खिराज की जो रक़म दी जाती थी, वह अधिक होने से उक्त सरकार ने उसमें पांच प्रतिशत कमी कर दी है और कैश कंट्रिब्यूशन के

खिराज में कमी होना

नाम से २७५०० रुपये कलदार प्रतिवर्ष ई० स० १९३७ से लेना स्थिर किया है।

वि० सं० १९९१ (ई० स० १९३४) में बमोतर में समस्त भारतवर्षीय जैन दिगम्बर समुदाय का एक बृहत् सम्मेलन हुआ, जिसमें लगभग बीस सहस्र आदमी एकत्र हुए। उस समय महारावतजी ने उक्त सम्मेलन में भाग लेकर अहिंसा के कार्यों को प्रोत्साहन दिया। इनके उत्तम व्यवहार और उदार विचारों से प्रेरित होकर उक्त सम्मेलन में इनका दिगम्बर समुदाय की तरफ़ से बड़ा स्वागत किया गया और उन्होंने स्वर्ण के चौखटे में जड़ा हुआ अभिनंदन पत्र भेंट कर इनकी प्रजा-प्रियता पर हर्ष प्रकट करते हुए राजभक्ति प्रकट की। इसपर महारावत ने अपनी प्रजा की इच्छा को ध्यान में रखते हुए फाल्गुन सुदि ८ और १४ को अपने राज्य में जीव-हिंसा बंद रखने की आज्ञा निकाल दी है।

दिगंबर जैन सम्मेलन की ओर से महारावत को अभिनंदन पत्र मिलना

इनके मित्रतापूर्ण व्यवहार और अंग्रेज़-सरकार के प्रति उत्तम आचरण की पोलिटिकल अफ़सरों ने समय-समय पर प्रशंसा की है।

सम्राट् जॉर्ज षष्ठ ने वि० सं० १९९४ (ई० स० १९३८) में नवीन वर्ष के उपाधिवितरणोत्सव पर इनको के० सी० एस० आई० (नाइट कमांडर ऑव् दि स्टार ऑव् इंडिया) का उच्च खिताब दिया। इसकी सूचना प्राप्त होने पर वि० सं० १९९५ (ई० स० १९३८) में ये दिल्ली गये, जहां भारत के वॉइसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने इनको उक्त खिताब के तमग़े से विभूषित किया।

सम्राट् जॉर्ज की ओर से महारावत को खिताब मिलना

प्रधान मंत्री एफ़० सी० केवेन्टरी के पद-त्याग करने पर इन्होंने राव साहब शाह चुन्नीलाल एम० शर्राफ़ को वि० सं० १९९० (ई० स० १९३३) में दीवान के पद पर नियत किया था। उसके पृथक् होने पर इन्होंने अपने पुश्तैनी कर्मचारी शाह माणकलाल पाडलिया, बी० ए०, एल-एल० बी० से अस्थायी रूप से लगभग दो वर्ष तक यह कार्य लिया।

मंत्री पद पर महारावत का राजा त्रिभुवनदास को नियत करना

उसकी कार्यशैली और सरलता से वहां के निवासी संतुष्ट रहे। वि० सं० १९९६ (ई० स० १९४०) से इस पद पर राजा त्रिभुवनदास, एम० ए० नियत किया गया है, जो अनुभवी, कार्यकुशल तथा कर्तव्यपरायण व्यक्ति है और गुजरात की तरफ़ की देशी रियासतों में ऐसे दायित्वपूर्ण पदों पर काम कर चुका है।

विवाह और संतति

महारावत सर रामसिंहजी के तीन विवाह हुए हैं। उनमें से ज्येष्ठ शेखावत महाराणी सीकर के रावराजा माधवसिंह की पुत्री थी। उक्त महाराणी के उदर से महाराजकुमारी देवेन्द्रकुंवरी का वि० सं० १९८१ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १९२५ ता० १६ फ़रवरी) को जन्म हुआ और उसके पश्चात् क्रमशः उसके तीन कुंवरियां और उत्पन्न हुईं; किन्तु वे तीनों ही कालकवलित हो गईं तथा उक्त महाराणी का भी वि० सं० १९८७ पौष सुदि १४ (ई० स० १९३० ता० १६ दिसम्बर) को देहांत हो गया। इसपर महारावतजी का द्वितीय विवाह डुमरांव (बिहार) के महाराजा सर केशवप्रसादसिंह, सी० बी० ई० की राजकुमारी मेघराजकुंवरी से वि० सं० १९८९ चैत्र सुदि १५ (ई० स० १९३२ ता० २० अप्रेल) को हुआ, जिसके उदर से महाराजकुमारी इंद्र-कुंवरी का वि० सं० १९९० वैशाख वदि ७ (ई० स० १९३३ ता० १६ अप्रेल), उर्मिलाकुंवरी का वि० सं० १९९४ श्रावण वदि १२ (ई० स० १९३७ ता० ४ अगस्त) और कुसुमकुंवरी एवं कुमुदकुंवरी दोनों का वि० सं० १९९६ प्रथम श्रावण सुदि १ (ई० स० १९३९ ता० १७ जुलाई) सोमवार को जन्म हुआ है। उपर्युक्त दोनों विवाहों से एक भी राजकुमार का जन्म न होने के कारण महारावतजी ने अपना तीसरा विवाह काठियावाड़ के अन्तर्गत ध्रांगधरा के मेजर महाराजा सर घनश्यामसिंहजी, जी० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आई० की पुत्री महेंद्रकुंवरी से वि० सं० १९९१ द्वितीय वैशाख सुदि ३ (ई० स० १९३४ ता० १६ मई) को किया, जिससे भी प्रथम एक राजकुमारी यशवंतकुंवरी का वि० सं० १९९४ फाल्गुन वदि १० (ई० स० १९३८ ता० २४ फ़रवरी) को जन्म हुआ।

इस प्रकार महारावत के अन्तःपुर में निरन्तर राजकुमारियां ही उत्पन्न होने से वहां की प्रजा चिंतित थी; किन्तु ईश्वर की कृपा से वि० सं० १९९६ फाल्गुन सुदि ८ (ई० स० १९४० ता० १७ मार्च) को महारावत की ध्रांगधरावाली तृतीय महाराणी के उदर से महाराजकुमार का जन्म हुआ, जिसका समाचार पाते ही राज्य के हितचिन्तकों का चित्त प्रफुल्लित हो गया। महारावत ने इस समाचार के मिलने पर समयोचित उदारताएं प्रकट कीं। प्रतापगढ़ के समस्त ब्राह्मणों को राज्य की तरफ़ से भोजन कराया गया और विजयराघवजी आदि के मन्दिरों में अपनी तरफ़ से भेंट-पूजा कराने के उपरान्त राज्य के समग्र कर्मचारियों को एक मास का वेतन पुरस्कार में प्रदान किया गया।

महारावतजी की जीवन-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें

महारावत सर रामसिंहजी उदार-प्रकृति और नये विचारों के नरेश हैं। स्वभाव इनका सरल है। दयालुता के साथ विनय-शीलता की मात्रा भी इनमें विद्यमान है, जिससे सहज में ही ये लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। भावनाएं इनकी विशुद्ध हैं। प्रजा के स्वास्थ्य की उन्नति और विद्या के प्रसार की ओर इनका पूरा ध्यान है। संगीत और शिल्प तथा चित्रकला से इन्हें अनुराग है। जन्तु-शास्त्र में ये स्वयं बहुत कुछ गति रखते हैं। प्रतापगढ़ के बंगले में, जहां महारावतजी और राजपरिवार का निवास है, इन्होंने एक जन्तुशाला बना रखी है। हिंसक जंतुओं में शेर, चीते एवं सुअर आदि के शिकार की तरफ़ इनकी अधिक रुचि है। कई शेरों को अब तक ये अपनी बंदूक का निशाना बना चुके हैं। हिंदू धर्म तथा संस्कृति पर इनकी पूरी आस्था है और ये तदनुसार आचरण करने का सदा प्रयत्न करते हैं। इनकी प्रजा का इनपर पूरा विश्वास है और उनके प्रति इनका अच्छा व्यवहार होने से उन्हें इनसे भविष्य में बड़ी-बड़ी आशाएं हैं। उपर्युक्त प्रतापगढ़ के बंगले में इन्होंने बहुत कुछ सुधार कराकर उसका विस्तार बढ़ाने के अतिरिक्त वहां एक रमणीय उद्यान लगवा दिया है। उद्योग धन्धों की वृद्धि की ओर भी इनकी अधिक रुचि

है। साथ ही समयानुसार शासन-व्यवस्था को उन्नत बनाकर प्रजा का हित-साधन करने की भी इनकी अभिलाषा रहती है। भारत के कई बड़े-बड़े नरेशों और अंग्रेज़ अफ़सरों के साथ इनका मित्रता का व्यवहार है। विद्वानों और गुणज्ञों से ये प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं और उनका उचित सम्मान भी करते हैं। ये बड़े मातृ-भक्त हैं और सदा अपनी माता शेखावत के सत्परामर्श को ग्रहण करते हैं। राज्य में डाकेज़नी अब बहुत कुछ बन्द हो गई है और राज्य ऋणग्रस्त नहीं है।

ये चेम्बर ऑव् प्रिंसेज़ (नरेन्द्र मण्डल) के सदस्य हैं और प्रायः वहां के अधिवेशनों में भी सम्मिलित होकर भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त ये मेयोकॉलेज अजमेर की प्रबन्धकारिणी समिति के मेम्बर और बाहर की कई अन्य संस्थाओं के सहायक हैं। वर्तमान यूरोप के युद्ध के आरंभिक समय में इन्होंने अंग्रेज़ सरकार के प्रति राज-भक्ति प्रकट करते हुए दस सहस्र रुपये और बाद में ५०० पाउण्ड दिये हैं। अपने सामन्तवर्ग, राज-कर्मचारियों आदि के साथ इनका अच्छा व्यवहार है। पारसी सेठ फ़ीरोज़शाह को उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इन्होंने बरखेड़ा गांव जागीर में दिया है और इसी प्रकार अन्य कई व्यक्तियों को भी समय-समय पर गांव, भूमि, मकान आदि जागीर तथा पुण्य में दिये हैं। महारावतजी की माता शेखावत चांदकुंवरी ने अपने पति स्वर्गीय महाराजकुमार मानसिंह की स्मृति स्थाई रखने के लिए उसके नाम पर "युवराज मानसिंह अनाथालय" का शिलान्यास बीकानेर के महाराजकुमार शार्दूलसिंह-द्वारा ता० १५ दिसम्बर ई० सन् १६४० को करवाया है।

इनका क़द मझला, वर्ण गेहुंआ और शरीर की गठन सुडौल है। हिंसक-जंतुओं के शिकार के समय ये कठिन से कठिन परिश्रम करते हुए भी नहीं थकते हैं।

सातवां अध्याय

प्रतापगढ़ राज्य के सरदार और प्रतिष्ठित कर्मचारी

सरदार

राजपूताना के अन्य राज्यों की भांति प्रतापगढ़ राज्य की अधिकांश भूमि भी सरदारों में बंटी हुई है। उनके अतिरिक्त कुछ कर्मचारियों को भी राज्य की तरफ़ से जागीरें दी गई हैं। देवमंदिरों, ब्राह्मणों, चारणों और रावों को भी कई गांव और भूमि नरेशों की ओर से दी गई है, जिसकी गणना माफ़ी में होती है। राजपूत-सरदारों को जागीर के एवज़ में खुद और सवार तथा पैदलों से राज्य की सेवा करनी पड़ती है एवं उनसे कुछ रक़म "टांका" अर्थात् ख़िराज के नाम से ली जाती है। सरदारों की नौकरी का कोई समय और सवार-सिपाहियों की संख्या का यहां पर कोई क्रम नहीं है। जितने सवार-सिपाही राज्य से मांगे जावें, उनके साथ हाज़िर होकर जब तक उनको रुख़सत न दी जावे तब तक नौकरी देने के लिए वे प्रत्येक समय तैयार रहते हैं।

राजपूत जागीरदारों के वहां तीन दर्जे हैं। पहले दर्जे के जागीरदार नगारबंद अर्थात् उमराव कहलाते हैं, दूसरे दर्जे के जागीदार ताज़ीमी और तीसरे दर्जे के जागीरदार ग़ैरताज़ीमी कहलाते हैं।

इस राज्य में जागीरदारों को जो जागीरें आदि दी गई हैं, वे वंश-परंपरागत उनके उत्तराधिकारियों के अधिकार में रहती है। राजपूत जागीरदारों में से अधिकांश को भाईबंट में एवं कितनेक को उनकी अच्छी सेवाओं के उपलक्ष में तथा बाहर से आकर रहने पर निर्वाह के लिए

जागीरें दी गई हैं। वहां के अधिकांश सरदार महारावत के सगोत्री सीसोदिया[1] राजपूत हैं और दूसरे थोड़े। प्रथम वर्ग के सरदारों को ताज़ीम के अतिरिक्त नक़ारा, निशान और पैर में स्वर्ण-भूषण पहिनने आदि का सम्मान प्राप्त है। उनकी संख्या इस समय ११ है। उनमें महारावत के निकट संबंधियों में अरणोद का ठिकाना भी है। दूसरे दर्जे के जागीरदारों में कई पुराने और कुछ नये ठिकाने हैं। महारावत दलपतसिंह से वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी तक उनमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है।

ठिकानेदार अपनी जागीर किसी को रेहन अथवा बै नहीं कर सकते और न अपनी जागीर का कोई भाग दूसरों को दान में दे सकते हैं। उत्तराधिकारी के अभाव में वे बिना राज्य की आज्ञा के दत्तक पुत्र नहीं रख सकते हैं। प्रथम वर्ग के सब सरदार सीसोदिया हैं। उनकी प्रतिष्ठा भाइयों के समान है एवं उनको दीवानी तथा फ़ौजदारी मुक़दमों के सुनने का भी अधिकार दिया गया है। जब नवीन सरदार ठिकाने पर नियत होता है, तब राज्य में उससे तलवारबंदी का नज़राना लिया जाता है। इसके अतिरिक्त महारावत की गद्दीनशीनी, विवाह आदि के अवसरों पर भी सरदारों के नज़राना वग़ैरा दाख़िल करने का प्राचीन रिवाज है।

महारावत के निकट सम्बन्धी

अरणोद

अरणोद के स्वामी महारावत सालिमसिंह के छोटे पुत्र लालसिंह के वंशधर हैं[1]। उनकी उपाधि "महाराज" है।

लालसिंह का वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में जन्म हुआ था। फिर महारावत सामन्तसिंह ने उस(लालसिंह)को अपने छोटे भाई के तरीक़े

---

(१) वंशक्रम—[१] लालसिंह [२] अर्जुनसिंह [३] ख़ुशहालसिंह [४] रघुनाथसिंह और [५] गोवर्धनसिंह।

पर अरणोद की जागीर दी। उसने अरणोद के पट्टे में अपने नाम पर लालपुरा गांव बसाकर वहां गढ़ बनवाया, जो लालगढ़ कहलाता है। वि० सं० १८८६ (ई० स० १८२६) में लालसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र अर्जुनसिंह वहां का स्वामी हुआ, जिसका जन्म वि० सं० १८७६ (ई० स० १८१६) में हुआ था। अर्जुनसिंह का वि० सं० १९११ (ई० स० १८५४) में देहांत हुआ। तब उसका पुत्र खुशहालसिंह वहां का महाराज हुआ, परंतु वह कुछ वर्ष ही जीवित रहा और वि० सं० १९१४ चैत्र वदि ११ (ई० स० १८५८ ता० ११ मार्च) को परलोक सिधारा। तदनंतर उसके स्थान पर उसका बालक पुत्र रघुनाथसिंह अरणोद का स्वामी बना।

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८९०) में प्रतापगढ़ के स्वामी महारावत उदयसिंह का निःसंतान देहांत होने पर अरणोद से महाराज रघुनाथसिंह गोद जाकर प्रतापगढ़ की गद्दी पर बैठा। उस समय उसके दो कुंवर प्रतापसिंह और मानसिंह विद्यमान थे। रघुनाथसिंह के गद्दी बैठने पर प्रतापसिंह पाटवी राजकुमार माना गया और अरणोद की जागीर मानसिंह के नाम पर रखी गई। इसके थोड़े ही समय बाद प्रतापसिंह की मृत्यु हो गई। तब मानसिंह युवराज बनाया गया। वि० सं० १९५७ भाद्रपद वदि द्वितीय १४ (ई० स० १९०० ता० २४ अगस्त) को महारावत रघुनाथसिंह के छोटे कुंवर गोवर्धनसिंह का जन्म होने पर महारावत ने वि० सं० १९५८ भाद्रपद वदि ७ (ई० स० १९०१ ता० ४ सितंबर) को गोवर्धनसिंह को अरणोद की जागीर प्रदान की और उस (गोवर्धनसिंह) की उपाधि "महाराज" हुई। महाराज गोवर्धनसिंह ने अजमेर के मेयो कॉलेज में डिप्लोमा तक अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा प्राप्त की है। वह व्यवहार-कुशल व्यक्ति है। महारावत रघुनाथसिंह के समय उसको चंवर रखने का सम्मान प्राप्त हुआ। उस (गोवर्धनसिंह) के दो पुत्र—गोपालसिंह और भीमसिंह—हैं, जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

प्रथम वर्ग के सरदार

धमोतर

धमोतर के सरदार महारावत सूरजमल के छोटे पुत्र सैंसमल (सहसमल) के वंशधर हैं[1] और वे सिंहावत (सहसावत) कहलाते हैं। उनकी उपाधि "ठाकुर" है। इस राज्य में इस ठिकाने की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और आय में भी इस ठिकाने के बराबर दूसरा कोई ठिकाना नहीं है।

ख्यातों में लिखा है कि सैंसमल उदयपुर के महाराणाओं की सेवा में रहता था, इसलिए वहां से उसको नींबाहेड़ा और खोडीप की जागीर मिली और वह महाराणा की तरफ़ से युद्ध करता हुआ काम आया। तदनंतर उसका पुत्र कांधल वहां का स्वामी हुआ, जो मेवाड़ छोड़कर महारावत विक्रमसिंह (बीका) के साथ कांठल में गया और वहां उसका प्रभुत्व स्थिर करने में सदा उस (विक्रमसिंह) का साथी रहा। इसपर उसको वहां से धमोतर का पट्टा जागीर में मिला। बादशाह अकबर के समय आंबेर (जयपुर राज्य) के कछवाहा कुंवर मानसिंह ने उदयपुर के महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) पर चढ़ाई की, उस समय देवलिया से महाराणा की सहायतार्थ जो सेना गई, उसमें ठाकुर कांधल भी था और वह हल्दीघाटी के युद्ध-क्षेत्र में शाही सेना से वीरतापूर्वक लड़कर काम आया। कांधल का पुत्र गोपालदास था, जो बांसवाड़ा के महारावल की सहायतार्थ किसी युद्ध में लड़कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। गोपालदास के

(१) वंशक्रम—[१] सैंसमल [२] कांधल [३] गोपालदास [४] जोधसिंह [५] जोगीदास [६] जसकरण [७] पृथ्वीराज (पृथ्वीसिंह) [८] फ़तहसिंह [९] कुबेरसिंह [१०] कल्याणसिंह [११] नाथूराम (नाथूसिंह) [१२] हरीसिंह [१३] मोहकमसिंह [१४] रोड़सिंह [१५] हंमीरसिंह [१६] केसरीसिंह [१७] हिंदूसिंह और [१८] दयालसिंह।

पुत्र जोधसिंह और पूरा[1] हुए। उदयपुर के महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के समय देवलिया के महारावत जसवन्तसिंह को कुंवर महासिंह-सहित उक्त महाराणा ने अपनी सेना भेज चंपा बाग़ में मरवा डाला और देवलिया पर भी सेना भेज अधिकार कर लिया। उस समय जोधसिंह महारावत जसवंतसिंह के दूसरे पुत्र हरिसिंह को लेकर बादशाह शाहजहां के दरबार में गया और महारावत का देवलिया आदि पर अधिकार कराने में प्रयत्न-शील रहा। फिर बादशाह ने सेना भेजकर महारावत हरिसिंह का देवलिया पर अधिकार करा दिया। जोधसिंह की वि० सं० १७०३ (ई० स० १६४६) में मृत्यु हुई[2]। तदनंतर उसका पुत्र जोगीदास धमोतर का स्वामी हुआ। उसने धमोतर में लक्ष्मीनारायण का मंदिर और गढ़ में महल आदि बनवाये। उसका छोटा भाई भोगीदास था, जिसने देवलिया में एक बावड़ी बनवाई, जो भोगीदास की बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध है[3]।

जोगीदास का पुत्र जसकरण[4] और पौत्र पृथ्वीराज हुआ। पृथ्वी-

---

(१) पूरा के नाम से पूरावत शाखा चली। प्रतापगढ़ राज्य में इस समय पूरावतों का जाजली का ठिकाना प्रथम वर्ग में और बरखेड़ी द्वितीय वर्ग में है, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा।

(२) धमोतर में तालाब के किनारे ठाकुर जोधसिंह का स्मारक चबूतरा बना हुआ है, जिसपर वि० सं० १७०३ शाके १५६८ मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० स० १६४६ ता० २६ नवम्बर) को उसका देहान्त होने और उसके साथ उसकी राठोड़ पत्नी के सती होने का उल्लेख है।

(३) कल्याण कवि-रचित "प्रताप-प्रशस्ति" नामक खंडित काव्य से ठाकुर जोगीदास का महारावत हरिसिंह का समकालीन होना प्रकट है। उक्त प्रशस्ति में उस-(जोगीदास)के छोटे भाई भोगीदास की धार्मिकता आदि का वर्णन है। देवलिया में भोगीदास की बनवाई हुई बावड़ी के समीप उसका स्मारक चबुतरा बना हुआ है, जिसपर उस (भोगीदास)की वि० सं० १७३६ आषाढ़ वदि ३ (ई० स० १६७९ ता० १६ जून) को मृत्यु होने का उल्लेख है।

(४) ठाकुर जसकरण का भी उपर्युक्त "प्रताप-प्रशस्ति" में वर्णन है और उसमें उसको महारावत प्रतापसिंह का सामन्त बतलाते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है।

राज की वि० सं० १७७७ (ई० स० १७२०) में मृत्यु हुई। उसने वहां तालाब की पाल बनवाई। उसके पीछे फ़तहसिंह[1] और फिर उसका पुत्र

धमोतर के ठाकुरों के दग्ध-स्थान में ठाकुर जसकरण की स्मारक छत्री बनी हुई है, जिसमें उसका वि० सं० १७७१ भाद्रपद सुदि १५ (ई० स० १७१४ ता० १२ सितम्बर) को देहान्त होने, उसके साथ उसकी पत्नी राठोड़ आसकुवरी के सती होने और उस (जसकरण)के पुत्र पृथ्वीराज-द्वारा ६२५१ रुपये लगाकर उस छत्री के बनवाये जाने का उल्लेख है।

(१) ख्यातों में लिखा है कि कल्याणपुरा के ठाकुर फ़तहसिंह का ज्येष्ठ पुत्र भगवतसिंह महारावत गोपालसिंह का बड़ा कृपापात्र था। उस(भगवतसिंह)ने धमोतर के ठाकुर फ़तहसिंह के विरुद्ध महारावत को बहकाया, जिससे धमोतरवालों से महारावत अप्रसन्न रहने लगा। इस बात का पता पाकर धमोतर के ठाकुर फ़तहसिंह ने भगवतसिंह को मरवा डाला, जिससे महारावत की उसपर अधिक नाराज़गी हो गई। वि० सं० १७७९ (ई० स० १७२२) में धमोतर का ठाकुर फ़तहसिंह मर गया और उसके पीछे उसका पुत्र कुबेरसिंह वहां का स्वामी बना, जिससे उसके चाचा कल्याणसिंह ने धमोतर छीन लिया। परस्पर के द्वेष का यह अच्छा अवसर देख महारावत ने धमोतर के ठिकाने को राज्याधिकार में कर लिया। इसपर वहां के हक़दार होलकर की सेना को मददगार बनाकर चढ़ा लाये। महारावत की तरफ़ से भी मुक़ाबला हुआ और यह बखेड़ा चलता रहा। उन्हीं दिनों महारावत गोपालसिंह का देहान्त हो गया और उसका कुंवर सालिमसिंह सिंहसनारूढ़ हुआ। उस समय उपर्युक्त भगवतसिंह के छोटे भाई दौलतसिंह ने उस(सालिमसिंह)से निवेदन किया कि इस पारस्परिक संघर्ष में व्यर्थ ही शक्ति का ह्रास होगा, इसलिए होलकर की सेना को धमोतर से व्यय दिलाकर विदा कर दिया जावे और धमोतर पीछा वहांवालों को दे दिया जाय। महारावत-द्वारा स्वीकृति मिलने पर दौलतसिंह दूसरे पक्ष और होलकर के सेनापति से मिला तथा बात तय हो जाने पर तीन लाख रुपये दिलवाकर उसने उक्त सेना को लौटा दिया। उस समय एक लाख रुपये तो धमोतरवालों ने नक़द दे दिये और दो लाख का रुक्का लिखने पर राज्य ने दिये, जिसकी वसूली तक धमोतर पर महारावत का अधिकार रहा और जब सब रुपये वसूल हो गये तो उक्त ठिकाना वहांवालों को महारावत ने दे दिया। दौलतसिंह की इस सेवा के बदले में महारावत ने प्रसन्न होकर देवद की जागीर उसे प्रदान की; परन्तु भगवतसिंह को मरवा डालने का धमोतर और कल्याणपुरावालों के बीच वैर बना ही रहा, जिसकी सफ़ाई धमोतर के ठाकुर केसरीसिंह ने कल्याणपुरा के ठाकुर तख़्तसिंह से कर पुराना वैमनस्य मिटा दिया।

कुबेरसिंह वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३२) में धमोतर का स्वामी हुआ, किंतु कुबेरसिंह के हाथ से धमोतर निकल गया और वहां उसका पितृव्य कल्याणसिंह (फ़तहसिंह का छोटा भाई) अधिकार कर बैठा, जिसकी वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) में मृत्यु हुई। तदनंतर नाथूराम, हरिसिंह, मोहकमसिंह और रोड़सिंह क्रमशः धमोतर के ठाकुर हुए। रोड़सिंह का वि० सं० १६०५ (ई० स० १८४८) में देहांत हुआ। उसके तीन पुत्र हंमीरसिंह, गंभीरसिंह, और भवानीसिंह हुए।

ठाकुर हंमीरसिंह की बहिन गुलाबकुंवरी का विवाह अहमदनगर-(ईडर राज्य) के स्वामी महाराज तख़्तसिंह के साथ हुआ था, जिसके उदर से जसवंतसिंह का जन्म हुआ। इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण तख़्तसिंह ने महाराजा मानसिंह की मृत्यु हो जाने पर (वि० सं० १६०० = ई० स० १८४३ में) जोधपुर की गद्दी पर बैठने के बाद हंमीरसिंह के छोटे भाई गंभीरसिंह को बुला लिया और जागीर में झालामंड का ठिकाना दिया। जोधपुर का स्वामी होने के पीछे भी वि० सं० १६०३ (ई० स० १८४६) में तख़्तसिंह का एक विवाह ठाकुर हंमीरसिंह के कुटुंबी लक्ष्मणसिंह[1] की पुत्री उदयकुंवरी के साथ हुआ था। फिर तख़्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके कुंवर जसवन्तसिंह ने जोधपुर राज्य का स्वामी होने पर अपने मामा हंमीरसिंह को जोधपुर बुलाकर ताज़ीम, बांहपसाव, एक चंवर और पालकी-(पीनस) में बैठने की प्रतिष्ठा देकर अपने दाहिने पार्श्व में बैठने का सम्मान दिया। हंमीरसिंह निःसंतान था, इसलिए उसके छोटे भाई गंभीरसिंह का पुत्र केसरीसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। केसरीसिंह के दो पुत्र हिंदूसिंह और पृथ्वीसिंह हुए, जिनमें से हिंदूसिंह वि० सं० १६५०

---

(१) लक्ष्मणसिंह धमोतर के ठाकुर हरिसिंह के छोटे पुत्र वीरमदेव का बेटा था। उस(लक्ष्मणसिंह)की पौत्री और दलेलसिंह की पुत्री प्रतापकुंवरी का विवाह जोधपुर के महाराजा तख़्तसिंह के पुत्र बहादुरसिंह के साथ वि० सं० १६२४ (ई० स० १८६७) में हुआ था। इस प्रसङ्ग से महाराजा जसवन्तसिंह ने वि० सं० १६३३ (ई० स० १८७६) में उसको भी पैर में स्वर्णाभूषण पहिनने की प्रतिष्ठा दी थी।

(ई० स० १८६३) में धमोतर का ठाकुर हुआ। उस(हिन्दूसिंह)की वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में मृत्यु होने पर उसका पुत्र दयालसिंह वहां का स्वामी हुआ, जो धमोतर का वर्तमान सरदार है। उसने अजमेर के मेयो कॉलेज में डिप्लोमा तक की शिक्षा प्राप्त की है।

कल्याणपुरा

इस ठिकाने के स्वामी महारावत सूरजमल के छोटे पुत्र रणमल के वंशधर हैं[1] और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

रणमल को उदयपुर के महाराणाओं की तरफ़ से मेवाड़ में भैरवी की जागीर मिली थी और वह उनकी सेवा में रहता हुआ बूंदी की सीमा पर मारा गया। फिर उसके पुत्रों में से सुरतानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। सुरतानसिंह की जागीर में उदयपुर राज्य की ओर से करजू का पट्टा भी रहा था। वह महारावत विक्रमसिंह(बीका) के मेवाड़ त्याग करने पर उसके साथ चला गया और कांठल के मीणों का दमन कर उधर का प्रदेश विजय करने में उसने उक्त महारावत को अच्छी सहायता दी। इस-पर महारावत विक्रमसिंह ने उसको ढोढरिया आदि २२ गांव अपनी ओर से जागीर में दिये। सुरतानसिंह के पीछे चंद्रभाण तथा अक्षयराज क्रमशः पैतृक संपत्ति के अधिकारी हुए और वे देवलिया में जागीर मिल जाने पर मेवाड़ में न रहकर वहां रहने लगे। इसपर मेवाड़-राज्य ने अपने यहां की दी हुई जागीर ज़ब्त कर ली। अक्षयराज का पुत्र राघवदास और उसका कल्याणदास हुआ, जिसने अपने नाम से कल्याणपुरा बसाकर अपने ठिकाने का नाम कल्याणपुरा रखा। फिर रणछोड़दास वहां का ठाकुर

---

(१) वंशक्रम—[१] रणमल [२] सुरतानसिंह [३] चन्द्रभाण [४ अक्षयराज [५] राघवदास [६] कल्याणदास [७] रणछोड़दास [८] फ़तहसिंह [६] भगवतसिंह [१०] हरिसिंह [११] चिमनसिंह [१२] पहाड़सिंह [१३ झालसिंह [१४] तख़्तसिंह [१५] देवीसिंह और [१६] संग्रामसिंह।

हुआ, जो महारावत प्रतापसिंह का समकालीन था। उसका पुत्र केसरीसिंह पिता की विद्यमानता में ही मर गया, इसलिए केसरीसिंह का पुत्र फ़तहसिंह अपने दादा (रणछोड़दास) का उत्तराधिकारी हुआ। फिर उसका पौत्र हरिसिंह (भगवतसिंह का पुत्र) कल्याणपुरा का ठाकुर हुआ। हरिसिंह के चिमनसिंह तथा पहाड़सिंह नामक दो पुत्र थे, जो क्रमशः कल्याणपुरा के स्वामी हुए। पहाड़सिंह का पुत्र लालसिंह और उस-(लालसिंह) का तख़्तसिंह हुआ। तत्पश्चात् देवीसिंह वहां का स्वामी हुआ, जिसकी वि० सं० १९८१ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १९२४ ता० १८ अप्रेल) को मृत्यु होने पर उसका पुत्र संग्रामसिंह कल्याणपुरा का स्वामी हुआ, जो वहां का वर्तमान ठाकुर है।

आंबीरामा

आंबीरामा के ठाकुर, महारावत बाघसिंह के छोटे पुत्र खान के वंशधर हैं[1] और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

खान का पुत्र दुर्गादास और उस(दुर्गादास)का सबलसिंह हुआ, जिसको महारावत सिंहा के समय आंबीरामा जागीर में दिया गया। सबलसिंह का पुत्र गोपीनाथ हुआ, जिसके पीछे चंद्रसिंह, पृथ्वीसिंह, खुम्माणसिंह एवं अखैराज क्रमशः आंबीरामा के स्वामी हुए। अखैराज का पुत्र कुशलसिंह हुआ, जिसका पुत्र केसरीसिंह पिता की विद्यमानता में महारावत उदयसिंह के समय बोरी-रींछड़ी के सीमा-संबंधी झगड़े में बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से आक्रमण होने पर लड़कर मारा गया। तब उस(केसरीसिंह)का पुत्र विभूतिसिंह अपने दादा का उत्तराधिकारी हुआ। विभूतिसिंह का पुत्र शंभुसिंह आंबीरामा का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—[१] खान [२] दुर्गादास [३] सबलसिंह [४] गोपीनाथ [५] चन्द्रसिंह [६] पृथ्वीसिंह [७] खुम्माणसिंह [८] अखैराज [९] कुशलसिंह [१०] विभूतिसिंह और [११] शंभुसिंह।

रायपुर

रायपुर के सरदार महारावत विक्रमसिंह के पुत्र सुजेनदास के बेटे रामदास के वंशधर हैं[1] और उनकी उपाधि "ठाकुर" है। यहां के सरदार को महारावत के दरबार में बांई ओर की प्रथम बैठक तथा ताज़ीम आदि का सम्मान प्राप्त है।

रामदास[2] ने वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) के लगभग महारावत सिंहा के राज्यकाल में नीनोर-बोरदिया के निवासी जलखेड़िया राठोड़ों को परास्तकर रायपुर बसाया। रामदास का पुत्र द्वारिकादास वि० सं० १६६२ (ई० स० १६३५) में अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उसके छोटे भाई मानसिंह ने मानपुरा और कानसिंह ने कानगढ़ बसाया, जो अब तक उनके वंशजों के अधिकार में है। द्वारिकादास का पुत्र दलपतसिंह[3] और उस (दलपतसिंह) का पौत्र गोपालसिंह था, जिसने बोरी-रीछड़ी पर अधिकार किया। उसका पुत्र गुमानसिंह रायपुर का ठाकुर बना, जिसको देवलिया के राज-महलों में पूरावत अक्षयसिंह और हरिसिंह ने मारकर रायपुर पर वि० सं० १८४५ (ई० स० १७८८) के लगभग अपना अधिकार कर लिया। फिर गुमानसिंह के पुत्र दलसिंह ने वि० सं० १८५१ (ई० स० १७६४) के

---

(१) वंशक्रम—[१] सुजेनदास [२] रामदास [३] द्वारिकादास [४] दलपतसिंह [५] न्गासिंह [६] गोपालसिंह [७] रत्नसिंह [८] गुमानसिंह [९] दलसिंह [१०] केसरीसिंह [११] हिंदूसिंह [१२] रत्नसिंह (दूसरा) और [१३] प्रतापसिंह।

(२) रामदास के समय का एक ताम्रपत्र वि० सं० १६८५ माघ सुदि ५ (ई० स० १६२९ ता० १९ जनवरी) सोमवार का मिला है, जिसमें उसकी उपाधि "महाराज" लिखी है एवं उसके पुत्र का नाम कुंवर द्वारिकादास देकर देराश्री जगन्नाथ शुक्ल को पचास बीघा ज़मीन रायपुर में पुण्य देने का उल्लेख है।

(३) "प्रतापप्रशस्ति" खंडित काव्य में कवि कल्याण ने दलपतसिंह का भी उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट है कि वह महारावत प्रतापसिंह का समकालीन था।

लगभग महारावत सामन्तसिंह की आज्ञा से पूरावतों को वहां से निकालकर रायपुर पर पीछा अपना क़ब्ज़ा स्थिर किया। दलसिंह की वि० सं० १८८८ (ई० स० १८३१) में मृत्यु होने पर उसका पुत्र केसरीसिंह रायपुर का स्वामी हुआ, पर उसके कोई संतान नहीं हुई, अतएव, उसके लघु भ्राता रघुनाथसिंह का पुत्र हिंदूसिंह, केसरीसिंह के दत्तक गया। उस (हिंदूसिंह)-का पुत्र रत्नसिंह (दूसरा) हुआ, किंतु उसके भी संतति न थी, इसलिए उसने उपर्युक्त गुमानसिंह के भाई (बदनसिंह) के वंशधर दुलहसिंह-(पहाड़सिंह का पुत्र) को वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०६) में गोद लिया, जिसको महारावत ने स्वीकार नहीं किया। वि० सं० १९७२ (ई० स० १९१५) में रत्नसिंह का देहांत होने पर रायपुर ठिकाना राज्याधिकार में ले लिया गया, परन्तु फिर महारावत रघुनाथसिंह ने अपनी विशेष कृपा प्रदर्शित करते हुए इस ठिकाने को बनाये रखना स्थिर किया और दुलहसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को रायपुर का ठाकुर बनाकर नज़राने के २५००१ रुपये वसूल होने तथा वार्षिक ख़िराज में ५०० रुपये की वृद्धि करने की आज्ञा दी। वह ३२७५ रुपये वार्षिक ख़िराज राज्य को देता है।

झांतला

झांतला के ठाकुर, महारावत जसवंतसिंह के पुत्र केसरीसिंह के वंशज हैं[1] और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

महारावत हरिसिंह ने केसरीसिंह को निर्वाह के लिए झांतला की जागीर दी थी। केसरीसिंह के चतुर्थ वंशधर अमानसिंह का पुत्र चिमनसिंह और पौत्र दलेलसिंह था। दलेलसिंह के पीछे उसका पुत्र अजीतसिंह हुआ। वह निःसंतान था, इसलिए महारावत हरिसिंह के

(१) वंशक्रम—[१] केसरीसिंह [२] कुशलसिंह [३] बख़्तसिंह [४] सूरतसिंह [५] अमानसिंह [६] चिमनसिंह [७] दलेलसिंह [८] अजीतसिंह [९] प्रतापसिंह [१०] लालसिंह [११] तख़्तसिंह और [१२] उम्मेदसिंह।

छोटे पुत्र अमरसिंह के वंशधर वैरिशाल बगड़ावदवाले के पुत्र बुधसिंह को उसने अपना दत्तक बनाया, परंतु उसकी मृत्यु के बाद उसकी गर्भवती स्त्री से उसके पुत्र प्रतापसिंह का जन्म हो गया, जिससे बुधसिंह झांतला के ठिकाने से वंचित रहा और प्रतापसिंह का वहां अधिकार हुआ। प्रतापसिंह का पुत्र लालसिंह, रतलाम इलाक़े के अमरेठा के महाराज सामंतसिंह के हाथ की गोली लगने से मारा गया। तब उस(लालसिंह)-का पुत्र तख़्तसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसकी वि० सं० १९६३ (ई० स० १९०६) में मृत्यु होने पर उसका पौत्र उम्मेदसिंह (पर्वतसिंह का पुत्र) झांतला ठिकाने का स्वामी हुआ, जो वहां का वर्तमान सरदार है। उसने मेयो कॉलेज, अजमेर में शिक्षा प्राप्त की है। उसकी उपाधि "ठाकुर" है।

सालिमगढ़

सालिमगढ़ के सरदार महारावत हरिसिंह के छोटे पुत्र मोहकमसिंह के वंशधर हैं और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

मोहकमसिंह को प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से जागीर मिली, जिसमें उसके पुत्र मोहनसिंह ने अपने नाम से मोहनगढ़ गांव बसाकर वहां अपना ठिकाना नियत किया, जो सालिमगढ़ के पास एक वीरान गांव है। कई वर्ष तक इस ठिकाने का मुख्य स्थान मोहनगढ़ रहा। मोहनसिंह का पुत्र जोरावरसिंह और पौत्र हिम्मतसिंह हुआ, जिसके दो बेटे उदयसिंह और सरदारसिंह थे, परंतु वे पिता की विद्यमानता में ही मृत्यु को प्राप्त हुए। अतएव मोहकमसिंह के भाई अमरसिंह के वंशधर, बड़ी-साखथली के ठाकुर दलसिंह का पुत्र मोहब्बतसिंह गोद आकर सालिमगढ़ का स्वामी हुआ किन्तु [illegible] संतान नहीं हुई, इसलिए उसने अपने चचेरे

---

(१) मोहकमसिंह [२] [illegible]रसिंह
[५] [६] सरदारसिंह [८]
[illegible]सिंह

भाई सरदारसिंह (बगड़ावद के ठाकुर वैरिशाल के पुत्र) को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सरदारसिंह का पुत्र शिवसिंह और उसका खुशहालसिंह हुआ। खुशहालसिंह भी निःसंतान था, इसलिए अमरसिंह के चतुर्थ वंशधर दुलहसिंह के प्रपौत्र कीर्तिसिंह का पुत्र हिन्दूसिंह गोद आकर सालिमगढ़ का अधिकारी हुआ, जो वहां का वर्तमान सरदार है।

अचलावदा

महारावत हरिसिंह के छोटे पुत्र माधवसिंह को प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से अचलावदा की जागीर मिली। उस(माधवसिंह)के वंशज[1] अचलावदा के स्वामी हैं और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

माधवसिंह के बेटे जगतसिंह के तीन पुत्र जोधसिंह, ज़ालिमसिंह और दौलतसिंह हुए। जोधसिंह और ज़ालिमसिंह का वंश न चला और वे पिता की जीवितावस्था में मर गये, इसलिए उनका छोटा भाई दौलतसिंह अपने पिता का क्रमानुयायी हुआ। तदनंतर चिमनसिंह, लक्ष्मणसिंह, भीमसिंह, रत्नसिंह और माधवसिंह (दूसरा) क्रमशः वहां के स्वामी हुए। माधवसिंह के दो पुत्र—भवानीसिंह और गोपालसिंह हुए—जिनमें से भवानीसिंह अपने पिता का अधिकारी हुआ और वहां का वर्तमान सरदार है।

वरडिया

वरडिया के सरदार मेवाड़ के सुप्रसिद्ध रावत चूंडा के वंशधर हैं[2]। उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

---

(१) वंशक्रम—[१] माधवसिंह [२] जगतसिंह [३] दौलतसिंह [४] चिमनसिंह [५] लक्ष्मणसिंह [६] भीमसिंह [७] रत्नसिंह [८] माधवसिंह (दूसरा) और [९] भवानीसिंह।

(२) वंशक्रम—[१] मनोहरदास [२] लालसिंह [३] भजबसिंह [४] कुशालसिंह [५] सामंतसिंह [६] जगतसिंह [७] मोहकमसिंह [८] चिमनसिंह

सलूंबर (मेवाड़) के स्वामी रावत किशनदास का छोटा पुत्र झामा था, जिसको उदयपुर राज्य की तरफ़ से खोड़ीप की जागीर मिली थी। झामा का पुत्र मनोहरदास था, जिसको देवलिया के स्वामी महारावत प्रतापसिंह ने सलूंबर से अपने साथ ले जाकर बरडिया की जागीर दी। मनोहरदास का पुत्र लालसिंह हुआ। लालसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अजबसिंह हुआ। उसका पुत्र शिवसिंह पिता की विद्यमानता में गुज़र गया, इसलिए शिवसिंह का पुत्र कुशलसिंह, अजबसिंह के पीछे बरडिया का स्वामी बना। तदनन्तर सामंतसिंह, जगतसिंह, मोहकमसिंह, चिमनसिंह और लालसिंह (दूसरा) क्रमशः बरडिया के ठाकुर हुए। लालसिंह (दूसरा) की वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) में मृत्यु होने पर उसका पुत्र सामंतसिंह (दूसरा) बरडिया का स्वामी हुआ, परंतु उसके संतान न थी, अतएव उसने अपने भतीजे दौलतसिंह को, जो

---

[९] लालसिंह (दूसरा) [१०] सामंतसिंह (दूसरा) और (११) दौलतसिंह।

राजपूताना और अजमेर की लिस्ट ऑव् रूलिंग प्रिंसिज़, चीफ़्स एंड लीडिंग परसोनेजिज़ (ई० स० १९३१ का संस्करण) में तथा अन्य कुछ स्थलों पर महारावत विक्रमसिंह-(बीका) के छोटे पुत्र किशनदास के बेटे जेठसिंह का मेवाड़ के सलूंबर के स्वामी की गोद जाना और इस प्रसङ्ग से किशनदास के अन्य पुत्रों का भी सलूंबर में जाकर रहना तथा जेठसिंह के भाई जामा (झामा) के पुत्र मनोहरदास को महारावत प्रतापसिंह का सलूंबर से अपने साथ ले जाकर बरडिया की जागीर देने का उल्लेख है, जो विश्वसनीय नहीं है। "वीरविनोद" आदि में इस ठिकाने के सरदार को स्पष्ट शब्दों में चूंडावत लिखा है, जिसका अर्थ चूंडा का वंशधर होता है। सलूंबर ठिकाने की ख्यात में बरडिया के सरदार का मूलपुरुष झामा दिया है और उसको सलूंबर के रावत कृष्णदास का आठवां पुत्र बतलाया है तथा सेलारपुरे का ठिकाना बरडियावालों की छोटी शाखा में होना लिखा है। बरडियावालों का जो ऐतिहासिक हाल प्रतापगढ़ राज्य के द्वारा हमें प्राप्त हुआ उसमें भी सलूंबर के रावत कृष्णदास के छोटे पुत्र झामा को उसका मूलपुरुष लिखा है। उपर्युक्त पुस्तकों का यह कथन कि प्रतापगढ़ के स्वामी विक्रमसिंह (बीका) के बेटे किशनदास का पुत्र जेठसिंह (जेतसिंह) सलूंबर गोद गया, संभव नहीं हो सकता; क्योंकि रावत चूंडा के वंशधरों में कई व्यक्ति मौजूद होते हुए जैतसिंह का दूर की शाखा देवलिया के राजवंश से गोद जाना विपरीत बात है।

फ़ौजसिंह का पुत्र था, गोद लिया। वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में सामंतसिंह का देहांत होने पर दौलतसिंह धरटिया का सरदार बना, जो वहां का वर्तमान ठाकुर है। उसके दो पुत्र भगवतसिंह और प्रह्लादसिंह हैं।

बोड़ी-साखथली

बोड़ी-साखथली के सरदार महारावत बाघसिंह के पुत्र खान के वंशधर हैं[1] और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

खान का पुत्र दुर्गादास अपने बेटों सहित महारावत भानुसिंह के साथ और रण में मारा गया। फिर महारावत सिंहा ने दुर्गादास के पौत्र रणछोड़दास को बोड़ी-साखथली की जागीर प्रदान की। रणछोड़दास के पीछे अजबसिंह, गोपालसिंह, किशनसिंह और हरिसिंह क्रमशः वहां के ठाकुर हुए। हरिसिंह का पुत्र रत्नसिंह तथा पौत्र छत्रसाल (शत्रुसाल) था। छत्रसाल के निःसंतान होने से ठिकाना राज्याधिकार में चला गया, परन्तु महारावत रघुनाथसिंह ने वि० सं० १६४८ (ई० स० १८६१) में उस-(छत्रसाल) के चाचा सूरजमल के पुत्र बलवंतसिंह (जो वहां का वर्तमान सरदार है) को प्रदानकर उसको वहां का सरदार बनाया। फिर उसने बसको प्रथम वर्ग के सरदारों में दाखिल किया एवं वि० सं० १६७७ वैशाख वदि १४ (ई० स० १६२० ता० १७ अप्रेल) को उसे दीवानी तथा फ़ौजदारी के मुक़दमे करने के अधिकार भी दे दिये। उसके पांच पुत्र—भैरवसिंह, बहादुरसिंह, नाहरसिंह, शेरसिंह और पर्वतसिंह—हैं।

जाजली

इस ठिकाने के स्वामी महारावत सूरजमल के छोटे पुत्र सहसमल के पौत्र गोपालदास (धमोतर का स्वामी) के छोटे पुत्र पूरा के वंशधर

(१) वंशक्रम—[१] खान [२] दुर्गादास [३] ईश्वरदास [४] रणछोड़दास [५] अजबसिंह [६] गोपालसिंह [७] किशनसिंह [८] हरिसिंह [६] रत्नसिंह [१०] छत्रशाल और [११] बलवंतसिंह।

हैं' और पूरा के नाम से उसकी सन्तान पूरावत कहलाती है। उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

पूरा का पुत्र सुंदर और उसका बाघसिंह हुआ, जिसको देवलिया राज्य की तरफ़ से बिलेसरी की जागीर मिली। बाघसिंह का बेटा अजबसिंह और उसका माधवसिंह हुआ। उस(माधवसिंह)के दो पुत्र जोरावरसिंह और जगतसिंह हुए। उनमें से जोरावरसिंह का बिलेसरी पर स्वत्व रहा और जगतसिंह को जाजली की नवीन जागीर दी गई। जगतसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र तेजसिंह हुआ। उसके पीछे गुलाबसिंह, भैरवसिंह और बलवन्तसिंह क्रमशः वहां के सरदार हुए। बलवन्तसिंह का पुत्र रघुनाथसिंह वहां का वर्तमान ठाकुर है। उसने अजमेर के मेयो कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की है। वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी ने वि० सं० १९८६ (ई० स० १९२९) में उस(रघुनाथसिंह)-को प्रथम वर्ग के सरदारों में दाखिल किया है।

द्वितीय वर्ग के सरदार

अनघोरा

अनघोरा के महाराज जोधा राठोड़ हैं। किशनगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह के छोटे पुत्र बाघसिंह को फ़तहगढ़ की जागीर मिली। बाघसिंह के चार बेटे थे। उनमें से दूसरे बलदेवसिंह को भाई-बंट में ढोस गांव और सदापुरा की भोम मिली। बलदेवसिंह के छोटे भाई किशोरसिंह के, जो जोरावरपुरे का स्वामी था, निःसंतान मर जाने पर झगड़ा खड़ा हो गया। बलदेवसिंह के बड़े भाई चांदसिंह ने किशोरसिंह के ठिकाने पर अपने छोटे बेटे गोपालसिंह को नियतकर दिया। इसपर बलदेवसिंह और उसके तीसरे भाई भीमसिंह (जो

---

(१) वंशक्रम—[१] पूरा [२] सुन्दर [३] बाघसिंह [४] अजबसिंह [५] माधवसिंह [६] जगतसिंह [७] तेजसिंह [८] गुलाबसिंह [९] भैरवसिंह [१०] बलवन्तसिंह और [११] रघुनाथसिंह।

कचोलिया का महाराज था) ने फ़साद किया। अंत में कोटा के दीवान झाला ज़ालिमसिंह (झालावाड़ राज्य का संस्थापक) ने उनके इस झगड़े को मिटाकर उन दोनों को कोटे में बुला लिया और वहां जागीर दिलवाई, किन्तु बलदेवसिंह ने अपना आचरण ठीक न रखा, इसलिए वह जागीर जाती रही। बलदेवसिंह का पुत्र भीमसिंह[1] था। वह अपनी रिश्तेदारी के सबब प्रतापगढ़ राज्य में चला गया। जहां अनघोरा और रोजवानी नामक दो गांव उसको जागीर में मिले। महारावत दलपतसिंह फ़तहगढ़वालों का भानजा था, इस कारण उसने भीमसिंह की जागीर में और भी वृद्धि की तथा उसे वि० सं० १६१२ श्रावण सुदि ७ (ई० स० १८५५ ता० २० अगस्त) को नानणा तथा खड़ियाखेड़ी नामक दो गांव और वि० सं० १६१६ ज्येष्ठ बदि ११ (ई० स० १८६२ ता० २४ मई) को कंथार गांव जागीर में दिये। भीमसिंह के हिम्मतसिंह, ज़ालिमसिंह और धनपतसिंह नामक तीन पुत्र हुए। उनमें से ज़ालिमसिंह को हिम्मतसिंह ने मार डाला, जिससे वह (हिम्मतसिंह) अपने पिता की संपत्ति से वंचित रहा और धनपतिसिंह पिता की संपत्ति का अधिकारी हुआ। तदनन्तर तेजसिंह और मोहनसिंह ढोस और अनघोरा के स्वामी हुए। मोहनसिंह का पुत्र प्रतापसिंह, वहां का वर्तमान सरदार है।

बरखेड़ी

धमोतर के ठाकुर गोपालदास का सब से छोटा पुत्र पूरा था। पूरा के पांचवे वंशधर अक्षयसिंह[2] को महारावत सालिमसिंह ने वि० सं० १८२१ (ई० स० १७६४) के लगभग मंडावरा गांव जागीर में दिया था।

---

(१) वंशक्रम—[१] भीमसिंह [२] धनपतिसिंह [३] तेजसिंह [४] मोहनसिंह और [५] प्रतापसिंह।

(२) वंशक्रम—[१] अक्षयसिंह [२] हरिसिंह [३] संग्रामसिंह [४] रत्नसिंह [५] भवानीसिंह [६] लालसिंह और [७] तेजसिंह।

अक्षयसिंह ने वि० सं० १८४५ (ई० स० १७८८) में रायपुर के ठाकुर गुमानसिंह को देवलिया के राजमहलों में मार डाला और रायपुर पर अधिकार कर लिया। वि० सं० १८५१ (ई० स० १७६४) में वह (अक्षयसिंह) अपने पुत्र हरिसिंह के साथ दशहरे के अवसर पर देवलिया में नौकरी के लिए गया उस समय महारावत की हस्तिशाला का एक हाथी मदमत्त होकर सरदारों के डेरों की तरफ़ गया। इसपर अक्षयसिंह ने आत्मरक्षार्थ गोली चलाई, जिससे वह हाथी मर गया। इस घटना से महारावत सामन्तसिंह उस(अक्षयसिंह)से अप्रसन्न हो गया। वह अवसर उपयुक्त देख रायपुर के ठाकुर दलसिंह ने अपने पिता गुमानसिंह का बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर महारावत की आज्ञा से रायपुर पर चढ़ाई कर पूरावतों का संहार किया और वहां पीछा अपना अधिकार स्थिर किया। उस समय हरिसिंह का पुत्र संग्रामसिंह गुप्त रूप से वहां से निकाल दिया गया था, जो बच गया। फिर संग्रामसिंह देवलिया राज्य से निकलकर वागड़ में जा रहा। तदनन्तर वह वहां से अपने बहनोई, मूलथान (मालवा) के स्वामी महाराज सवाईसिंह के पास चला गया। कुछ वर्ष पीछे सवाईसिंह की मृत्यु होने पर उस(सवाईसिंह)का पुत्र दलपतसिंह मूलथान का स्वामी हुआ, जिसकी आयु कम होने से सारा काम संग्रामसिंह चलाता था। उन दिनों सीमा-सम्बन्धी झगड़े के कारण बख़तगढ़ (मालवा) के कामदार भूराखां ने पांचसौ आदमियों की भीड़-भाड़ लेकर मूलथान पर चढ़ाई कर दी, उस समय संग्रामसिंह ने वीरतापूर्वक बख़तगढ़वालों का मुक़ाबला कर भूराखां का सिर काट लिया, जिसपर मूलथान के स्वामी दलपतसिंह ने संग्रामसिंह को संदला जागीर में प्रदान किया। संग्रामसिंह के पुत्र रत्नसिंह[1] को महारावत रघुनाथसिंह ने

(१) ठाकुर रत्नसिंह के छोटे भाई हिम्मतसिंह और प्रतापसिंह थे। हिम्मतसिंह का पुत्र प्रह्लादसिंह और पौत्र मोतीसिंह हुआ, जिसकी निःसन्तान मृत्यु हुई। प्रतापसिंह का पुत्र तख़्तसिंह और चार पौत्र खुशहालसिंह, सालिमसिंह, मदनसिंह और गोवर्धनसिंह हुए। उनमें से मदनसिंह का जन्म वि० सं० १६५६ फाल्गुन वदि ७

वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९१) में वरखेड़ी गांव जागीर में प्रदानकर ताज़ीम का सम्मान दिया। रत्नसिंह के पीछे भवानीसिंह और लालसिंह क्रमशः वहां के सरदार हुए। लालसिंह का पुत्र तेजसिंह वहां का वर्तमान सरदार है। उसकी उपाधि "ठाकुर" है।

नागदी

महारावत सिंहा का छोटा पुत्र जगन्नाथसिंह[1] था, जिसको प्रतापगढ़ के महारावत की तरफ़ से खरखड़ा, मोयाई, देवाला, नागदी और मोहेड़ा नामक पांच गांव जागीर में मिले थे। जगन्नाथसिंह का पुत्र जोगीदास था, जिसने खरखड़े में एक छोटा मन्दिर और तालाब बनवाया।

(ई० स० १९०० ता० २१ फ़रवरी) को हुआ। बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली होने से सरस्वती की मदनसिंह पर कृपा हुई और वह अंग्रेज़ी भाषा की परीक्षाओं में सम्मान-पूर्वक उत्तीर्ण होता रहा। वह इलाहाबाद युनिवर्सिटी की एम० ए०, तथा एल-एल० बी० की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। उसकी पढ़ाई का संपूर्ण व्यय महारावत रघुनाथसिंह ने दिया। मदनसिंह की योग्यता और कार्य-कुशलता का परिचय पाकर मेयो कालेज अजमेर के अधिकारियों ने उसको उच्च ग्रेड में अपने यहां के कालेज में सीनियर अध्यापक नियत किया। चरित्रवान और अनुभवी होने के कारण वह भिणाय (अजमेर) के बालक राजा कल्याणसिंह का अभिभावक (गार्डियन) भी बनाया गया। फलतः उपर्युक्त भिणाय के स्वामी की शिक्षा-दीक्षा सब उसकी देख-रेख में हुई। ई० स० १९३४ (वि० सं० १९९१) में राजा कल्याणसिंह की मेयो कालेज की शिक्षा समाप्त होने पर ठाकुर मदनसिंह इस दायित्त्व से मुक्त हुआ। तदनन्तर उसको जयपुर के वर्तमान महाराजा साहब ने मेयो कालेज, अजमेर से (जुलाई ई० स० १९४० में) मांगकर अपने यहां के "मान नोबुल्स स्कूल" का प्रिंसिपल नियत किया है। प्रतापगढ़ राज्य के राजपूत सरदारों में उपर्युक्त मदनसिंह का शिक्षा के लिए विशिष्ट स्थान है और वही पहला व्यक्ति है, जिसने सम्मान के साथ विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षाएं पास की हैं। वह गंभीर और विनयशील पुरुष है।

(१) वंशक्रम—[१] जगन्नाथसिंह [२] जोगीदास [३] नाथूसिंह [४] गुमानसिंह [५] लालसिंह [६] तेजसिंह [७] जोरावरसिंह [८] भैरवसिंह [९] बख़्तावरसिंह और [१०] सरदारसिंह।

जोगीदास के पुत्र नाथूसिंह के समय उसकी जागीर के गांव खालसा हो गये। उनमें से नागदी गांव उस(नाथूसिंह)के छोटे भाई देवकर्ण के पौत्र गुमानसिंह को वापस मिला। तदनन्तर तख़्तसिंह, तेजसिंह, जोरावरसिंह और भैरवसिंह क्रमशः नागदी के स्वामी हुए। भैरवसिंह के पुत्र बख़्तावरसिंह को महारावत रघुनाथसिंह ने वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में ताज़ीम का सम्मान प्रदान किया। बख़्तावरसिंह का पुत्र सरदारसिंह वहां का वर्तमान सरदार है।

देवद

कल्याणपुरा के ठाकुर फ़तहसिंह का छोटा पुत्र दौलतसिंह महारावत सालिमसिंह की सेवा में रहता था। उसको वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में उक्त महारावत ने देवद गांव जागीर में प्रदान किया। प्रतापगढ़ के महाजनों तथा व्यापारियों के अप्रसन्न होकर मंदसोर चले जाने पर दौलतसिंह का तृतीय वंशधर खुम्माणसिंह उनको महारावत सामंतसिंह की आज्ञानुसार समझाकर पुनः प्रतापगढ़ ला रहा था। उस समय मार्ग में राजपुरथा गांव के पास मंदसोर के सूबेदार से झगड़ा हुआ, जिसमें वह मारा गया। महारावत दलपतसिंह ने खुम्माणसिंह के पौत्र शत्रुसाल (छत्रसाल) के छोटे पुत्र रणजीतसिंह को गांव आंबावा का खेड़ा जागीर में प्रदान किया था; परंतु रणजीतसिंह निःसंतान मर गया, जिससे वह गांव ज़ब्त हो गया। फिर महारावत उदयसिंह ने उक्त गांव रणजीतसिंह के छोटे भाई बलवन्तसिंह को प्रदान किया। बलवन्तसिंह का पुत्र भीमसिंह हुआ, जिसे महारावत रघुनाथसिंह ने वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में ताज़ीम का सम्मान दिया। उसका पुत्र भारतसिंह वहां का वर्तमान सरदार है, जो अभी नाबालिग़ है।

बड़ा सेलारपुरा

बरडिया के सरदार चूंडावत मनोहरदास का एक पुत्र गजसिंह था, जो उदयपुर की सेना से लड़कर मारा गया था। उस (गजसिंह) को महारावत प्रतापसिंह ने कोलवी गांव जागीर में दिया था, जो पीछे से राज्य के अधिकार में चला गया। गजसिंह के चतुर्थ वंशधर बाघसिंह को प्रतापगढ़ राज्य की ओर से संभवतः महारावत गोपालसिंह के समय बड़ा सेलारपुरा जागीर में मिला, जो उसके वंशजों के अधिकार में है। महारावत गोपालसिंह और उसके कुंवर सालिमसिंह के बीच विरोध रहता था, इस कारण से सालिमसिंह अपने पिता से अप्रसन्न होकर चला गया। उस समय बाघसिंह के वंशधर शार्दूलसिंह ने कुंवर का साथ दिया। इससे प्रसन्न होकर सालिमसिंह ने महारावत होने पर उस (शार्दूलसिंह) को बीरावाली और मनोहरगढ़ नामक दो गांव जागीर में दिये, जो पीछे से ज़ब्त हो गये। शार्दूलसिंह का वंशधर विशनसिंह, महारावत दलपतसिंह और उदयसिंह का पूर्ण अनुग्रह-पात्र था। उसको महारावत दलपतसिंह ने वि० सं० १६१६ (ई० स० १८६२) में बड़ा सेलारपुरा की नवीन सनद कर दी। विशनसिंह मेवाड़ और प्रतापगढ़ राज्य के सीमा संबंधी झगड़े में प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से मोतमिद बनाकर भेजा गया था। महारावत रघुनाथसिंह के समय वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१४) में उस-(महारावत) की रौप्य जयन्ती के अवसर पर उपर्युक्त विशनसिंह के पुत्र गंभीरसिंह को ताज़ीम का सम्मान मिला। गंभीरसिंह का पुत्र बख़्तावर-सिंह वहां का वर्तमान सरदार है।

छायण (सीधेरया)

छायण के ठाकुर झाला राजपूत हैं और मंडावरा की छोटी शाखा में हैं।

महारावत उदयसिंह के समय मंडावरा के स्वामी के छोटे पुत्र अर्जुनसिंह[1] को वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में ओड़ां तथा खेड़ा गांव जागीर में मिले। फिर वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) में छायण गांव भी उक्त महारावत ने उसे प्रदान किया। इसके दो वर्ष बाद उक्त महारावत ने नारदा और दांतराकुंड गांव अर्जुनसिंह को दिये तथा सब गांवों के ख़िराज में से महारावत ने ३१२ रुपये माफ़ कर दिये। अर्जुनसिंह ने मेवाड़ और प्रतापगढ़ राज्य के बीच सीतामाता की सीमा संबंधी झगड़े में प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से मोतमिद होकर अच्छी सेवा की थी; जिससे महारावत की उसपर कृपा बढ़ती ही रही और उसने उसे जागीर के साथ ही ताज़ीम का सम्मान भी दिया। अर्जुनसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र मोतीसिंह छायण का ठाकुर हुआ, जिसको महारावत रघुनाथसिंह ने सीधेरया गांव प्रदान किया। वह छायण का वर्तमान सरदार है और उसकी उपाधि "ठाकुर" है।

परणावा

झांतला के ठाकुर प्रतापसिंह के छोटे पुत्र मानसिंह[2] को महारावत उदयसिंह ने परणावा गांव जागीर में दिया और वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८२) में उसको स्वर्ण का पाद-भूषण पहिनने का सम्मान भी दिया। मानसिंह वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में भूतपूर्व महारावत उदयसिंह की राणी फूलकुंवरी (सैलानावाली) और महारावत रघुनाथसिंह की सेमलियावाली राणी केसरकुंवरी के साथ तीर्थ-यात्रा के प्रबंध के लिये गया था। मार्ग में मथुरा में उस (मानसिंह) की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र उदयसिंह हुआ, जिसको महारावत रघुनाथसिंह ने वि० सं० १९५३ (ई० स० १८९६) में ताज़ीम का सम्मान दिया। उदयसिंह की निःसंतान

(१) वंशक्रम—[१] अर्जुनसिंह और [२] मोतीसिंह।

(२) वंशक्रम—[१] मानसिंह [२] उदयसिंह [३] स्वरूपसिंह और [४] शंभुसिंह।

मृत्यु होने पर उसका छोटा भाई स्वरूपसिंह पणाया का स्वामी हुआ। स्वरूपसिंह का पुत्र शंभूसिंह यहां का वर्तमान सरदार है और उसकी उपाधि "ठाकुर" है।

धनेसरी

मेवाड़ में बाठरडा ठिकाने के सारंगदेवोत (सीसोदिया) रावत दलेलसिंह का छोटा भाई गुमानसिंह[1] था, जो महारावत उदयसिंह के समय वि० सं० १६४० (ई० स० १८८३) में प्रतापगढ़ चला गया। उसको उक्त महारावत ने मगरा ज़िले में रामपुरया तथा धारयाखेड़ी गांव दिये। गुमानसिंह योग का ज्ञाता और अच्छा कवि था। उपर्युक्त गांव पहाड़ियों में होने के कारण आय पर्याप्त न होने से उसको महारावत ने फिर धनेसरी गांव जागीर में प्रदान किया।

गुमानसिंह की योग्यता से प्रसन्न होकर महारावत रघुनाथसिंह ने वि० सं० १६५१ (ई० स० १८६४) में उसे देवलिया में भूमि-सहित मन्नाभट्ट की बावड़ी और हवेली प्रदान की तथा स्वर्ण का पाद-भूषण पहिनने के अतिरिक्त ताज़ीम की प्रतिष्ठा भी दी। गुमानसिंह ने योग संबंधी कई पुस्तकों की रचना तथा रामगीता एवं भगवद्गीता पर टीकाएं भी की थीं। वि० सं० १६७१ फाल्गुन सुदि ८ (ई० स० १६१५ ता० २२ फ़रवरी) को गुमानसिंह का ७१ वर्ष की आयु में देहांत हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र गोविंदसिंह धनेसरी का स्वामी हुआ, जिसका पुत्र हरिसिंह यहां का वर्तमान सरदार है। उसकी उपाधि "ठाकुर" है।

डोराणा

इस ठिकाने के सरदार सोनगरा चौहान हैं और उनकी उपाधि "ठाकुर" है।

---

(१) वंशक्रम—[१] गुमानसिंह [२] गोविंदसिंह और [३] हरिसिंह

महारावत उदयसिंह का प्रथम विवाह वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में नामली (रतलाम राज्य) के सोनगरा चौहान ठाकुर तख़्तसिंह की पुत्री स्वरूपकुंवरी के साथ हुआ था। इस प्रसङ्ग से तख़्तसिंह का छोटा पुत्र बख़्तावरसिंह उक्त महारावत के पास-चला गया, जिसपर उसने वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में डोराणा और जसवन्तपुरा नामक दो गांव उसे जागीर में दिये। बख़्तावरसिंह भाषा का अच्छा कवि था। वहां का वर्तमान सरदार दलपतसिंह है।

प्रसिद्ध और प्राचीन घराने

देश-रक्षा में राजपूत सरदारों की जैसी सेवाएं हैं, वैसी ही राजनैतिक क्षेत्र में मन्त्री-वर्ग और कर्मचारियों की सेवाएं भी ख़ास महत्त्व रखती हैं। जिस राज्य में मन्त्री-वर्ग तथा कर्मचारी योग्य, ईमानदार तथा अनुभवी होते हैं उस राज्य में आंतरिक विप्लव कम होते हैं और सुख-समृद्धि का विकास होता है। इतिहास के अभाव में विभिन्न राज्यों के कर्मचारियों की सेवाओं का पता पूरा-पूरा नहीं चलता। यदि शोध किया जाय तो बहुत कुछ ऐसे साधन भी मिलेंगे, जिनसे उनके द्वारा होनेवाली सेवाओं पर अच्छा प्रकाश पड़ सके।

प्रतापगढ़ राज्य के मन्त्रीवर्ग में भी समय-समय पर उल्लेखनीय व्यक्ति हो गये हैं, जिन्होंने इस राज्य की रक्षा और उन्नति के लिए अच्छी सेवाएं की हैं; परंतु भारतीयों में इतिहास-संरक्षण की भावना कम होने से उनकी सेवाएं भी बहुधा अज्ञात ही हैं। इस राज्य के मंत्रियों में अधिकतर वैश्य समुदाय की ही प्रधानता रही है और अन्य की कम। वैश्यों में भी दिगंबर सम्प्रदाय की बहुलता होने से वे ही समय-समय पर मंत्री-पद पर नियत किये जाते थे, जिनका चुनाव किसी ख़ास परिपाटी अथवा गुणों के आधार पर नहीं, अपितु बहुधा वंशपरंपरा अथवा राजा की कृपा

और खास सेवाओं को दृष्टि में रखकर किया जाता था। यद्यपि समय के परिवर्त्तन से अब देशी राज्यों में यह प्रथा मिटती जाती है और प्रतापगढ़ में स्वर्गीय महारावत रघुनाथसिंह के राज्यकाल से ही मंत्री-वर्ग में बाहरी आदमियों को स्थान मिलने लगा है तथापि किसी न किसी अंश में दायित्वपूर्ण पदों पर वंशपरंपरा के अनुसार वहां के निवासियों की ही नियुक्ति होती है।

इस राज्य के पहले के प्रायः सब मंत्री दिगंबर सम्प्रदाय के हूंबड़ जाति के व्यक्ति हुए हैं। वागड़ के पूर्व-निवासी होने से साधारण बोलचाल में वे भी वागड़िया हूंबड़ कहलाते हैं। व्यवसाय-प्रधान जाति होने से हूंबड़ों की गणना वणिकों में होती है। पहले उनका वागड़ (डूंगरपुर और बांसवाड़ा) राज्य में निवास था और वे बहुत सम्पन्न थे। महारावत विक्रमसिंह के कांठल जाकर वहां अपना स्थायी निवास बनाने के बाद देवलिया प्रतापगढ़ राज्य की आबादी बढ़ने लगी। फिर उक्त महारावत के क्रमानुयायियों ने वागड़िया वैश्यों को कई प्रकार की रियायतें देकर कांठल बुलवाकर वहां आबाद किया। धीरे-धीरे उन्होंने वहां व्यापार बढ़ाकर बहुत कुछ उन्नति की। उनमें से कुछ ने अपनी कारगुज़ारी और सदाचरण से राज्य के विश्वसनीय पदों को प्राप्त किया। अमात्य-पद और नरेश के अन्तःपुर के प्रबंध के अतिरिक्त राज्य का प्राचीन दफ़्तर भी हूंबड़ जाति के व्यक्तियों के अधिकार में ही रहा। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी में, जब कि कई पुराने राज्य बिगड़े, प्रतापगढ़ राज्य का अक्षुरण रहना वहां के मंत्री और राजकर्मचारियों की योग्यता का ही परिणाम है। यही नहीं उन्होंने इस राज्य को सुसमृद्ध बनाने का भी समय-समय पर प्रयत्न किया और लोकोपकार की भावनाओं से प्रेरित होकर देवालय, बाग़, बावड़ियां आदि भी बनवाईं।

वर्षावत

हूंबड़ों की वर्षावत शाखा का मूल पुरुष वर्षाशाह, महारावत हरिसिंह के समय उसका मन्त्री था, ऐसा उस समय के शिलालेखों, दानपत्रों एवं पुस्तकों से पाया जाता है। प्रसिद्ध है कि वर्षा ने उक्त महारावत की आज्ञानुसार वागड़ के सागवाड़ा (डूंगरपुर राज्य) क़स्बे से लगभग एक सहस्र हूंबड़-कुटुम्बों को लाकर कांठल में आबाद किया था। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उस(वर्षाशाह)ने देवलिया में दिगम्बर सम्प्रदाय का जैन मंदिर बनवाना आरम्भ किया था, जो पीछे से पूर्ण हुआ और बड़ा मन्दिर कहलाता है। उपर्युक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा वर्षा के पुत्र वर्द्धमान और पौत्र दयाल ने वि० सं० १७७४ माघ सुदि १३ (ई० स० १७१८ ता० २ फ़रवरी) को की। वर्द्धमान और उसका लघु भ्राता उदयभान महारावत प्रतापसिंह के समय में भी मंत्री का काम करते थे, जिनका उल्लेख उक्त महारावत के वि० सं० १७३३ माघ सुदि १५ (ई० स० १६७७ ता० ७ फ़रवरी) के पाटण्या गांव के दानपत्र और उसके समय बने हुए "प्रताप-प्रशस्ति" नामक खंडित काव्य में भी है। उदयभान थोड़े ही समय तक मंत्री रहा, परंतु वर्द्धमान महारावत पृथ्वीसिंह के राज्य समय तक प्रधान मंत्री के पद पर विद्यमान था।

शाह वर्षा और उसके वंशज

पाडलियों का घराना

यह घराना भी हूंबड़ जाति का है। इस वंश का पाडलिया जीवराज सागवाड़ा (डूंगरपुर राज्य) का निवासी था। वह भी अन्य हूंबड़ों के साथ वागड़ से जाकर देवलिया में आबाद हुआ। उनमें प्रमुख होने से आगे जाकर प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से उसके वंशधर 'नगरसेठ' की पदवी से सम्मानित हुए। पाडलिया चंद्रभाण महारावत गोपालसिंह के समय मंत्री रहा था। उसने दस सहस्र रुपये व्यय कर देवलिया

पाडलिया चंद्रभाण और सुंदर

में एक बाग और बावड़ी बनवाई, जिसकी महारावत गोपालसिंह के समय वि० सं० १७८८ माघ सुदि ६ (ई० स० १७३२ ता० २१ जनवरी) को प्रतिष्ठा होने का उपर्युक्त बावड़ी की प्रशस्ति में उल्लेख है।

चन्द्रभाण और उसके पुत्र सुन्दर की सेवाओं से प्रसन्न होकर महारावत गोपालसिंह ने उनको डोराणा गांव जागीर में दिया। फिर वि० सं० १८१५ (ई० स० १७५८) में महारावत सालिमसिंह ने सुन्दर को बरखेड़ी गांव और साढ़े चारसौ बीघा भूमि प्रदान की तथा निम्नलिखित परवाना कर दिया—

"तुम्हारे घर का शरणा पलता है, जो साबित है। देवलिया राज्य में दरबार के समय तुम्हारे पीछे अन्य मुत्सद्दी बैठेंगे। उदयपुर के दरबार में जाना होगा तो वहां तुम्हारी बैठक साबित है।"

सुंदर के इस समय कई वंशधर विद्यमान हैं, जो विभिन्न पदों पर रहकर प्रतापगढ़ राज्य की सेवा कर रहे हैं।

उपर्युक्त वंश का पाडलिया लखण महारावत पृथ्वीसिंह के समय राज्य के उच्च पद पर कार्य करता था। उसको उक्त महारावत ने आसावता गांव दिया था। महारावत गोपालसिंह ने उसपर और भी कृपा प्रकटकर उसको अपना मंत्री बनाया तथा वि० सं० १७९९ आश्विन वदि ३ (ई० स० १७४२ ता० ६ सितम्बर) को थड़ा गांव दिया। लखण का पुत्र कपूरचंद था, जिसको उस(लखण)के पीछे महारावत ने अपना मंत्री बनाया तथा वि० सं० १८११ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १७५४ ता० ५ नवम्बर) को उक्त महारावत ने उसको मोहेड़ा गांव देकर देवासला गांव का ख़िराज लेने का स्वत्व भी प्रदान किया।

लखण के पुत्र कपूर के वंशज

महारावत गोपालसिंह और उसके कुंवर सालिमसिंह के बीच मनोमालिन्य रहता था, जिससे कुंवर राज्य से बाहर रहता था। गोपालसिंह की मृत्यु के समय कुछ सरदारों ने सालिमसिंह को राज्य से वंचितकर स्वार्थ-साधन करना चाहा। उस समय मंत्री कपूरचंद ने उसके इस कार्य का तीव्र विरोध किया और सालिमसिंह को राजगद्दी पर बिठलाया।

उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर सालिमसिंह ने उसको मंत्री-पद पर स्थिर रखा और वि० सं० १८१६ (ई० स० १७६२) में मोटी अलवेली नामक गांव जागीर में प्रदान किया। फिर कपूरचंद ने धमोतर और झांतला के सरदारों का उत्पात मिटाकर शांति स्थापित की। वि० सं० १८३१ (ई० स० १७७४) में महारावत सालिमसिंह का देहांत होने पर उसका कुंवर सामन्तसिंह सात वर्ष की आयु में राज्यासन पर बैठा। उस समय शासन-कार्य राजमाता कुन्दनकुंवरी अपने भ्राता सरदारसिंह, मंत्री कपूरचंद, राघव बख़्शी तथा शाह गुमान के परामर्श से चलाती थी। इस परामर्शदात्री समिति में मन्त्री कपूरचंद प्रमुख था, क्योंकि वह तीन पीढ़ी से मंत्री-पद का कार्य ईमानदारी से करता चला आ रहा था, जिससे उसका अनुभव बढ़ा हुआ था। महारावत की बाल्यावस्था होने के कारण राज्य में क्षति होना स्वाभाविक था, किंतु राजमाता और उसके परामर्श-दाताओं की सावधानी के कारण कोई हानि नहीं हुई। इसका प्रभाव महारावत सामंतसिंह पर अच्छा पड़ा और उसने राज्य-मुद्रा में उक्त मंत्री का नाम भी खुदवाया। उन दिनों देश में चारों तरफ़ महान क्रांति हो रही थी। मरहटों का प्रताप घट रहा था, फिर भी उनकी कुछ शक्ति शेष होने से होल्कर, सिंधिया आदि की भारत के देशी-राज्यों पर धाक जमी हुई थी और संगठन का अभाव होने से राजपूताना के नरेश उनसे जमकर मुक़ाबला करने का साहस न रखते थे। प्रतापगढ़ राज्य का ख़िराज, जो होल्कर सरकार को दिया जाता था, इतना अधिक था कि राज्य उसको देने में सर्वथा असमर्थ था। इसलिए ख़िराज की रक़म चढ़ जाया करती थी और नियमित रूप से नहीं दी जाती थी, जिसकी वसूली के लिए होल्कर की सेना जाकर समय-समय पर घेरा डाल देती थी। उसके घेरे को उठाने के लिए मंत्री-वर्ग को सदा अपने प्राणों का भय बना रहता था और राज्य को भरपूर द्रव्य देना पड़ता था। महारावत सामन्तसिंह के राज्य-काल में भी ऐसे कई अवसर आये। राज्य से मिलनेवाले तत्कालीन पत्रादि से पता चलता है कि उस समय

मन्त्री कपूरचंद और महारावत के मामा सरदारसिंह पर ही ख़िराज चुकाने का भार था और वे होल्कर सरकार का तक़ाज़ा होने पर किसी प्रकार रक़म आदि देकर राज्य को बरबादी से बचाते थे।

वि० सं० १८३५ (ई० स० १७७८) में मंत्री कपूरचंद ने अपने सजातीय बंधुओं के साथ उदयपुर राज्य के जैनों के प्रसिद्ध तीर्थ धुलेव में आकर ऋषभदेव की यात्रा की। उस समय उस संघ में १४०० स्त्री, पुरुष और बाल-बच्चे थे। उसके साथ सशस्त्र सवार, पैदल, नक़ारा, निशान, मियाना, पालकी, छड़ी आदि लवाज़मा था और कुल संख्या चार हज़ार मनुष्यों तक पहुंच गई थी। इस यात्रा के समय संघ-सहित कपूरचंद डूंगरपुर भी गया और गैबसागर तालाब की पाल पर श्रीनाथजी के मंदिर के पास ठहरा। उसने वहां के तत्कालीन नरेश महारावल शिवसिंह की सेवा में संघ-सहित उपस्थित होकर नज़र-न्योछावर की। महारावल ने भी उसका सम्मान किया और मार्गशीर्ष वदि १२ (ता० १५ नवम्बर) रविवार को अपने राज्यवर्ती सागवाड़ा के पुराने निवासी इस वणिक समुदाय के, जो अपने को डूंगरपुर राज्य की भी प्रजा समझते थे, डेरों पर गया। इस यात्रा में उस (कपूरचंद) ने पचीस सहस्र रुपया व्यय किया था। उसने वागड़ और आसपास के रहनेवाले दिगम्बर जैन हूंबड़ों के प्रत्येक व्यक्ति को भोजन कराया और प्रति गृह एक-एक रुपया और नारियल बांटा। कपूरचंद की मृत्यु वि० सं० १८३७ (ई० स० १७८०) में हुई। तब महारावत ने उसके पुत्र शिवलाल (शिवजी) को अपना मंत्री नियतकर राजमुद्रा में उसका नाम खुदवाया। कुछ काल पीछे शिवलाल ने मतभेद होने से राजकार्य में हानि होने की संभावना देख अपने पद का परित्याग करने का विचार स्थिर किया और यात्रा के लिए आज्ञा प्राप्तकर देवलिया से प्रस्थान किया। उस समय उदयपुर के महाराणा भीमसिंह, ईडर के राजा गंभीरसिंह, झाबुआ के राजा भीमसिंह, मंदसोर के सूबेदार खांडेराव बल्लाल तथा डूंगरपुर के महारावल आदि ने अपने यहां आकर स्थायी रूप से निवास करने के लिए उसके पास परवाने

भिजवाये; परंतु वह वहां नहीं गया और वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२ में रघुनाथद्वार की प्रतिष्ठा के समय महारावत के बुलाने पर पीछा देवलिया गया, जहां थोड़े दिनों बाद वह बंदी कर लिया गया। उन्हीं दिनों होलकर सरकार की ओर से चढ़े हुए खिराज की वसूली के लिए प्रतापगढ़ राज्य पर पूरी ताकीद हुई और होलकर की सेना ने राजधानी को आकर घेर लिया। तब महारावत ने शिवलाल के पुत्र प्रतापचंद को ओल में सौंप दिया। अनन्तर रुपये चुकाकर शिवलाल ने अपने पुत्र को होलकर सरकार की ओल से छुड़ाया। वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) के लगभग उस(शिवलाल)की मृत्यु हुई।

राज्य की ऐसी स्थिति देख उस समय प्रतापगढ़-निवासी राज्य-सेवा में योग देने की अपेक्षा विमुख रहने में ही अपना कल्याण समझते थे, जिससे राज्य को बड़ी हानि हुई। उन दिनों अंग्रेज़-सरकार के साथ महारावत ने संधि करली थी, जिससे बाहरी आक्रमणों से तो राज्य बच गया, परंतु महारावत की सरल प्रकृति का अनुचित लाभ उठाकर कुंवर दीपसिंह ने अपना अधिकार बहुत कुछ बढ़ा लिया और एक प्रकार से महारावत को राजकार्य से बिल्कुल बेदख़ल कर दिया। यही नहीं, उसने महारावत के विश्वासपात्र व्यक्ति—यति हेमराज, ओंकार पाडलिया, गब्बा हलकारा आदि के प्राण हरण किये, जिसपर महारावत और कुंवर के बीच पूरा विरोध हो गया। अंग्रेज़ सरकार ने इस विरोध को न बढ़ने देने के लिए कुंवर को नियन्त्रण में रखने का यत्न किया; परंतु कुंवर दीपसिंह ने न माना और उत्पात करना जारी रखा। इसपर अंग्रेज़-सरकार ने सेना भेज कुंवर को बंदी कर लिया और वह अचेरे की गढ़ी में सरकारी निरीक्षण में रक्खा गया। पुत्र-मोह से द्रवित होकर वृद्ध महारावत ने अंग्रेज़ सरकार से प्रार्थना कर कुंवर को छुड़ाने का उपक्रम किया, किंतु दीपसिंह की आयु ने अधिक साथ न दिया और देवलिया जाकर अपने पिता के चरण-स्पर्श कर अपना अपराध क्षमा कराने के पूर्व ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

इस बिगड़ी हुई दशा में मंत्री-पद को ग्रहणकर वहां की स्थिति को सुधारने के लिए महारावत, अंग्रेज़ सरकार तथा भंवर केसरीसिंह-(महारावत सामन्तसिंह का पौत्र और दीपसिंह का पुत्र) ने शिवजी के पुत्र नवलचंद को ही उपयुक्त समझा। महारावत और उसके ज्येष्ठ पौत्र केसरीसिंह के विश्वास दिलाने पर वि० सं० १८८० (ई० स० १८२३) में उसने मंत्री-पद स्वीकार किया। नवलचंद ने आय-व्यय का हिसाब प्रति-वर्ष महारावत के सम्मुख उपस्थित कर रसीद ले लेने का क्रम जारी किया। वृद्धावस्था के कारण सामन्तसिंह पिछले वर्षों में राजकार्य अपने ज्येष्ठ पौत्र केसरीसिंह को सौंपकर अधिकतर ईश्वरभक्ति में समय बिताने लगा। नवलचंद ने उक्त भंवर को भी प्रसन्न रक्खा और वह दीपसिंह को भी छुड़ाने में प्रयत्नशील रहा। केसरीसिंह का छोटा भाई दलपतसिंह डूंगरपुर के महारावल जसवन्तसिंह के दत्तक गया, इस कारण वह वहां के राजनैतिक कार्यों में भाग लेता था, जिससे दलपतसिंह ने उसको डूंगरपुर राज्य की तरफ़ से एक गांव जागीर में दिया। उसकी कार्यशैली से पोलिटिकल अफ़सर भी प्रसन्न थे और राज्य की आय में क्षति न होकर दिन-दिन वृद्धि ही हुई।

नवलचंद की मृत्यु के बाद उसका भाई भोजराज महारावत दलपतसिंह के समय वि० सं० १९०७ (ई० स० १८५०) में खासगीवाले जड़ावचंद के साथ प्रधानमंत्री बनाया गया, परंतु व्यापार में बाधा पड़ने से कुछ मास बाद ही उसने इस पद का परित्याग कर दिया। नवलचंद का ज्येष्ठ पुत्र जोधराज था। उसका पुत्र हंसराज प्रतापगढ़ में रहकर उस तरफ़ के इलाक़े का सारा काम-काज करता था।

उस (हंसराज) का चाचा जोधकरण (नवलचंद का छोटा पुत्र) महारावत का पूर्ण विश्वासभाजन होने के अतिरिक्त प्रबंध-कुशल व्यक्ति था। सिपाही-विद्रोह के समय उसने भी अच्छी कारगुज़ारी दिखलाई थी। महारावत दलपतसिंह ने दोनों चाचा-भतीजों की सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें नवीन जागीर प्रदान की और जब वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९)

में मंत्री का पद रिक्त हुआ तो जोधकरण को खासगीवाले निहालचंद के स्थान पर नियत किया। वि० सं० १९२० (ई० स० १८६३) में महारावत दलपतसिंह का स्वर्गवास होने पर उसका कुंवर महाराजकुमार उदयसिंह सोलह वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुआ। अंग्रेज़-सरकार ने जोधकरण की उत्तम कार्यशैली का परिचय पाकर उस समय शासन-कार्य चलाने के लिए वहां रिजेंसी कौंसिल नियत करना उचित न समझा और सारा राज्य-भार जोधकरण को सौंपकर महारावत को संपूर्ण राज्याधिकार दे दिये। वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में बांसवाड़ा राज्य ने घोरी-रीछड़ी गांव के सीमा संबंधी झगड़े के कारण प्रतापगढ़ राज्य के थाने पर आक्रमण किया। उस समय जोधकरण ने योग्यतापूर्वक इस मामले को पोलिटिकल-एजेंट के पास उपस्थित किया, जिससे बांसवाड़ा राज्य की ज़्यादती सिद्ध होकर यथोचित न्याय हुआ। उसने राज्य के आय-व्यय का हिसाब वर्ष की समाप्ति पर महारावत के सामने पेश कर रसीद लेने का तरीक़ा बनाया। वि० सं० १९२० (ई० स० १८६३) में जब वह राज्यकार्य के लिए उदयपुर गया था, तब वहां के महाराणा शंभुसिंह ने अपने दरबार में उसको बैठने का सम्मान दिया, जैसा कि पहले शिवजी और नवलचंद को प्राप्त था। उसने प्रथम बार वि० सं० १९२४ (ई० स० १८६७) और दूसरी बार वि० सं० १९३४ से १९३७ तक मंत्री का कार्य किया था। जोधकरण का पुत्र कानजी कई वर्ष तक सहकारी मंत्री (नायब दीवान) रहा। जब वह वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में उदयपुर भेजा गया, तब वहां के महाराणा फ़तहसिंह ने उसको भी अपने दरबार में बैठने का सम्मान प्रदान किया। वि० सं० १९५४ (ई० स० १८९७) में राजकुमारी वल्लभकुंवरी का विवाह बीकानेर के महाराजा सर गंगासिंहजी से हुआ, उस समय उस(कानजी)ने अच्छी कारगुजारी बतलाई, जिससे प्रसन्न होकर उक्त महारावत ने हंसराज और कानजी को नई जागीरें दीं।

हंसराज का बड़ा पुत्र पन्नालाल और छोटा मन्नालाल हुआ। पन्नालाल कचहरी ख़ासगी, टकसाल आदि का कई वर्ष तक हाकिम रहा।

उसका पौत्र अमृतलाल (पूनमचंद का पुत्र) इस समय हिसाब दफ़्तर का हाकिम है। मन्नालाल वि० सं० १६६१ (ई० स० १६०५) में महाराजकुमार मानसिंह का कामदार नियत हुआ। फिर वह महक्मा ख़ास में असिस्टेन्ट सेक्रेटरी बनाया गया। महारावत रघुनाथसिंह और महाराजकुमार मानसिंह का पूरा विश्वासपात्र होने से वह फिर कचहरी ख़ासगी (गृह-विभाग) का अफ़्सर बनाया गया। तब से अब तक वह उक्त पद पर कार्य कर रहा है। महारावत रघुनाथसिंह उसकी सलाह को मानता था। उसी प्रकार वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी भी उसकी हितपूर्ण सलाह को मानते हैं। उक्त महारावतजी ने वि० सं० १६८७ (ई० स० १६३०) में जागीर के एवज़ में उससे जो सेवा ली जाती थी, वह माफ़ करदी है। उसका ज्येष्ठ पुत्र किशनलाल, बी० ए०, एल्-एल्० बी० ध्रांगध्रा में फ़र्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट है।

लसण के दूसरे पुत्र हरचंद के वंशधर

उपर्युक्त पाडलिया लसण का एक पुत्र हरचंद था, जिसका पांचवां वंशधर रतनलाल, महारावत उदयसिंह के पिछले राज्यसमय में प्रतापगढ़ राज्य का मंत्री बना। उसने महारावत रघुनाथसिंह की गद्दीनशीनी से लगाकर पिछले समय तक भली प्रकार से सेवा की। मेवाड़ और प्रतापगढ़ राज्य के सीमा सम्बन्धी झगड़े में भी उसने अच्छी कारगुज़ारी दिखलाई। महारावत उदयसिंह की निःसंतान मृत्यु होने पर अचलावदा के ठाकुर ने उज्र किया, उस समय रतनलाल ने उसको समझाकर झगड़ा आगे न बढ़ने दिया। उसकी इस सेवा को महारावत रघुनाथसिंह भी मानता रहा। उक्त महारावत के समय प्रथम बार वि० सं० १६४६ (ई० स० १८६२) तक दूसरी बार वि० सं० १६५३ से ५५ (ई० स० १८६६ से ६८) तक और तीसरी बार महाराजकुमार मानसिंह के देहावसान के पीछे कुछ वर्षों तक वह मंत्री-पद पर रहा था। उसका पुत्र माणकलाल पाडलिया, बी० ए०, एल-एल० बी० है। उसने वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) में सालिमगढ़ गांव के सीमा संबंधी झगड़े में अच्छी कारगुज़ारी दिखलाई थी। वह कई वर्ष तक हिसाब दफ़्तर का हाकिम और राजसभा का सदस्य रहा। वर्तमान

महारावतजी ने उसको नायब दीवान बनाया। फिर शाह चुन्नीलाल शरीफ़ के अलग होने पर जब दीवान की जगह खाली हुई तो वह स्थानापन्न दीवान नियत हुआ और वि० सं० १९९६ (ई० स० १९३९) के प्रारंभ तक उक्त पद का कार्य करता रहा और उससे महारावत और वहां के निवासी संतुष्ट रहे। इस समय वह प्रतापगढ़ राज्य का नायब दीवान है और सुचारु रूप से अपना कार्य कर रहा है।

खासगीवालों का घराना

महारावत के गृह-विभाग (अन्तःपुर) का प्रबंध और निजी कार्य करनेवाले व्यक्ति इस राज्य में खासगीवाले कर्मचारी कहलाते हैं। इस पद का कार्य पूर्ण विश्वासपात्र व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं सौंपा जाता। उनके सुपुर्द राज्य के अन्य उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भी रक्खे जाते हैं। इस खानदान के व्यक्ति भी हूंबड़ जाति के महाजन हैं और उनका अल्ल तलाटी है। इस वंश के शाह जड़ावचंद को महारावत सामंतसिंह ने वि० सं० १८७० (ई० स० १८१३) में अपना पूरा विश्वासपात्र समझ कर खासगी के महकमे में नियत किया। उसने समय-समय पर उक्त महारावत की अच्छी सेवा कर पूर्ण स्वामीभक्ति दिखलाई। मरहटों के उपद्रवों तथा अन्य कई झमेलों से देश की स्थिति संभलने नहीं पाई थी कि ऐसे समय में वि० सं० १८९० (ई० स० १८३३) में प्रतापगढ़ राज्य में दुर्भिक्ष हो गया। उस समय भी जड़ावचंद ने राज्य की अच्छी सेवा की, जिससे महारावत ने प्रसन्न होकर उसकी जागीर में वृद्धि की। उक्त महारावत के पिछले समय में उसका पौत्र दलपतसिंह डूंगरपुर में भी रहा करता था, जिससे राज्य में अधिक सुधार नहीं हो सकता था। इस-लिए महारावत सामंतसिंह का परलोकवास होने पर दलपतसिंह ने राजगद्दी पर बैठते ही जड़ावचंद को वि० सं० १९०० (ई० स० १८४३) में अपना मंत्री बनाया। उसने अपने स्वामी की इच्छानुसार शासन-कार्य योग्यता-पूर्वक चलाया, जिससे राज्य की आय बढ़ी, कई नये गांव बसे और

व्यापार में भी उन्नति हुई। वह सिपाही-विद्रोह के समय तक अपने पद पर बना रहा और उसने अंग्रेज़-सरकार के प्रति उस कठिन समय में भी वफ़ादारी में अन्तर न आने दिया। वि० सं० १६१४ (ई० स० १८५७) में जड़ावचंद की मृत्यु होने पर उसका पुत्र शाह निहालचंद मंत्री हुआ, जिसने वि० सं० १६१६ (ई० स० १८५६) तक इस पद का कार्य किया और ग़दर के अवसर पर बाग़ी सरदार क़ासिमखां आदि के मुकाबले के समय उसने सदैव महारावत के साथ रहकर अच्छा कार्य किया।

निहालचंद के छोटे भाई कस्तूरचंद और कपूरचंद थे। वे खासगी का काम पूर्ववत् करते रहे। महारावत उदयसिंह के समय वि० सं० १६३३ (ई० स० १८७६) में वहां के काश्तकार इलाक़ा छोड़कर चले गये, तब महारावत ने अपने विश्वासपात्र सेवक कपूरचंद को काश्तकारों को समझा-कर पीछा लाने का हुक्म दिया। इसपर उसने अपने भतीजे नंदलाल-सहित गांवों में जा काश्तकारों को समझाकर पीछा आबाद किया। वि० सं० १६३६ (ई० स० १८७६) में उक्त महारावत के अन्तःपुर की ड्योढ़ी की निगरानी का सारा काम पूरे अख़्तियार-सहित कपूरचंद को सौंपा गया और उसकी उत्तम सेवाओं के एवज़ में वि० सं० १६४५ (ई० स० १८८६) में उसकी जागीर का आधा ख़िराज माफ़ कर दिया गया।

वि० सं० १६४६ (ई० स० १८८६) में महारावत उदयसिंह का निःसंतान देहांत हो गया। उस समय अरणोद के महाराज रघुनाथसिंह को राजगद्दी पर विठलाने में शाह कपूरचंद ने पूर्ण प्रत्न किया। कपूरचंद का पुत्र अमृतलाल भी अन्तःपुर की ड्योढ़ी का प्रबंधकर्ता था और उसके सुपुर्द राज्य के मुहाफ़िज़खाने एवं कारखानें ज़ात की निगरानी का कार्य बहुत वर्षों तक रहा।

कपूरचंद का तीसरा पुत्र जोधकरण, बी० ए० था। प्रतापगढ़ राज्य में वही सर्वप्रथम व्यक्ति था, जिसने अंग्रेज़ी में बी०ए० तक की उच्च परीक्षा अपने ही साहस से पास की। फिर वह महारावत रघुनाथसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी नियत हुआ। वि० सं० १६५६ (ई० स० १८६६) के भयङ्कर अकाल

के समय वह "अकाल सहायक समिति" का सेक्रेटरी बनाया गया। महाराजकुमार मानसिंह के अजमेर में विद्याध्ययन करते समय वह उसका शिक्षक और गार्जियन नियत हुआ। फिर वह मैजिस्ट्रेट और दीवानी अदालत का हाकिम बनाया गया और उसके साथ ही राज्य की तरफ़ से पोलिटिकल एजेंसी के संबंध का महकमा ख़ास का अंग्रेज़ी कार्य भी वह करता रहा। वि० सं० १९६१ वैशाख वदि ५ (ई० स० १९०४ ता० ५ अप्रेल) को २७ वर्ष की आयु में उसकी प्लेग की बीमारी से मृत्यु हुई।

जोधकरण का छोटा भाई मुंशी फ़तहलाल है, जिसने अंग्रेज़ी भाषा में बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की है। वह प्रारंभ में प्रतापगढ़ के स्कूल का हेड मास्टर बनाया गया। उसके उत्तम प्रबंध से उक्त स्कूल की अच्छी उन्नति हुई और उसके कार्यकाल में ही वहां मेट्रिक तक की शिक्षा दी जाने की व्यवस्था हो गई। वह महाराजकुमार मानसिंह का बाल्यवस्था का साथी और कृपापात्र एवं वर्तमान महारावत सर रामसिंहजी का शिक्षक भी रहा है। राज्य के भिन्न-भिन्न ऊंचे पदों पर समय-समय पर उसकी नियुक्ति होने से उसका अनुभव अधिकाधिक बढ़ता रहा, जिससे वह कई सीमा संबंधी मुकदमों और कान्फ़रेंसों में प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया, जहां उसने योग्यतापूर्वक कार्य किया। प्रतापगढ़ राज्य में अफ़ीम की खेती बंद करने से जो हानि होती है, उसने उसका स्पष्ट और सप्रमाण विवरण पेश किया, जो राज्य के लिए हितकर सिद्ध हुआ। वह इस समय सुपरिन्टेन्डेन्ट एग्रीकल्चर और बाग़ तथा ख़ज़ाने का अफ़सर है।

भांचावत

भांचावत भी हूंबड़ जाति के वैश्य हैं। इस वंश के शाह भूरा ने बोरी-रीछड़ी के सीमा संबंधी मुक़दमे में प्रतापगढ़ राज्य की पूरी सेवा की थी। फिर मन्नालाल भांचावत महारावत रघुनाथसिंह के समय वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में प्रतापगढ़ राज्य का मंत्री बनाया गया। उसके मंत्रीत्वकाल में कैप्टेन ए० टी० होम ने प्रतापगढ़ राज्य में पैमाइश का कार्य कराया; जिसमें उसकी सेवा अच्छी रही। बांसवाड़ा राज्य के

भील इस राज्य में बड़ा उपद्रव करते थे, जिनका अंग्रेज़ सरकार दमन करना चाहती थी। ई० स० १६०४ (वि० सं० १६६०) में प्रतापगढ़ राज्य से उन भीलों को दबाने के लिए सेना रवाना हुई, उस समय मन्नालाल की कार्यवाही उचित मानी गई और मेवाड़ के तत्कालीन रेज़िडेंट मेजर ए० एफ़० पिन्हे ने उसके कार्य की सराहना की। उसने प्रतापगढ़ राज्य और मेवाड़ तथा बांसवाड़ा राज्यों के बीच होनेवाले सीमा संबंधी झगड़ों में प्रत्येक वार पूरा परिश्रम किया, जिससे महारावत भी उस से संतुष्ट रहा। उसका पुत्र चांदमल भांचावत, बी० ए०, एल-एल० बी० म्युनिसिपिल कमेटी का सेक्रेटरी है।

आपा का वंश

प्रतापगढ़ राज्य का मरहटों के साथ संबंध होने पर पत्र-व्यवहार महाराष्ट्र लिपि और भाषा में होता था। इसके लिए महारावत सालिमसिंह के राज्य-काल में महाराष्ट्र जाति का ब्राह्मण सखाराम नियत किया गया, जो होल्कर के दरबार में लिखा-पढ़ी का कार्य करता था। वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में जब अंग्रेज़ सरकार तथा प्रतापगढ़ राज्य के बीच संधि हुई, उस समय पंडित रामचंद्र भाऊ (सखाराम का वंशधर) महारावत सामंतसिंह की ओर से प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। रामचंद्र की अच्छी सेवाओं से प्रसन्न होकर उक्त महारावत ने वि० सं० १८७६ आषाढ सुदि ३ (ई० स० १८१९ ता० २५ जून) शुक्रवार को उसे जागीर प्रदान की एवं उक्त महारावत के समय वहां की टकसाल का कार्य भी उसके सुपुर्द किया गया। रामचंद्र का पुत्र नत्थोपंत आपा हुआ। महारावत दलपतसिंह ने, जब वह डूंगरपुर का युवराज था, उसको वहां पर भी जागीर दी और प्रतापगढ़ का स्वामी होने पर उस(दलपतसिंह)ने उसकी जागीर बढ़ाई। वह प्रतापगढ़ राज्य की तरफ़ से पोलिटिकल अफ़सरों के पास वकील का कार्य करता रहा। नत्थोपंत आपा का पुत्र जगन्नाथ, टकसाल का अफ़सर रहा। जगन्नाथ का पुत्र लालजी और लालजी के दो पुत्र रामचंद्र और लक्ष्मण हुए। लक्ष्मण का पुत्र अमृतराव इस समय विद्यमान है।

परिशिष्ट संख्या १

गुहिल से लगाकर प्रतापगढ़ के संस्थापक रावत क्षेमकर्ण तक मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं की वंशावली

१ गुहिल
२ भोज
३ महेन्द्र
४ नाग (नागादित्य)
५ शील (शीलादित्य)—वि० सं० ७०३ ।
६ अपराजित—वि० सं० ७१८ ।
७ महेन्द्र (दूसरा)
८ कालभोज (बापा)—वि० सं० ७९१-८१० ।
९ खुम्माण—वि० सं० ८१० ।
१० मत्तट
११ भर्तृभट (भर्तृपट)
१२ सिंह
१३ खुम्माण (दूसरा)
१४ महायक
१५ खुम्माण (तीसरा)
१६ भर्तृभट (भर्तृभट्ट, दूसरा)—वि० सं० ९९९-१००० ।
१७ अल्लट—वि० सं० १००८, १०१० ।
१८ नरवाहन—वि० सं० १०२८ ।
१९ शालिवाहन
२० शक्तिकुमार—वि० सं० १०३४ ।
२१ अंबाप्रसाद
२२ शुचिवर्मा
२३ नरवर्मा
२४ कीर्तिवर्मा
२५ योगराज
२६ वैरट
२७ हंसपाल
२८ वैरिसिंह
२९ विजयसिंह—वि० सं० ११६४, ११७३ ।
३० अरिसिंह
३१ चोड़सिंह

३२ विक्रमसिंह

३३ रणसिंह (कर्णसिंह)।

मेवाड़ की रावल शाखा — सीसोदे की राणा शाखा

मेवाड़ की रावल शाखा

३४ क्षेमसिंह

३५ सामंतसिंह — पहले मेवाड़ का स्वामी हुआ फिर वागड़ की तरफ़ जाकर डूंगरपुर-बांसवाड़ा राज्य की स्थापना की।

३६ कुमारसिंह

३७ मथनसिंह

३८ पद्मसिंह

३९ जैत्रसिंह वि० सं० १२७०-१३०९

४० तेजसिंह वि० सं० १३१७-२४

४१ समरसिंह वि० सं० १३३०-५८

४२ रत्नसिंह वि० सं० १३५९-६०
अलाउद्दीन ख़िलजी का चित्तोड़ पर आक्रमण होने पर वि० सं० १३६० में परलोक सिधारा और चित्तोड़ पर मुसलमानों का अधिकार हुआ।

सीसोदे की राणा शाखा

१ माहप

२ राहप

३ नरपति

४ दिनकरण

५ जसकरण

६ नागपाल

७ पूर्णपाल

८ पृथ्वीमल्ल

९ भुवनसिंह

१० भीमसिंह

११ जयसिंह

१२ लक्ष्मणसिंह वि. सं. १३६०

१३ अजयसिंह — इसके वंशजों ने मेवाड़ से बाहर जाकर दक्षिण में राज्य-स्थापना की।

अरिसिंह

४३ हंमीरसिंह वि० सं० १३८३ (?)-१४२१ (?)
मुसलमानों से चित्तोड़ लिया

४४ क्षेत्रसिंह (खेता) वि० सं० १४२१ (?)-१४३९

४५ लक्षसिंह (लाखा) वि० सं० १४३९-१४७८ (?)

४६ मोकल वि० सं० १४७८ (?)-१४९०

४७ कुंभकर्ण (कुंभा) वि० सं० १४९०-१५२५ — मेवाड़ का स्वामी

क्षेमकर्ण (खींवा) — प्रतापगढ़वालों का पूर्वज

परिशिष्ट संख्या २

महारावत क्षेमकर्ण से वर्तमान समय तक प्रतापगढ़ के राजाओं की वंशावली

नाम	ख्यातों में उल्लिखित राज्याभिषेक का संवत्		शिलालेखों आदि से ज्ञात संवत्	ग्रंथकर्ता के मतानुसार राज्याभिषेक का संवत्
	बड़वा की ख्यात से	अन्य ख्यातों आदि से		
महारावत क्षेमकर्ण	...	...	...	...
,, सूरजमल	१५३०	१५३०	...	१५३० के आसपास
,, बाघसिंह	१५८७	१५८४	...	१५८७
,, रायसिंह	१५९२	१५९१	...	१५९२
,, विक्रमसिंह (बीका)	१६०९	१६०९	...	१६०९
,, तेजसिंह	१६२०	१६३३	१६२१, १६३५	१६२०
,, भानुसिंह (भाना)	१६४८	१६५०	१६५१, १६५२	१६५०
,, सिंहा	१६६०	१६६०	१६७९, १६८४	१६५४
,, जसवन्तसिंह	१६८५	१६८५	...	१६८५
,, हरिसिंह	१६९०	१६९०	१६९९-१७२४	१६८५
,, प्रतापसिंह	१७३०	१७३०	१७३१-१७६४	१७३०
,, पृथ्वीसिंह	१७६४	१७६४	१७६५-१७७५	१७६५
,, संग्रामसिंह	१७७६	१७७५	१७७६	१७७५
,, उम्मेदसिंह	१७७७	१७७६	१७७७	१७७६
,, गोपालसिंह	१७७९	१७७९	१७७८-१८११	१७७८
,, सालिमसिंह	१८१४	१८१४	१८१३-१८१९	१८१३
,, सामन्तसिंह	१८३१	१८३१	१८३८-१८९२	१८३१
,, दलपतसिंह	१९००	१९००	...	१९००
,, उदयसिंह	१९२०	१९२०	...	१९२०
,, रघुनाथसिंह	१९४६	१९४६	...	१९४६
,, रामसिंहजी (विद्यमान)	...	...	...	१९८५

परिशिष्ट संख्या ३

प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास का कालक्रम

+++++++

महारावत क्षेमकर्ण

वि० सं०	ई० स०	
(१४९४)[1]	(१४३७)	क्षेमकर्ण का सादड़ी पर अधिकार करना।
(१५३०)	(१४७३)	क्षेमकर्ण की मृत्यु।

महारावत सूरजमल

(१५३०)	(१४७३)	सूरजमल की गद्दीनशीनी।
१५६१	१५०४	सूरजमल के संबंध में चारणी की भविष्यवाणी।
(१५६३)	(१५०६)	मालवा के सुलतान नासिरशाह के पास सहायतार्थ जाना।
(१५६४)	(१५०७)	सूरजमल और सारंगदेव का मालवा की सेना के साथ जाकर महाराणा रायमल से युद्ध करना।
(१५६५)	(१५०८)	सूरजमल का मेवाड़ छोड़ कांठल में आबाद होना।
(१५८७)	(१५३०)	सूरजमल की मृत्यु।

महारावत बाघसिंह

(१५८७)	(१५३०)	बाघसिंह की गद्दीनशीनी।
१५९२	१५३५	बहादुरशाह की चित्तोड़ की चढ़ाई के अवसर पर बाघसिंह का मारा जाना।

---

(१) ऊपर कोष्ठकों में दिये हुए संवत् आनुमानिक हैं, निश्चित नहीं।

महारावत रायसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१५९२	१५३५	रायसिंह की गद्दीनशीनी।
(१५९३)	(१५३६)	उदयसिंह को लेकर धाय पन्ना का देवलिया जाना।
(१६०९)	(१५५२)	रायसिंह का देहांत।

महारावत विक्रमसिंह (बीका)

(१६०९)	(१५५२)	विक्रमसिंह की गद्दीनशीनी।
(१६१०)	(१५५३)	विक्रमसिंह का मेवाड़ का परित्याग करना।
१६१३	१५५७	विक्रमसिंह का कुंवर तेजसिंह को महाराणा उदयसिंह के साथ हाजीखां की सहायतार्थ भेजना।
(१६१७)	(१५६०)	विक्रमसिंह का देवलिया को राजधानी बनाना।
(१६१९)	(१५६२)	विक्रमसिंह का बांसवाड़ा के स्वामी प्रतापसिंह की सहायतार्थ महारावल आसकर्ण (डूंगरपुर) से लड़ना।
(१६२०)	(१५६३)	विक्रमसिंह का देहांत।

महारावत तेजसिंह

१६२०	(१५६३)	तेजसिंह की गद्दीनशीनी।
१६२१	१५६४	दमाखेड़ी गांव का दानपत्र।
१६३३	१५७६	हल्दीघाटी के युद्ध में महारावत का कांधल को महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) की सहायतार्थ भेजना।
१६५०	१५९३	तेजसिंह का देहांत।

महारावत भानुसिंह (भाना)

वि० सं०	ई० स०	
१६५०	१५९३	भानुसिंह की गद्दीनशीनी।
१६५१	१५९४	सेमली गांव का ताम्रपत्र।
१६५२	१५९५	अमलावद गांव का ताम्रपत्र।
१६५४	१५९७	भानुसिंह का चीताखेड़े के पास शक्तावत जोधसिंह से लड़कर मारा जाना।

महारावत सिंहा

१६५४	१५९७	सिंहा की गद्दीनशीनी।
१६७२	१६१५	जहांगीर का महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के कुंवर कर्णसिंह को बसाड़ और अरणोद का फ़रमान देना।
(१६८३)	(१६२६)	महावतखां का देवलिया में जाकर रहना।
१६८४	१६२७	गयासपुर की बावड़ी की प्रशस्ति।
(१६८५)	(१६२८)	सिंहा का देहांत।

महारावत जसवन्तसिंह

(१६८५)	(१६२८)	जसवन्तसिंह की गद्दीनशीनी।
१६८५	१६२८	महाराणा से छेड़-छाड़ न करने के लिए शाहजहां का जांनिसारखां के नाम फ़रमान भेजना।
(१६८५)	(१६२८)	महारावत का कुंवर महासिंह-सहित महाराणा जगतसिंह (प्रथम) की सेना से लड़कर मारा जाना।

महारावत हरिसिंह

वि० सं०	ई० स०	
(१६८५)	(१६२८)	हरिसिंह की गद्दीनशीनी।
(१६८५)	(१६२८)	जोधसिंह (धमोतर) का हरिसिंह को दिल्ली ले जाना।
(१६८५)	(१६२८)	महाराणा जगतसिंह (प्रथम) का सेना भेज देवलिया बरबाद कर वहां अधिकार करना।
(१६९०)	(१६३३)	बादशाह का फ़ौज भेज देवलिया पर महारावत का अधिकार कराना।
(१६९०)	(१६३३)	महाराणा का धरियावद का परगना खालसा करना।
१६९९	१६४२	मचलाणा गांव का ताम्रपत्र।
१७०१	१६४४	महारावत का टिकरा गांव दान करना।
१७०५	१६४८	देवलिया के गोवर्द्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति और कीटखेड़ी गांव का ताम्रपत्र।
१७०५	१६४८	महारावत की माता का गोवर्द्धननाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय तुलादान करना।
१७०५	१६४८	शाहजहां का महारावत को खिलअत आदि देना।
१७०९	१६५२	शाहजहां का महारावत को बुलाना।
१७०९	१६५२	महारावत को कोटड़ी का परगना मिलना।
१७१०	१६५४	हरिसिंह की शाहज़ादे मुराद के साथ नियुक्ति।
१७११	१६५४	शाहज़ादे मुरादबख़्श के पास उपस्थित होना।
१७११	१६५४	शाहज़ादे मुराद का महारावत को उज्जैन से हटाकर अहमदाबाद में नियत करना।
१७१४	१६५७	शाहज़ादे दाराशिकोह का निशान भेजना।
१७१४	१६५७	शाहज़ादे मुरादबख़्श का निशान भेजना।
१७१५	१६५८	शाहज़ादे दाराशिकोह का मुरादबख़्श को बंदी करने के लिए निशान भेजना।

वि० सं०	ई० स०	
१७१५	१६५८	मुरादबख़्श का महारावत को परगना सुखेरी देने का निशान और खिलअ़त भेजना।
१७१५	१६५८	बादशाह औरंगज़ेब का महाराणा राजसिंह (प्रथम) के नाम बसाड़, ग्यासपुर आदि का फ़रमान करना।
१७१५	१६५६	दाराशिकोह का हरिसिंह को अपने पास उपस्थित होने के लिए निशान भेजना।
१७१६	१६५६	महाराणा राजसिंह (प्रथम) का देवलिया पर सेना भेजना।
१७१६	१६५६	महारावत का बादशाह औरंगज़ेब के पास जाना।
१७१६	१६५६	महारावत की माता का अपने पौत्र प्रतापसिंह को महाराणा के पास भेजना।
१७१६	१६५६	बसाड़ के दौरे के समय हरिसिंह का महाराणा राजसिंह (प्रथम) की सेवा में उपस्थित होना।
(१७१८)	(१६६१)	महारावत का बादशाह के पास जाकर ग्यासपुर तथा बसाड़ के परगने पुनः प्राप्त करना।
१७१६	१६६२	कुंवर प्रतापसिंह तथा अमरसिंह को शाही सेवा में भिजवाने के संबंध में अर्ज़ी भेजना।
१७२१	१६६४	बादशाह का महारावत को मालवे में रहने की आज्ञा देना।
१७३०	१६७३	महारावत का देहांत।

महारावत प्रतापसिंह

१७३०	१६७३	महारावत की गद्दीनशीनी।
१७३१	१६७४	बादशाह औरंगज़ेब का महारावत को मनसब देना।

वि० सं०	ई० स०	
१७३१	१६७५	भोगीदास की बावड़ी का शिलालेख।
(१७३२)	(१६७५)	महाराणा और महारावत की तक़रार की जांच के लिए शेख़ इनायतुल्ला का भेजा जाना।
१७३३	१६७७	पाटएये गांव का संस्कृत दानपत्र।
१७३६	१६७९	बादशाह का मेवाड़ की चढ़ाई के समय महारावत को मंदसोर में हाज़िर होने के लिए फ़रमान भेजना।
१७३७	१६८०	शाहज़ादे मुअज़्ज़म का महारावत को देबारी के मुक़ाम पर बुलवाना।
१७३८	१६८१	शाहज़ादे आज़म का महारावत को अपने पास उपस्थित होने के लिए लिखना।
१७५३	१६९६	महाराजा अजीतसिंह का प्रतापगढ़ में विवाह होना।
१७५५	१६९९	महारावत का प्रतापगढ़ का क़स्बा बसाना।
(१७५६)	(१६९९)	महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) का महारावत से छेड़छाड़ करना।
१७६४	१७०८	बादशाह बहादुरशाह का महारावत को बुलाना।
१७६५	१७०८	महाराजा अजीतसिंह और सवाई जयसिंह का उदयपुर जाते समय देवलिया में ठहरना।
(१७६५)	(१७०८)	महारावत का देहान्त।

महारावत पृथ्वीसिंह

(१७६५)	(१७०८)	महारावत की गद्दीनशीनी।
१७६६	१७०९	महाराजा अजीतसिंह का महारावत की पुत्री से विवाह होना।
१७६६	१७०९	बादशाह बहादुरशाह के पास से बसाड़ परगने का फ़रमान आना।

वि० सं०	ई० स०	
१७६८	१७११	महारावत के मनसब में वृद्धि होना।
१७६९	१७१२	वज़ीर आसफ़ुद्दौला का बसाड़ के परगने की आय महारावत को देने के लिए आज्ञापत्र भेजना।
१७७१	१७१४	बादशाह होने पर फ़र्रुख़सियर का महारावत के नाम फ़रमान भेजना।
(१७७१)	(१७१४)	महारावत को 'रावत राव' का ख़िताब मिलना।
१७७१	१७१४	महारावत का शाही इलाक़े में उत्पात करना।
१७७३	१७१६	महारावत का कुंवर पहाड़सिंह को उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) की सेवा में भेजना।
१७७३	१७१६	सवाई जयसिंह और राव बुधसिंह (बूंदी) का महारावत के विरुद्ध शिकायत करना।
१७७३	१७१६	महारावत पर लगाये गये अभियोगों की जांच के लिए बादशाह का क़ुतुबुल्मुल्क को आज्ञा देना।
१७७४	१७१७	महाराणा संग्रामसिंह के मंत्री बिहारीदास का रामपुरा से लौटते समय देवलिया में ठहरना।
१७७४	१७१८	महारावत का वर्ष भर में ४४ दिन तेल निकालने का निषेध करना।
१७७४	१७१८	देवलिया के बड़े जैन मंदिर की प्रशस्ति।
१७७४	१७१८	महारावत का पर्यूषणों, अष्टमी, चतुर्दशी और रविवार को शराब की भट्टी बंद रखने की आज्ञा देना।
(१७७५)	(१७१८)	कुंवर पहाड़सिंह की मृत्यु।
(१७७५)	(१७१८)	महारावत का देहांत

महारावत संग्रामसिंह (रामसिंह)

वि० सं०	ई० स०	
(१७७५)	(१७१८)	महारावत की गद्दीनशीनी।
(१७७६)	(१७१६)	महारावत का देहांत।

महारावत उम्मेदसिंह

(१७७६)	(१७१६)	महारावत की गद्दीनशीनी।
(१७७८)	(१७२१)	महारावत का देहांत।

महारावत गोपालसिंह

(१७७८)	(१७२१)	महारावत की गद्दीनशीनी।
१७७८	१७२१	महारावत का उदयपुर जाना।
(१७७९)	(१७२२)	महारावत को धरियावद का परगना मिलना।
१७८७	१७३०	महारावत का डूंगरपुर से महाराणा और पेशवा की सेना का घेरा उठवाना।
१७९१	१७३४	परामर्श के लिए मरहटों की सेना के देवलिया के समीप एकत्रित न होने के लिए महाराणा जगतसिंह-(दूसरा) का बिहारीदास के नाम पत्र भेजना।
१७९२	१७३६	पेशवा बाजीराव के राजपूताने में आने पर महारावत का उसके साथ रहना।
१७९७	१७४०	सवाई जयसिंह के जोधपुर घेरने पर महारावत का महाराणा के शामिल होना।
१८१२	१७५६	महारावत का देहांत।

महारावत सालिमसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१८१३	१७५६	महारावत की गद्दीनशीनी।
(१८१४)	(१७५७)	महारावत का दिल्ली जाकर बादशाह से राज्यचिन्ह, निशान एवं नक़ारा रखने के सम्मान के साथ सालिमशाही सिक्का बनाने की आज्ञा प्राप्त करना।
१८१८	१७६१	तुकोजी होल्कर का प्रतापगढ़ पर घेरा डालना।
१८२०	१७६३	मल्हारराव होल्कर का प्रतापगढ़ से धन वसूल करना।
१८२५	१७६८	महारावत का महाराणा अरिसिंह की सहायतार्थ जाना।
१८३१	१७७४	महारावत का देहांत।

महारावत सामन्तसिंह

१८३१	१७७४	महारावत की गद्दीनशीनी।
१८५०	१७९४	महाराणा भीमसिंह के बांसवाड़ा की तरफ़ बढ़ने का समाचार पाकर महारावत का मोतमिद भेज धरियावद का निरदावा करना।
१८६१	१८०४	अंग्रेज़ सरकार के साथ संधि होना।
१८६५	१८०८	महारावत के पौत्र केसरीसिंह और दलपतसिंह का जन्म।
१८७५	१८१८	अंग्रेज़ सरकार के साथ पुनः संधि होना।
१८७७	१८२०	महारावत के पौत्र दलपतसिंह को डूंगरपुर के महारावत जसवन्तसिंह (दूसरा) का गोद लेने के लिए वहां ले जाना।
१८८०	१८२३	कुंवर दीपसिंह का बंदी होना।

वि० सं०	ई० स०	
१८८०	१८२३	महारावत का अंग्रेज़ सरकार से सेना रखने के एवज़ में नक़द रक़म देने का इक़रार करना।
(१८८०)	(१८२३)	भंवर केसरीसिंह को राजकार्य सौंपना।
१८८३	१८२६	कुंवर दीपसिंह की मृत्यु।
१८८६	१८३३	महारावत की पौत्री प्रतापकुंवरी का विवाह।
१८९१	१८३४	केसरीसिंह की मृत्यु।
(१८९१)	(१८३४)	महारावत का दलपतसिंह को राजकार्य सौंपना।
१९००	१८४४	महारावत का देहांत।

महारावत दलपतसिंह

१९००	१८४४	महारावत की गद्दीनशीनी।
(१९००)	(१८४४)	अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से महारावत को गद्दीनशीनी की खिलअत मिलना।
१९०३	१८४६	डूंगरपुर की गद्दी पर साबली के ठाकुर जसवंतसिंह के पुत्र उदयसिंह को नियत करना।
१९०५	१९४९	कुंवर उदयसिंह का जन्म।
१९०९	१८५२	महारावत का डूंगरपुर का शासनाधिकार छोड़ना।
१९१४	१८५७	सिपाही-विद्रोह के समय महारावत का नीमच में सेना भेजना और क़ासिमखां विलायती आदि विद्रोहियों का महारावत की सेना-द्वारा मारा जाना।
१९१८	१८६२	महारावत को गोदनशीनी की सनद मिलना।
१९२०	१८६४	महारावत का परलोकवास।

महारावत उदयसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१९२०	१८६४	महारावत की गद्दीनशीनी।
१९२२	१८६५	महारावत के कुंवर हंमीरसिंह का जन्म।
१९२२	१८६५	अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से गद्दीनशीनी की खिलअत मिलना।
१९२२	१८६५	प्रतापगढ़ राज्य की सीमा में होकर रेल्वे लाइन लाने के विषय में अंग्रेज़ सरकार से बातचीत होना।
१९२३	१८६६	महारावत का आगरे जाकर लॉर्ड लॉरेंस से मुलाक़ात करना।
१९२४	१८६७	महारावत का प्रतापगढ़ को राजधानी बनाना।
१९२४	१८६७	अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से पंद्रह तोपों की सलामी नियत होना।
१९२५	१८६८	अकाल के समय लोगों की सहायता करना।
१९२५	१८६८	अपराधियों के लेन-देन के संबंध में अंग्रेज़ सरकार के साथ इक़रारनामा होना।
१९३२	१८७५	महारावत का लॉर्ड नॉर्थब्रुक की मुलाक़ात के लिए नीमच जाना।
१९३३	१८७७	दिल्ली दरबार के समय महारावत को झंडा मिलना।
१९३७	१८८१	प्रतापगढ़ में प्रथम बार मनुष्य-गणना होना।
१९३९	१८८३	महारावत का नीमच जाकर इंदौर के तत्कालीन महाराजा तुकोजीराव होल्कर से मुलाक़ात करना।
१९४३	१८८७	महारावत के कुंवर अर्जुनसिंह का जन्म।
१९४४	१८८७	महाराणी विक्टोरिया की स्वर्ण जयंती पर महारावत का प्रतापगढ़ में पुल बनवाना।
१९४४	१८८७	महारावत का नीमच जाकर शाहज़ादे ड्यूक ऑव् कनॉट से मुलाक़ात करना।

वि० सं०	ई० स०	
१९४६	१८९०	महारावत का देहांत।

महारावत रघुनाथसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१९४६	१८९०	महारावत की गद्दीनशीनी।
१९४७	१८९०	महारावत के ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह का देहांत।
१९४७	१८९१	अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से गद्दीनशीनी की खिलअत और खरीता लेकर कर्नल ट्रेवर का प्रतापगढ़ जाना।
१९५१	१८९४	प्रतापगढ़ से मंदसोर जानेवाले मार्ग में महारावत का पक्की सड़क बनवाना।
१९५१	१८९४	महारावत का प्रथम वर्ग के सरदारों को मुक़द्दमे सुनने का अधिकार देना।
१९५२	१८९५	महारावत का प्रतापगढ़ में अस्पताल बनवाना।
१९५४	१८९७	महारावत की ज्येष्ठ राजकुमारी वल्लभकुंवरी का विवाह बीकानेर के वर्तमान महाराजा सर गंगासिंहजी से होना।
१९५६	१८९९	प्रतापगढ़ राज्य में भयङ्कर अकाल होना।
१९५७	१९००	महारावत के छोटे महाराजकुमार गोवर्द्धनसिंह का जन्म।
१९५८	१९०१	महाराजकुमार गोवर्द्धनसिंह को अरणोद मिलना और उसकी उपाधि "महाराज" होना।
१९५९	१९०३	महाराजकुमार मानसिंह का सीकर में विवाह होना।
१९६०	१९०४	सालिमशाही सिक्के के स्थान में कल्दार का चलन होना।
१९६१	१९०४	अंग्रेज़ सरकार के खिराज के कल्दार रुपये नियत करना।

वि० सं०	ई० स०	
१९६२	१९०५	महारावत का महाराजकुमार को राज्याधिकार सौंपना।
१९६५	१९०८	महारावत के भंवर रामसिंह का जन्म।
१९६५	१९०८	महाराजकुमार का काश्मीर जाना।
१९६६	१९०९	महारावत की दूसरी राजकुमारी का विवाह सैलाना के राजकुमार दिलीपसिंह से होना।
१९६७	१९१०	महाराजकुमार का टेहरी में दूसरा विवाह होना।
१९६८	१९११	महाराजकुमार मानसिंह की राजकुमारी मोहनकुंवरी का जन्म।
१९६८	१९११	दिल्ली दरबार में महाराजकुमार का जाना और महारावत को के० सी० आई० ई० का ख़िताब मिलना।
१९६९	१९१२	महारावत का अजमेर जाकर लॉर्ड हार्डिंज से मुलाक़ात करना।
१९६९	१९१२	महाराजा का ध्रांगध्रा में तृतीय विवाह होना।
१९७१	१९१४	महारावत के शासन की रौप्य जयन्ती होना।
१९७५	१९१८	महाराजकुमार मानसिंह का परलोकवास।
१९७८	१९२१	महारावत का पारसी धनजी शाह को दीवान बनाना।
१९८१	१९२४	महारावत के भंवर रामसिंह का सीकर में विवाह होना
१९८१	१९२४	बीकानेर और ग्वालियर के महाराजाओं का प्रतापगढ़ जाना।
१९८१	१९२५	महारावत की प्रपौत्री देवेन्द्रकुंवरी का जन्म।
१९८५	१९२९	महारावत का परलोकवास।

महारावत सर रामसिंहजी

वि० सं०	ई० स०	
१९८५	१९२९	महारावतजी की गद्दीनशीनी
१९८६	१९२९	राजपूताने के एजेंट गवर्नर जेनरल का प्रतापगढ़ जाकर गद्दीनशीनी का खरीता और खिलअत देना।
१९८६	१९२९	महारावत का एफ़० सी० केवेन्टरी को दीवान नियत करना।
१९८६	१९२९	महारावत की बहिन का सीतामऊ के ज्येष्ठ महाराज-कुमार के साथ विवाह होना।
१९८९	१९३२	महारावत का डुमरांव में दूसरा विवाह होना।
१९९०	१९३३	महाराजकुंवरी इंद्रकुंवरी का जन्म।
१९९१	१९३४	महारावत का ध्रांगधरा में तीसरा विवाह होना।
१९९१	१९३४	जैन दिगम्बर समाज-द्वारा महारावत का अभिनंदन होना।
१९९४	१९३७	अंग्रेज़ सरकार का ख़िराज में कमी करना।
१९९४	१९३७	महाराजकुमारी उर्मिलाकुंवरी का जन्म।
१९९४	१९३८	महारावत को के० सी० एस्० आई० का ख़िताब मिलना।
१९९४	१९३८	महाराजकुमारी यशवंतकुंवरी का जन्म।
१९९६	१९३९	महाराजकुमारी कुसुमकुंवरी और कुमुदकुंवरी का जन्म।
१९९६	१९४०	महाराजकुमार का जन्म

परिशिष्ट संख्या ४

प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास के प्रणयन में जिन-जिन पुस्तकों से सहायता ली गई उनकी सूची।

संस्कृत और प्राकृत

संस्कृत—

अमरकाव्य।
कुंडप्रदीप (सोमजी भट्ट)।
गोपालार्चनचन्द्रिका।
नाममाहात्म्य (रामकृष्ण)।
प्रतापप्रशस्ति (कवि कल्याण)।
प्राचीन लेखमाला (पं० दुर्गाप्रसाद)।
बालभारत (कवि राजशेखर)।
मयूरेशमन्दार (कृष्णदास वैष्णव)।
महाभारत (वेद व्यास)।
राजप्रशस्ति महाकाव्य (रणछोड भट्ट)।
विष्णुसहस्रनाम की टीका (कवि जयदेव)।
शास्त्रदीपिका।
सत्यरूपक (वृन्द कवि)।
संगीतरत्नावली।
हरिभूषण महाकाव्य (कवि गंगाराम)।
हरिविजयनाटक (कवि जयदेव)।
हरिसारस्वत (महारावत हरिसिंह)।
हृदयप्रकाश (हृदयेश)।
हेमाद्रिप्रयोग (हेमाद्रि)।

प्राकृत—

प्रभावकचरित (चन्द्रप्रभसूरि)।

विद्धशालभंजिका (कवि राजशेखर)।

डिंगल, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, फ़ारसी आदि भाषाओं के ग्रंथ

डिंगल—

भीमविलास (कवि कृष्ण अढ़ाड़ा)।

रायमल रासा।

वंशभास्कर (मिश्रण सूर्यमल्ल)।

हिन्दी—

उदयपुर राज्य का इतिहास (गौरीशंकर हीराचंद ओझा)।

उदयपुर राज्य के बड़वा की ख्यात (बड़वा देवीदान के यहां से प्राप्त)।

ऐतिहासिक बातों का संग्रह (कविराजा बांकीदास)।

काव्यकुसुम (पं० जगन्नाथ शास्त्री)।

चतुरकुलचरित्र (ठाकुर चतुरसिंह)।

जहांगीरनामा (मुंशी देवीप्रसाद)।

जोधपुर राज्य की ख्यात।

जोधपुर के राजाओं, राणियों और कुंवरों की नामावली (मुंशी देवीप्रसाद)।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, काशी नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित।

प्रतापगढ़ राज्य की ख्यात।

प्रतापगढ़ राज्य की एक पुरानी ख्यात।

प्रतापगढ़ राज्य के बड़वे की ख्यात।

महाराणा उदयसिंहजी का जीवन-चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)।

महाराणा रत्नसिंह और विक्रमादित्य के जीवन-चरित्र (मुंशी

मुंहणोत नैणसी की ख्यात।
राजपूताने का इतिहास (गौरीशंकर हीराचंद ओझा)
रावत प्रतापसिंह ने मोहोकमसिंह हरिसिंघोत देवगढ़ रा धणी री वार्ता (महाराज बहादुरसिंह)।
वीरविनोद (महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास)।
शाहजहांनामा (मुंशी देवीप्रसाद)।
हरिपिंगल (जोग कवि)।

गुजराती—

पुरातत्व (त्रैमासिक)।
मिरात-इ-सिकन्दरी—गुजराती अनुवाद (आत्माराम मोतीराम दीवानजी)।
हिन्द राजस्थान (अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह तथा काशीराम उत्तमराम पंड्या)।

फ़ारसी—

अख़बारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला।
औरंगज़ेबनामा।
तारीख़े फ़िरिश्ता (मुहम्मद क़ासिम फ़िरिश्ता)।
बादशाहनामा (अब्दुलहमीद लाहौरी)
मिरात-इ-सिकन्दरी (सिकन्दर)।
वक़ाये राजपूताना (मुंशी ज्वालासहाय)।

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

Aitchison, C U.—Treaties, Engagements and Sanads.

Annual Reports of the Rajputana Museum, Ajmer.

Archaeological Survey of India, Annual Reports.

Baniprasad, Dr.—History of Jahangir.

Bhavnagar Inscriptions.

Briggs, John—History of the Rise of the Mohammadan Power in India (Translation of Tarikh-i-Ferishta of Mahomed Kasim Ferishta).

Duff, C. Mabel—Chronology of India.

Epigraphia Indica.

Erskine, K. D.—Gazetteer of the Partabgarh State.

Heber, Bishop—Narrative of a journey through the Upper Provinces of India.

Malcom, Sir John—Report on the Province of Malwa and Adjoining Districts.

Malleson, G. B.—Historical Sketches of the Native States of India.

Memorandum on the Indian States—1938.

Selections from the Peshwas' Daftar.

Showers, C. L.—A Missing Chapter in the Indian Mutiny.

Souvenir History of the Sailana State.

Tod, Col. James—Annals and Antiquities of Rajasthan.

Vedivelu, A.—The Ruling Chiefs, Nobles and Zamindars of India.

Yate, Captain C. E.—Gazetteer of Partabgarh.

अनुक्रमणिका

(क) वैयक्तिक

आ

ख

ग

घ

च

छ

ज

झ

ट

ड

त

द

ध

न

प

फ

ब

भ

य्

र्

श

स

(ख) भौगोलिक

++卐++

इ

ई

उ

ऋ

ए

ऐ

क

ख

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

थ

द

फ

ब

भ

म

ह

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१६	वि० सं० १७०७	वि० सं० १७०५
१८	१६	ई० स० १६५०	ई० स० १६४८
१६	८	बारी दर्वाज़ा	बारी दर्वाज़ा, धाय दर्वाज़ा
१६	१७	घासीराम	घासीलाल
२३	१२	ता० २ नवम्बर	ता० १७ अक्टोबर
२४	२५	ई० स० १६१३-१४	ई० स० १६१५-१६
७२	१८	कान्हल	गोपालदास
८६	१	विक्रमादत्य	विक्रमादित्य
८६	२	संग्रामसिंह	रायमल
८६	१५	दिय	दिया
६३	१७	ई० स० १५५६	ई० स० १५५७
६८	२०	महारावत	महारावल
१०४	२	वि० सं० १६२१	वि० सं० १६२०
१०४	२	ई० स० १५६४	ई० स० १५६३
१४१	१३	महाराव	महारावत
१५१	२४	समान	सामान
१५३	५	समूनगर	धर्मातपुर (फतिहाबाद)
१५३	६	तीसरे दिन	कुछ दिन बाद
१५८	१७	चौंडावतं हकमूसिंहं	चौंडावत् मुहकमूसिंह
१७३	५	रामसिंह	रायसिंह
१६२	२६	श्रीकृष्णापर्णेन	श्रीकृष्णार्पणेन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३२	१८	शम्सुद्दौला	शम्सामुद्दौला
२५६	१४-१५	प्रतापगढ़	देवलिया
२५६	१२	ओलो	ओल
३१०	२१	जोन	जाने
३४३	२	माचायत	भांचायत
३७४	१	कचोलिया	कचोलिया